शान्तिपर्व

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

[पूर्वार्द्ध]

(राजधर्म)

अध्याय पृष्ठ

अध्याय — पृष्ठ

" शाहंशाह बाबर "

शान्तिपर्व

पूर्वार्द्ध

राजधर्म

प्रथम अध्याय

कर्ण का परिचय

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

नारायण, नरोत्तम नर, सरस्वती देवी और श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी को प्रणाम कर महाभारत को पढ़े या पारायण करे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब कुरुक्षेत्र का महासमर समाप्त हो गया, तब उसमें मारे गये अपने भाइयों और सहायकों को जलप्रदान द्वारा तृप्त कर, पाण्डव, विदुर, धृतराष्ट्र तथा भरतवंश की समस्त स्त्रियों ने नगर के बाहिर एक मास तक निवास किया। मृतपुरुषों के उद्देश्य से श्राद्ध कर्म कर चुकने के बाद और गङ्गातट पर रहने के दिनों में धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर से मिलने के लिये, बड़े बड़े सिद्ध महात्मा, ब्रह्मर्षि, वेदव्यास, नारद, महर्षि देवल, देवस्थान, कण्व तथा वेदज्ञ, बुद्धिमान अनेक ब्राह्मण भी अपने शिष्यों सहित, गृहस्थ, स्नातक तथा महाजन लोग गये। राजा युधिष्ठिर ने उन लोगों के प्रति स्वयं उठ कर सम्मान प्रदर्शित किया और यथाविधि उनका अर्घ्यपाद्यादि से सत्कार किया। समस्त ऋषि महर्षि जब आसनों पर आसीन हो गये, तब युधिष्ठिर ने पुनः समयोचित उन सब का आदर सत्कार किया, जिसे उन

लोगों ने अङ्गीकार किया। तदनन्तर लाखों ब्राह्मण और महर्षि—शोकाकुल एवं गङ्गातट पर बैठे हुए धर्मराज को चारों ओर से घेर कर वहीं बैठ गये और धर्मोपदेश दे युधिष्ठिर को धैर्य धराने लगे।

नारद वेदव्यासादि महर्षियों ने उनसे वार्त्तालाप करते हुए कहा। नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! तुम बड़े भाग्यशाली हो। तभी तो तुमने भगवान् जनार्दन श्रीकृष्ण की सहायता एवं अपने सुधर्म बल से प्रबल वैरियों का संहार कर, अखिल भूमण्डल को जीता है। हे पाण्डुनन्दन! यह सौभाग्य की बात है कि, तुम महाभयङ्कर युद्ध से निर्विघ्न हो गये और तुमने धर्म का अनुराग दिखलाया। कहो, तुम प्रसन्न तो हो? हे राजन्! वैरियों का संहार कर तुमने अपने स्नेहियों और सम्बन्धियों को तो हर्षित कर दिया? राजलक्ष्मी पा कर भी तुम दुःखी तो नहीं हो?

युधिष्ठिर ने कहा—हे नारद! यह ठीक है कि, श्रीकृष्ण के बाहुबल के भरोसे, विप्रों के शुभाशीर्वाद से और भीम एवं अर्जुन के पराक्रम से, मैंने इस सम्पूर्ण धरामण्डल को अपने वश में कर लिया है; किन्तु मुझे एक बात का दुःख सदा सताया करता है। वह यह कि मैंने राज्य के लालच में पड़, अपने बहुत से सम्बन्धियों का नाश करवा डाला। मैंने अपने प्यारे पुत्र अभिमन्यु की हत्या करवायी और प्रियतम द्रौपदी के पुत्रों का वध करवाया, अतः हे भगवन्! मुझे तो अपना ऐसा विजय भी अपना पराजय जान पड़ता है। श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा अपने मन में क्या कहती होगी? जब श्रीकृष्ण यहाँ से लौट कर द्वारकापुरी में पहुँचेंगे, तब (युद्ध का समस्त वृत्तान्त सुन) वहाँ की प्रजा के लोग मेरे इस विजय के बारे में क्या कहेंगे? मेरे परम प्रिय और हितैषी केवल द्रौपदी के पुत्र ही इस युद्ध में नहीं मारे गये, बल्कि द्रौपदी के भाई और पिता भी तो अब नहीं रह गये, वे भी तो युद्ध में काम आये। मुझे इस बात का भी बड़ा दुःख है। हे भगवन् नारद! सुनिये, एक और बात है। माता कुन्ती ने कर्ण के जन्म का वृत्तान्त गुप्त रख कर, मेरे मन

के दुःख को बहुत बढ़ा दिया है। जिस कर्ण के शरीर में दस सहस्र नागों जितना बल था, जिसकी टक्कर का एक भी महारथी न था, जो सिंह समान पराक्रमी था, और जिसकी चाल सिंह जैसी थी, जो विजय-शील, बुद्धिमान, दयालु, दानी और सदाचारी था, जो कौरवों की आशाओं का केन्द्र, क्षात्रधर्म के अभिमान से युक्त था, परम पराक्रमी, परोत्कर्ष-असहिष्णु और क्रोधी था, जो रण में सदा हमें भगाया करता था, जो बड़ी फुर्ती से शस्त्र चलाया करता था, जो विचित्र ढंग से युद्ध सञ्चालन की क्रिया में निपुण था, जो विद्वान् एवं अद्भुत पराक्रमी था, उसे कुन्ती ने छिप लुक कर उत्पन्न किया था और वह हमारा सगा भाई था; किन्तु हमें तो यह मालूम ही न था कि, कर्ण हम लोगों का सहोदर भाई है। किन्तु जब मैं मृतपुरुषों का तर्पण करने बैठा, तब मेरी माता कुन्ती ने मुझसे कहा—तू कर्ण का भी तर्पण करना। क्योंकि वह भी मेरा ही पुत्र था और सर्वगुणालङ्कृत भुवनभास्कर से वह उत्पन्न हुआ था। जब मैं कन्या थी, तब यह मेरे उदर से प्रकट हुआ था। उस समय मैंने एक पेटी में बंद कर उसको गङ्गा में छोड़ दिया था। वह पेटी बहती बहती राधा नाम्नी दासी के हाथ लगी। उस पेटी से कर्ण को निकाल, राधा ने पालन पोषण कर कर्ण को बड़ा किया। इसीसे लोग कर्ण को राधा का पुत्र जानते थे; किन्तु असल में सूर्यपुत्र कर्ण कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र और मेरा सगा भाई था। उस कर्ण को मैंने राज्य के लालच में पड़ मरवा डाला। इस कार्य से मेरे गात्र वैसे ही भस्म हुए जाते हैं, जैसे रुई, अग्नि से। श्वेतवाहन अर्जुन भी अपने सहोदर भ्राता कर्ण को नहीं पहचानता था। यह बात मुझे, भीम को, नकुल को और सहदेव को भी नहीं मालूम थी, किन्तु कर्ण जानता था कि हम लोग उसके सहोदर भाई हैं। मैंने सुना है कि, माता कुन्ती ने हमारे साथ उसकी सन्धि करा देने के अभिप्राय से उसके निकट जा कर कहा था—कर्ण! तू तो मेरा पुत्र है। अतः तू मेरे पुत्रों के पक्ष में हो जा; किन्तु महात्मा कर्ण ने माता कुन्ती का

कहना न माना और अन्त में उसने कुन्ती से कहा—यह नहीं हो सकता कि, युद्ध में मैं दुर्योधन को सहायता न दूँ। क्योंकि यदि मैं तुम्हारे कथनानुसार युधिष्ठिर से मैत्री कर लूँ तो लोग मुझे नीच, क्रूर और कृतघ्न कहने लगेंगे। यदि मैं तेरे कथनानुसार कार्य करूँ, तो लोग यह कहेंगे कि मैं श्वेतवाहन अर्जुन से डर गया। अतः प्रथम मैं युद्ध में श्रीकृष्ण और अर्जुन को हरा दूँगा, तब युधिष्ठिर से मैत्री कर लूँगा।

इस पर विशालवक्षःस्थल वाले कर्ण से कुन्ती ने पुनः कहा। कुन्ती बोली—हे कर्ण! अच्छी बात है, तू अर्जुन से भले ही लड़ना; किन्तु अर्जुन को छोड़ अन्य मेरे चारों पुत्रों को तो अभय कर दे। यह सुन, हाथ जोड़े और थरथर काँपती हुई अपनी माता कुन्ती से कर्ण ने कहा कि, तुम्हारे चार पुत्र यदि कभी मेरे हत्थे पर चढ़ गये, तो भी मैं उनका वध न करूँगा। अतः हे माता तुम्हारे पाँच पुत्र तो हर हालत में चिरञ्जीवी रहेंगे। यदि मैं मारा गया तो अर्जुन सहित पाँच भाई जीवित रहेंगे और यदि कहीं अर्जुन मारा गया तो इस कर्ण को ले, तुम्हारे पाँच पुत्र जीवित रहेंगे। पुत्रों की पक्षपातिनी कुन्ती ने पुनः कर्ण से कहा कि, हे वत्स! जिन भाइयों का तू कुशल चाहता है, उनके प्रति ऐसा व्यवहार करना जिससे उनका कल्याण हो।

यह कह माता कुन्ती वहाँ से अपने घर चली आयी। सो उस मेरे सहोदर भाई को अर्जुन ने रण में मार डाला है। हे मुने! न तो कर्ण और न कुन्ती ही ने मेरे आगे इसकी कभी चर्चा की—इसीसे मेरा धनुर्धर कर्ण, अर्जुन के हाथ से युद्ध में मारा गया। हे प्रभो! मुझे तो यह बात कि, कर्ण मेरा सगा भाई था—अभी विदित हुई है। ऐसे भाई का मारा जाना, मेरे हृदय को सालता है। यदि कहीं अर्जुन की तरह कर्ण भी मेरा सहायक होता, तो मैं इन्द्र तक को जीत लेता। धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्र जब मुझे राजसभा में सताते थे, तब मुझे सहसा क्रोध चढ़ आता था; किन्तु (न मालूम क्यों), कर्ण को देख, मैं शान्त हो जाता था। द्यूतसभा में दुर्योधन का हितैषी बन, जब जब कर्ण ऐसे कठोर वचन

कहना, जिनका परिणाम अच्छा न था, तब मुझे बड़ा क्रोध आता था; किन्तु कर्ण के पैरों की ओर निगाह पड़ते ही—मेरा क्रोध शान्त हो जाता था, क्योंकि कर्ण के दोनों चरण मुझे माता कुन्ती के चरणों जैसे जान पड़ते थे। इसका रहस्य जान लेने के लिये मैंने बार बार प्रयत्न भी किया; किन्तु न जान पाया। अच्छा यह तो आप बतलावें कि, लड़ाई के समय पृथ्वी ने कर्ण के रथ के पहिये को क्यों निगला? मेरे भाई कर्ण को क्या ऐसा कोई शाप था? यदि था तो क्यों? आप यह सब बातें मुझे ठीक ठीक सुनावें? क्योंकि आप सब बातें जानते हैं और लोक वेद के मतानुसार कार्य करने वालों को भी आप जानने वाले हैं।

दूसरा अध्याय

कर्ण को ब्राह्मण का शाप

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब महाराज युधिष्ठिर ने इस प्रकार प्रश्न किया; तब वाग्विदाम्वर नारद जी ने वह वृत्तान्त कहा, जिसमें ब्राह्मण द्वारा कर्ण को शाप दिये जाने का वर्णन था।

नारद जी बोले—हे महाबाहो! हे भरतवंशी राजन्! तुम कहते हो कि, तुम यदि कर्ण और अर्जुन की सहायता प्राप्त कर सकते तो इन्द्र को भी जीत सकते थे—सो आपका यह कथन सर्वथा यथार्थ है। रण में कोई ऐसा कार्य न था जिसे कर्ण और अर्जुन मिल कर न कर सकते थे। हे निष्पाप! हे महाबाहो! हे राजन्! अब आपको मैं देवताओं की गुप्त मंत्रणा का वृत्तान्त सुनाता हूँ, सुनो। शस्त्राघात से मारे जा कर समस्त क्षत्रियों को स्वर्ग पठाने के लिये, देवताओं ने ही कुन्ती के गर्भ से और सूर्य के औरस से कर्ण को उत्पन्न किया था, जिससे वह वैर की आग को भड़कावे। कर्ण लड़कपन ही से बड़ा तेजस्वी था और उसने आङ्गिरस गोत्रोत्पन्न तुम्हारे गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्वेद का अभ्यास किया था। किन्तु कर्ण लड़कपन

ही से भीम के शारीरिक बल, अर्जुन के शस्त्रनैपुण्य, तुम्हारी प्रतिभा, नकुल सहदेव की विनम्रता, अर्जुन और श्रीकृष्ण की मैत्री से मन ही मन बहुत कुढ़ा करता था। राजा दुर्योधन के साथ कर्ण ने बचपन ही से मैत्री कर ली थी। तुम लोगों पर देवताओं का अनुग्रह देख और अपने कुढ़ने स्वभाव से विवश हो, वह तुम्हारा कट्टर शत्रु बन गया था। धनुर्विद्या में धनञ्जय की विशेष गति देख, उसने द्रोणाचार्य से एकान्त में कहा था—हे आचार्य! मैं सरहस्य आपसे ब्रह्मास्त्र को छोड़ने और लौटाने का विधान सीखना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं अर्जुन की टक्कर का हो जाऊँ। आप तो अपने पुत्र और शिष्यों में भेदभाव नहीं रखते, अतएव आप मुझे ब्रह्मास्त्र की विधि सिखला दें। आपके अनुग्रह से लोग फिर यह न कह पावेंगे कि कर्ण को ब्रह्मास्त्र चलाना नहीं आता।

जब अर्जुनहितैषी द्रोण से कर्ण ने इस प्रकार कहा, तब कर्ण के दुष्ट अभिप्राय को जान कर आचार्य द्रोण ने कहा—कर्ण! ब्रह्मास्त्र की शिक्षा तो उस ब्राह्मण अथवा तपस्वी क्षत्रिय ही को दी जा सकती है, जिसने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया हो।

[नोट:—द्रोणाचार्य के इस कथन का लक्ष्य यह था कि, ब्रह्मास्त्र की विधि जानने के लिये ब्राह्मण और क्षत्रिय ही उपयुक्त पात्र हैं। कर्ण सूतपुत्र प्रसिद्ध था—अतः द्रोण ने उसे ब्रह्मास्त्र का अनधिकारी बतलाया।]

द्रोण के इन वचनों को सुन, कर्ण ने उनको प्रणाम किया और उनसे बिदा माँग वह सीधा महेन्द्राचल पर परशुराम के निकट चला गया। वहाँ पहुँच उसने बड़े भक्तिभाव से परशुराम जी के आगे माथा टेक प्रणाम किया। तदनन्तर उसने कहा मैं भृगुवंशी ब्राह्मण हूँ। इस पर परशुराम जी कर्ण पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गोत्र प्रवर आदि पूँछ, उससे कहा—अच्छा आया! आ आ बैठ जा। यह कह कर, परशुराम ने कर्ण को अपने पास रख लिया। स्वर्ग समान महेन्द्राचल पर रहते हुए कर्ण ने शास्त्रोक्त

विधि के अनुसार शस्त्रास्त्र चलाने और लौटाने का अभ्यास किया। वहीं कर्ण से और देवताओं, दानवों तथा राक्षसों से परिचय हुआ और उनके साथ उसका प्रेम हो गया। एक दिन कर्ण कमर पर तलवार लटकाये और हाथ में धनुष ले आश्रम के निकट ही समुद्रतट पर अकेला घूम फिर रहा था। इतने ही में वेद के जानने वाले, किसी अग्निहोत्री ब्राह्मण की एक गौ चरती हुई वहाँ आ निकली। कर्ण ने भ्रमवश उसे हिंस्र जन्तु जान, मार डाला। पीछे जब उसे अपनी यह भूल विदित हुई, तब वह उस गौ के स्वामी ब्राह्मण के निकट गया और उसे शान्त करने के लिये उससे बारंबार कहने लगा। मुझसे भ्रमवश आपकी गौ का वध हो गया है अतः मेरे इस अज्ञानकृत अपराध को आप क्षमा करें, किन्तु उस ब्राह्मण ने वचनों द्वारा कर्ण का तिरस्कार कर, उससे कहा—अरे दुराचारी! अरे दुर्मति। तू इस योग्य है कि तू मार डाला जाय, किन्तु मैं तो तेरा वध न करूँगा, जा तुझे तेरे इस कुकर्म का यथासमय फल मिल जायगा। तू जिसके साथ सदा डाह किया करता है और जिसके पीछे तुझे रात दिन इतना श्रम करना पड़ता है। उससे लड़ते समय तेरे रथ का पहिया पृथिवी में समा जायगा। रे पापी! पृथिवी तेरे रथ के पहिये को निगल जायगी। उस समय जब तू अचेत हो जायगा, तब तेरा वैरी तेरा सीस काट डालेगा। रे नराधम! तू अब यहाँ से चल दे। अरे मूढ़! तूने प्रमत्त हो जैसे मेरी गौ का वध किया है, वैसे ही तेरा शत्रु, मेरे शाप से, तेरा सिर काट कर, तेरा वध करेगा।

हे राजन्! इस प्रकार उस विप्र ने कर्ण को शाप दिया। पीछे जब अनेक गौएँ और रत्नादि दे कर्ण ने उस ब्राह्मण को सन्तुष्ट किया, तब उसने पुनः यह कहा कि, इस धराधाम पर तो ऐसा कोई पुरुष है नहीं, जो मेरे शाप को अन्यथा कर सके। अतः तू यदि जाना चाहता हो, तो चला जा और यदि खड़ा रहना चाहे तो खड़ा रह। तेरी जो इच्छा हो सो कर।

जब उस विप्र ने कर्ण से इस प्रकार कहा, तब कर्ण दीन हो, नीचे

को सिर कर और मन ही मन उस शाप के लिये चिन्तित होता हुआ, परशुराम जी के पास चला गया।

तीसरा अध्याय

परशुराम द्वारा कर्ण को शाप

नारद जी ने कहा—हे राजा युधिष्ठिर! कर्ण के भुजबल, पराक्रम, विनम्रता, इन्द्रियनिग्रह तथा गुरुशुश्रूषा से भृगुवंशोद्भव परशुराम, उस पर परम प्रसन्न हुए। तपस्वी परशुराम ने अपने तपपरायण शिष्य कर्ण को बड़ी शान्ति के साथ ब्रह्मास्त्र चलाने और लौटाने की विधि, यथानियम सिखा दी। ब्रह्मास्त्रविद्या सीख कर्ण वहाँ परशुराम के आश्रम में रह, आनन्द से दिन व्यतीत करने लगा। वहाँ रह वह नित्य धनुर्वेद में परिश्रम किया करता था। व्रतोपवास करते करते परशुराम जी बड़े दुबले हो गये थे। वे एक दिन अपने आश्रम के निकट ही कर्ण सहित विचर रहे थे, सो घूमते फिरते जब दुर्बलशरीर परशुराम थक गये, तब अपने विश्वास-भाजन और कृपापात्र कर्ण की गोद में सिर रख कर सो गये। दैवसंयोग से उसी समय श्लेष्म, मेद, माँस और रुधिर खाने पीने वाला और पैने डंकों वाला एक कीड़ा कर्ण के निकट गया। रुधिरपायी उस कीड़े ने कर्ण की जाँघ में बुरी तरह काट खाया। गोद में सिर रख सोये हुए परशुराम जी कहीं जाग न उठें, इस डर से कर्ण उस कीट को न तो हटा ही सका और न मार ही सका। अतः उस कीट ने कर्ण की जंघा में खूब काटा। यद्यपि उस कीड़े के काटने से कर्ण के बड़ी वेदना हुई, तथापि उसने उस वेदना को धैर्य धारण कर सहन किया। वह तनक भी न तो हिला और न डुला। ज्यों का त्यों जहाँ का तहाँ कर्ण बैठा रहा; किन्तु जब कर्ण की जाँघ से रक्त निकला, तब वह रक्त परशुराम जी के शरीर पर गिरा। इससे तेजस्वी परशुराम जी जाग उठे और क्रोध में भर बोले कि, अरे! मेरा

थका शरीर तेरे रक्त के गिरने से अपवित्र हो गया। तूने यह क्या किया? तू डरे मत और ठीक ठीक बतला कि बात क्या है?

परशुराम जी के इन वचनों को सुन कीट द्वारा अपनी जाँघ में काटे जाने पर रुधिर के निकलने का समस्त सत्य सत्य वृत्तान्त कर्ण ने कह सुनाया। साथ ही परशुराम जी ने देखा कि वह कीड़ा रुधिर पी कर फूल उठा है। उस कीट के आठ पैर थे और उसकी दंष्ट्राएँ बड़ी पैनी थीं और शरीर के रोंगटे सुई की तरह नुकीले थे। उसका सारा शरीर इन रोंगटों से ढका हुआ था। उस कीट का नाम अलर्क था। क्रोध भरी दृष्टि से परशुराम जी के देखते ही वह कीट तत्क्षण मर गया और उस रक्त में गिर पड़ा। उस घिनौने कीट के मर जाने पर भयङ्कर और मनमाना रूप धारण करने वाला एक राक्षस आकाश में दिखलायी पड़ा। उस राक्षस का शरीर काला और कण्ठ लाल था और वह मेघ रूपी वाहन पर चढ़ा हुआ था। सफल-मनोरथ राक्षस ने हाथ जोड़ और गिड़गिड़ा कर परशुराम जी से कहा—हे भृगुकुल श्रेष्ठ! आपका मङ्गल हो। आपने मेरा इस नारकीय यातना से उद्धार किया है। आपका भला हो। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने मेरे साथ बड़ी भलाई की है। अब मैं जहाँ से आया था, वहीं जाऊँगा।

राक्षस के इन वचनों को सुन महाबाहु प्रतापी परशुराम ने कहा—अरे! तू है कौन! और नरक में क्यों पड़ा था? यह तो बतला।

राक्षस बोला—सत्ययुग में, मैं दंश नामक एक बड़ा भारी असुर था। भृगुऋषि के बराबर ही मेरी अवस्था भी थी। एक दिन मैंने भृगुऋषि की सुदर्शना नाम्नी भार्या को बरजोरी अपहृत किया। तब भृगु ने मुझे शाप दिया कि, तू कीट हो कर पृथिवी पर जन्म ले। उस शाप के प्रभाव से मुझे धराधाम पर कीटयोनि में जन्मना पड़ा। महाक्रोधी आपके पूर्वज महर्षि भृगु ने मुझसे यह भी कहा था कि, रे पापी! तू मल-मूत्र-खखार खाने वाला कीड़ा हो, नरकयातना भोगेगा। हे परशुराम! जब भृगु ने मुझे यह शाप दिया; तब मेरे ऊपर अनुग्रह कर, उन्होंने यह भी कहा कि, तू

मेरे शाप से, मेरे वंश में उत्पन्न परशुराम द्वारा मुक्त किया जायगा। अतः भृगु जी के शाप से मुझे इस कीटयोनि में जन्म लेना पड़ा था। इस योनि में मुझे ज़रा भी सुख नहीं मिलता था; किन्तु आपके संग से मैं इस पापयोनि से छूट गया।

यह कह और परशुराम जी को प्रणाम कर वह राक्षस निज स्थान को चला गया। तदनन्तर कर्ण से परशुराम जी ने क्रोध में भर कर कहा—रे मूढ़! ठीक ठीक बतला तू कौन है? किस जाति का है? क्योंकि ब्राह्मण इतनी पीड़ा नहीं सह सकता। तुझमें तो कष्टसहिष्णुता क्षत्रियों जैसी है। अतः तू निडर हो सत्य सत्य बतला कि, तेरी जाति क्या है?

परशुराम की डाँट सुन कर्ण शापभय से बहुत डर गया और उनको प्रसन्न करता हुआ कहने लगा—हे भृगुवंशिन्! आपको विदित हो कि, मेरा जन्म उस सूत जाति में हुआ है, जिसकी उत्पत्ति ब्राह्मण और क्षत्रिय के संयोग से हुई है। लोग मुझे राधेय कर्ण के नाम से पुकारते हैं। हे ऋषे! मैंने ब्रह्मास्त्र सीखने के लालच में पड़, यह जाल रचा था। अब आप मुझ पर कृपा करें। वेदाध्ययन कराने वाला गुरु निश्चय ही पिता तुल्य होता है। अतः मैंने आपको अपना गोत्र भार्गव बतलाया था।

जब थरथराते और दीन हो हाथ जोड़े भूमि पर पड़े हुए कर्ण ने परशुराम से यह कहा; तब क्रोध में भरे किन्तु तिरस्कार की हँसी सी हँस, परशुराम ने कहा कि, रे मूढ़! ब्रह्मास्त्र के लालच में पड़ तूने मिथ्या भाषण कर मुझे धोखा दिया है। अतः मरण काल को छोड़ और सदैव तुझे ब्रह्मास्त्र का स्मरण बना रहेगा; किन्तु युद्ध में जब तू अपने जोड़ वाले से लड़ेगा, तब तू निस्सन्देह ब्रह्मास्त्र चलाने की विधि भूल जायगा। क्योंकि ब्रह्मास्त्र का अधिकारी ब्राह्मण क्षत्रिय को छोड़ और कोई वर्ण वाला नहीं है और तू ब्राह्मण नहीं है। अरे दुष्ट! तू अब मेरे आश्रम से चल दे। इस आश्रम में झूठ बोलने वाले नहीं रह सकते; किन्तु तूने बहुत दिनों तक मेरी सेवा की

है। अतः मैं तुमसे कहता हूँ कि युद्ध में तेरी टक्कर लेने वाला इस धरा-धाम पर कोई क्षत्रिय न मिलेगा।

परशुराम जी के इन आशीषान्वित वचनों को सुन, कर्ण ने उन्हें प्रणाम किया और वहाँ से वह चल दिया। दुर्योधन के निकट जा कर्ण ने उससे कहा कि, मैं अस्त्र चलाने और लौटाने की विधि सीख आया।

चौथा अध्याय

कर्ण का पराक्रम

नारद ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार कर्ण, भृगुनन्दन परशुराम जी से अस्त्र चलाने और लौटाने की विधि सीख, दुर्योधन के पास चला आया और आनन्द से दिन व्यतीत करने लगा। हे राजन्! एक बार कलिङ्गदेशान्तर्गत, राजपुर नगर के राजा चित्राङ्गद ने अपनी राजकुमारी के लिये स्वयम्वर सभा की आयोजना की। इस सभा में उस राजकुमारी का पाणिग्रहण करने को बहुत से राजा लोग एकत्रित हुए। जब दुर्योधन को इसका समाचार मिला, तब वह भी कर्ण को साथ ले और सुवर्ण भूषित रथ पर सवार हो, राजपुर की स्वयम्वर-सभा में जा कर सम्मिलित हुआ। राजकुमारी का पाणिग्रहण करने के उद्देश्य से वहाँ शिशुपाल, जरा-सन्ध, भीष्म, वक्र, कपोतरोमा, नील, रुक्मी, शृगाल, कामरूप देश का राजा, अशोक, शतधन्वा, भोज, वीर, आदि राजा लोग भी आये। इनके अतिरिक्त दक्षिण देश के म्लेच्छ राजा लोग, आर्य राजा गण, पूर्व एवं उत्तर दिशाओं के अनेक राजा उस स्वयम्वर सभा में सम्मिलित हुए थे। जो राजा लोग इस स्वयम्वर सभा में आये वे सब सोने के बाजूबंद पहिने हुए थे। उनके शरीरों का रंग भी तपाये हुए सोने जैसा था। वे सब राजा लोग तेजस्वी और व्याघ्रवत् उत्कट बल वाले थे।

हे राजन्! जब समागत राजन्यवर्ग आ आकर सभा में बैठ गये, तब अपनी धात्री और रक्षक लोगों के साथ राजकुमारी स्वयम्बर-सभा में पधारी। उस राजकुमारी की जानकारी के लिये उपस्थित राजाओं की नामावली सुनायी गयी। जब प्रत्येक राजा का परिचय उसे दिया गया और जब वह चलती चलती दुर्योधन के निकट पहुँची, तब उसे भी वरमाला न पहिना, वह आगे बढ़ती चली गयी। दुर्योधन ने इसे अपने लिये असह्य अपमान समझा और अन्य उपस्थित राजाओं का तिरस्कार कर, उस राजकुमारी को आगे बढ़ने से रोका। इतना ही नहीं, दुर्योधन ने अपने चाचा भीष्म और मित्र कर्ण के बलबूते पर उस कन्या को बरजोरी रथ पर सवार करा, वहाँ से ले जाना चाहा। साथ ही स्वयम्बर-सभा में उपस्थित राजाओं को युद्ध के लिये ललकारा भी; किन्तु दुर्योधन उस राजकुमारी को रथ में बैठा, ज्योंहीं आगे बढ़ने लगे, त्योंहीं कमर में तलवार बाँधे और हाथों में गोह के चमड़े के दस्ताने पहिने हुए, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण अपने रथ पर सवार हो राजकुमारी के रथ के पीछे हो लिया। यह सब देख, उन समस्त राजाओं में, जो लड़ने को तैयार थे, बड़ा कोलाहल मचा। वे आपस में कहने लगे—कवच पहिन लो। रथों को तैयार करवा लो। इस पर वे सब राजा लोग लड़ने को तैयार हो गये और युद्ध भी होने लगा। क्रोध में भर उन राजाओं ने कर्ण और दुर्योधन पर आक्रमण किया और उन दोनों पर, उन लोगों ने वैसे ही बाणवृष्टि की जैसे मेघ दो पर्वतों पर जलवृष्टि करते हैं। तब कर्ण ने बाण छोड़ उन राजाओं के चलाये केवल बाण ही नहीं काटे; किन्तु उनके धनुषों को भी काट कर गिरा दिया। महारथी कर्ण ने अपने हाथ की सफाई दिखला कितने ही राजाओं को धनुषों से रहित कर दिया। जो राजा लोग धनुष ताने हुए थे और रथशक्ति एवं गदाओं से लड़ रहे थे तथा जिनके सारथि मारे गये थे, उन सब को कर्ण ने विकल कर डाला। कर्ण ने उन सब को जीत लिया। जिन राजाओं के सारथि मारे गये थे; वे त्राहि त्राहि पुकारते,

तथा उदास हो—स्वयं रथों को हाँकते हुए रणक्षेत्र छोड़ कर भाग गये। तब कर्णरक्षित दुर्योधन, उस राजकुमारी को हर कर, हस्तिनापुर की ओर चल दिया।

पाँचवाँ अध्याय

कर्ण-जरासन्ध-युद्ध

नारद जी बोले—हे राजन्! जब कर्ण ने इस प्रकार निज पराक्रम प्रदर्शित किया और जब इसका समाचार मगधराज जरासन्ध ने सुना, तब उसने कर्ण को द्वन्द्वयुद्ध के लिये ललकारा। ललकार सुन कर्ण लड़ने को गया और दिव्यास्त्रों के प्रयोग को जानने वाले उन दोनों महारथियों में परस्पर युद्ध होने लगा। दोनों ओर से विविध प्रकार के अस्त्रों की वर्षा की गयी। जब दोनों योद्धाओं के तरकस बाणों से शून्य हो गये और उन दोनों के धनुष और तलवारें भी टूट गयीं, तब दोनों वीर रथों को छोड़ तथा पृथिवी पर खड़े हो, कुश्ती लड़ने लगे। इस भिडन्त में कर्ण ने बाहु-कण्टक पेच से जरासन्ध के शरीर के उस जोड़ को, जिसे जरा नाम्नी राक्षसी ने जोड़ा था, भग्न किया। तब तो जरासन्ध ने, वैरभाव त्याग कर, कर्ण से कहा कि, रे कर्ण! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। यह कह जरासन्ध ने कर्ण को अङ्गदेश के अन्तर्गत मालिनी नाम्नी नगरी दे दी। इस प्रकार शत्रुओं को पराजित कर कर्ण राजा हो गया। इसके पूर्व कर्ण केवल अङ्गदेश का अधीश्वर था; किन्तु इस घटना के बाद, दुर्योधन के परामर्शानुसार, शत्रु-विजयी कर्ण मालिनी अर्थात् चम्पा नगरी में राज्य करने लगा। कर्ण इस प्रकार अपने शस्त्र के बल इस धराधाम पर प्रसिद्ध हो गया।

हे राजन्! तुम्हारे हित के लिये एक दिन इन्द्र ने कर्ण के निकट जा, उससे उसके शरीर में चिपटे हुए कवच और कानों के कुण्डल माँगे। स्वर्गाधीश इन्द्र जैसे व्यक्ति को अपने द्वार पर भिक्षा माँगने को आया हुआ

जान, उदारमना कर्ण ने, देव की माया से मोहित हो कर, वह कवच और दोनों कुण्डल अपने शरीर से काट, इन्द्र को दे दिये, जिन्हें पहिने हुए वह उत्पन्न हुआ था। तब वह उस कवच और उन दोनों कुण्डलों से रहित हो गया, जो जन्म के समय उसके शरीर पर विद्यमान थे। अतः अर्जुन सहज ही में कर्ण का वध कर सका। गोवध करने के कारण विप्र ने उसे जो शाप दिया था तथा धोखा देने के बदले परशुराम ने उसे जो शाप दिया था, इन शापों के प्रभाव से भी कर्ण सहज में मारा गया।

अर्जुन के हाथ से कर्ण के मारे के जाने के कारण ये थे :—

१ गोवध के लिये उस गौ के स्वामी ब्राह्मण का कर्ण को शाप।

२ झूठा गोत्र बताने के लिये कर्ण को परशुराम का शाप।

३ कुन्ती के प्रति कर्ण की प्रतिज्ञा कि, वह अर्जुन को छोड़ अन्य चारों पाण्डवों का वध न करेगा।

४ रथियों की गणना करते समय भीष्म द्वारा कर्ण का अर्धरथी कहा जाना और इस अपमान से कर्ण का उत्साहभङ्ग होना।

५ राजा शल्य का युद्ध के समय बार बार कर्ण को हतोत्साह कर देना।

६ जनार्दन श्रीकृष्ण की अर्जुन को समयोचित सलाह अर्थात् जब कर्ण के रथ का पहिया ज़मीन में धस गया और कर्ण रथ से उतर उसे निकालने लगा, तब प्रहार करने को अनिच्छुक अर्जुन को श्रीकृष्ण ने ही प्रोत्साहित कर कर्ण का वध करवाया था।

७ अर्जुन को रुद्र, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर के दिव्यास्त्रों की प्राप्ति और द्रोणाचार्य एवं कृपाचार्य द्वारा अर्जुन को युद्ध की विशेष शिक्षा।

इन्हीं सब कारणों से सूर्यतुल्य तेजस्वी कर्ण को अर्जुन ने युद्ध में मारा था। हे युधिष्ठिर! आपके भाई कर्ण को ब्राह्मण और परशुराम ने शाप दिया था और इन्द्रादि ने उसे धोखा देकर ठगा था। यह सब होने पर भी पुरुषव्याघ्र कर्ण बड़ी वीरता के साथ लड़ता हुआ मारा गया था। अतः उसके लिये तुम शोक मत करो।

छठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर द्वारा स्त्रियों को शाप

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! यह कह देवर्षि नारद जी जब चुप हो गये, तब शोक से विकल राजर्षि युधिष्ठिर पुनः चिन्ता में डूब गये और साँप की तरह लम्बी साँसें लेते हुए रुदन करने लगे।

युधिष्ठिर की यह दशा देख, शोक से विकल एवं मूर्छित कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा—युधिष्ठिर! तुम्हें कर्ण के लिये शोक करना उचित नहीं। हे महाप्राज्ञ! तू शोक को त्याग और मैं जो कहती हूँ, उसे तू सुन। सूर्य की अनुमति से मैंने कर्ण को यह बात जना दी थी कि, तू उसका भाई है। आत्मीयजन की हितकामना से प्रेरित हो, एक आत्मीयजन को दूसरे आत्मीयजन से जो बातें कहनी चाहिये, वे सब बातें सूर्य ने कर्ण से एक बार स्वप्न में और दूसरी बार, मेरी उपस्थिति में कही थीं। सूर्य और मैंने विविध प्रकार की युक्तियों से कर्ण को समझाना चाहा—और तेरे साथ उसकी मैत्री स्थापित करानी चाही थी; किन्तु हम दोनों उसे न मना सके। इसका कारण यह था कि, उसके सिर पर काल खेल रहा था। इसीसे वह तेरे साथ वैर करने लगा था और बदला लेने की टोह में रहता था। यही कारण था कि, मैं कर्ण की ओर से तटस्थ हो गयी थी।

जब कुन्ती ने इस तरह धर्मराज को समझाया, तब शोक से विकल राजा युधिष्ठिर नेत्रों में आँसू भर कहने लगे—हे माँ! आपने इस बात को आज तक मुझसे छिपाया, इसीसे आज यह सन्ताप करने का अवसर उपस्थित हुआ है।

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर ने स्त्रीजाति को यह शाप दिया कि, आज से कोई भी स्त्री कोई भी बात छिपा कर न रख सकेगी। इसके बाद राजा युधिष्ठिर पुत्र, पौत्र तथा अन्य सम्बन्धियों तथा स्नेहियों के संहार को स्मरण कर, मन ही मन बहुत उदास हुए। उनके मन पर, शोक वैसे ही

धन रत्नादि राजोचित ऐश्वर्यों का सुख भोगने का समय आया, तब उनके समस्त पुत्र दुर्योधनादि कौरव युद्ध में मारे गये। धनाभिलाषी, धन न मिलने से दीन एवं क्रोध तथा ईर्षा से अधम दशा को प्राप्त पुरुषों को जय रूपी फल नहीं मिला करता। पाञ्चालों और कौरवों के जो योद्धा रण में मारे गये हैं, उनको मरा हुआ ही समझना चाहिये (अर्थात् उनको मुक्ति नहीं हो सकती) क्योंकि वे राज्य के लालच में पड़ लड़े थे। यदि वे राज्यप्राप्ति के लालच में फँस न लड़ते और क्षात्र धर्म से प्रेरित हो लड़े होते तो वे सब के सब स्वर्ग गये होते। इन सब के नाश का कारण यद्यपि कुछ लोगों के मतानुसार हम बतलाये जाते हैं, तथापि यदि विचार पूर्वक देखा जाय, तो इस जनसंहार के मूल कारण धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि ही हैं। क्योंकि उन लोगों ने अन्यायपूर्वक हमसे हमारा राज्य छीना था। धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ हमने कभी कोई बदी का काम नहीं किया था; तथापि वे सदा ही हमारे साथ विरोध रखते थे और द्वेष किया करते थे। उनकी बुद्धि हमारी ओर से दुष्ट थी और उनका जीवन कपट-मय आचरणों से पूर्ण था। वे हमारे प्रति मिथ्या विनय प्रदर्शित करते थे, ऐसे बान्धवों को मार कर न तो हमारा प्रयोजन ही सिद्ध हुआ और न हमारा विजय ही हुआ। न तो वे राज्यसुख भोग पाये और न उन्हें स्त्रियादि का सुख प्राप्त हो पाया। दुर्योधनादि कौरवों ने अपने मंत्रियों, स्नेहियों, हितैषियों और बुद्धिमानों के कथन पर ध्यान न दिया। फल यह हुआ कि, वे रण में मारे गये और राज्य सुख भोग से वञ्चित रहे। दुर्योधन का हम लोगों के साथ द्वेष था। अतः वह उस द्वेष के कारण सदा सन्तप्त रहा करता था। इसीसे उसे कुछ भी सुख न मिला। राजसूय यज्ञों में वह हमारे उत्तम ऐश्वर्य को देख, मारे कुढ़न के पीला और दुबला हो गया था। दुर्योधन की इस दशा को देख कर शकुनि ने पुत्रवत्सल धृतराष्ट्र को यह सलाह दी थी कि, हमें जुआ खेलने को बुलवावें। अतः पुत्रस्नेह में पड़ धृतराष्ट्र ने अन्यायरत निज पुत्र का मन

रचना निश्चय किया। इस पर भीष्म तथा विदुर ने आपत्ति करते हुए धृतराष्ट्र से कहा था, ऐसा अन्याय मत करो; किन्तु धृतराष्ट्र ने उनके कथन पर कुछ भी ध्यान न दिया। अतः इस समय मेरी जैसी दशा है, वैसी ही दशा धृतराष्ट्र की भी हुई है। सचमुच अधर्मरत एवं राज्य के लोभ में पड़े तथा कामुक अपने पुत्र को पिता हो कर भी धृतराष्ट्र ने न रोका। इसका फल यह हुआ कि, दुर्योधन ने अपने सहोदरों का संहार करवा अपने प्रकाशमान यश को नष्ट कर डाला। दुर्योधन हमारे साथ सदा द्वेष रखता था और उसके मन में पाप भरा हुआ था। अतः उसके मारे जाने का मुझे शोक नहीं है; किन्तु वह अपने वृद्ध माता पिता को शोक-सागर में निमग्न कर चला गया। इसका मुझे अवश्य दुःख है। उसे युद्धाभिलाषी दुर्योधन ने श्रीकृष्ण के सामने हमारे विषय में जो बातें कही थीं वैसी बातें कोई भी कुलीन भाई बंद अपने नातेदारों के लिये न कहेगा। दुर्योधन के कृत्यों से हम सब सदा के लिये वैसे ही भस्म हो गये, जैसे सूर्य अपने तेज से समस्त दिशाओं को भस्म कर डालता है। दुष्टबुद्धि दुर्योधन हमारा वैरी ही था। वह स्वयं मर गया और उसके पीछे हमारे कुल का सर्वनाश हो गया। इसके अतिरिक्त हमारे हाथ से अवध्य महात्माओं का वध हुआ। इससे जगत् में हम निन्दा के पात्र बन गये। कुलनाशक पापबुद्धि दुर्योधन को देश का राजा बना, धृतराष्ट्र को आप पश्चात्ताप करना पड़ता है। यद्यपि हमारे वैरी मारे गये, उनके राज्यसुख को हमने सदा के लिये नष्ट कर दिया और ऐसा करने से हम पाप के भागी भी हुए, तथापि मुझ अकेले ही को मनुष्यवध का पातक भस्म किया करता है। हे अर्जुन! मनुष्य के किये पापों का नाश, परोपकार करने, किये हुए पापों के लिये पश्चात्ताप करने, अपने पापों की कथा दूसरों को सुनाने, दान देने, तप करने, पाप कर्मों से निवृत्त होने तीर्थ-यात्रा करने तथा वेद एवं धर्मग्रन्थों का पारायण करने से नष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध में श्रुति की यह आज्ञा है कि, जिस पुरुष का मन

संसार से विरक्त हो गया है वह फिर पापकर्म नहीं करता। जिस त्यागी और योगमार्गावलम्बी की बुद्धि स्थिर हो जाती है, वही ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। हे धनञ्जय ! यह जान कर ही मैं सुख दुःख, सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्वों से रहित तथा ध्याननिष्ठ हो कर, ज्ञानोपार्जन करना चाहता हूँ। अतः हे शत्रुतापन ! मैं तुम्हारी सब की अनुमति से वन में जाऊँगा और योग द्वारा परब्रह्म से साक्षात्कार करने का उद्योग करूँगा। श्रुति कहती है कि, परिग्रहवान पुरुष आत्मज्ञान का सम्पादन नहीं कर पाता। हे शत्रु-नाशन ! यह बात मैंने अपनी आँखों से देखी है। सङ्गाभिलाषी पुरुष जन्म मरण के बंधन में डालने वाले पापकर्म जिस प्रकार करते हैं, उसी प्रकार मैंने भी राज्य की कामना से पापकर्म किये हैं। अतः मैं तो अब सब को त्याग, ममता, मोह, शोक तथा संग से रहित हो, किसी वन में चला जाऊँगा। हे धनञ्जय ! अब शत्रुशून्य कल्याणप्रद पृथिवी पर राज्य तुम करो।

हे कुरुनन्दन ! मुझे न तो राज्य से और न ऐश्वर्यभोग से ही कुछ प्रयोजन है। यह कह युधिष्ठिर चुप हो गये, तब उनके छोटे भाई अर्जुन ने उनसे कहा।

आठवाँ अध्याय

अर्जुन का कथन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! आत्मसम्मान का विचार रखने वाला पुरुष जैसे किसी के किये हुए अपने प्रति अपमान को सहन नहीं कर सकता, वैसे ही उग्रपराक्रमी एवं परम तेजस्वी इन्द्रनन्दन अर्जुन अपने उग्रस्वभाव का परिचय देता हुआ तथा अपने जावड़ों को चाटता हुआ, मन्द मुसकान के साथ बोला।

अर्जुन ने कहा—अरे! यह तो बड़े ही दुःख की बात है। यह तो महान् कष्ट की बात है! यह कैसी भीरुता है, जो अमानुषिक पुरुषार्थ प्रदर्शन कर प्राप्त हुई राज्यलक्ष्मी को आप इस प्रकार ठुकराने को तैयार हो? आपने अपने वैरियों का नाश कर स्वधर्मानुसार यह पृथिवी प्राप्त की है और जब सुख भोगने का समय आया है, तब आप अस्थिरचित्त होने के कारण, इसका त्याग कर रहे हैं। क्या कभी किसी पुरुषार्थ से रहित अथवा दीर्घसूत्री को भी राज्य मिला है? यदि आपको राज्य ही त्यागना था तो फिर क्रोध में भर इतने राजाओं की हत्या करने की आवश्यकता ही क्या थी? पुण्यवर्जित, अत्यन्त दरिद्र और पुरुषार्थहीन हतभागी पुरुष ही भिक्षा माँगा करते हैं; किन्तु जो पराक्रमी होते हैं, वे कभी दूसरे के आगे हाथ नहीं पसारते, पराक्रमशून्य पुरुष की इस लोक में नामवरी नहीं होती। ऐसा पुरुष पुत्र, पशु एवं धनादि से भी सुखी नहीं रहता।

हे राजन्! आप समृद्धिशाली राज्य को त्याग कर और हाथ में खप्पर ले क्या भिक्षा माँग कर अपना जीवन बितावेंगे? यदि आपने ऐसा किया तो संसार आपसे क्या कहेगा? हे प्रभो! धर्मादि समस्त पुरुषार्थों को त्याग कर, पुण्यहीन, दरिद्र एवं मूर्ख जन की तरह भिक्षा माँगने की प्रवृत्ति आपके मन में क्योंकर उत्पन्न हुई? आपका जन्म राजघराने में हुआ है। अखिल भूमण्डल आपके अधीन है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थों और धर्म को मन्दमति से त्याग कर आप वन में जाने को क्यों तैयार हो गये? हे राजन्! यदि आप यज्ञादि कर्मानुष्ठान न कर, वन में चले गये, तो दुष्ट लोग यज्ञादि वैदिक कर्मों को नष्ट कर डालेंगे। इसका पाप क्या आप को न लगेगा? यह तो मुनियों का धर्म है कि वे सर्वस्व त्याग कर अकिञ्चन बन जाँय; राजाओं का यह धर्म नहीं है। राजा नहुष ने कहा था—जो मनुष्य निर्धन होता है, वह क्रूर कर्म करता है—अतः निर्धनता को धिक्कार है! ऋषियों का यह धर्म है कि, अगले दिन के लिये संग्रह न कर, नित्य लाना और नित्य खाना।

लोग जिसे राजधर्म कहते हैं, उसका अनुष्ठान तो बिना धन के हो ही नहीं सकता। इसीसे जो जन किसी का धन हरता है, वह मानों उसका धर्म हरता है। अतः जब कोई भी अपने धन को हरे तब हम कैसे उसे क्षमा कर सकते हैं? इस संसार में निर्धनता एक प्रकार का महापातक है। यदि कोई निर्धन पुरुष निकट आ खड़ा हो तो, लोग उसकी ओर तिरस्कार भरी दृष्टि से देखते हैं। अतः आपको उसकी प्रशंसा न करनी चाहिये।

हे राजन्! इस संसार में जैसे पतित जन शोच्य हैं वैसे ही निर्धन जन भी शोच्य हैं। अतः मैं तो इन दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं देखता। नदियाँ जैसे पर्वतों से निकल कर फैलती हैं, वैसे ही संग्रह किये हुए धन से समस्त कार्यों की सिद्धि होती है। हे राजन्! धन ही से धर्मानुष्ठान होते हैं; धन ही से कामना पूरी होती है और धन द्वारा ही स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है। इस संसार में बिना धन के किसी की प्राण-यात्रा नहीं हो सकती। धनहीन अल्पमति जन की समस्त क्रियाएं वैसे ही बंद हो जाती हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतु में क्षुद्र नदियों का प्रवाह बंद हो जाता है। धनवान् ही के मित्र होते हैं और धनवान् ही के सब लोग बान्धव बन जाते हैं। जिसके पास धन होता है वही पुरुष कहलाता है और वही पण्डित भी माना जाता है; किन्तु धनहीन जन का तो कोई मनोरथ पूरा होता ही नहीं। जैसे पालतू हाथी जंगली हाथी को पकड़ लाता है, वैसे ही धन, धन को लाता है।

हे राजन्! धर्म, काम, स्वर्ग, हर्ष, कोप, शास्त्रश्रवण, इन्द्रिय-निग्रह ये सब धन ही से हो सकते हैं। बिना धन के कुछ भी नहीं होता। जिसके पास धन होता है वही कुलीन गिना जाता है। धनवान ही का धर्म भी बढ़ता है, किन्तु जिसके पास धनाभाव है, वह इस लोक में और परलोक में सुखी नहीं रहता। धनहीन जन यज्ञादि नहीं कर सकता और यज्ञ यागादि किये बिना परलोक में सुख मिलता नहीं, धनहीन जन धर्मानुष्ठान

विधिपूर्वक नहीं कर सकता। क्योंकि धन से धर्म का प्रवाह वैसे ही निकलता है, जैसे पहाड़ से नदी की धारा। हे राजन्! शरीर से दुबला पुरुष सदा दुबला नहीं कहलाता; किन्तु जिसके पास गौएँ नहीं हैं, जिसके यहाँ नौकर चाकर नहीं हैं, जिसके पास अतिथि नहीं आते—वास्तव में कृश वही है। हे राजन्! आप कहते हैं, बान्धवों का नाश करने में कल्याण नहीं होता, सो जब कश्यप की दिति अदिति पत्नियों के सन्तान देवता और असुरों में युद्ध हुआ था। उसमें क्या देवताओं ने अपने भाई असुरों का वध नहीं किया था? आप इस पर विचार करें। देवताओं की भी वृद्धि अपने सम्बन्धियों का नाश करने ही से हुई है। यदि राजा युद्ध द्वारा अन्य राजाओं का धनापहरण न करे तो वह राजा धर्मानुष्ठान क्यों कर कर सकता है? क्योंकि राजा के लिये अन्य कोई वृत्ति ही नहीं है। वेदों और वेदज्ञजनों का सिद्धान्त है कि, पुरुष को वेदाध्ययन कर विद्वान् होना चाहिये, धन का अच्छा संग्रह करना चाहिये और उस संग्रह किये हुए धन से सावधानता पूर्वक यज्ञ यागादि करने चाहिये। देवताओं ने जब अपने बन्धु बान्धवों से वैर विरोध किया था, तभी उन्हें स्वर्ग में स्थान प्राप्त हुआ था, जब देवता अपने बन्धुओं का संहार कर दुःखी नहीं हुए, तब फिर आप ही शोक क्यों करते हैं? आप देखें कि, देवताओं ने इसी प्रकार कार्य किया था और वेद भी सदा से लोगों को यही उपदेश देता चला आता है। क्षत्रिय रण में बान्धवों को जीत कर, धनोपार्जन करते हैं और उस धन को यज्ञ यागादि में लगा श्रेय पाते हैं। धन ही से अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन हो सकते हैं। दूसरों से युद्ध कर, धन लेना ही राजाओं के लिये श्रेय माना गया है। मेरी समझ से तो इस जगत में ऐसा एक भी राजा नहीं है, जिसे परअपकार किये बिना अपने आप धन मिल गया हो। जैसे पिता के धन को पुत्र अपना समझता है, वैसे ही राजा इस पृथिवी को अपना बतला उसे अपने अधीन कर लेते हैं। जिन बड़े बड़े राजर्षियों को धर्माचरण द्वारा स्वर्ग प्राप्त हुआ है, उन्होंने भी उसी

को धर्म बतलाया है, जिसे मैं बतला रहा हूँ। जैसे जल से परिपूर्ण समुद्र का जल सर्वत्र फैल जाता है, वैसे ही धन से परिपूर्ण राजा का धन सर्वत्र फैल जाता है।

हे राजन्! पूर्वकाल में जो पृथिवी राजा दिलीप, नृग, नहुष, अम्बरीष, मान्धाता आदि राजाओं के अधीन थी, वही अब आपके अधीन है। अतएव उन राजाओं ने जिस तरह सर्वस्व दान कर, यज्ञ किया था, वैसा ही यज्ञ आप भी करें। यदि आप वैसा यज्ञ न करेंगे, तो आपको इस राज्य-प्राप्ति का पातक लगेगा। माण्डलिक राजाओं तथा प्रजा का धन हरने वाले राजा, बड़ी दक्षिणा वाला अश्वमेध यज्ञ किया करते हैं। जब वह यज्ञ पूर्ण हो जाता है, तब यजमान राजा अपने प्रजा जनों सहित यज्ञान्त (अवभृथ) स्नान करते हैं और इससे पवित्र होते हैं। क्योंकि सर्वमेध नामक यज्ञ में विश्वरूप महादेव अधिष्ठाता देवता हैं। अतः आप भी समस्त प्राणियों के हितार्थ और आत्मकल्याणार्थ यह यज्ञ करें। क्योंकि क्षत्रियों के लिये यज्ञ सम्बन्धी यह प्रथा अनादिकाल से चली आती है और यह उनकी समृद्धि को बढ़ाने वाली है। सुनते हैं धर्मानुष्ठानों का अन्त नहीं है। अतः हे राजन्! श्रीरामचन्द्र के समय से परम्परागत प्राप्त इस महान् यज्ञरूपी मार्ग को त्याग आप कुमार्ग पर न चलें।

नवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का उत्तर और संन्यास धर्म की उत्कृष्टता

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन! यदि तुम अपने मन को स्थिर कर और कान लगा मेरे कथन को सुनो, तो तू मेरे कथन का अनुमोदन किये बिना नहीं रहेगा। सांसारिक सुखों को त्याग महात्मा पुरुषों ने जिस मार्ग का अनुसरण किया है मैं उसी मार्ग पर चलूँगा; किन्तु यदि तुम कहो कि, कृपा कर तुम राज्य को स्वीकार करो तो मैं ऐसा कदापि न करूँगा। यदि तुम

मुझसे पूँछो कि, विरले लोगों का वह मार्ग कौन सा है जो कल्याण-कारी है, तो मैं तुम्हें वह मार्ग भी बतला दूँगा। यदि तुम मुझसे उस मार्ग के सम्बन्ध में जिज्ञासा भी न करोगे तो भी मैं तुम्हें विना पूँछे ही बतला दूँगा। सुनो। मैं संसार के नश्वर सुख को तथा ग्राम्य आचार को त्याग, बड़ा भारी तप करूँगा। तप करते समय फल मूल खाऊँगा और निर्दोष मृगों के साथ वन में रहूँगा और समय बिताऊँगा। नित्य हवन करूँगा और परिमित आहार कर शरीर को क्षेशित करूँगा। मस्तक पर जटा बढ़ाऊँगा और शरीर पर वल्कल वस्त्र धारण करूँगा। सर्दी, गर्मी, हवा बतास को सहूँगा। भूख प्यास को परिश्रम कर के जीतूँगा। मैं शास्त्रोक्त विधि से तप कर, शरीर को सुखा डालूँगा। मैं वनवासी मृगों और पक्षियों के साथ रह कर, उनकी मीठी मीठी बोलियाँ सुना करूँगा। उनके वे मधुर वचन मन को और कानों को सुख देंगे। मैं वन में रह कर वृक्षों और लताओं के खिले हुए पुष्पों की सुगन्धि सूँघूँगा और वन के रमणीय स्थानों को देखूँगा। वन में रह मैं वन-वासी वानप्रस्थों के दर्शन किया करूँगा। वन में रहते समय मैं ऐसा कोई काम न करूँगा जो किसी भी प्राणी को बुरा लगे। ऐसी दशा में मुझसे यह आशा तो कोई कर ही नहीं सकता कि, मैं कभी कोई ऐसा काम करूँगा जो ग्रामवासियों को बुरा लगे। वन के किसी एकान्त प्रदेश में बस कर मैं तत्वार्थ पर मनन किया करूँगा और वनोत्पन्न कच्चे पके जो फल मिला करेंगे, उनसे अपने उदर की पूर्ति कर लिया करूँगा। उन्हीं वनजात फलों से मैं देव-पितृ-पूजन किया करूँगा। इस प्रकार वनवास के कठोर नियमों का पालन कर, शरीरपात की प्रतीक्षा किया करूँगा। अथवा वन में अकेला रह कर, और मूँड़ मुड़ा कर, एक दिन में एक ही वनस्पति अथवा वृक्ष से याचना किया करूँगा। अगले दिन दूसरे वृक्ष से याचना करूँगा। इस प्रकार दिन काट कर मैं इस शरीर को त्याग दूँगा। अपने शरीर को चन्दन-चर्चित न कर, धूलधूसरित करूँगा। बस्ती में न रह एकान्त स्थान में रहूँगा, समस्त अच्छी बुरी वस्तुओं का त्याग कर, वृक्ष तले रहा करूँगा। मैं किसी भी

कार्य करता हूँ—इस प्रकार का अहङ्कार उस प्राणी के मन में उत्पन्न हो जाता है ; किन्तु जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और मंत्रणा से भरपूर इस अपार एवं दुस्तर संसार का त्याग करने वाला पुरुष ही सुखी रहता है और के तो सुख है ही नहीं। पुण्य क्षीण होने पर महर्षियों एवं देवताओं को भी स्वर्गच्युत होना पड़ता है। अतः इस संसार की ऐसी गति को जान कर कौन पुरुष सुखी होगा। साम, दान, भेद इत्यादि उपायों द्वारा इतर राजा लोग एकत्रित हो बड़े राजा को अपमान करने के लिये मार डालते हैं। मुझे बहुत काल बाद यह ज्ञानामृत मिला है। इसके द्वारा अनादि मोक्ष को मैं निश्चय ही पाऊँगा। मैं अपने कथनानुसार धैर्य से नित्य विहार करूँगा और निर्भय मार्ग में रह कर जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग तथा वेदना से व्याप्त इस शरीर का अन्त कर डालूँगा।

दसवाँ अध्याय

भीमसेन के आक्षेप

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर के वचनों को सुन कर भीमसेन बोला कि हे राजन्! मूढ़ तथा विचार-शून्य श्रोत्रियों की बुद्धि जैसे वेद का घोष करने में कुण्ठित हो जाती है और अर्थ ग्रहण करने में अशक्त हो जाती है वैसे ही तुम्हारी बुद्धि भोंथरी हो गयी है। यही कारण है कि तुम तत्वार्थ को समझने में असमर्थ हो। यदि तुम राजधर्म को निन्द्य समझते थे और इस प्रकार आलसीपन से जीवन बिताना चाहते थे, तो फिर कौरवों का संहार करवाने की आवश्यकता ही क्या थी? क्षात्रधर्म-पालन-निरत पुरुष में, आपको छोड़, अन्य किसी में क्षमा, दया, करुणा, दैन्य होता ही नहीं। क्योंकि ये सब गुण क्षत्रियोचित नहीं—प्रत्युत ब्राह्मणोचित हैं। यदि मुझे आपके इस मानसिक भाव का पता, पहले चल गया होता, तो मैं कभी न शस्त्र पकड़ता और

न किसी का वध ही करता। फिर भला राजाओं का घोर संहार ही क्यों होता। विद्वानों का कहना है कि बलवान् के लिये यह समस्त जगत् अन्न की तरह उपभोग का पदार्थ है। शास्त्र-मतानुसार बलवान पुरुष ही को इस स्थावर जङ्गमात्मक जगत् का पालन करना चाहिये। धर्मज्ञ विद्वानों का मत है कि, धीर जन को निज भुजबल से राज्य सम्पादन करना उचित है और उसके इस कार्य में जो बाधा डाले, उसे राजा मार डाले। हमारे लिये राज्यप्राप्ति के कार्य में कौरवों ने बाधा डाली थी अतः क्षात्रधर्मानुसार हमने उनका वध किया। अब तुम्हें इस पृथिवी का उपभोग करना चाहिये। एक पुरुष जल के लिये कूप खुदवाता है और खोदने वाला पुरुष कूप खोद कर और कीचड़ में सना हुआ लौट कर आता है अथवा मधु पाने की कामना रखने वाला पुरुष किसी अत्युच्च वृक्ष पर चढ़ता है; किन्तु जैसे वह उस शहद को चखे बिना ही मर जाता है, वैसे ही इस समय हम लोगों की दशा है। जैसे कोई पुरुष बड़ी आशा लगा बहुत दूर का रास्ता तै करके निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच तो जाय; किन्तु उसे वहाँ से हताश हो लौटना पड़े वैसे ही हम लोगों की दशा है। अथवा हे राजन्! हमारी दशा इस समय ठीक उस पुरुष जैसी है, जो अपने शत्रुओं को मार कर स्वयं ही आत्महत्या कर डाले। हमने प्रथम तो शत्रुवध किया और अब तुम हमें बिना शस्त्र ही के मारने को तैयार हो। जैसे भूखे मनुष्य को अन्न तो मिल जाय; किन्तु उसे वह खा न पावे अथवा जैसे कामी पुरुष को कामिनी तो प्राप्त हो जाय; किन्तु वह इच्छानुसार उसका उपभोग न कर सके, वैसे ही हमारी भी दशा है। हे युधिष्ठिर! हम तो इस जगत में निन्दा के पात्र बन गये। क्योंकि हमने तुमको अपना बड़ा भाई मान, तुम्हारे कथनानुसार काम किया; किन्तु हमारी भुजाओं में बल है और हम शास्त्र और शस्त्र के ज्ञाता हैं। हम शक्ति-सम्पन्न हैं। तिस पर भी हमने तुम्हारी आज्ञा का पालन वैसे ही किया है जैसे कोई शक्तिहीन पुरुष, नपुंसक पुरुष की आज्ञा का पालन करे। दूसरे लोग समझते हैं कि, हम अनाथों के रक्षक

हैं; किन्तु वास्तव में हम अपना ही मनोरथ सिद्ध नहीं कर सके। हमने जो कुछ अभी कहा है—उस पर तुम विचार करो। तुम कहते हो कि, मैं संन्यासी बन कर वन में रहूँगा; परन्तु क्या तुम्हें मालूम है कि, मनुष्य संन्यासी तभी होता है जब उस पर कोई विपत्ति पड़ती है, अथवा कोई शत्रु उसका अपमान करता है। अपने आप कोई मनुष्य संन्यासी नहीं होता। तुम्हारे ऊपर तो कोई विपत्ति नहीं आयी। फिर तुम संन्यासी क्यों होते हो? जो बुद्धिमान जन हैं, वे तो कभी किसी क्षत्रिय का संन्यासी होना अच्छा नहीं बतलावेंगे। प्रत्युत सूक्ष्म दर्शियों का तो कहना यह है कि क्षत्रिय हो कर जो संन्यासी होता है वह धर्मभ्रष्ट हो जाता है। सम्भव है तुम कहो कि हिंसामय होने से क्षात्र धर्म गर्हित है; किन्तु तुम्हारा यह कथन वास्तव में तुम्हारा भ्रम मात्र है। क्योंकि दूसरों का तिरस्कार करके राज्य पाना—क्षत्रिय का यही तो परम धर्म है। साथ ही इस धर्मपालन में हिंसा होती ही है। हम तो उत्पन्न ही इसी लिये हुए हैं कि, हम ऐसी हिंसा करें। क्योंकि हम लोग क्षत्रिय के घर उत्पन्न हुए हैं और हमारा जीवन हिंसा ही पर निर्भर है। फिर हमारे हिंसामय क्षात्रधर्म की निन्दा लोग क्यों करने लगे? इस पर भी यदि लोग निन्दा करें ही तो वह निन्दा हमारी नहीं बल्कि वह निन्दा विधाता की है। क्योंकि हिंसाप्रधान क्षत्रिय जाति की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा जी ही तो हैं। जहाँ जहाँ पर (शास्त्रों में) संन्यास ग्रहण कहा गया है—वहाँ वहाँ वह अर्थवाद रूप है और उसका अभिप्राय स्वार्थ नहीं है। अतः वह अमान्य है। ऐसे वचनों की प्रवृत्ति करने वाले सम्पत्तिरहित निर्धन नास्तिक हैं। क्योंकि संन्यास ग्रहण का अधिकार ब्राह्मण को छोड़ अन्य किसी को है ही नहीं। जो अपने पराक्रम से अपने प्राणों का पालन पोषण करता है और जो प्रयत्न पूर्वक अपने शरीर की रक्षा कर सकता है, वह कपटरूपी संन्यास धर्म को ग्रहण कर, अपना जीवन सार्थक नहीं करता—किन्तु अपने धर्म से भ्रष्ट होता है। जो पुत्र, पौत्र, देवता, ऋषि, अतिथि और पितर इन सब का भरण पोषण

तथा यजन याजन नहीं कर सकता—उसे उचित है कि वह जंगल में जा कर अकेला सुख से रहे, किन्तु जो ये सब काम कर सकते हैं उन्हें वन में रहना उचित नहीं है। पुत्रों पौत्रों का भरण पोषण तथा देवताओं का यजन याजन किये विना वन में जा कर निवास करने से यदि कहीं स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती तो फिर वनवासी मृग, शूकर आदि जीव जन्तुओं को तो अवश्य ही स्वर्ग मिल जाया करता; किन्तु ऐसा होता क्यों नहीं? इसी प्रकार जो लोग अपने आश्रित कुटुम्बियों का भरण पोषण और देवताओं का भजन किये विना—केवल जंगल में जा वास करते हैं, उन्हें भी तो स्वर्ग क्यों नहीं मिलता? यदि संन्यासग्रहण ही से स्वर्गप्राप्ति अथवा परम सिद्धि प्राप्त हुआ करती तो फिर पहाड़ों और वन के वृक्षों को भी परम सिद्धि प्राप्त होनी चाहिये थी। क्योंकि वे तो सर्व-परिग्रह त्यागी हैं और वे वन में वास कर, सर्दी गर्मी आदि सहते हैं। उन्हें तो सब से पहले सिद्धि मिलनी चाहिये। वे तो सदा के संन्यासी हैं। वे किसी को दुःख नहीं देते। वे तो सर्व-परिग्रह-रहित हो सदा ब्रह्मचारी बने रहते हैं। फिर वे सिद्धि से वञ्चित क्यों रखे जाते हैं? वास्तव में सिद्धि की प्राप्ति अप्राप्ति अपने अपने भाग्य पर निर्भर है। अन्य के भाग्य पर यह निर्भर नहीं है। अतः क्षत्रिय वंशोत्पन्न पुरुष को तो अवश्य वर्णोचित कर्मानुष्ठान करना ही चाहिये। जो वर्णोचित कर्मों को नहीं करता उसे सिद्धि कदापि नहीं मिलती।

हे युधिष्ठिर! यदि तुम कहो कि जो मुमुक्षु जन हैं, उन्हें केवल उतना ही उद्योग करना चाहिये, जितने से उनकी शरीरयात्रा होती रहै, तो यह कहना भी ठीक नहीं। यदि कहीं ऐसा करने से मोक्ष होती तो यावत् स्थावर पदार्थ मुक्त हो जाते। क्योंकि वे तो केवल अपनी शरीर-यात्रा मात्र के लिये ही उद्योग किया करते हैं—अधिक नहीं; किन्तु यदि आँख पसार कर देखो, तो जान पड़ेगा कि, यह सारा जगत् अपने अपने उद्योगों में संलग्न है—कोई भी उद्योगहीन नहीं है। अतः कर्म

करना अत्यन्त आवश्यक है—क्योंकि बिना कर्म किये सिद्धि कदापि प्राप्त नहीं होती।

ग्यारहवाँ अध्याय

गृहस्थाश्रम का श्रेष्ठत्व प्रतिपादक उपाख्यान

अर्जुन ने कहा—हे राजन्! इन्द्र एवं तपस्वी के संवाद में गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता वर्णित है। उस संवाद में एक प्राचीन इतिहास कहा गया था उसे मैं कहता हूँ। सुनो। पूर्वकाल में ऐसे अनेक तरुण ब्राह्मण, जिनके डाढ़ी मूँछे भी नहीं निकली थीं—मूर्खतावश, अपने माता पिता, भाई बन्धुओं को छोड़ और संन्यासी होने के लिये जंगल में चले गये। उनको संन्यासी हुए जब बहुत काल बीत गया, तब उन तपस्वी ब्राह्मणों पर, इन्द्र ने अनुग्रह किया। वे सुवर्ण जैसे चमकीले रंग के एक पक्षी का रूप धारण कर, उन ब्राह्मणों के निकट गये और कहने लगे—इस संसार में जो लोग पञ्च महायज्ञ कर के अवशिष्ट अन्न को खाने वाले हैं—वे धन्यवादार्ह हैं। उनका वह कर्म तथा जीवन सराहनीय है। उनके समस्त मनोरथ सफल होते हैं। ऐसे ही धर्मात्मा जनों को उत्तम गति मिलती है। पक्षी रूपधारी इन्द्र के इन वचनों को सुन कर, उन ब्राह्मणों ने कहा—वाह! यह पक्षी तो विलक्षण है जो पञ्च महायज्ञ कर के बचे हुए अन्न को खाने वाले की प्रशंसा करता है। अर्थात् हम ऐसा करते हैं—अतः यह प्रशंसा तो हमारी ही हुई।

उन ब्राह्मणों के इस कथन को सुन कर, पक्षी रूपधारी इन्द्र ने कहा—मैं तुम लोगों की प्रशंसा नहीं करता तुम तो अधर्मरूपी पङ्क में सने हुए हो। रजस्वला रमणी की तरह तुम लोग स्वभावतः दोषयुक्त हो। तुम तो उच्छिष्ट भोजी हो। मैं तो उन लोगों की प्रशंसा करता हूँ, जो पञ्चमहायज्ञ करने के बाद बचे हुए अन्न को खाते हैं।

ब्राह्मणों ने कहा—तेरा कथन बहुत ठीक है और मङ्गल करने वाला है। तुम जिसे बतलाओगे, हम लोग उसकी ही उपासना करेंगे। अतः हमारे लिये तुम जो श्रेयस्कर कर्म समझते हो वही हमें बतलाओ। क्योंकि हमारी तुम्हारे कथन पर पूर्ण श्रद्धा है।

पक्षी ने कहा—यदि तुम्हारे मन में भेदभाव न हो और यदि तुम यह न समझते हो कि, यह हमसे भिन्न है, तो मैं तुमसे हितकर यथार्थ वचन कहता हूँ। सुनो।

ब्राह्मण बोले—हे तात! हम तुम्हारे कथन को सुनेंगे। हे धर्मात्मन्! तुम्हें श्रेयस्कर मार्ग मालूम है, अतः हम तुम्हारे कथनानुसार चलने को तैयार हैं। तुम हमें धर्म का तत्व बतलाओ।

पक्षी बोला—हे द्विजों! चौपायों में गौ श्रेष्ठ है। लोहे आदि धातुओं में सुवर्ण श्रेष्ठ है। शब्दों में ओंकार श्रेष्ठ है और दो पैर वालों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों के लिये जात संस्कारादि कर्म वेदमंत्रों से करने का विधान है। ब्राह्मण को उचित है कि, वह जब तक जीवित रहे, तब तक वेदोक्त कर्म करता रहे और मरने के बाद श्मशान में भी उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया वैदिक मंत्रों से ही होनी चाहिये। वैदिक कर्मानुष्ठान ही से ब्राह्मण को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण के लिये यही उत्तम मार्ग है और यही उनका महायज्ञ है। यदि ऐसा नहीं है तो उन्हें मंत्रसिद्ध कर्म करने चाहिये। ऐसा करने से उन्हें स्वर्ग मिलता है। यदि ऐसा न होता तो यह बात (वेद में) क्यों कही जाती?

जो मनुष्य निश्चय पूर्वक, जिस जिस रूप से ईश्वर की उपासना करता है उसे उसी उसी रूप से इस लोक में सिद्धि प्राप्त होती है। जैसे माघ मास शुक्लपक्ष में जो उपासना करते हैं, उन्हें सूर्य द्वारा मोक्षरूपी सिद्धि मिलती है। श्रावणादि मासों में ईश्वरोपासना करने वाले को चन्द्र द्वारा सिद्धि अर्थात मोक्ष प्राप्त होती है

अर्थात् उन्हें स्वर्ग मिलता है। फिर कर्म क्षीण होने पर वे लोग पुनः स्वर्ग से गिर कर, कर्मानुसार फल भोगते हैं। जो कोई कर्म की निन्दा कर, कुपंथ में पग बढ़ाते हैं, वे अर्थहीन मूढ़जन पाप के भागी होते हैं। ऐसे लोग देववंश, पितृवंश और ब्रह्मवंश को त्याग कर, वेदविहीन मार्ग में जा पड़ते हैं अर्थात् वे लोग राक्षस हो जाते हैं। मैं तुम लोगों को यह वर देता हूँ कि, तुम्हारी सगुण निर्गुण उपासना सिद्ध हो। तुम्हें मैं गोधन और पुत्र देता हूँ। अतः तुम श्रद्धापूर्वक इस मार्ग में लग जाओ। यही तपस्वियों का तप है। तुम्हें तो दानरूपी यज्ञ और तप करना चाहिये। गुरुसेवा के साथ साथ देवोपासना, वेदाध्ययन तथा पितरों को तृप्त करना रूपी शाश्वत धर्मानुष्ठान करने से दुष्कर तप की सिद्धि होती है। देवताओं ने भी इस दुष्कर तप को कर के ही स्वर्ग पाया है, अतः गृहस्थ आश्रम में रहो। गृहस्थाश्रम में रहना ही महादुष्कर तपस्या है। यह बात मैं तुमसे कहता हूँ। प्रजा मात्र का हित करने वाला—तप ही है। इसमें तिल बराबर भी सन्देह नहीं है, गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का पूर्णरीत्या पालन कर चुकने के बाद संन्यास ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि गृहस्थाश्रम में सब का समावेश होता है। मत्सरता शून्य तथा द्वन्द्वों से रहित विद्वानों ने इसीको तप बतलाया है। इसको छोड़ व्रतादि करना मध्यमश्रेणी का तप है। जो सायं प्रातः अन्न के विभाग का यथाविधि अतिथि, देव एवं पितरों को तथा अपने आश्रितों को भोजन कराता है और बचे हुए अन्न को खाता है, उसीको परमगति—मोक्ष मिलती है। अतः हे ब्राह्मणों! तुम लोग गुरु, सत्यवादी, सदाचारी एवं संशयरहित हो, इस लोक में सुख पूर्वक रहो। पञ्च महायज्ञ करने वाले मत्सरताशून्य जन—इन्द्र के लोक अर्थात् स्वर्ग में जाते हैं और वहाँ बहुत वर्षों तक वास कर स्वर्गसुख भोगा करते हैं।

अर्जुन ने कहा—हे युधिष्ठिर! पक्षी रूपधारी इन्द्र के उन हितकर वचनों को सुन कर, संन्यासी बनने को आये हुए ब्राह्मण यह कहते हुए घर

को लौट गये कि, संन्यासी होना व्यर्थ है—क्योंकि इस आश्रम का पालन करना यथार्थरीत्या, नहीं हो सकता। वे फिर गृहस्थ बन गये। हे नरश्रेष्ठ! हे सर्वज्ञ! हे राजा युधिष्ठिर! तुम भी संन्यासाश्रम की चर्चा त्याग कर, चातुर्य से काम लो और इस निष्कण्टक हुई पृथिवी का शासन करो।

बारहवाँ अध्याय

गार्हस्थधर्म निरूपण

वैशम्पायन जी बोले—हे शत्रुमर्दन! अर्जुन के इन वचनों को सुन, विशालवक्षःस्थल, महाबाहु, मितभाषी नकुल ने महाबुद्धिमान धर्मराज की ओर देख और अर्जुन के मत का समर्थन करते हुए यह कहा।

नकुल ने कहा—हे राजन्! विशाखयूप नामक क्षेत्र में ईंटों के घने स्थण्डिल अब भी विद्यमान हैं। यह स्थण्डिल देवताओं ने हवन करने के लिये बनवाये हैं। इससे आपको विदित होगा कि, देवता भी यज्ञादि कर्म किया करते हैं और स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति भी वेदोक्त कर्मानुष्ठान पर ही निर्भर है। हे राजन्! आस्तिक पुरुषों के पितृगण जो वृष्टि द्वारा अन्न देते हैं, वे (पितृगण) भी—शास्त्रोक्तकर्म किया करते हैं। जो वेदोक्त कर्मों का त्याग करते हैं, उन्हें परम नास्तिक समझना चाहिये। द्विजों को तो वेदोक्त धर्म छोड़ कर, अन्य किसी भी कर्म के करने का अधिकार ही नहीं है। वेद को प्रमाण रूप से मानने वालों ने समस्त आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही को श्रेष्ठ बतलाया है। क्योंकि विविध वेदोक्त कर्मों को कर के गृहस्थ देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक में जाते हैं। हे राजन्! वेदसम्पन्न ब्राह्मणों के पास जा कर, यदि तुम जिज्ञासा करो कि, हमें क्या करना चाहिये, तो वे यही कहेंगे कि, तुम स्वधर्मोपार्जित द्रव्य से यज्ञ यागादि करो। जो गृहस्थ यज्ञादि कर्मों का सम्पादन करते हुए अहङ्कार और ममता से रहित होते

हैं वे ही वास्तव में सच्चे त्यागी कहलाते हैं ; किन्तु जो लोग गृहस्थाश्रम में सुखानुभव नहीं करते और एक दम त्यागी वन, जंगल में चले जाते हैं वे तामस त्यागी कहलाते हैं। जिन पुरुषों के घर द्वार नहीं है, जो पृथिवी मण्डल पर याचना करते हुए घूमा फिरा करते हैं, जो वृक्ष की छाया में पड़े रहते हैं, जो मौनव्रत धारण करते हैं, जो अपने अपने लिये पाक नहीं बनाते और जो इन्द्रियनिग्रह में संलग्न रहते हैं, वे ही यथार्थ त्यागी संन्यासी कहलाते हैं। जो ब्राह्मण, क्रोध, हर्ष और चुगली करना छोड़, वेद के स्वाध्याय में निरत रहते हैं, वे ब्राह्मण राजसत्यागी भिक्षुक कहलाते हैं।

हे राजन्! एक बार विद्वानों ने चारों आश्रमों की तुलना की। उन्होंने एक पलड़े में तीनों आश्रम रखे और एक पलड़े में गृहस्थाश्रम को रखा। ऐसा करने में तीनों आश्रमों के बराबर अकेला गृहस्थाश्रम ही निकला। क्योंकि गृहस्थाश्रम से तो काम और स्वर्ग - दोनों ही की प्राप्ति होती है। इस प्रकार तुलना करने पर उन महर्षियों ने जान लिया कि, गृहस्थाश्रम ही उत्तम मार्ग और उत्तम गति है। हे धर्मराज! जो पुरुष अन्य आश्रमों को त्याग कर गृहस्थाश्रम में अनुरागवान् होता है और फलप्राप्ति की आशा परित्याग करता है, उसीको सच्चा त्यागी जानना चाहिये; किन्तु जो मूढ़ की तरह गृहस्थाश्रम को त्याग कर वन में जाता है वह त्यागी नहीं है। यदि कोई ढोंगी पुरुष वन में जाता है और वहाँ जा कर यदि कभी उसको किसी प्रकार की कामना उत्पन्न हुई तो यमराज उसके गले में फंदा डालते हैं। इसी प्रकार जो अभिमानपूर्वक कोई कर्म करता है, उसे उस कर्म का कुछ भी फल नहीं मिलता; किन्तु जो लोग अभिमान छोड़ और परित्याग बुद्धि से कर्म किया करते हैं, उन्हें किये हुए कर्म का फल मिलता है। शम, दम, धैर्य, सत्य, शौच, आर्जव, धृति और यज्ञ—ये सब ऋषियों के अनुष्ठेय कर्म हैं। ये ही उनके कर्म हैं। (क्षत्रियों के नहीं) पितृदेव, अतिथि—इन सब का पालन गृहस्थों द्वारा ही हुआ करता है, अतएव शास्त्र में गृहस्थाश्रम की प्रशंसा की गयी है। क्योंकि गृहस्थाश्रम ही में धर्म, अर्थ और काम—इन

तीन वर्गों की सिद्धि होती है। जो पुरुष शास्त्रोक्त विधि से कर्म करता हुआ गृहस्थाश्रम में रहता है, शास्त्र में श्रद्धा रख, त्यागी की तरह आचरण करता है, उसे कभी किसी प्रकार का अटकाव नहीं होता। धार्मिक जन यज्ञ द्वारा मेरा यजन कर, विविध भाँति की दक्षिणाएँ देंगे—ऐसी इच्छा ही से पाप-रहित ब्रह्मा ने इस सारी प्रजा की सृष्टि की है।

ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये ही लता, वृक्ष, औषधि, पवित्र पशु, तिल, जौ, घी आदि हविष्य पदार्थों को उत्पन्न किया है। हे राजन्! गृहस्थाश्रमियों को यज्ञरूप कर्म विशेषतः बेड़ी रूप हैं अर्थात् यज्ञ-कर्म, बन्धन रूप है। अतः गृहस्थाश्रम अतीव कठिन है। हे राजन्! पशु, धान्य और धन से सम्बन्ध होने पर भी जो गृहस्थ यज्ञ नहीं करते वे पापी हैं। ऋषियों ने वेद के स्वाध्याय रूपी कर्म को यज्ञ बतलाया है। अन्य विद्वानों का मत है कि, आत्मा को ज्ञानवान बनाना ही महायज्ञ है। मन की चंचलता को दूर कर उसे स्थिर करने वाले और जीवनमुक्त द्विजातियों के साथ देवता भी मैत्री करने को लालायित रहा करते हैं। हे राजन्! शत्रु से लिये हुए भाँति भाँति के द्रव्य को यज्ञ में लगाने का निषेध कर, आप नास्तिकता का परिचय देते हैं। हे राजन्! जिसके ऊपर सारे कुटुम्ब का भार होता है, उसीको मुनि बनने का अधिकार है—यह बात तो मैंने कभी नहीं सुनी। यदि आपकी इच्छा त्याग ही की है तो तुम गृहस्थाश्रम को न त्याग कर, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ आदि यज्ञों में द्रव्य का त्याग करो। क्योंकि, गृहस्थाश्रम के त्याग को कोई त्याग नहीं मानता। नाना प्रकार के यज्ञों को कर के ही इन्द्र को देवराज पद की प्राप्ति हुई है। तुम भी उन अश्वमेध, राजसूय तथा अन्य यज्ञों को करो, जो ब्राह्मण राजाओं को कराया करते हैं। इन यज्ञों को कर तुम भी पृथिवीपति बनो। जो राजा चोरों, शत्रुओं से पीड़ित प्रजा की रक्षा प्रमादवश नहीं करता, वह राजा कलि का रूप कहलाता है। घोड़े, गौ, दासियाँ, सजे हुए हाथी, ग्राम, देश, खेत और अनेक प्रकार की वस्तुओं से भरे हुए घर आदि, यदि हम लोग ब्राह्मणों को न देंगे और मत्सरतायुक्त होंगे

और प्रजा का पालन नहीं करेंगे तो हमारी गणना भी कलिरूप राजाओं ही में होगी।

हे राजन्! ब्राह्मणों को दान न देने वाला और शरणागत प्रजा जन की रक्षा न करने वाला राजा पाप का भागी होता है और वह सुखी भी कभी नहीं रह सकता। यदि आप यज्ञ कर देवताओं का आराधन न करेंगे और विविध तीर्थों में स्नान किये बिना ही मुनिवेष धारी हो जाँयगे, तो आप उसी प्रकार नष्ट हो जायँगे जैसे पवन के झकोरे से बादल छिन्न भिन्न हो विलीन हो जाता है। साथ ही आप उभयलोकों से भ्रष्ट हो जावेंगे और बीच ही में डोला करेंगे—अर्थात् आप पिशाचयोनि को प्राप्त होवोगे। जो कोई बाह्य अथवा आन्तरिक किसी ऐसे विषय का त्याग मन से करता है जो दुःखकारक है, वही वास्तव में त्यागी है। गेरुआ कपड़े पहिन, गृहस्थाश्रम को त्यागने वाला और मौज उड़ाने वाला जन त्यागी अर्थात् संन्यासी नहीं है। जो ब्राह्मण शास्त्रोक्त विधि के अनुसार कर्मों को करता हुआ, गृहस्थाश्रम में रहता है और शास्त्र में निष्ठावान् है उस ब्राह्मण के यह लोक और परलोक—दोनों लोक सम्हल जाते हैं। हमारे पूज्य पूर्वज जिस मार्ग पर आज तक चलते रहे हैं, उसी मार्ग पर आपको भी चलना चाहिये। क्योंकि निज वर्णोचित कर्त्तव्यों का पालन करने वाला पुरुष कभी शोकान्वित नहीं होता। आप अपने शत्रुओं को जीत चुके, अतः अब आप वैसे ही पृथिवी का पालन करें; जैसे रण में दैत्यों को जीत इन्द्र स्वर्ग में राज्य करते हैं।

हे राजन्! आप क्षात्र धर्म का पालन करते हुए पराक्रम प्रदर्शित कीजिये। आपने इस पृथिवी को जीता है; अतएव आप राज्यशासन का भार अस्थायी रूप से किसी शासक पर सौंप यज्ञादि करें। साथ ही गृहस्थाश्रम की रक्षा करें। ऐसा करने से आपको स्वर्ग प्राप्त होगा। हे राजन्! आपके लिये अब तो शोक करने का कोई कारण भी तो नहीं रह गया।

तेरहवाँ अध्याय

त्याग का स्वरूप

सहदेव बोले—हे महाराज युधिष्ठिर ! त्याग दो प्रकार के होते हैं। एक आभ्यन्तरिक और दूसरा बाह्य। बाह्य (पदार्थों का) त्याग करने वाले को किसी प्रकार की सिद्धि मिलती है ; अथवा नहीं इसमें सन्देह है। बाह्य पदार्थों का त्याग करने वाले, किन्तु मन में द्रव्य की कामना रखने वाले को जो पुण्य और सुख मिलता हो, वह हम लोगों के वैरियों को प्राप्त हो; किन्तु मन से पदार्थों का त्याग करने वाले और ऊपर से लोगों के दिखावे के लिये पृथिवी का पालन करने वाले को जो पुण्य और सुख मिलता है वह हमारे हितैषी मित्रों को मिले। दो अक्षरों वाले अर्थात् मम अथवा "मेरा" का अहङ्कार रखना ही मृत्यु है ; किन्तु जो तीन अक्षरों का "न मम" अर्थात् मेरा नहीं है मानता है; उसीको ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त होता है। बंधन और मोक्ष ये दोनों भाव आत्मा के भीतर रहा करते हैं। ये दोनों यद्यपि देख नहीं पड़ते ; तथापि वे प्राणीमात्र से कर्म कराया करते हैं। कितने ही लोग आत्मा को नित्य मानते हैं ; कितने ही उसे अनित्य मानते हैं। यदि आप आत्मा को नित्य मानने वालों में हैं, तो आपके मतानुसार तो किसी आत्मा का नाश होना ही न चाहिये। अतः प्राणिहिंसा करने वाले किसी भी पुरुष को हिंसा का पाप भी न लगना चाहिये ; किन्तु यदि आप आत्मा को अनित्य मानने वालों में हैं तो आप यह भी मानते ही होंगे कि, शरीर के साथ आत्मा की उत्पत्ति होती है और शरीर के नाश होते ही आत्मा का भी नाश हो जाता है। यदि आप ऐसा मानें तो वेदोक्त समस्त कर्मानुष्ठान व्यर्थ हो जायगा। यदि नित्य अनित्य के विषय में विचारपूर्वक किसी निश्चय पर पहुँचने में आपको आपकी बुद्धि सहारा न देती हो, तो, इस झमेले में आप न

पड़ें और जिस मार्ग पर आपके पूर्वज और आपके पूर्वजों के पूर्वज चलते रहे हों, उसी पर आप भी चलें।

हे राजन्! जिस राजा को यह चराचरात्मक भूमण्डल मिला हो और वह उस पर राज्य न करे तो फिर उस राजा के जीवन की सार्थकता ही क्या शेष रह जाती है? जो जन वनों में रहता है और वनों में उत्पन्न फल मूलादि से अपना पेट भर लिया करता है और इतना कर के भी जो पदार्थों में अनुरागवान् बना रहता है, उसे काल के गाल में पड़ा हुआ समझना चाहिये। जो समस्त प्राणियों के अस्तित्व, भीति और प्रियत्व को देखता है, वह प्रत्यगात्मा है। जो जन पुरुष को नित्य आत्मा रूप मान, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं मानता वही तो संसार से छुटकारा पाता है।

हे राजन्! आप मेरे पिता, आप ही मेरी माता, आप ही मेरे भ्राता और आप ही मेरे गुरु हैं। अतएव मैंने आपके सामने यदि कुछ उद्दण्डपन प्रदर्शित किया हो तो आप उसके लिये मुझे क्षमा करें। क्योंकि, मैंने तो अपने आन्तरिक दुःख की प्रेरणा से यह सब कहा है। हे राजन्! मैंने आपके सामने सत्य अथवा असत्य जो कुछ कहा है, वह केवल इसलिये कि मेरी आपमें भक्ति है न कि यह मान कर कि, मैं आपसे बढ़ कर बुद्धिमान हूँ। अतएव आप मुझे क्षमा करें। यह कह सहदेव चुप हो गये।

चौदहवाँ अध्याय

द्रौपदी का कथन

वैशम्पायन जी बोले— हे जनमेजय! अपने भाइयों के वेदानुकूल वचनों को सुन कर, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर चुप हो गये। उस समय अति-

कान्तिमती, विशालनयनी, नारीश्रेष्ठ एवं कुलवती द्रौपदी ने अपने विचार युधिष्ठिर के सामने प्रकट करना आरम्भ किया। सिंह समान पराक्रमी राजा युधिष्ठिर उस समय अपने भाइयों के बीच वैसे ही बैठे हुए थे, जैसे गजों के बीच गजेन्द्र बैठा हो। जो द्रौपदी, अपने पति धर्मराज के प्रति क्षत्रिय कुल का अभिमान रखने वाली थी, जिसकी युधिष्ठिर के ऊपर पूर्ण ममता थी और जिसे युधिष्ठिर बहुत चाहते थे, जो क्षात्र धर्म की पूर्ण ज्ञाता होने के कारण तदनुसार व्यवहार किया करती थी, जिसके नितम्ब विशाल थे। उसने अपने पति की ओर दृष्टि घुमा, शान्त एवं रमणीय शब्दावली से, अपने पति का ध्यान अपनी ओर फेरा और वह इस प्रकार धर्मराज से कहने लगी।

द्रौपदी ने कहा—हे राजन्! आपके यह भाई चातक की तरह बारंबार क्रन्दन कर, अपने हृदयों को थामें बैठे हुए हैं; किन्तु आप उन पर कृपा नहीं करते—सो क्यों? आपको तो अपने इन चिरक्लेशित भाइयों को धीरज बँधा वैसे ही शान्त करना चाहिये जैसे महावत, मधुर वचनों से बिगड़े हुए हाथी को समझा बुझा कर शान्त करता है। हे राजन्! जिन दिनों हम लोग द्वैतवन में रहा करते थे, उन दिनों आपने यह क्यों कहा था कि, मैं युद्ध में दुर्योधन का वध कर अखिल भूमण्डल का राज्य करूँगा। युद्ध में विजयाभिलाषी अनेक राजाओं को हम मार डालेंगे, रथियों को रथहीन कर देंगे, घुड़सवारों और घोड़ों से इस पृथिवी को पाट देंगे। पश्चात् हे भ्राताओ! तुम लोग बड़े बड़े यज्ञ कर के बड़े बड़े दान दक्षिणाएँ देना और राज्यसुख भोगना। उस समय वन के ये सब क्लेश तुम लोग भूल जाओगे और सुखी होवोगे। हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ! आपने तो ये सब वचन अपने आप कहे थे। अतः अब आप हमारे चिरपोषित मनोरथों को नष्ट क्यों करते हैं? जो नपुंसक होते हैं वे पृथिवी का भोग नहीं कर सकते। नपुंसक धन को भी नहीं भोग सकते, नपुंसक के घर में सन्तानोत्पत्ति भी नहीं होती। वह तो अपने घर में वैसे ही घुसा

रहता है, जैसे पङ्क में मीन। प्रजा का शासन न करने वाला राजपुत्र सुशोभित नहीं होता। जिस राजपुत्र में अपराधियों को दण्ड दे कर शासन करने की सामर्थ नहीं है वह राज्य ही नहीं कर सकता। जिस राजा में दण्ड देने की शक्ति नहीं, वह अपनी प्रजा को सुखी भी नहीं रख सकता। प्राणिमात्र में मैत्री बनाये रखना, दान लेना, वेदाध्ययन करना और तपनिरत रहना ये सब ब्राह्मणोचित कर्म हैं, क्षत्रियोचित नहीं। क्षत्रियों के लिये तो परमधर्म है दुष्टों को दण्ड देना, शिष्टों की रक्षा और पालन करना, रणक्षेत्र में शत्रुओं को पीठ न दिखाना। धर्मवेत्ता वही है जो क्षमा और क्रोध दोनों से युक्त है, जो ब्राह्मणों को दान देता और प्रजा से कर लेता है, जो शत्रु को भयभीत रखता है, जो शरणागत को अभयप्रदान करता है और जो शत्रुओं का निग्रह कर, दीनों पर अनुग्रह करता है। हे राजन्! आपको जो यह पृथिवी मिली है, सो यह शास्त्रोक्त विधि से किये हुए दान द्वारा या यज्ञानुष्ठान द्वारा या याचना द्वारा नहीं। आप को तो यह पृथिवी उस विशाल वाहिनी को नाश करने से प्राप्त हुई है, जिसमें बड़े बड़े वीर योद्धा थे। जो हाथी, घोड़ों और रथों से परिपूर्ण थी, जिसमें बड़े बड़े नेता, बड़े बड़े परामर्शदाता और बड़े बड़े योद्धा थे और जिसकी रक्षा कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि महारथी किया करते थे। अतएव मैं आपसे कहती हूँ कि, आप इस पृथिवी पर राज्य कर इसका सुख भोगें। हे नरशार्दूल! पूर्वकाल में आपने अपने भुजदण्ड के प्रबल प्रताप से अनेक देशों वाले इस रमणीय जम्बूद्वीप को अपने वश में किया था। तदनन्तर मेरु पर्वत के पश्चिम भाग में बसे हुए जम्बूद्वीप के समान क्रौंचद्वीप को भी आपने अपने अधीन किया है। मेरु पर्वत के पूर्वीय भाग में अवस्थित क्रौंचद्वीप की तरह, शाकद्वीप को भी आप अपने अधीन कर चुके हैं। फिर मेरु पर्वत के उत्तरी भाग में अवस्थित शाकद्वीप की तरह आप भद्राश्वद्वीप को भी जीत चुके हैं। इनके अतिरिक्त समुद्र पार कर, आप अन्य द्वीपों तथा अनेक देशों से युक्त

अन्तर्द्वीपों को भी अपने वश में कर चुके हैं। हे महाराज! अपने भाइयों की सहायता से ऐसा अद्भुत पराक्रम कर के भी आप उदासीन क्यों हैं? वैसे अद्भुत पराक्रम को दिखला और ब्राह्मणों से प्रशंसित हो कर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं होते? आप, मस्त साँड़ और सिंह के समान बलवान अपने इन भ्राताओं से ऐसी बातचीत क्यों नहीं करते, जिससे ये हर्षित हों। आप सब देवताओं की तरह प्रियदर्शन हैं। साथ ही शत्रु के आगे डटे रहने वाले हैं तथा उन्हें भगाने वाले हैं; इन्हें आप प्रसन्न रखें। यदि आप ऐसा न करेंगे, तो ये सब वैसे ही असमर्थ हो जाँयगे, जैसे देह से आत्मा के पृथक् होने पर इन्द्रियाँ। मेरी सर्वज्ञा सास और आपकी माता कुन्ती ने तो मुझसे पहले ही कहा था कि, हे द्रौपदी! युधिष्ठिर तुझको सर्वोत्तम सुख प्रदान करेगा। अतः मेरी सास के ये वचन अन्यथा न होने चाहिये। क्योंकि, वे अपने मुँह से कभी एक भी असत्य बात नहीं बोलतीं; किन्तु मैं देखती हूँ कि, आपके भाइयों ने बहुत से वीर राजाओं का संहार कर, जो अभूतपूर्व पराक्रम प्रदर्शित किया है, वह आपकी नासमझी के कारण व्यर्थ चला जायगा। जिनका ज्येष्ठ भाई उन्मत्त होता है, उसके छोटे भाई भी उसीका अनुकरण करते हैं। आपके उन्मादग्रस्त होने से आपके सब भाई भी उन्मत्त हो जावेंगे। वे लोग उद्धत हो, आपको नास्तिकों की श्रेणी में गिनने लगेंगे और आपके आदेशों को अतिक्रम कर, स्वयं राज्य करने लगेंगे। जो मन्दमति उन्मत्त बनता है, उसका कल्याण नहीं होता। जो उन्मत्त हो जाता है, उसकी उन्मत्तता दूर करने के लिये धूप दी जाती है, आँखों में अंजन लगाये जाते हैं और दवाइयाँ सुँघायी जाती हैं।

हे राजन्! यद्यपि मैं अधम स्त्री जाति की हूँ और रण में पुत्रों को गँवा पुत्रहीन हो गयी हूँ, तथापि मैं जीवित रहना चाहती हूँ। मेरा यह कथन मिथ्या या बनावटी नहीं है, प्रत्युत सब सत्य है। मुझे जो सत्य जान पड़ा, वही मैंने आपसे कहा है। मैं और आपके नातेदार आपको

समझाने के लिये प्रयत्न करते हैं। अतः मेरा और इन सब का प्रयत्न निष्फल न होना चाहिये।

हे राजन्! यदि आप इस समस्त पृथिवी को त्याग दें, तो आप अपने लिये स्वयं आपत्ति बिसा लेंगे। हे राजन्! जैसे आप समस्त राजाओं से शोभित हैं, वैसे ही राजा मान्धाता और राजा अम्बरीष भी थे। जैसे वे धर्मपूर्वक प्रजा का पालन पोषण करते थे, वैसे ही आप भी पर्वतों, वनों और द्वीपों से शोभित इस पृथिवी पर राज्य कीजिये। हे राजन्! आप उदास न हों। आप विविध यज्ञादि का अनुष्ठान कर, ईश्वर को प्रसन्न करें और रण में वैरियों को परास्त कर, ब्राह्मणों को वस्त्र, धन, भोजन आदि भोगों का दान दें; किन्तु मुनिवेश धारण कर वन में जाने का विचार त्याग दें। यह कह द्रौपदी चुप हो गयी।

पन्द्रहवाँ अध्याय

दण्ड माहात्म्य

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! यज्ञसेननन्दिनी के वचनों को सुन कर और महाबाहु धर्मराज से अनुमति माँग। अर्जुन ने पुनः यह कहा।

अर्जुन बोले—दण्ड प्रजा का शासक है। दण्ड प्रजा का रक्षक है और जब सब प्राणी सो जाते हैं, तब अकेला दण्ड ही जागता रहता है। इसीसे विद्वानों ने दण्ड को धर्मरूप माना है। दण्ड धर्म अर्थ एवं काम का रक्षक है। अतः धर्म अर्थ और काम दण्ड के आश्रय ही से टिके हुए हैं। फिर धान्य और धन का रक्षक भी दण्ड ही है। आप विद्वान एवं सर्वज्ञ हैं अतः आप दण्ड को धारण कर लोकव्यवहार में प्रवृत्त हों। कुछ पापी लोग तो राजदण्ड के भय से और कुछ यमराज के भय से

पापकर्म नहीं करते। कितने ही परलोक बिगड़ने के भय से पापकर्म नहीं करते। कितने ही ऐसे भी लोग हैं जिनके मन का झुकाव पापों की ओर तो है; किन्तु सामाजिक दण्ड के भय से वे पापकर्म नहीं करते। इस प्रकार सारा जगत दण्डभय से मर्यादा के भीतर रहता है। यह दण्ड ही का भय है कि, एक आदमी दूसरे आदमी के नहीं खा डालता। यदि दण्ड का सब पर आतङ्क न होता तो ये सब प्राणी अन्धतामिश्र नरक में जा गिरते। खोटे मार्गों पर चलने वाले उद्दण्ड पुरुषों का दमन करना और अशिष्टों के दण्ड देना राजा का धर्म है। अतः दण्ड भय ही से यह सारा जगत परिचालित होता है। यदि ब्राह्मण कोई अपराध करे तो उसका यही दण्ड है कि, सब के सामने उसकी भर्त्सना की जाय। यदि कोई क्षत्रिय अपराधी हो तो उससे सेवा कराना और उसे केवल पेट भर अन्न देना ही उसके लिये पर्याप्त दण्ड है। वैश्य अपराधी से अर्थदण्ड स्वरूप धन लेना ही उसे दण्ड देना है। अपराधी शूद्र से कठिन सेवा कराना ही उसे दण्ड देना है। प्रजा में उच्छृङ्खलता न फैलने पावे और प्रजाजनों के धन की रक्षा हो—इसी उद्देश्य से संसार में इस प्रकार के दण्ड की मर्यादा बाँधने की आवश्यकता हुई।* जहाँ श्यामवर्ण और रक्त नेत्रों वाला दण्ड घूमता है वहाँ की प्रजा भली भाँति धर्ममार्ग पर चलती है; किन्तु इस दण्ड का विधायक राजा होना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सभी तो दण्डभय से अपने अपने आश्रमोचित कर्मों का पालन किया करते हैं। हे राजन्! यदि किसी को किसी का भय न रहे तो न तो कोई यज्ञ करे, न कोई किसी का देना चुकावे और न आवश्यकता के समय कोई किसी के पास आ कर खड़ा ही हो। जैसे मनुष्य

---

* दण्ड को श्यामवर्ण इसलिये कहा है कि जिसको दण्ड दिया जाता है उसके नेत्रों के सामने अन्धकार सा छा जाता है। इसी प्रकार दण्ड को रक्त नेत्र इसलिये बतलाया है कि, अपराधी को दण्ड देते समय दण्डविधायक के नेत्र लाल हो जाते हैं।

मछलियाँ मारे बिना माँस नहीं पाते, वैसे ही दूसरों के मर्मस्थलों को विद्ध किये बिना और दूसरे का वध किये बिना राज्यलक्ष्मी हस्तगत नहीं होती। इस जगत् में जब तक दूसरों का पराभव न किया जाय, तब तक न तो कीर्ति प्राप्त होती और न धन ही हाथ लगता है। साथ ही प्रजा भी अपने अधीन नहीं रहती। वृत्रासुर का वध कर के ही इन्द्र, महेन्द्र कहलाये थे। असुरों का वध करने के कारण ही देवगण पूजे जाते हैं। रुद्र, स्वामिकार्तिकेय, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, काल, वायु, मृत्यु, कुवेर, रवि, वसु, साध्य, विश्वेदेवा आदि समस्त देवता अपने अपने शत्रुओं को मार कर ही, विशाल राज्यलक्ष्मी प्राप्त करने के अधिकारी बने हैं। इन देवताओं के प्रताप से नम्र हुए लोग इन देवताओं को सिर नवाया करते हैं; किन्तु जगत्स्रष्टा ब्रह्मा जी एवं पूषा को कोई भी प्रणाम नहीं करता। क्योंकि इन दोनों ने कभी पराक्रम दिखला—किसी का वध ही नहीं किया।

ऐसे भी कितने ही कार्यपटु मनुष्य हैं, जो समस्त प्राणियों की ओर से उदासी न रहने वाले तथा जितेन्द्रिय शान्त पुरुषों की शान्ति भङ्ग किया करते हैं। इस संसार में मुझे तो ऐसा एक भी मनुष्य देख नहीं पड़ता जो बिना हिंसा के आजीविका चलाता हो। क्योंकि यावत् क्रियाओं में साक्षात् अथवा परम्परागत हिंसा रहित भरण पोषण की एक भी क्रिया नहीं है। बलवान प्राणी दुर्बल प्राणियों से अपनी आजीविका चलाते हैं जैसे नौला चूहे का, बिलाव नौले का और कुत्ता बिल्ली का भक्षण करता है। इन सब से बढ़ कर काल है। वह समस्त प्राणियों का भक्षण करता है। अतः स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत् प्राणिमात्र का भक्ष्य है। यह व्यवस्था दैवकृत है। अतः विद्वान लोग इसके लिये मोह नहीं करते। आप क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न हुए हैं, अतः आपको क्षत्रियोचित वर्त्ताव करना चाहिये। क्रोध और हर्ष को जीतने वाले और वन में जा कर बसने वाले मूर्ख क्षत्रियों को तपस्वी बन कर भी हिंसा कर के ही पेट पालना पड़ता है। पृथिवी पर बहुत से जन्तु रहा करते हैं। फलों में भी अनेक जन्तु रहा करते

हैं। उनको खाने से हिंसा तो अवश्य होगी। ऐसी वस्तु नहीं जिससे हिंसा किये बिना प्राण का पोषण हो जाय। कोई भी प्राणी क्यों न हो थोड़ी बहुत हिंसा उसे अवश्य करनी पड़ती है। बहुत से प्राणी इतने सूक्ष्म हैं कि, वे देख ही नहीं पड़ते। उनका अस्तित्व केवल अनुमानजन्य है। उनके शरीर हमारे पलक झपकाते ही नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार हिंसा का श्रोत सदा बढ़ा ही करता है। कितने ही लोग क्रोध और मत्सरता को जीत कर, बस्ती का रहना छोड़ और मुनि बन, वन में जा बसते हैं; किन्तु जब उनमें मोह की मात्रा बढ़ती है; तब उन्हें पुनः गृहस्थाश्रम में जाना पड़ता है। बहुत से जन पृथिवी को खोद कर, औषधियों तथा वृक्षों का छेदन कर तथा पशु पक्षियों की हिंसा कर के यज्ञ किया करते हैं और मरने के पश्चात् स्वर्ग पाते हैं। यद्यपि उन्होंने हिंसा ही हिंसा की है; तथापि उन्हें स्वर्ग मिलता है। हे कुन्तीनन्दन! इस जगत् में जब से दण्डनीति स्थापित हुई है तभी से मनुष्यों के समस्त पदार्थ निस्सन्देह सिद्ध होते हुए देखे जाते हैं। इस संसार में यदि दण्डभय न होता, तो यह सारी प्रजा विनष्ट हो जाती और जैसे जल में बड़े बड़े मत्स्य छोटी छोटी मछलियों को खा जाते हैं, वैसे ही बलवान जन निर्बलों का नाश कर डालते। ब्रह्मा जी भी इस सत्य को मानते हैं कि, न्यायपूर्वक प्रयुक्त दण्ड प्रजा की रक्षा करता है। अग्नि भी फूँके जाने रूपी ताड़न क्रिया के भय से धप्प से जल उठता है और बुझता नहीं। यदि जगत में सारासार का विभाग करने वाला दण्ड न होता, तो यह सारा जगत् प्रगाढ़ अन्धकार में निमग्न हो गया होता और समस्त पदार्थ लोप हो जाते। वेद की मर्यादा का अति-क्रम करने वाले तथा वेदनिन्दक नास्तिक भी दण्डभय से ही वैदिक मर्यादा का पालन किया करते हैं। क्योंकि जगत् में ऐसे जन बिरले हैं जिनकी झुकावट पापाचार की ओर न हो। आचार की मर्यादा की रक्षा करने वाला भी दण्ड ही है। दण्डभय ही से चारों वर्ण सुनीति पर आरूढ़ हैं। ब्रह्मा ने दण्ड की सृष्टि इसीलिये की है कि, जिससे सब वर्णों के प्रजाजन

एकाकार न हो जाँय और इस धराधाम पर धर्म और अर्थ की रक्षा हो। यदि पशु पक्षी तथा हिंसक जन्तु सिंहादि दण्डभय से भीत न होते, तो वे बलवान होने के कारण अपने से निर्बल पशुओं को, मनुष्यों को और यज्ञोपयोगी घृतादि पदार्थों को खा डालते। यदि दण्ड, प्रजाजनों की रक्षा न करता, तो न तो ब्रह्मचारी वेद की कल्याणकारिणी सूक्तियों का अध्ययन करते, न गौएँ दूध दुहने देतीं और न कुमारी कन्याएँ विवाह ही करतीं। इस प्रकार सारा जगत् नष्ट हो जाता। धर्म की मर्यादा नष्ट हो जाती। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ यह जात्याभिमान भी किसी में न रह जाता। यदि दण्ड का भय न होता तो उन सम्वत्सरव्यापी यज्ञों का अनुष्ठान कोई न करता, जिनमें विधिपूर्वक दक्षिणाएँ देने का विधान है। यदि दण्ड रक्षा न करता होता, तो शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आश्रम सम्बन्धी धर्मों का अर्थात् कर्मों का पालन ही कोई न करता और न कोई विद्याध्ययन ही करता। यदि दण्ड का भय न होता तो ऊँट, बैल, घोड़े, खचर, गधे आदि पशु बोझा काहे को खींचते। यदि राजदण्ड का भय न होता तो सेवक अपने मालिक की आज्ञा का पालन क्यों करते और बालक अपने माता पिता के कहने में क्यों रहते? फिर युवतियाँ ही पातिव्रत धर्म का पालन क्यों करतीं? इसीसे विद्वज्जनों का कथन है कि, ये सारी प्रजा दण्डाधीन है और भय का आश्रयस्थल भी दण्ड ही है। दण्ड ही जीवों को स्वर्ग देने वाला है और इस जगत् की स्थिति भी दण्ड पर ही निर्भर है। जब शत्रुनाशकारी दण्ड की भली भाँति योजना की जाती है; तब छल, पाप, ठगई—रह ही नहीं जाती। यदि दण्ड का उपयोग न किया जाय तो कुत्ते पुरोडाश को खा जाँय और काक उसे ले जावें। भले ही यह राज्य हमें न्यायानुमोदित मार्ग से अथवा अन्य किसी साधन ही से क्यों न प्राप्त हुआ हो; किन्तु इसके लिये हमें शोक न करना चाहिये। अब तो आप राजोचित भोगों को भोगिये और यज्ञादि सत्क्रियाओं का अनुष्ठान कीजिये। जो भाग्यशाली होते हैं, वे पवित्र वस्त्र धारण कर और स्त्री पुत्रों के साथ

रह कर, बड़े सुख से धर्माचरण किया करते हैं। वे ब्राह्मणों को विविध प्रकार के दान देते हैं और एक से एक बढ़िया पदार्थ खाते पीते हैं। मनुष्यों के यावत् कार्य धनाधीन हैं। वही धन दण्डाधीन है। अतः दण्ड की कितनी बड़ी महिमा है—इसे तो आप देखें। इस लोक का व्यवहार चलाने को ऋषियों ने वर्णाश्रम धर्म का चलन निकाला है। एक तो अहिंसा और दूसरा कर्मों के लिये हिंसा करना ये दो मार्ग हैं। इनमें से जिस मार्ग पर चलने से धर्म की रक्षा हो—उस मार्ग को ऋषियों ने श्रेष्ठ बतलाया है। इस संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसमें अवगुण ही अवगुण हों—और गुण एक भी न हो। प्रत्येक वस्तु में गुण अवगुण रहा ही करते हैं। बैल जब बछड़े की अवस्था में रहता है, तब उसके अण्डकोश निकाल कर वह बधिया बनाया जाता है। फिर उसके सींग बहुत न बढ़ने पावें—अतः उसके सींग काट दिये जाते हैं। तदनन्तर वह नाथा जाता है। फिर लोग उसे बाँधते हैं और सब प्रकार से उसे अपने वश में कर लेते हैं। तब कहीं वह बैल भारी बोझों को ढोता है। हे राजन् ! इस प्रकार नाना प्रकार के व्यवहारों से इस जगत् का चलन अत्यन्त प्राचीन काल से चला आता है। अतः आप भी उसी चलन के अनुसार चल कर, दण्ड धारण करें। हे राजन् ! आप यज्ञ करें, शत्रुओं का नाश करें और मित्रों का पालन करें। हे राजन् ! आप शत्रु को मारते समय अपने मन में दया को उत्पन्न मत होने देना। क्योंकि शत्रुनिहन्ता को ज़रा सा भी पाप नहीं लगता। युद्ध में शस्त्रधारी एवं आक्रमणकारी शत्रु को मारने से, मारने वाला भ्रूणहत्या का पाप भागी नहीं होता। फिर किसी प्राणी के अन्तरात्मा का तो वध किया ही नहीं जाता। तब फिर कोई यह कैसे कह सकता है कि, उसका वध किया गया। जब किसी आदमी का घर अतिजीर्ण हो जाता है, तब वह उसे छोड़ दूसरे घर में चला जाता है। इसी प्रकार जीवात्मा भी एक अशक्त निर्बल शरीर को त्याग अन्य सबल सशक्त शरीर में चला जाता है। जीवात्मा पुराना शरीर त्याग नवीन शरीर ग्रहण

करता है। इसीसे तत्व को न जानने वाले गँवार लोग कहा करते हैं कि अमुक मर गया ; किन्तु यथार्थ में जीवात्मा कभी नहीं मरता।

सोलहवाँ अध्याय

भीमसेन की रोषयुक्त उक्ति

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अर्जुन के इन वचनों को सुन कर, तेजस्वी भीम बड़े कुपित हुए ; किन्तु उसे रोक, वे अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से कहने लगे। हे राजन्! तुम समस्त धर्मों के ज्ञाता हो। तुमसे कोई बात छिपी नहीं है। मैं तो, तुम्हारे जैसे आचरण होंगे, तदनुसार ही वर्त्ताव करूँगा ; परन्तु बड़े शोक की बात है कि तदनुसार बर्त्ताव करने की शक्ति मुझमें आज नहीं है। हे राजन्! मेरे मन में रह रह कर यह विचार उत्पन्न होता है कि मैं कुछ न बोलूँ और चुपचाप रहूँ ; किन्तु मानसिक घोर कष्ट की प्रेरणा से मुझे तुमसे कुछ कहने के लिये बाध्य होना पड़ता है। तुम उसे सुनो। हे मनुष्याधिप! तुम मुग्ध हो रहे हो। इसीसे तुमने सब मामले उलझन में पटक रखे हैं। केवल यही नहीं—प्रत्युत तुम्हारे इस कृत्य ने मुझे विह्वल और निर्बल कर डाला है। विचारहीन जन जैसे दीन बन कर, मोह को प्राप्त होता है, वैसे समस्त शास्त्रों में चतुर राजा कभी मुग्ध नहीं होता। तुम लोगों के लिये क्या सन्मार्ग है, क्या असन्मार्ग—यह जानते हो। साथ ही तुम्हें वर्तमान और भविष्यद् कालों का भी पूर्ण ज्ञान है। तिस पर भी हे राजन्! मुझे तुमसे राज्य के बारे में एक बात कहनी पड़ती है। उसे तुम सावधान हो कर सुनो। मनुष्यों को दो प्रकार की व्याधियाँ घेरा करती हैं। एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनों ही की एक दूसरे की सहायता पाने से उत्पत्ति होती है। शरीर के बिना व्याधि नहीं होती और मन

बिना आधि (मानसिक पीड़ा या चिन्ता) नहीं होती। शारीरिक व्याधि से मानसिक आधि उत्पन्न होती है। जो मनुष्य बीते हुए शारीरिक अथवा मानसिक दुःख के लिये परिताप करता है, उसे पश्चात्ताप रूपी दुःख से बार बार दुःखी होना पड़ता है। क्योंकि क्या आधि और क्या व्याधि दोनों ही तो अनर्थ के मूल हैं। वात, पित्त और कफ ये तीनों शरीर ही में उत्पन्न होते हैं और तीनों जब तक समभाव से रहते हैं, तब तक शरीर निरोग रहता है; किन्तु वात, पित्त और कफ के परिमाण में जब कमी बेशी होती है तभी शरीर का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। अतः इन तीनों को शान्त करने का उपाय मैं बतलाता हूँ—सुनो। जब कफ बढ़े तब पित्त को बढ़ाने से कफ शान्त होता है। पित्त के बढ़ने पर कफ को बढ़ाना चाहिये। इससे पित्त शान्त हो जाता है। सत्व, रज और तमोगुण की साम्यावस्था ही स्वस्थता कहलाती है; किन्तु यदि इन तीनों में से एक की भी वृद्धि हो जाय, तो उसको शमन करने के लिये जिन उपायों से काम लेना चाहिये, वे मैं तुम्हें अब बतलाता हूँ। सुनो। जब रजोगुण बढ़े, तब तमोगुण से उसे रोके और जब तमोगुण बढ़े तब रजोगुण से उसको नष्ट कर डाले। हर्ष से शोक का और शोक से हर्ष का विनाश होता है। यदि कोई मूढ़ जन हुआ तो, वह सदा दुःख को याद कर, दुःखी हुआ करता है। इसी तरह दुःखी पुरुष सुख का स्मरण कर सुखी होता है।

हे राजन्! आधि और व्याधि इन दोनों में से किसी से तुम त्रिकाल में भी प्रभावान्वित नहीं हो सकते। अतः तुम्हें दुःखियों के दुःख का या सुखीजनों के सुख का स्मरण करना उचित नहीं। ऐसा जान कर भी यदि तुम उनका स्मरण करो तो कहना पड़ेगा कि, दैव बड़ा बलवान है। क्योंकि प्राणियों को पूर्वकाल का स्मरण ही उन्हें सुखी और दुःखी करने वाला है। कदाचित् यदि तुम यह कहो कि, स्मरण करना तो स्वभावजन्य क्रिया विशेष है और इसीसे मैं क्लेश भोगता हूँ, तो आपका

यह विचार अच्छा नहीं है। रजस्वला द्रौपदी के दुःशासन चोटी पकड़ कर, कौरवों की राजसभा में घसीट लाया था। इसे तुम स्मरण क्यों नहीं करते? कौरवों की राजधानी से हम लोगों का निकाला जाना, वल्कल वस्त्रों का धारण करना, वन में वास करना आदि घटनाओं का स्मरण तुम क्यों नहीं करते? फिर वन में जटासुर के साथ युद्ध, चित्रसेन के साथ युद्ध तथा वह दुःख जो हमें सिन्धुराज जयद्रथ द्वारा प्राप्त हुआ था—इन सब का स्मरण तुमको क्यों नहीं होता? जब एक वर्ष तक हम लोगों ने अज्ञात-वास किया था, तब कीचक ने राजपुत्री द्रौपदी के चरणप्रहार किया था। सो इस घटना को तुम कैसे भूल गये? हे शत्रुदमनकारी! तुम जैसे द्रोण और भीष्म से लड़े थे, वैसे ही अब तुम्हें अपने साथ घोर युद्ध करना होगा। इस युद्ध में आपको धनुष बाण की आवश्यकता न होगी। मित्रों तथा बन्धुबान्धवों की भी आवश्यकता न होगी। इस युद्ध में तो तुम्हें स्वयं ही शत्रुओं के साथ लड़ना पड़ेगा। यदि इस युद्ध में तुम न जीते तो और तुम स्वयं ही मारे गये तो अगले जन्म में तुम्हें मन रूपी शत्रु के साथ फिर लड़ना पड़ेगा। अतः यम नियमादि योग के अष्टाङ्गों से इस स्थूल शरीर को त्याग कर, आत्मा के साथ आत्मा का एकीभाव कर के और मन के साथ युद्ध कर के उसे जीतने के लिये कमर कस कर तैयार हो जाओ। यदि तुमने मन को नहीं जीता तो तुम्हारी क्या हालत होगी यह कहना कठिन है; किन्तु यदि तुमने मन के ऊपर विजय प्राप्त कर लिया तो तुम कृतकृत्य हो जाओगे। मन और देह से आत्मा पदार्थ भिन्न है। यह समझ कर तुम सन्मार्ग और असन्मार्ग को समझो और उस मार्ग पर चलो, जिस पर तुम्हारे पूर्वज चला करते थे और राज्य का पालन करो। अपने अनुचर वर्ग सहित पापी दुर्योधन रण में मारा गया। यह कम सौभाग्य की बात नहीं है। द्रौपदी के केशों के खींचे जाने वाली घटना के अनन्तर अब तुम पूर्वदशा को प्राप्त हुए हो। यह भी सौभाग्य की बात है। अब तुम अश्वमेध यज्ञानुष्ठान द्वारा देवताओं का पूजन कर,

ब्राह्मणों को बहुत सी दक्षिणाएँ दो। हम सब लोग तो आपके चाकर हैं और श्रीकृष्ण का हमें पूरा भरोसा है।

सत्रहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का उत्तर

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भीम के इन वचनों को सुन कर, राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम! तेरा मन असन्तोष, मद, राग, अशान्ति, बल, मोह, अभिमान, उद्वेग आदि पापवृत्तियों को उत्पन्न करने वाले विषयों से घिरा हुआ है। इसीसे तुझे राज्य का लालच है। तुझे उचित है कि, तू क्रोध और रागादि दुर्वृत्तियों को मन से निकाल डाल और शान्त हो जा। तभी तू सुखी हो सकेगा। तू राजा की तो प्रशंसा करता है। किन्तु तू क्या यह नहीं जानता कि, समूची पृथिवी पर राज्य करने वाला राजा तो अकेला ही होता है। उसके उदर भी एक ही होता है। अतः तू उसकी प्रशंसा क्यों करता है? जो तृष्णा दिन, मास ही नहीं, सारी उमर बीत जाने पर भी नहीं छुटती, उसे कौन छुड़ा सकता है। अग्नि भले ही धपधप जले; किन्तु यदि उसमें ईंधन न डाला जाय, तो वह अपने आप ही बुझ जाता है। सो हे भीम! तू भी अपने उदर के प्रज्वलित जठराग्नि को अल्पाहार से शान्त कर, बुद्धिमान जन पेट भरने के लिये यज्ञादि अनेक कर्म किया करता है। मैंने जो पृथिवी जीती है, वह केवल परलोक की भलाई के लिये ही जीती है। तुच्छ भोग भोगने के लिये नहीं। तिस पर भी तू यदि न माने तो तू समझ ले कि तू जीत गया।

हे भीम! तू मानवी भोगों, कामनाओं और ऐश्वर्य की बड़ाई करता है; किन्तु भोगों को त्याग कर परमोत्तम तपनिरत कृश शरीर मुनि ही

सर्वोत्तम पद पाते हैं। तेरी धारणा है कि, राज्य को जीतना और उसकी रक्षा करना, देश के योग क्षेम के लिये योजना करना, ये काम धर्म और अधर्म दोनों ही से साध्य हैं; किन्तु तुझे चाहिये कि, योग क्षेमरूपी उस महान भार से मुक्त होने के लिये तू राज्य का त्याग कर। व्याघ्र अपने पेट के पीछे न मालूम कितने प्राणियों की हिंसा करता है। साथ ही अन्य बहुत से निर्बल प्राणी उसकी आखेट पर अपनी प्राणयात्रा करते हैं। जो राजा मन में विषय वासना रहने पर भी संन्यास ग्रहण कर लेता है, उसे कभी सन्तोष नहीं होता; किन्तु इस बात को समझने में तेरी बुद्धि भ्रम में पड़ गयी है। सो तू भली भाँति विचार देख। सच बात तो यह है कि, जो पत्तों को, पत्थर से कूटे हुए फलों को फोड़ कर अथवा दाँतों से काट कर फलों को खाने वाले हैं अथवा जो जल पी या वायु भक्षण करते हैं, वे ही मुनि नरक को जीतते हैं। एक चक्रवर्ती राजा की अपेक्षा मेरी समझ में वह संन्यासी कहीं अच्छा है, जिसकी बुद्धि में पत्थर और सुवर्ण समान है। हे भीम! तु अपने मन में उमड़ती हुई सङ्कल्प की लहरों को शान्त कर, किसी भी क्रिया का आरम्भ, आशा, ममत्व आदि का त्याग कर और इस लोक और परलोक में विकार रहित और शोकरहित जो स्थान है, उसका आश्रय ग्रहण कर। जो संसार के भोगों से मुँह मोड़ चुका है, उसे शोक कभी नहीं सताता; किन्तु तुझे तो ऐश्वर्य भोग की लालसा है। उसीसे तू शोक करता है; किन्तु तुझे सब प्रकार की आशाओं और वैभवों को छोड़ कर, मिथ्यावाद से रहित हो जा। शास्त्र के मतानुसार पितृयान और देवयान नाम के दो मार्ग विख्यात हैं। वर्णाश्रम के अभिमानी पितृयान से उत्तम (स्वर्गादि) लोकों में जाते हैं और मुक्त जीव देवयान मार्ग से परमपद को प्राप्त होते हैं। तप, ब्रह्मचर्य एवं वेद के स्वाध्याय के पालन करने वाले महर्षि लोग, शरीर को त्याग कर, जीवन-मुक्त हो गये हैं। इस संसार में राज्य और कर्म, मांस स्वरूप गिने जाते हैं। इन आमिष रूप दोनों पापों से जो जन छूटता है, वही परमपद का अधिकारी

होता है। हे भीम ! तू कहता है कि, बाप दादों ने जिस राज्य को भोगा है उसे तुम भी भोगो ; किन्तु तेरा यह कथन उचित नहीं है। सुख दुःखादि से मुक्त और मोक्ष के स्वरूप को पहचानने वाले राजा जनक की इस विषय की स्पष्ट गाथा को कहा करते हैं। उसे तू सुन। एक बार मिथिला नगरी और राजभवन में आग लग गयी। उस समय राजा जनक ने कहा—इस शरीर से सम्बन्ध रखने वाला मेरा अपरमित धन भस्म हो रहा है ; किन्तु उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। क्योंकि, मैं तो उन सब से भिन्न आत्मा और सर्वसाक्षी रूप हूँ। राजा जनक सांसारिक भोगों में आसक्त न थे। बुद्धि रूपी राजमहल में जो पुरुष नहीं चढ़ सकता, वही उन लोगों के लिये सोच किया करता है, जिनका सोच करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि पर्वत की चोटी पर चढ़े हुए मनुष्य को पर्वत की तलैटी में उगे हुए वृक्ष दिखलायी ही नहीं पड़ते। जो पुरुष कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझ सकता है वही नेत्रवान, और वही बुद्धिमान है। जो अज्ञात वस्तु को जताती है तथा उसका निश्चय बोध कराती है वही बुद्धि है और ऐसी बुद्धि जिसमें हो वही बुद्धिमान है। ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले बुद्धिमान और विद्वानों के वचनों का अर्थ जो पुरुष जानता है, वह इस लोक में विशेष प्रतिष्ठा का पात्र समझा जाता है। जब एक मनुष्य भिन्न भिन्न प्राणियों को एक ही जाति और एक ही तत्त्व से उत्पन्न हुआ मानता है, तब वह मनुष्य व्यापक ब्रह्म को पाता है; किन्तु मन्दबुद्धि, विवेकशून्य और तपशून्य पुरुष को ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता। यथार्थ में यावत् वस्तु बुद्धि के अधीन हैं।

अट्ठारहवाँ अध्याय

जनक और राजमहिषी का वार्तालाप

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! यह कह राजा युधिष्ठिर चुप हो गये। युधिष्ठिर के दुःख से दुःखी तथा उनके दुःख से उत्तप्त एवं उनके वाणी रूप शल्य से पीड़ित अर्जुन ने पुनः कहा—हे राजन्! वृद्ध लोग राजा जनक और उनकी राजमहिषी का संवाद इस प्रकार कहा करते हैं कि जब राजा जनक राजपाट छोड़ और संन्यास ग्रहण कर भिक्षोपजीवी बनने का विचार करने लगे, तब उनकी पटरानी ने दुःखातुर हो उनसे जो कहा था—उसे आप सुनें। राजा जनक जब धन, पुत्र, स्त्री, विविध रत्न तथा और यज्ञादि वैदिक कर्मानुष्ठानों को त्याग कर, विमूढ़ हो गये और समस्त परिग्रहों को त्याग, मस्तक मुड़ा संन्यासी बन, भिक्षोपजीवी बनने की इच्छा से मुट्ठी भर भुने हुए जवों से अपना निर्वाह करने लगे तथा घृणा एवं मत्सरता को त्याग जीवन बिताने लगे; तब यह सब देख उनकी बुद्धिमती रानी बड़ी कुपित हुई। वह एकान्त स्थान में आसीन राजा जनक के निकट गयी और निडर हो उसने उनसे इस आशय के वचन कहे—हे राजन्! धन धान्य से भरे पूरे अपने राज्य को त्याग कर तुम भिक्षोपजीवी क्यों कर बने बैठे हो? तुम भुने हुए मुट्ठी भर यवों का आहार कर, जीवन निर्वाह करते हो—यह तुम्हें नहीं सोहता। इस प्रकार का त्याग, राजधर्म के विरुद्ध है। हे राजन्! तुम एक विशाल राज्य को त्याग कर, खप्पर में पड़े अन्न से सन्तुष्ट होते हो, तब तुम इतने अन्न से अतिथि सत्कार, देव, ऋषि और पितृ-यजन कैसे कर सकते हो? यदि तुम उनका यजन न कर सके तो तुम्हारा यह सब परिश्रम करना व्यर्थ है। ओ हो! हे राजन्! तुमने वेद-विहित कर्मों का त्याग किया है—अतः देवताओं, अतिथियों और पितरों ने तुमको त्याग दिया है। इसीसे तुम्हारे मन में संन्यास ग्रहण की इच्छा का उदय हुआ है। पूर्वकाल में तो तुम वेदविद्या जानने वाले सहस्त्रों ब्राह्मणों

का और समस्त प्रजा जनों का भरण पोषण किया करते थे—वही तुम अब उनसे अपने भरण पोषण की आशा रखते हो? अत्यन्त सुन्दरी राज्य-लक्ष्मी को छोड़ कर, निज उदर पोषणार्थ तुम्हें कुत्ते की तरह परमुखापेक्षी बनना पड़ा है। हरे! हरे! आज से तुम्हारी जननी मानों अपुत्रा हो गयी है। धर्म की कामना रखने वाले क्षत्रिय, फलप्राप्ति की कामना से तुम्हारी दरबारदारी किया करते हैं; किन्तु फल न मिलने से वे हताश हो गये हैं। अतः उनको निराश करने के कारण तुम किन लोकों में जाओगे—भला यह कौन बतला सकता है? क्योंकि देहधारियों को अपने प्रारब्धाधीन होना पड़ता है। अतः इस बात में सन्देह है कि, उनको मोक्ष मिले या न मिले। पाप-कर्म-निरत तुम्हारे लिये न इस लोक में और न परलोक ही में स्थान है क्योंकि तुम अपनी धर्मपत्नी को त्याग कर जीना चाहते हो। पुष्प-हारों, गन्धों, आभूषणों, विविध प्रकार के वस्त्रों का त्याग कर और कर्मानुष्ठान से रहित हो, तुम्हें संन्यास ग्रहण करने की इच्छा क्यों उत्पन्न हुई है? तृषातुर जीव जैसे प्याऊ के पास जाते हैं, वैसे ही भूखे प्यासे सब प्राणी आपके पास दान लेने की इच्छा से आते हैं। अतः तुम दूसरे की उपासना क्यों कर सकते हो? माँसभक्षी जीव जन्तु जैसे सब काम छोड़ कर बैठे हुए गज को खा जाते हैं और उसके शरीर में कीड़े पड़ जाते हैं, वैसे ही तुम समस्त पुरुषार्थ को त्यागे हुए बैठे हो। अतः मैं तुमसे क्या कहूँ। यदि कोई आदमी तुम्हारे भिक्षापात्र को तोड़ डाले, अथवा तुम्हारा त्रिदण्ड तुमसे छीन ले, अथवा तुम्हारे काषाय वस्त्र उतरवा ले तो तुम्हारे मन में दुःख उत्पन्न होगा कि नहीं? तुम तो समस्त कर्मों का त्याग किये बैठे हो; किन्तु मध्यान्ह काल उपस्थित होने पर तुम्हें पेट भरने के लिये मुट्ठी भर भुने जौ की आवश्यकता होती ही है। जब ऐसा है, तब संग्रह और त्याग में भेद ही क्या है? कोई थोड़ा कोई बहुत—किन्तु संग्रह तो करना ही पड़ता है। अतः मुझे तो राज्य के प्रति आपके उदासीन होने का कोई युक्तियुक्त कारण नहीं देख पड़ता। आपको तो उदर पोषणार्थ मुट्ठी भर भुने जौ की

भी आवश्यकता है ; किन्तु मुझे तो किसी से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, तुम्हारी यह प्रतिज्ञा तो भङ्ग होगी ही। यदि तुम शरीर, मन, देह, बुद्धि आदि के विषयों को त्याग कर, केवल शुद्ध चिन्मात्र रूप ही हो—तो तुममें और मुझमें भेद ही क्या रहा? मेरा तुम्हारा सम्बन्ध ही क्या रहा? तुम्हारा मेरे ऊपर अनुग्रह ही क्या? हे राजन्! यदि तुम्हारी मेरे ऊपर कृपा है तो मेरा कहना मान कर राजभोगों और भवन, शय्या, रथ, वस्त्र, आभूषण आदि पदार्थों का उपभोग करो। निर्धन और अकिञ्चन संन्यासियों के दण्ड, काषाय वस्त्र आदि को देख, यदि कोई पुरुष अपनी सम्पत्ति (राज्यादि) त्याग दे तो, क्या वह त्यागी कहला सकता है? जो पुरुष दान लेता और जो पुरुष दान देता है—उन दोनों में भेद क्या है? यह तो पहले विचार लो, फिर यह भी विचारो कि उन दोनों में उत्तम कौन है? दान देने वाला या दान लेने वाला? दम्भी और भीख माँगने का पेशा करने वाले को जो दक्षिणा दी जाती है, वह दावानल में हवन करने की तरह व्यर्थ है।

हे राजन्! जैसे धधकता हुआ अग्नि होमे हुए द्रव्यों को भस्म किये बिना शान्त नहीं होता, वैसे ही भिक्षोपजीवी ब्राह्मण भले ही धनवान हो, तो भी बिना भीख माँगे उसे चैन नहीं पड़ता। इस संसार का तो यह नियम है कि, राजा को त्यागियों को अन्न अवश्य देना चाहिये। क्योंकि उनका जीवन तो अन्न पर ही निर्भर है ; किन्तु यदि राजा संन्यासियों को अन्न न दे तो ऐसे जीवनमुक्तों का निर्वाह क्यों कर हो सकता है? इस जगत में अन्न-संग्रही ही गृहस्थ कहलाते हैं और जो अन्न का संग्रह नहीं करते, वे भिखारी हैं। अन्न प्राण-रक्षक है। अतः अन्नदाता ही प्राणदाता कहलाता है। जो गृहस्थाश्रम छोड़ त्यागी बन गये हैं, उनका निर्वाह भी तो गृहस्थों ही से होता है। इन त्यागियों को उत्पन्न करने वाले भी गृहस्थ ही हैं और उनका मान सम्मान करना भी गृहस्थ ही जानते हैं। संसार-त्यागी अथवा दरिद्रों का भरण पोषण करने वाले से भिक्षा की याचना

करने वाला भिक्षुक नहीं कहलाता? किन्तु जो सुख और अर्थ का सच्चे मन से त्याग करता है—वही भिक्षुक है। सांसारिक भोगों में आसक्ति न रहने पर भी आसक्तिवान जान पड़ने वाला, इन्द्रिय-निग्रही, सङ्ग-विवर्जित, बन्धनों से मुक्त, शत्रु और मित्र के एक दृष्टि से देखने वाला पुरुष ही मुक्त जीव कहलाता है; किन्तु जो मूँड़ मुड़वा, काषाय वस्त्र पहिन, अपना पेट पालने के संन्यासी बन जाते हैं, वे शठ, मानों शिष्य, ग्रन्थ, मान आदि के तृष्णापाश से बँधे हुए हैं। ऐसे लोग आमिषरूपी धन जोड़ बटोर कर व्यर्थ ही पाप के भागी बनते हैं। बुद्धिहीन पुरुष ही वेद को, अपनी आजीविका के और सन्तान को त्याग कर संन्यासी बना करते हैं। मूर्ख लोग ही हाथ में दण्ड लेते हैं, काषाय वस्त्र पहिनते हैं और भिक्षापात्र हाथ में लेते हैं। जिनकी ममता दूर नहीं हुई है, उन लोगों का गेरुवा वस्त्र पहिनना उनकी संन्यासी बनने की चेष्टामात्र है। यही नहीं बल्कि गेरुवा वस्त्र पहिनना मेरे मतानुसार तो ढोंगी मुड़ियों का पेशा है। हे राजन्! नग्न रहने वालों, मूँड़ मुँड़ा कर घूमने वालों, जटा धारण करने वालों के तुम गेरुवा वस्त्र, कृष्णमृगचर्म और वस्त्र दे कर पोषण करो और जितेन्द्रिय बन कर, लोकों के जीतो। अग्न्याधान लो, यज्ञानुष्ठान कर ब्राह्मणों के बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ दो। ऐसा धर्मानुरागी कौन होगा जो यज्ञ में अपने गुरु के दक्षिणा न देगा।

अर्जुन बोले—हे युधिष्ठिर! अपने स्त्री के इन वचनों के सुन कर, राजा जनक ने संन्यासी बनने का विचार त्याग दिया। जो राजा जनक संसार में तत्त्ववेत्ता कह कर प्रसिद्ध था—वह भी मोहित हो गया था; किन्तु आप तो मोह में न पड़ें। यदि आप गृहस्थाश्रमोपयोगी कर्त्तव्यों के प्रति श्रद्धा न रखेंगे, नित्य दान देंगे, तपश्चर्या करेंगे, दया दाक्षिण्यादि से सम्पन्न रहेंगे, काम क्रोध के जीत कर प्रजा का पालन करेंगे, उत्तम प्रकार के दान देंगे तो गुरुजन और वृद्धोपसेवी आपके आपका अभिलषित स्वर्ग-लोक मिलेगा। जो जन, देव, अतिथि और पितरों का यथाविधि पूजन

करते हैं। वे अभीष्ट लोकों में जाते हैं। अतः हम सत्यवादी देव, अतिथि एवं प्राणी मात्र की सेवा कर, मनोभिलषित स्वर्गादि लोकों को जाँयगे।

उन्नीसवाँ अध्याय

मोक्षमार्ग और आत्मा का स्वरूप परिचय

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अर्जुन के इन वचनों को सुन कर महाराज युधिष्ठिर कहने लगे—हे अर्जुन! मुझे धर्मशास्त्र का तथा ब्रह्मप्रतिपादक वेदान्तशास्त्र का भली भाँति ज्ञान है। धर्मशास्त्र में कर्म करने की और कर्म त्यागने की—दोनों प्रकार की आज्ञाएँ हैं। ऐसे परस्पर विरोधी वचनों का सामञ्जस्य करने वाले मीमांसाशास्त्र का मैंने भली भाँति अध्ययन किया है और उनका रहस्य भी जान लिया है। अर्जुन! तू वीरव्रती है और कोरी अस्त्रविद्या का ज्ञाता है। तू धर्मशास्त्र की महीन बातों को नहीं जान सकता। शास्त्रों के सूक्ष्मार्थ का ज्ञाता विद्वान भी मुझसे ऐसे वचन नहीं कह सकता जैसे तूने कहे हैं। तुमने जैसी बातें मुझसे कही हैं वैसी बातें तुझे मुझसे कहनी उचित न थीं। तू तो कोरी धर्म की प्रशंसा करना जानता है और उसका वास्तविक रूप नहीं जानता है। तिस पर भी भाई के नाते तूने जो कुछ कहा है—वह ठीक ही है। इसके लिये मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ। शत्रुओं के साथ युद्ध करने और कितने ही चातुर्यपूर्ण कार्यों का सम्पादन करने में तेरी टक्कर का मनुष्य तीनों लोकों में नहीं है। हे धनञ्जय! तू बड़ा चतुर है, तो भी मैं स्पष्ट कहता हूँ कि, तेरे द्वारा धर्म का सूक्ष्म स्वरूप वर्णित होने पर भी मेरी बुद्धि में भेद उत्पन्न नहीं कर सकता। हे अर्जुन! तू तो केवल रणविद्या का ज्ञाता है और तूने वृद्धजनों की सेवा नहीं की। अतः तू वृद्धजनों के और शास्त्रों के

किये धर्मनिर्णयों को नहीं जानता है। बुद्धिमान वृद्धजनों का निर्णय है कि, प्रथम तप करे। जिससे अन्तःकरण की शुद्धि हो। तदनन्तर मन में वैराग्य के उत्पन्न होने पर, समस्त पदार्थों का त्याग करे। इस संसार में तपस्वी, वेदाध्यायी अनेक जन दिखलायी पड़ते हैं। ऐसे ऋषि भी हैं जो तपश्चर्या द्वारा ब्रह्मलोक में आ सके हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से ऐसे शान्तात्मा शत्रुविवर्जित एवं धैर्यवान थे, जो वनवासी बन और तप कर तथा स्वाध्याय निरत होने के कारण स्वर्ग में गये। कितने ही आर्य पुरुष इन्द्रिय विषयों का निग्रह कर और बुद्धि सम्बन्धी स्वाभाविक अज्ञान को हटा कर, देवयान मार्ग से इस लोक को छोड़, उस लोक में गये हैं, जिनमें त्यागी जाया करते हैं। कितने ही चन्द्र मार्ग से परलोक गये हैं। हे अर्जुन! इसीलिये अनेक क्रियाएँ करने वाले जन, देह को छोड़, दक्षिणायन तथा उत्तरायण मार्गों से परलोक गमन किया करते हैं; किन्तु यह कर्म ही है जो बार बार जन्म मरण के बंधन में जीव को पटका करता है; किन्तु जो मोक्षार्थी जीव हैं—वे योगाभ्यास द्वारा वर्णनातीत प्रत्यगानन्द स्वरूप मोक्ष को पाते हैं, क्योंकि योग समस्त क्रियाओं से श्रेष्ठ है। बिना योगाभ्यास किये मोक्ष प्राप्ति नहीं होती; किन्तु योग का वास्तविक रूप जान लेना बड़ी कठिन बात है। विद्वज्जन शास्त्रों का विचार कर और सारासार का निर्णय कर के, सार वस्तु का ग्रहण और असार वस्तु का त्याग किया करते हैं। वे ही उस परमतत्व को जानते हैं। कितने ही विद्वज्जन वेद और आरण्यक का परिशीलन तो करते हैं; किन्तु जिस प्रकार केले के पत्तों को उधेड़ने वाले के हाथ कुछ भी सार नहीं लगता, उसी प्रकार, उनको भी सार मूल वस्तु हाथ नहीं लगती। बहुत से विद्वान समस्त पदार्थों को त्याग और एकान्तसेवी बन, कहा करते हैं कि, इस पाञ्चभौतिक शरीर में कामनाएं, द्वेष, सुख, दुःख आदि गुण विशिष्ट आत्मा का वास है। कितने ही लोगों के अनुसार इस पाञ्चभौतिक शरीर में वह आत्मा निवास करता है, जो कहता है कि, यह मेरा है—यह मुझे मिले। हे अर्जुन!

अन्य लोग आत्मा के सम्बन्ध में अपने क्या क्या विचार रखते हैं, सो भी मैं बतलाता हूँ। सुन।

आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। अतः नेत्रों से न देख पड़ता, न वाणी से वह कहा जा सकता है; किन्तु यह आत्मा जब अविद्या से आवृत हो जाता है, तब वह जीव रूप से इस धराधाम के प्राणियों में जन्म मरण पाया करता है। अतः तुझे अपना मन आत्मा की ओर झुकाना चाहिये। तृष्णा को बुझा कर और कर्मपरम्परा को त्याग कर तू सुखी हो। हे अर्जुन! इस प्रकार सूक्ष्म बुद्धि से जानने में आने वाले और सत्पुरुषसेवित ज्ञान मार्ग के होते हुए तू अनर्थपूरित अर्थ की प्रशंसा क्यों करता है? यज्ञ, दान, कर्म आदि करने वाले और कर्मकाण्ड को जानने वाले पुरुष भी अर्थ को अनर्थ रूप देखते हैं, तब यदि ज्ञानी देखें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? दुःख सन्ताप होने के कारण सिद्धान्त को न जान सकने वाले, परन्तु पूर्वजन्म के दृढ़ संस्कार वाले तथा युक्तियों को समझने वाले पण्डित भी जब ईश्वर के स्वरूप को यथार्थरीत्या जानने में मूढ़ बन चुके हैं, तब साधारण पुरुष मूढ़ बन जाय तो आश्चर्य की बात नहीं। वे अपने को बड़े शास्त्रज्ञपन का अभिमान रखने वाले बकवादी मनुष्य आत्मज्ञान से रहित होने के कारण सम्पूर्ण भूमण्डल में घूमते हुए मनुष्यों की मण्डली में मनमानी बातें कहा करते हैं; किन्तु हे अर्जुन! जिन लौकिक पदार्थों के रहस्य हम भी नहीं जान पाते यहाँ उनको और कोई तो जान ही कैसे सकेगा? उन लोगों की समझ में श्रुति का यथार्थ अर्थ नहीं आता। जो पढ़े लिखे होने पर भी अपवित्र हैं—वे वेदाध्यायी होने पर भी वेद का यथार्थ अर्थ नहीं जान सकते। विद्वज्जन तप द्वारा ब्रह्म को पाते हैं और बुद्धि द्वारा उसके स्वरूप को जानते हैं। जो तत्त्वदर्शी हैं—वे त्याग द्वारा अनन्त सुख प्राप्त करते हैं।

बीसवाँ अध्याय

यज्ञादि में व्यय करना ही द्रव्य की सार्थकता है

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब यह सब कह कर धर्मराज युधिष्ठिर चुप हो गये, तब गङ्गातटवर्ती जनसमुदाय के बीच महा-तपस्वी एवं वाग्मी देवस्थान नामक ऋषि ने इस प्रकार युक्तियुक्त वचन कहे ।

देवस्थान बोले—राजन् ! अर्जुन ने आपसे जो कहा था कि, धन से बढ़ कर अन्य कोई पदार्थ नहीं है—उसीके विषय में मैं भी आपसे कुछ कहूँगा । आप ध्यान लगा कर सुनें । हे अजातशत्रो ! आपने यह धराधाम न्यायतः अपने अधीन किया है । अतः इसका त्याग वृथा ही करना आप को उचित नहीं । हे राजन् ! ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम का वेद में क्रम से वर्णन है । आप भी यथाक्रम इन आश्रमों का पालन करिये । अतः अब तो आपको विपुल दक्षिणा वाले बड़े बड़े यज्ञों को कर, भगवान् का पूजन करना चाहिये । ऋषिगण वेदाध्ययन रूपी यज्ञ करते हैं तथा ज्ञानी जन ज्ञानयज्ञ करते हैं । हे राजन् ! आप जानते हैं कि, कितने ही लोग कर्म रूपी और कितने तप रूपी यज्ञ किया करते हैं । वैखानस ऋषियों का कथन है कि, जो धन के लिये धन की चाहना करता है, उसका धनप्राप्ति की इच्छा न करना ही बड़ी बात है; किन्तु जो क्षत्रिय, निज धर्म को त्याग कर, इस धर्म को (संन्यास धर्म को) ग्रहण करता है, वह बड़ा दोषभागी होता है । जो यज्ञार्थ धन सञ्चित करते और उसे अच्छे कामों में लगाते हैं, वे उत्तम कोटि के पुरुष गिने जाते हैं; किन्तु जो ऐसा न कर सञ्चित द्रव्य को बुरे कामों में लगाते हैं, वे यह नहीं जानते कि, वे जान-बूझ कर अपने आपको भ्रूणहत्या के पाप का भागी बनाते हैं । जिसका दान सुपात्र को नहीं मिलता और कुपात्र के हाथ पड़ता है, उसको दान का कुछ भी फल नहीं होता । दानधर्म इसीलिये महादुष्कर माना गया है

कि, दान के लिये सुपात्र कुपात्र की परीक्षा होनी कठिन है। ब्रह्मा जी ने यज्ञार्थ ही धन आदि द्रव्य उत्पन्न किये हैं। वेदों में आदेश है कि, पुरुष यज्ञ की रक्षा करता है अतः समस्त धन यज्ञ ही में लगा देना चाहिये। दान और दक्षिणा देने के बाद जो धन बच जाय उसे अपने काम में लगावे। महातेजस्वी इन्द्र भी विविध प्रकार के यज्ञ कर के और समस्त देवताओं का तिरस्कार कर के ही स्वर्ग के राजपद पर आसीन हुए हैं। जो यज्ञ देवताओं के यजनार्थ किये जाँय, उनमें समस्त धन व्यय कर डाले; किन्तु अन्य कामों में सब धन न लगावे। महातेजस्वी एवं महात्मा शङ्कर अपने शरीर को यज्ञ में होम कर, देवताओं के भी देवता हुए हैं। उनकी कीर्ति से समस्त लोक व्याप्त हो गये हैं और वे गजासुर का चर्म ओढ़ कर, कैलास में निवास करते हैं। हे राजन्! अविक्षित वंशोत्पन्न राजा मरुत्त ने धन द्वारा देवराज इन्द्र का यजन किया था और उस समय लक्ष्मी देवी स्वयं उनके यज्ञ में उपस्थित हुई थीं। उसके यज्ञ के यावत् पात्र सुवर्ण के हो गये थे।

हे युधिष्ठिर! आपने राजा हरिश्चन्द्र का नाम तो सुना ही होगा। इन राजा ने भी बड़े बड़े यज्ञों का अनुष्ठान कर, इन्द्र का यजन किया था और पुण्य उपार्जन कर वे सुखी हुए थे। राजा हरिश्चन्द्र ने यज्ञ में अपनी समस्त सम्पत्ति लगा कर, इन्द्र का यजन किया था। क्योंकि शास्त्र का सिद्धान्त है कि, यज्ञ में समस्त सम्पत्ति लगा देनी चाहिये।

इक्कीसवाँ अध्याय

बृहस्पति द्वारा इन्द्र को ज्ञान की प्राप्ति

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! देवस्थान ऋषि पुनः कहने लगे—हे युधिष्ठिर! एक प्राचीन इतिहास है, जिसमें इन्द्र बृहस्पति संवाद

है। इस संवाद में बृहस्पति ने इन्द्र को, जो एक बार उपदेश दिया था, उसका वर्णन है, वह मैं आपको सुनाता हूँ। आप उसे सुनें। सन्तोष मनुष्य के लिये स्वर्ग से भी बढ़ कर है। क्योंकि सन्तोष ही परम सुख देने वाला है, सन्तोष से बढ़ कर अन्य कोई पदार्थ है ही नहीं। क्योंकि सन्तोषी मनुष्य सदा सुखी रहता है। जैसे कच्छप अपने समस्त अङ्गों को सकोड़ कर, भीतर कर लेता है, वैसे ही जब मनुष्य इन्द्रियों की वृत्तियों को सङ्कुचित कर लेता है, तब मन में प्रकाशमय आत्मा का स्फुरण होता है। जब मनुष्य सब से निर्भय हो जाता है और अन्य जीव भी उससे भयभीत नहीं होते और जब वह रागद्वेष को जीत लेता है, तब उसे परमात्मा का साक्षात्कार होता है। मनुष्य जब मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्राणी के साथ द्वेष नहीं करता और न उन पर प्रसन्न रहता है तभी उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

हे युधिष्ठिर! अधिकारी जीव जो यज्ञादि कर्मानुष्ठान करते हैं उन्हीं के संस्कार उनके मन में उत्पन्न होते हैं और वे अपने संस्कारों के अनुसार सब प्राणियों को देखते हैं। अतः हे राजन्! आप सावधान हो जाँय। कितने ही लोग ऐसे हैं जो प्राणिमात्र में समान प्रीति रख कर, उनके साथ व्यवहार करने का उपदेश दिया करते हैं और कितने ही ऐसे हैं जो उद्यम की प्रशंसा किया करते हैं। कितने ही अनुराग और उद्योग की प्रशंसा करते हैं और कितने ही इन दोनों में से एक की भी प्रशंसा नहीं करते। कोई लोग यज्ञ की, कोई संन्यास की, कोई दान की और कोई प्रतिग्रह की ही प्रशंसा करते हैं। कोई सब को त्याग मौन धारण कर, परमात्मा का ध्यान करने को कहते हैं। कोई प्रजा का पालन कर, राज्य करने की प्रशंसा करते हैं। कोई विचारवान पुरुष यह भी कहते हैं कि, शत्रु का शिरश्छेदन कर और वक्षः-स्थल विदीर्ण कर, राज्य प्राप्त करे, किन्तु इन सब विषयों पर विचार कर, विद्वानों ने निश्चय किया है कि, सज्जन पुरुषों के लिये इष्टधर्म वही है, जिसमें किसी भी प्राणी के साथ द्रोह न करना पड़े। किसी के साथ द्रोह न

करना, सत्य बोलना, दयाभाव बनाये रखना, जो वस्तु जिसकी हो, उसीको वह वस्तु देना, इन्द्रियों का निग्रह, निज पत्नी में प्रेम, दयार्द्र रहना, लज्जालु होना और धैर्य धारण करना ही धर्म के मुख्य साधन हैं। इस मत से स्वायम्भुव मनु भी सहमत थे।

हे राजन्! आप भी यत्नपूर्वक इसी प्रकार का धर्माचरण करें। राज्याभिषिक्त पुरुष को नित्य इन्द्रियनिग्रह करना चाहिये, अपने मित्रों और शत्रुओं में समान बुद्धि रखे। यज्ञ कर के बचे हुए अन्न से अपना निर्वाह करे, शास्त्र के तत्त्वों को जाने, दुष्टों को दण्ड दे, शिष्टों का पालन करे। अपनी अधीनस्थ प्रजा को सन्मार्ग पर चलावे और जब बुढ़ापा आ घेरे, तब अपने पुत्र को राज्य दे वन में चला जाय और वहाँ वानप्रस्थ बन कर रहे। वानप्रस्थ आश्रम में रहते समय आलस्य को त्याग कर, शास्त्रोक्त कर्मानुष्ठान किया करे। जो राजा इस प्रकार का बर्त्ताव करता है, वही धर्मात्मा कहलाता है। ऐसे ही धार्मिक राजा के यह लोक और परलोक दोनों ही बन जाते हैं। रहा मोक्ष—सो मेरे मतानुसार तो अति दुर्लभ पदार्थ है और अनेक विघ्न बाधाओं से भरा हुआ है। इस प्रकार कितने ही धर्माचरणी राजा, काम और क्रोध को जीत, सत्यभाषण कर, दान दे, तपस्या कर, अहिंसा का व्रत धारण कर, प्रजापालन में तत्पर रह, उत्तम धर्मावलम्बी बन और गौ ब्राह्मण की रक्षा के लिये युद्ध कर, उत्तम गति पा चुके हैं।

हे राजन्! इस प्रकार अहङ्कार रहित हो और धर्माचरण कर कितने ही राजा लोग ही नहीं बल्कि एकादश रुद्र, अष्टावसु, द्वादश आदित्य और साध्य कोटि के देवगण स्वर्ग में गये हैं।

बाईसवाँ अध्याय

क्षात्रधर्म

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! देवस्थानऋषि के इस उपदेश को सुन कर, खिन्न हुए राजा युधिष्ठिर से अर्जुन ने पुनः कहा—हे धर्मज्ञ! हे

राजन्! आपने क्षात्र धर्मानुसार राज्य प्राप्त किया है, बड़ी कठिनाइयों से प्राप्त इस राज्य को पा कर और शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर आप दुःखी क्यों होते हैं। क्षत्रिय का मरण रणक्षेत्र में होना—यह सर्वश्रेष्ठ बात है। यदि शत्रुओं को परास्त कर, राज्य मिले, तो उचित है कि विविध यज्ञानुष्ठान करे। क्षत्रियों के लिये यह परम धर्म है। अतः आप भी अब क्षात्र धर्मानुसार व्यवहार करें। कर्मयोग द्वारा संन्यास ग्रहण करना, ब्राह्मणोचित कर्त्तव्य है। क्योंकि ब्राह्मणों के लिये यही श्रेयस्कर है। क्षत्रियों के लिये रणक्षेत्र में प्राण गँवाना, परम धर्म है। क्षात्रधर्म बड़ा भयङ्कर है। यह शास्त्रों का मत है। अवसर हाथ लगने पर, युद्ध में शस्त्रप्रहार से शत्रुओं का संहार करना और समय जब आवे, तब स्वयं भी लड़ते लड़ते प्राण गँवा देना—क्षात्रधर्म है।

हे राजन्! यदि कोई जन्म ही से ब्राह्मण हो और वह क्षात्रधर्मावलम्बी हो तो भी वह इस लोक में सराहनीय माना जाता है। क्योंकि क्षात्रधर्म की उत्पत्ति तो ब्राह्मणोचित धर्म ही से तो हुई है। अर्थात् ब्राह्मण ही से क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई है। क्षत्रिय को तप करने, संन्यास लेने, ब्रह्मयज्ञ करने तथा दूसरे के धन से जीविका करने का अधिकार नहीं है। अतः हे बुद्धिमान्! हे धर्मात्मा! आप प्रजापालन में तत्पर हो, दुःख और शोक को त्याग कर आप कर्म करने में प्रवृत्त हों। क्षत्रिय का हृदय वज्र की तरह कठोर होता है। अतः आप क्षात्र धर्मानुसार राज्य पा कर, जितेन्द्रिय बन, यज्ञ दान आदि कर्मानुष्ठान में दत्तचित्त हों। हे राजन्! आपने तो क्षात्रधर्म में स्थित हो, शत्रुओं से रहित राज्य पाया है। अतः अब आप मन को स्थिर कर, यज्ञ, दानादि कर्मानुष्ठान कर, शोक को त्याग दें। कश्यपनन्दन इन्द्र भी जाति के ब्राह्मण थे; किन्तु क्षत्रिय का कर्म करने से वे क्षत्रिय हुए। उसने पाप परायण अपनी निन्यानवे जातियों का मूलोच्छेदन किया था। हे राजन्! इन्द्र ने अपनी जाति वालों का वध कर, जगत भर में प्रशंसा पायी थी और इसी कर्म को कर इन्द्र को देवराज पद प्राप्त हुआ था। मैंने ऐसा सुना है।

हे राजन् ! जिस तरह इन्द्र, स्वर्ग के राजा बने हैं, उसी तरह आप भी शोक को त्याग कर मनुष्यों के इन्द्र बनें। फिर बहुदक्षिणा युक्त यज्ञों को कर देवताओं का यजन करें। हे राजन् ! यह क्रम बहुत प्राचीन काल से चला आता है। अतः आपको शोक न करना चाहिये। रण में मारा जाना यह तो क्षत्रियों का परम धर्म है। उसी क्षात्रधर्म से प्रेरित हो, हमारे सामने लड़ कर, अनेक राजे मारे गये हैं और वे सब परमगति को प्राप्त हुए हैं।

हे राजन् ! भावी किसी के टाले नहीं टल सकती। कोई भी अपने भाग्य का उल्लंघन नहीं कर सकता, अथवा प्रारब्धानुसार प्राप्त राज्य का आप उपभोग करें। यह कह अर्जुन चुप हो गये।

तेईसवाँ अध्याय

शङ्ख और लिखित का उपाख्यान

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! यद्यपि घुँघराले बालों वाले अर्जुन ने युधिष्ठिर को समझाया, तथापि युधिष्ठिर कुछ न बोले। दो घड़ी लों समस्त जन चुप रहे। तदनन्तर ऋषिमण्डली में आसीन वेदव्यास विचार कर बोले।

व्यास जी ने कहा—हे उदारमना युधिष्ठिर ! अर्जुन ठीक तो कहता है। अर्जुन ने वही कहा है जो धर्मशास्त्रों में गृहस्थाश्रमियों के लिये अनुष्ठेय कर्म निरूपण किये गये हैं। तुम तो स्वयं समस्त कर्मों के जानने वाले हो, अतः शास्त्रानुसार तुम धर्माचरण करो। गृहस्थाश्रमी के लिये किसी भी धर्मशास्त्र में यह आज्ञा नहीं है कि, वह गृहस्थाश्रम को त्याग वनवासी बन जाय। हे नरपति ! देवों, पितरों, अतिथियों और सेवकों का अवलम्ब तो गृहस्थ ही हैं। अतः तुम राज्य को ग्रहण कर, इन सब का भरण पोषण करो। पशु, पक्षी और मनुष्यादि यावत् प्राणी गृहस्थों ही से जीते हैं। अतः अन्य आश्रमों से कहीं बढ़ कर गृहस्थाश्रम है। चारों आश्रमों में

गृहस्थाश्रम के धर्मों का पालन करना बड़ा कठिन काम है। इस आश्रम के कर्त्तव्यों का पालन अंधा, लूला, लंगड़ा आदमी नहीं कर सकता। अतः तुम इस आश्रम की कठिन विधियों का सेवन करो। तुम वेदज्ञ हो और पूर्वजन्म में तुम कठोर तपश्चर्या किये हुए हो। अतएव अपने बाप दादे के परम्परागत प्राप्त राज्य के भार को, बोझा ढोने वाले बैल की तरह उठा सकते हो। तप, यज्ञ, आत्मज्ञान, भिक्षा, इन्द्रियदमन, ध्यान, एकान्तवास, सन्तोष और शास्त्र-अनुशीलन से ब्राह्मणों को सिद्धि प्राप्त होती है। क्योंकि ये सब ब्राह्मण के अनुष्ठेय धर्म हैं। जिन क्षात्र धर्मों को तुम जानते ही हो—उनको भी मैं अब गिनाता हूँ। यज्ञ करना, शस्त्रविद्या का अभ्यास करना, शत्रुओं पर आक्रमण करना, राज्य लक्ष्मी से कभी सन्तुष्ट न होना, दण्ड देना, उग्रता रखना, प्रजा का पालन करना, सब वेदों को जानना, सदाचार-परायण होना—अत्यधिक धन उपार्जन करना, सुपात्र को दान देना, ये ऐसे कर्म हैं, जिनके करने से क्षत्रिय की इस लोक और परलोक में प्रशंसा होती है और कीर्ति फैलती है। हे राजन्! इन सब कर्मों में दण्ड धारण करना श्रेष्ठ है। क्षत्रिय को बलवान होना चाहिये। क्योंकि दण्ड का आधार बल ही है। ये सब कर्म क्षत्रियों को सिद्धि देने वाले हैं। बृहस्पति ने इनको भी ये ही सब कर्मों के करने का उपदेश दिया था। जैसे सर्प बिल में घुस कर चूहे को खा डालता है, वैसे ही एक राजा को दूसरे राजा के राज्य में घुस कर, उसकी समृद्धि को हड़प जाना चाहिये। जिस राजा का किसी के साथ विरोध नहीं है और जो ब्राह्मण घर में बैठा रहता है, उस राजा और उस ब्राह्मण को समृद्धि प्राप्त नहीं होती। राजर्षि सुद्युम्न को दण्ड देने ही से परमसिद्धि प्राप्त हुई थी। वेदव्यास के इन वचनों को सुन कर, महाराज युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! यह तो मुझे आप बतलावें कि, राजर्षि सुद्युम्न को किस कर्म से परमसिद्धि प्राप्त हुई थी। राजा युधिष्ठिर का यह प्रश्न सुन, वेदव्यास जी ने उन्हें राजर्षि सुद्युम्न का आख्यान सुनाया।

व्यास जी बोले—अब मैं तुम्हें एक प्राचीन उपाख्यान सुनाता हूँ। सुनिये। बाहुदा नाम्नी नदी के तट पर अलग अलग आश्रमों में शङ्ख और लिखित नामक दो सहोदर भ्राता रहते थे। वे दोनों ब्राह्मण सदाचारी थे। उनके आश्रमों में फलों और पुष्पों से लदे हुए वृक्ष लगे हुए थे। अतः उनके आश्रम बड़े शोभायमान जान पड़ते थे। एक बार शङ्ख अपने भाई लिखित के आश्रम में अनायास ही जा पहुँचे। उस समय शङ्ख अपने आश्रम में उपस्थित न थे। कहीं बाहिर गये हुए थे। लिखित ने अपने भाई के आश्रम में जा और भाई की अनुपस्थिति में उनके आश्रम में लगे वृक्षों से सुन्दर पके हुए फल तोड़े। फिर वे वृक्ष के नीचे बैठ और उन्हें अपने फल समझ निर्भय हो खाने लगे। लिखित उन फलों को खा ही रहे थे कि, इतने में ही शङ्ख लौट कर आश्रम में आ पहुँचे और अपने भाई को फल खाते देख कर कहने लगे—भाई! तुमने ये फल कहाँ पाये, और इन्हें किस लिये खा रहे हो?

शङ्ख का बोल सुन, लिखित झटपट उठे और बड़े भाई के निकट जा उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर वे मुसक्या कर बोले—भैया! मैंने उस वृक्ष से ये फल तोड़े हैं।

लिखित की इस बात को सुन कर, मन ही मन शङ्ख बहुत क्रुद्ध हुए और अपने छोटे भाई से कहने लगे—तूने बिना अनुमति के अपने आप वृक्ष से फल लिये हैं। अतः यह काम तूने चोरी का किया है। यह कह पुनः शङ्ख ने लिखित से कहा—तुम यहाँ से राजा के पास जाओ और उनसे कहो कि, मैंने किसी के दिये बिना फल लिये हैं—अतः मैं चोर हूँ। अतः तुम धर्मानुसार जिस प्रकार चोर को दण्ड देते हो, उसी तरह मुझे भी दण्ड दो। क्योंकि मैं दण्ड पाने का उचित पात्र हूँ।

हे राजन्! तब कठिन व्रतधारी लिखित, जिस प्रकार राजा सुद्युम्न के निकट गये—सो अब सुनो। जब ज्येष्ठबन्धु शङ्ख ने आज्ञा दी, तब उनकी आज्ञा को सिर पर चढ़ा, लिखित राजा सुद्युम्न की राजधानी

की ओर गये। राजमन्दिर के पास पहुँच लिखित ने द्वारपाल से कहा—तुम राजा को सूचना दो कि, लिखित नामक एक ब्राह्मण आया है और आपसे मिलने के लिये द्वार पर खड़ा है। द्वारपाल के मुख से लिखित के आने का संवाद पा, राजा अपने मंत्रियों सहित पैदल चल लिखित के निकट पहुँचा और हाथ जोड़ उनसे बोला—भगवन्! आपका आगमन यहाँ किस लिये हुआ? राजा सुद्युम्न के वचन सुन कर लिखित ने कहा—मैं जो आपसे कहूँ, उसे सुन आप तदनुसार कार्य करें। हे नरश्रेष्ठ! मैंने अपने बड़े भाई की अनुमति लिये बिना उनके आश्रम के वृक्ष से कुछ फल तोड़ कर खाये हैं। अतः मैंने चोरी की है। अतः मुझे चोरी का दण्ड आप दें और अब विलम्ब न करें।

लिखित के इन वचनों को सुन कर, राजा सुद्युम्न ने कहा—हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आप जिस प्रकार दण्ड देने में राजा के वचन प्रमाण मानते हैं, उसी प्रकार उसके अनुग्रह वचन को भी मानिये। मेरी आज्ञा से आप चोरी के अपराध से बरी किये गये। अब दण्ड को छोड़ और कुछ आप कहें, मैं करने को तैयार हूँ।

वेदव्यास ने कहा—हे युधिष्ठिर! इस प्रकार राजा सुद्युम्न ने लिखित का अपराध क्षमा किया; किन्तु सुद्युम्न का वचन सुन कर, लिखित ने पुनः कहा—हे राजन्! मुझे दूसरी कोई वस्तु न चाहिये। मुझे तो आप चोरी के अपराध का समुचित दण्ड दें—मैं तो यही चाहता हूँ।

जब राजा सुद्युम्न ने लिखित का दण्ड के लिये बड़ा आग्रह देखा, तब उसने लिखित के दोनों हाथ, चोरी के अपराध में कटवा लिये। हाथ कटवा लिखित तो अपने आश्रम को लौट गये और राजा सुद्युम्न अपने महल में चला गया।

लिखित अपने ज्येष्ठ भ्राता के निकट जा उनसे दुःखी हो कर बोले—मुझ दुर्बुद्धि को चोरी करने का दण्ड मिल गया है। अब आप मुझे क्षमा करें। यह सुन कर शङ्ख ने कहा—मैं तेरे ऊपर ज़रा भी क्रुद्ध नहीं हूँ।

मैंने तो तुझ पर कोई दोषारोपण भी नहीं किया था; किन्तु हे धर्मज्ञ! तूने धर्म का अतिक्रमण किया था। उसीका तुझे दण्ड मिला है। अब तू आश्रम के निकट बहने वाली बाहुदा नाम्नी नदी पर जा, देव-ऋषिपितृ-तर्पण कर और आगे फिर कभी ऐसा पाप कर्म मत करना। शङ्ख के कथनानुसार लिखित नदी पर गया और बाहुदा नदी के पवित्र जल में स्नान कर, जैसे ही उसने जल लेने की इच्छा की, वैसे ही उसके कमल सरीखे हाथ निकल आये। यह लीला देख लिखित को बड़ा आश्चर्य हुआ और अपने नये हाथ दिखलाने के लिये वह अपने भाई की ओर चला। उसने शङ्ख के निकट पहुँच उससे कहा—हे भाई! मेरे ये नये हाथ उग आये हैं। उन्हें देख शङ्ख ने कहा—भैया! इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं है। मैंने निज तपःप्रभाव से इनको उत्पन्न कर दिया है। इसका कारण दैव ही है।

लिखित बोले—हे विप्रश्रेष्ठ! हे ज्येष्ठ सहोदर! जब आपमें इतना तपःप्रभाव था तब आपने पहले ही मुझे पवित्र क्यों नहीं किया?

शङ्ख ने कहा—तेरा कहना ठीक है; किन्तु दण्ड देने का अधिकार तो मुझे नहीं है। यह अधिकार तो राजा ही को है। तुझे दण्ड दे राजा अपने कर्त्तव्य से मुक्त हुआ और तू पितरों सहित पवित्र हुआ है।

वेदव्यास जी बोले—हे पाण्डुपुत्र! हे युधिष्ठिर! इस प्रकार सुद्युम्न लिखित को उचित दण्ड देने से पाप से मुक्त हो कर, परमगति को प्राप्त हुआ। प्रचेता के पुत्र दक्ष ने भी इसी प्रकार परमसिद्धि पायी थी। अतः हे महाराज! प्रजा का पालन करना, क्षत्रियों का परमधर्म है। इसे छोड़ अन्य धर्म की संज्ञा उन्मार्ग है। अतः तुम शोक को त्याग कर, प्रजा का पालन करो और तुम्हारा भाई अर्जुन तुमसे जो हितकर वचन कहता है उन्हें सुनो, क्योंकि तुम धर्मज्ञ हो। हे नरेन्द्र! क्षात्रधर्म यही है कि, दुष्टों को दण्ड दे और शिष्टों पर अनुग्रह कर प्रजा का पालन करे। मूँड मुड़ा कर संन्यासी बनना, यह क्षत्रिय का धर्म नहीं है।

चौबीसवाँ अध्याय

हयग्रीव का उपाख्यान

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! कृष्णद्वैपायन व्यास पुनः कुन्तीपुत्र एवं अजात शत्रु युधिष्ठिर से बोले—हे राजा युधिष्ठिर! वनवास के समय तुम्हारे महारथी एवं मनस्वी भाइयों ने जो कामनाएँ की थीं, उनको अब तुम पूरा करो। नहुषपुत्र राजा ययाति, जिस प्रकार इस धराधाम पर शासन कर गया है, वैसे ही तुम भी शोक को त्याग कर, पृथिवी का पालन करो। हे नरव्याघ्र! तुम्हारे भाई तपस्वी का वेष धारण कर जो क्लेश सहन कर चुके हैं, वे अब समाप्त हो चुके हैं। अतः अब वे सुखानुभव करें। धर्म, अर्थ और काम का तुम भाइयों सहित उपभोग करो, तदनन्तर सहर्ष वन में जाना; किन्तु अभी तो तुम्हारा वन में जाना उचित नहीं, क्योंकि तुम्हारे ऊपर अभी तो देव, पितृ और अतिथि ऋण है। जब इन ऋणों से उऋण हो लो तब वन में जाना। हे कुरुराज! तुम सर्वमेध और अश्वमेध द्वारा देवताओं का यजन करो। ऐसा करने से तुम्हें स्वर्ग में वास मिलेगा। तुम अपने भाइयों के साथ विपुल दक्षिणा वाले यज्ञ करना। ऐसा करने से तुम्हारी बड़ी नामवरी होगी। हे नरव्याघ्र! हे कुरुवंशश्रेष्ठ! तुमने पहले कहा है कि, क्षात्रधर्म हिंसाप्रधान है, अतः वह मुझे पसन्द नहीं है। यद्यपि तुम्हारा यह कथन मैं भूला नहीं हूँ; तथापि तुम्हें धर्मभ्रष्ट होने से बचाने के लिये तुम्हें मैं जो उपदेश देता हूँ, उसे तुम सुनो। हे राजन्! दूसरे का धन अपहरण करने वाले चोर, राजाओं के मन में युद्ध द्वारा अपना पराजय करने की इच्छा उत्पन्न किया करते हैं; किन्तु जो राजा शास्त्र सुन और बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर, देश एवं काल की प्रतीक्षा कर के चोरों को क्षमा कर देता है, उसे पापभागी नहीं होना पड़ता; किन्तु जो राजा प्रजा की आय से छठवाँ भाग राजस्व रूप से वसूल कर के भी प्रजा की रक्षा नहीं करता उसे प्रजा के पाप के

चतुर्थांश का भागी होना पड़ता है। हे युधिष्ठिर ! जो राजा धर्मशास्त्रानु-सार बर्त्ताव करता है, वह राजा धर्मभ्रष्ट नहीं होता ; किन्तु जो शास्त्रोक्त व्यवहार नहीं करता वह निश्चय ही धर्मभ्रष्ट हो जाता है। धर्मानुसार बर्त्ताव करने वाला राजा सदा निर्भीक रहता है। जो राजा काम और क्रोध को त्याग कर, शास्त्र-श्रवण-जन्य बुद्धि द्वारा, प्रजा का पालन पिता की तरह करता हुआ सब पर समान दृष्टि रखता है, उसे पाप का भागी नहीं बनना पड़ता। क्योंकि हे राजन् ! यदि कोई पुरुष, कोई कार्य आरम्भ करे और उसमें दैव विघ्न डाल उस कार्य को बिगाड़ दे तो विद्वानों के मतानुसार उसमें कार्य करने वाले का दोष नहीं गिना जाता। राजा को उचित है कि वह बल से अथवा बुद्धि से वैरियों को अपने अधीन कर ले। राजा पापाचारियों के साथ मेलजोल न रखे। उसे तो अपने राज्य में वे ही कार्य करने कराने चाहिये, जो पुण्यवर्द्धक हैं। राजा को उचित है कि, वह शूरवीर क्षत्रियों की, सन्मार्गरत श्रेष्ठजनों की, धर्मनिष्ठ विद्वान विप्रों की और बहुत से गौ और बैल पालने वाले वैश्यों की, बड़ी सावधानी से रक्षा करे। वह बहुश्रुत विद्वानों को न्यायासन और धर्मासन पर आसीन करे। किन्तु विचक्षण एवं बहुश्रुत एक ही व्यक्ति पर, राजा निर्भर न रहे। प्रजाजन उस राजा को दुर्दान्त (अत्याचारी) कहते हैं, जो प्रजा का ठीक ठीक पालन नहीं करता, जो इन्द्रियजनित विकारों को रोकता नहीं, जो विनय-शून्य है, जो अत्यन्त मिथ्याभिमानी है, जो अन्य पुरुषों का अपमान करता है और जो गुण में भी दोषदृष्टि ही रखता है। हे राजन् ! जिस देश का राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता, जिस देश की प्रजा अतिवृष्टि, अनावृष्टि जन्य दुष्कालों से पीड़ित रहती है और जिस देश की प्रजा चोरों द्वारा सतायी जाती है; उस देश के निवासियों का सारा पाप उस देश के राजा को लगता है। यदि विवेक, विचार और नीति की सहायता से प्रयत्न करने पर भी राजा अपने प्रजाजनों की रक्षा करने में असमर्थ हो, तो वह पाप का भागी नहीं होता। दैवयोग ही से आरम्भ किये हुए

कामों में सफलता मिलती है अथवा नहीं भी मिलती; किन्तु पुरुषार्थ करने वाला राजा पाप का भागी नहीं होता।

हे राजसिंह! प्रसङ्गवश मैं तुम्हें प्राचीन कालीन राजा हयग्रीव का उपाख्यान सुनाता हूँ। उसे तुम सुनो। राजा हयग्रीव बड़ा शूरवीर था और उत्तम कार्य किया करता था। उसने युद्ध कर अपने शत्रुओं का नाश कर डाला था; किन्तु पीछे जब उसके सहायक न रहे, तब उसके वैरियों ने उसे युद्ध में परास्त कर, उसका वध कर डाला। शत्रुओं को दण्ड देने और प्रजाजनों का पालन करने में राजा हयग्रीव की बड़ी प्रशंसा हुआ करती थी। युद्धोपयोगी कार्यों को यथाविधि सम्पादन कर उसने समर में बड़ी नामवरी पायी थी। अतः शत्रु के हाथ से मारा जा कर अब वह स्वर्ग में आनन्द करता है। महाबली हयग्रीव में अहङ्कार का अभाव था। उसने निज पुरुषार्थ से अपने कार्य पूरे किये थे। वह बड़ा क्रियाशील था। डाँकुओं ने उसे रण में घेर और शस्त्रों से उसको काट कूट कर मार डाला था। वह राजा हयग्रीव अब स्वर्ग में आनन्द कर रहा है। महाबली राजसिंह हयग्रीव युद्धरूपी अग्निकुण्ड में शत्रुओं की आहुति दे, पाप से निर्मुक्त हुआ था। अन्त में अवभृथ स्नान के समय रण में अपने प्राणों को होम वह स्वर्ग में आनन्द करता है। उस राजा के रणयज्ञ में धनुष रूपी यूप था, प्रत्यञ्चा रूपी यज्ञ-पशु बाँधने की रस्सी थी। खड्ग और बाणरूपी स्रुवा था, रुधिर रूपी घृत था। रथ रूपी वेदी थी, क्रोध रूपी अग्नि था और रथ के चार घोड़ों रूपी चार उद्गाता थे। महाराज हयग्रीव यज्ञशील था। उसमें अभिमान न था, वह बड़ा बुद्धिमान था और तन मन से अहङ्कारशून्य था। वह बड़ी बुद्धिमानी के साथ न्याय पूर्वक प्रजा की रक्षा किया करता था। उसकी कीर्ति सब लोकों में फैल गयी थी। वह राजा जब युद्ध में मारा गया; तब वह स्वर्ग में जा अब आनन्द भोग रहा है। राजा हयग्रीव ने यज्ञादि क्रियाओं से दैवी सिद्धि प्राप्त कर, दण्ड एवं नीति प्रधान मानुषी सिद्धि सम्पादन की थीं

और धर्मशास्त्रोक्त नियमानुसार पृथिवी का पालन किया था। इसी लिये धर्मात्मा महाराज हयग्रीव अब स्वर्ग में सुख भोग रहा है। राजा हयग्रीव शास्त्रज्ञाता, दानी, श्रद्धालु और कृतज्ञ था। वह इस लोक में उत्तम कर्मों को कर और मर्त्यलोक को त्याग अब उन लोकों में निवास करता है जो उन विद्वान बुद्धिमान जनों को प्राप्त होते हैं, जो प्रयागादि तीर्थस्थानों में शरीर त्याग करते हैं। राजा हयग्रीव ने वेदों तथा धर्मशास्त्रों का भली भाँति अध्ययन किया था। उसने चारों वर्णों की प्रजा को अपने अपने धर्म में स्थापित किया था और वह अब देवलोक में आनन्द से है। हयग्रीव ने सोमयाग कर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया था। समर में शत्रुओं को परास्त कर, वह प्रजा का पालन किया करता था। आवश्यकतानुसार वह प्रजा जनों को उपयोगी शिक्षा देता था। वह युद्ध में मारा जाने पर अब स्वर्ग में आनन्द से है। विद्वान् लोग अब भी राजा हयग्रीव के प्रशंसनीय एवं श्रद्धेय सदाचार की सराहना करते हैं। अतः वह पवित्रयशा महात्मा राजा, स्वर्ग को विजय कर, वीर पुरुषों के लोक में गया और उसने सिद्धि प्राप्त की।

पचीसवाँ अध्याय

जगत् दुःखमय है

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! व्यास जी के इन वचनों को सुन और अर्जुन को कुपित जान, धर्मराज ने व्यास जी की ओर देख कर कहा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे मुने! न तो इस पृथिवी का राज्य और न विविध भाँति के भोग ही मुझे अब हर्षित करते हैं। क्योंकि नातेदारों की मृत्यु का शोक मेरे मन में बुरी तरह खटका करता है। वीर पतियों और

और पुत्रों से रहित अनाथा, स्त्रियों के करुण विलाप को सुनते सुनते मेरे मन की शान्ति नष्ट हो गयी है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब धर्मराज युधिष्ठिर ने यह कहा, तब योगिवर्य, धर्मज्ञ एवं वेदपारग वेदव्यास जी ने युधिष्ठिर से यह कहा।

व्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर! जिन स्त्रियों के पति पुत्र मारे गये हैं, अब वे तो उन्हें यज्ञादि किसी भी कर्म से फिर मिल नहीं सकते। किसी भी पुरुष में यह सामर्थ्य नहीं कि, वह उन मृत पुरुषों को ला कर उनकी स्त्रियों को दे दे। विधाता का विधान ही ऐसा है कि, मनुष्य-मात्र, समय पर ही उन वस्तुओं को पा सकता है। बिना समय आये वह नहीं पा सकता। उन स्त्रियों के पतियों के संयोग का समय बीत गया। बुद्धिपुरस्सर अथवा शास्त्राभ्यास से अथवा प्रारब्ध से समय आये बिना, कोई वस्तु नहीं पा सकता और जब किसी वस्तु के पाने का समय आ जाता है, तब मूर्ख पुरुष को भी वह वस्तु बिना प्रयास ही मिल जाती है। सारांश यह कि, कार्य की सिद्धि समय आने पर ही होती है। शिल्प, मंत्र और जड़ी बूटियाँ जब, मनुष्य का भाग्य खोटा होता है, तब कारगर नहीं होतीं; किन्तु अच्छा समय आने पर ही वे वृद्धि-कारक फल देती हैं। समय पर ही वायु का वेग बढ़ता है, समय पर ही मेघों से जलवृष्टि होती है, समय आने पर ही सरोवर कमलों से परिपूर्ण हो जाते हैं। वनस्थ वृक्ष भी काल पा कर पुष्पित होते हैं। यथासमय ही शुक्लपक्ष की चाँदनी रातें और कृष्णपक्ष की अँधियारी रातें हुआ करती हैं। यथासमय चन्द्रबिम्ब भी पूरा दिखलायी पड़ने लगता है। यथा समय नदियों का प्रवाह भी वेगवान हो जाता है। पक्षी, सर्प, मृग, हाथी, हिरन यथासमय ही समागम के लिये मदमत्त होते हैं। यथासमय ही स्त्रियाँ गर्भवती हुआ करती हैं। यथासमय ही शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुएँ आती जाती रहती हैं। बिना समय आये कोई न तो मरता और न

उत्पन्न ही होता है। बालक भी यथासमय ही बोला करता है। यथासमय बालक युवा होता है और यथासमय ही वपन किया हुआ बीज अङ्कुरित होता है। यथासमय सूर्य उदय होता, चन्द्रमा की वृद्धि और उसका ह्रास होता है और यथासमय ही बड़ी बड़ी लहरों से युक्त समुद्र घटता बढ़ता रहता है। हे राजन्! इस बारे में दुःखातुर राजा सेनजित् ने जो वचन कहे थे, उन्हें लोग अब भी दुहराया करते हैं। वह प्राचीन इतिवृत्त मैं तुम्हें सुनाता हूँ। सेनजित् ने कहा था कि काल अनिवार्य है। वह घूम फिर कर सब प्राणियों पर अपना प्रभाव जमाता है। पृथिवी के यावत् पदार्थ काल पा कर पकते हैं और पीछे काल पा कर ही सड़ गल भी जाते हैं। हे राजन्! पुरुष अपने शत्रुओं का संहार करते हैं और उन संहार करने वालों का संहार अन्य पुरुष करते हैं। वस्तुतः यह एक रूढ़ि है; किन्तु यदि देखा जाय तो वास्तव में न तो कोई किसी का वध करता है और न कोई किसी से मारा जाता है। कोई कोई समझता है कि, अमुक ने अमुक का वध कर डाला और कोई समझता है कि कोई किसी को मारता ही नहीं। काल पा कर ही प्राणियों की उत्पत्ति और उनका नाश हुआ करता है। धन का नाश, स्त्री, पुत्र अथवा पिता का मरण, काल पा कर ही हुआ करता है; किन्तु जो मूढ़जन हैं, वे तो हाय हाय कर दुःखी हुआ ही करते हैं; किन्तु तू किस लिये मूढ़ बन, मरणशील कौरव राजाओं की मृत्यु पर शोक करता है? जो दूसरों के लिये शोकोत्पादक थे, उनके लिये तू शोक क्यों करता है? जैसे भयभीत होने से भय की वृद्धि होती है, वैसे ही शोक को न त्यागने से शोक की वृद्धि हुआ करती है। जिस प्रकार यह शरीर अपना नहीं है, वैसे ही पृथिवी भी अपनी नहीं है और न दूसरे किसी की ही है। तिस पर भी लोग ममतावश यही मानते हैं कि, यह देह और पृथिवी जैसी मेरी है, वैसे ही दूसरों की। शोक और हर्ष के सहस्रों कारण मूढ़ जनों के प्रतिदिन अनुभूत हुआ करते हैं; किन्तु पण्डितों पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार प्रिय सुखों और अप्रिय दुःखों का अनुभव किसी न किसी समय जीव

को करना ही पड़ता है। इस संसार में तो दुःख ही दुःख हैं, सुख नाममात्र को भी नहीं। अतः मनुष्य को दुःख मिला करते हैं। दुःख की जननी कामना है और सुख का उत्पादक दुःख है। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख का अनुभव लोगों को नित्य ही हुआ करता है; किन्तु ऐसा कदापि नहीं होता कि, किसी मनुष्य को सदा दुःख ही दुःख अथवा सुख ही सुख भोगने पड़ते हों। जब दुःख का अवसान होता है, तब सुख का उदय होता है और सुख के समाप्त हो जाने पर दुःख प्राप्त होता है। अतः जो चाहता हो कि, वह सदा सुखी ही बना रहे उसे उचित है कि, वह सुख और दुःख दोनों की वासना से रहित हो जाय। जब मनुष्य को सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख मिलता है, तब जिसके द्वारा उसे शोक तथा सन्ताप होता हो, मनुष्य को उचित है कि, वह सुख दुःख को उत्पन्न करने वाले पदार्थ का त्याग कर दे। वह पदार्थ चाहे भले ही पृथिवी का साम्राज्य ही क्यों न हो। सुख, दुःख, प्रिय और अप्रिय पदार्थ जैसे जैसे प्राप्त हों, वैसे ही वैसे मनुष्य बिना अपने मन को उदास किये उनको सहन करता जाय।

हे राजन्! देह, स्त्री, पुत्र में ममता रखने वाला पीछे से समझता है कि, किस प्रकार से, किस कारणवश कौन किसका सम्बन्धी है। इस संसार में जो बड़े भारी मूर्ख हैं अथवा जो पूर्ण आत्मज्ञानी हैं, वे ही सुख भोगते हैं; किन्तु अर्धदग्ध पुरुष तो सदा दुःख ही दुःख भोगा करते हैं। हे युधिष्ठिर! धर्म के ज्ञाता तथा सुखों दुःखों के कारणों को जानने वाले त्रिकालज्ञ राजा सेनजित् ने यह भी कहा था कि, जो पुरुष अपने को दुःखी मानता है उसे सुख कदापि नहीं मिलता अर्थात् उसके दुःख कभी नष्ट नहीं होते। एक दुःख से दूसरा, दूसरे से तीसरा—इस प्रकार दुःखों की उत्पत्ति हुआ ही करती है। सुख दुःख, उत्पत्ति नाश, लाभ हानि, मरण जीवन—ये ऐसे हैं, जिनसे कोई भी प्राणी नहीं बच सकता। कभी न कभी ये भोगने ही पड़ते हैं। अतः धीर पुरुष दुःख के लिये न तो दुःखी होते हैं और न सुख में सुखी ही होते हैं। राजाओं का युद्ध में दीक्षा लेना, यज्ञ करना, दण्ड नीति में

कुशलता प्राप्त करना, याग यज्ञ में ब्राह्मणों को भली भाँति दक्षिणा देना ही राजाओं का संन्यास है। ये समस्त कर्म राजाओं को पवित्र करने वाले हैं। जो महापुरुष राजा यज्ञयाग करता है, जो अहङ्कार-वर्जित है, जो बुद्धि पुरस्सर और न्यायपूर्वक राज्य करता और अपनी प्रजा के समस्त जनों को सन्मार्ग पर चलाता है, वह राजा मरने के बाद स्वर्ग में जा आनन्द करता है। जो राजा युद्ध में विजयी हो, प्रजा का पालन करता है, वह यदि समर-भूमि में मारा जाय, सोमयाग करे, उजड़ा राज्य बसावे, युक्तिपूर्वक प्रजा को शिक्षा दे, तो उसे देवलोक का वास मिलता है। जो राजा वेदों का और शास्त्रों का भली भाँति अभ्यास करता है, प्रजा का न्याय पूर्वक पालन करता है और चारों वर्णों की अपनी प्रजा को उनके वर्णोचित धर्मों में लगाता है, उस पवित्रात्मा राजा को स्वर्गसुख प्राप्त होता है। जिस राजा के स्वर्गवासी होने पर नागरिक जन और देशवासी लोग तथा उसके मंत्री आदि अधिकारी-वर्ग उसके आचरणों की सराहना किया करते हैं, वही राजा श्रेष्ठ है।

छब्बीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का कथन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! वेदव्यास के इन वचनों को सुन, राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन से ये युक्तियुक्त वचन कहे। हे पार्थ! तुम समझते हो कि इस जगत में धन को छोड़ अन्य कोई भी पदार्थ श्रेष्ठ नहीं है। धन ही से सुख, धन ही से स्वर्ग और धन ही से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं और जो धनहीन जन हैं—उनके मनोरथ पूरे नहीं होते। किन्तु ऐसा समझना भारी भूल है। अनेक पुरुष वेद का स्वाध्याय रूपी यज्ञ कर सिद्धि प्राप्त करते हुए देख पड़ते हैं, बहुत से मुनियों ने तप द्वारा सनातन लोकों में गमन किया है। हे अर्जुन! जो ब्रह्मचारी नित्य वेद का स्वाध्याय

करता है तथा समस्त धर्मों का ज्ञान सम्पादन करता है उनको देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं। कितने ही ऋषि स्वाध्यायनिष्ठ होते हैं और कितने ही ऋषि ज्ञानवान। वे सब धर्मनिष्ठ हैं। राजकीय कार्यों को ज्ञानवान पुरुष के उपदेशानुसार करना चाहिये। श्राद्ध में ज्ञानियों ही को भोजन करावे। यह बात मैंने वैखानसों के कहने से जानी है। अज, पृश्नि, सिकत, अरुण तथा केतु नामक ऋषियों को वेद का स्वाध्याय करने ही से स्वर्ग की प्राप्ति हुई, (धनवान होने से नहीं)।

हे अर्जुन! वेदोक्त दान, वेद का स्वाध्याय, यज्ञानुष्ठान और इन्द्रिय-निग्रह इतने कठिन हैं कि, यदि वे पूरे हो जाँय तो वेदोक्त कर्म करने वाला पुरुष दक्षिणायन काल में मृत्यु को प्राप्त होने पर भी, स्वर्ग को जाता है। इन कर्मों के करने वालों को जो लोक प्राप्त होते हैं, वे मैं तुम्हें पहले ही बतला चुका हूँ। नियमानुसार योग का साधन करने वाले पुरुष उत्तरायण सूर्य में शरीर त्याग कर, सनातन लोक में जाते हैं। इन दोनों अयनों में से उत्तरायण की विद्वानों ने प्रशंसा की है। तुमको विदित हो कि, उत्तम स्वर्गलोक और परम सुख पाने का एकमात्र साधन सन्तोष है। सन्तोष से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है। जिन योगियों ने क्रोध और हर्ष को जीत लिया है, उसीमें उनका परम स्थान और सिद्धि मानी जाती है। उस विषय में राजा ययाति ने एक गाथा कही थी। उस गाथा के सुनने से मनुष्य की समस्त वासनाएं उसके अन्तःकरण में वैसे ही विलीन हो जाती हैं, जैसे कछुआ अपने समस्त अंगों को भीतर सकोड़ लेता है। (राजा ययाति की कही हुई गाथा यह है) जो आदमी दूसरे से नहीं डरता और जिससे दूसरे नहीं डरते, जो किसी वस्तु की कामना नहीं करता और न किसी वस्तु से घृणा करता है, वही आदमी ब्रह्म को पाता है। पुरुष जब मन, वचन और तन से किसी प्राणी से द्वेष नहीं रखता, तब वह ब्रह्म को प्राप्त करता है। जो महात्मा एवं ज्ञानी पुरुष अभिमान, ममता और लोगों का संग छोड़ता है, वही मोक्ष का अधिकारी होता है। हे पार्थ! मैं

तुमसे एक बात अब कहता हूँ, उसे तुम मन को लगा कर तथा इन्द्रियों को अपने वश में कर के सुनो। ऐसे लोग संसार में बहुत हैं जो धन और धर्म सम्पादन के लिये प्रयत्न किया करते हैं। इनमें जो लोग धर्म सम्पादन के लिये धनोपार्जन का प्रयत्न किया करते हैं; उनका प्रयत्न न करना ही श्रेयस्कर है। क्योंकि धन में अनेक दोष हैं। अतः उस धन से किये गये यज्ञ यागादि धर्मानुष्ठान भी दोषों से पूरित होते हैं। मैं इस बात की परीक्षा कर के भली भाँति अनुभव प्राप्त कर चुका हूँ और चाहो तो तुम स्वयं भी परीक्षा कर के अनुभव प्राप्त कर सकते हो। जो धनाभिलाषी होते हैं, वे अन्याय कार्यों से कभी छूट नहीं सकते। जो धनोपार्जन की कामना रखने वाले होते हैं, उनमें साधुता कदाचित् ही होती है। क्योंकि दूसरे से द्रोह किये बिना धन की प्राप्ति नहीं होती। जब धन मिल जाता है तब उसके कारण अनेक प्रकार की आशङ्काएं मन में उत्पन्न हुआ करती हैं। यह विद्वानों का मत है। दुराचारी, शोक और भय से रहित पुरुष थोड़ा सा धन पाने की आशा होने पर भी दूसरे मनुष्य के साथ डाह, द्रोह आदि करता है। यहाँ तक कि, वह धन के पीछे ब्रह्महत्या जैसा महापातक भी कर डालता है। दैवयोग ही से दुर्लभ धन की प्राप्ति होती है। उस धन को अपने सेवकों को देते समय धनदाता को वैसा ही सन्ताप होता है, जैसा कि प्रजा को चोरों से। यदि मालिक निर्दिष्ट वेतन नहीं देता तो उसके नौकर चाकर उसकी निन्दा करते और उस पर दोषारोपण करते हैं; किन्तु जो निर्धन हैं, उनसे कोई कह ही क्या सकता है? जिसके पास एक वर्ष के व्यय के लिये भी धन होता है, वह भी सुखी नहीं रहता। इस विषय में यज्ञ का विस्तार करने वाली यज्ञ सम्बन्धी गाथाएं प्राचीनकालीन विद्वानों ने कह रखी हैं। उनको तू सुन, ब्रह्मा ने यज्ञार्थ धन को बनाया है और उन्होंने पुरुष की रचना यज्ञ की रक्षा के लिये की है। इसीसे सब तरह के पदार्थों का यज्ञ में उपयोग करना उत्तम माना गया है; किन्तु कामना के लिये धनादि किसी प्रकार के पदार्थ का उपयोग करना श्रेष्ठ नहीं माना गया। हे

धनाढ्यों में श्रेष्ठ अर्जुन! ब्रह्मा ने धन को अपने उपयोग के लिये उत्पन्न किया है। यज्ञ करने के लिये ब्रह्मा जी मनुष्य को धन देते हैं। यह बात हे अर्जुन! तुम्हे जान लेनी चाहिये। तभी तो विद्वज्जन कहा करते हैं कि, धन किसी भी पुरुष का नहीं है। धन तो यज्ञदेव का है। अतः जो पुरुष श्रद्धावान् होते हैं; वे धन का दान करते और धन से यज्ञ करते हैं। पण्डितों का कहना है कि, प्राप्त धन का उपयोग करना चाहिये; परन्तु उसका व्यय न तो अपने उपभोग के पदार्थों में करना चाहिये और न उसका दुरुपयोग ही करना चाहिये। जब संचित धन का व्यय दान देने और यज्ञानुष्ठान जैसे उत्तम कर्म में करना आवश्यक है, तब उसको जोड़ बटोर कर जमा करने की क्या आवश्यकता है। जो अल्पबुद्धि जन, स्वधर्मभ्रष्ट पुरुषों को धन दान करते हैं; वे मरने के बाद सौ वर्षों तक विष्ठा खाते हैं। क्योंकि धन प्रायः कुपात्रों ही को दिया जाता है, सुपात्र को नहीं। अतः सुपात्र और कुपात्र की पहचान न हो सकने के कारण दानधर्म महाकठिन है। प्राप्त धन का दान करने में भी दो बड़ी भूलें हुआ करती हैं। एक तो द्रव्य का दान कुपात्र को मिलता है। दूसरे सुपात्र को मिलता नहीं।

सत्ताईसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के दुःखी होने का हेतु

युधिष्ठिर ने व्यास जी से कहा—हे ब्रह्मन्! बालक अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, द्रुपदनन्दन धृष्टद्युम्न, राजा विराट, राजा द्रुपद, धर्मज्ञ वृषसेन, राजा धृष्टकेतु तथा अन्य भिन्न भिन्न देशों के राजा लोग युद्ध में काम आये हैं। मुझे इसीसे बड़ा दुःख है। हाय! मैंने महा हत्यारा बन कर और राज्य के लालच में फँस, अपनी जाति का अपने बान्धवों का और अपने वंश का संहार कराया है। हा! मैं जिनकी गोद में खेलते खेलते लोट

जाया करता था, उन्हीं बाबा भीष्म को राज्य के लालच में पड़ मैंने लड़ाई में मार डाला। बूढ़े बाघ की तरह उन्नत वपुधारी भीष्म जी के सामने शिखण्डी ने चढ़ाई की और धनञ्जय ने वज्र तुल्य बाण छोड़ उनका सारा शरीर विद्ध कर डाला। वे बाणप्रहार की वेदना से काँप उठे। यह देख मुझे बड़ा क्लेश हो रहा है। मैंने जब देखा कि, शत्रु की रथसेना का नाश करने वाले भीष्म, बाणप्रहार से पर्वत की समान काँप कर, और निःसत्व बन, पूर्व दिशा की ओर मुख कर, रथ की बैठक पर बैठ गये थे, तब मेरी बुद्धि ठीक ठिकाने न रह गयी थी। कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म हाथों में धनुष बाण ले, भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम के साथ, बहुत दिनों लों जूझे थे। इन गङ्गापुत्र ने अकेले ही काशी नगरी में, वहाँ की राजकुमारी के स्वयम्बर में एकत्रित क्षत्रियों को युद्ध के लिये ललकारा था और उनसे युद्ध कर उन्हें परास्त किया था। भीष्म ने लड़ने को आये हुए सम्राट उग्रायुध को शस्त्रप्रहार से मार डाला था। जिन भीष्म ने शिखण्डी को अपना काल जान लेने पर भी बाणप्रहार से उसका वध नहीं किया, उन भीष्म को युद्ध में अर्जुन ने मार डाला। मैंने जब से भीष्म पितामह को क्षत विक्षत हो कर रणभूमि में शयन करते देखा है, तब से मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं रह गयी। जिनके द्वारा बाल्यावस्था में हमारा पालन पोषण हुआ था, जिन्होंने हमारी रक्षा की; उन्हीं भीष्म पितामह को मूर्ख, पापी और राज्य कामुक मैंने क्षणभंङ्गुर राज्य पाने के लिये, मरवा डाला। हरे! हरे! मैं तब भी न रुका, और अपने गुरु, एवं महाधनुर्धर एवं सब राजाओं के पूज्य द्रोण ने जब मेरे निकट अपने पुत्र अश्वत्थामा का कुशल सम्बन्धी प्रश्न पूछा; तब मुझ पापी ने उनसे मिथ्या बात कही। गुरु द्रोण को मालूम था कि, युधिष्ठिर सत्य बात कहता है। इसीसे उन्होंने मुझसे पूछा था कि, हे राजन्! ठीक ठीक कहना—मेरा पुत्र जीवित है कि नहीं? उस समय मैंने "नरो वा कुञ्जरो वा" कह कर अनिश्चित मिथ्या वचन कहा था। यह घटना मेरे अङ्गों को भस्म किये डालती है। जब

आचार्य द्रोण ने अपने पुत्र के जीवन के विषय में मुझसे पूछा; तब गुरुघाती, पापी और राज्यकामुक मैंने सत्यभाषण के व्रत को त्याग कर, गुरु से झूठी बात कही। ऐसे भारी पापी की अन्त में क्या गति होगी? रण में मैंने अपने ज्येष्ठ भ्राता उस कर्ण का भी वध करवा डाला, जो रणक्षेत्र में कभी पीछे को पग नहीं रखता था। अतः मुझसे बढ़ कर पापी और कौन होगा? पहाड़ी गुफा में उत्पन्न सिंहशावक की तरह अभिमन्यु को मैंने राज्य के लोभ में पड़ द्रोण के सेनापतित्व में काम करने वाली कौरवों की सेना में लड़ने को भेज दिया। उस दिन से अर्जुन के सामने मेरी गर्दन ऊपर को नहीं उठती। ब्रह्महत्यारा और पापी जैसा होने के कारण मैं आँख उठा कर, श्रीकृष्ण के मुख की ओर भी नहीं देख सकता। पाँच पर्वतों से शून्य पृथिवी की तरह पाँच पुत्रों से रहित दुःखियारी द्रौपदी के लिये मुझे बड़ा दुःख है। इस प्रकार मैं सब का अपराधी, घोर पापी और पृथिवी का नाश करने वाला हूं। गुरुहत्या और ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करने को आज से निराहार रह कर, यहाँ बैठे बैठे ही मैं इस शरीर को सुखा डालूँगा। यह इसलिये कि, मुझे अन्य जन्म में कुलघातकी बन कर उत्पन्न न होना पड़े। मैं अब फल मूल खाना भी त्याग दूँगा और जल तक ग्रहण न करूँगा। अब आप मेरे ऊपर अनुग्रह कर जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जाइये। मैं तो अपना शरीर त्यागना चाहता हूँ। अतः आप मुझे परवानगी दें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! महाराज युधिष्ठिर अपने बन्धु बान्धवों के मारे जाने से बड़े शोकाकुल थे। उस समय वेदव्यास जी ने कहा—युधिष्ठिर! ऐसा मत करो। तुमको इस प्रकार शोकान्वित होना उचित नहीं। तुमसे एक बार मैं कह चुका हूँ और पुनः कहता हूँ कि, भाग्य ही सुख दुःख का कारण है। इस संसार में प्राणी उत्पन्न होते हैं, उनका मरण अथवा वियोग अवश्यम्भावी है। ऐसा कोई नहीं है जिसका अखण्ड सम्बन्ध रहे। इस संसार में प्राणियों की उत्पत्ति जलबुदबुदवत्

है, जो क्षण में उत्पन्न होते और दूसरे क्षण ही नष्ट हो जाते हैं। संसार के इस अनादिकालीन प्रवाह में जो पदार्थ जमा हुए हैं वे कालान्तर में बिखर जाँयगे। ऊपर चढ़ी हुई वस्तु नीचे गिरती है। परस्पर सम्बन्धिनी वस्तुओं का वियोग आपस में हुआ ही करता है और जो जन्मा है वह अवश्य मरता है। अन्त में सुख ही दुःख हो जाता है, किसी समय आलस्य भी बड़ा सुखकर जान पड़ता है, किन्तु अन्त में वह दुःखदायी ही सिद्ध होता है। चातुर्य से काम लेने पर, दुःख मालूम होता है, किन्तु अन्त में सुख मिलता है। अणिमादि सिद्धियाँ, श्री, लज्जा, धैर्य और कीर्ति कार्यकुशल पुरुष में वास करती हैं आलसी जन में नहीं। जो नित्य स्नेही हैं—वे सदा सुखदायी नहीं हैं और जो सदा के द्वेषी हैं, वे सदा दुःखदायी भी नहीं हैं। प्रज्ञा से भी किसी को अर्थ और धन से सुख नहीं मिल सकता। हे राजन्! अतः ब्रह्मा ने जिस कार्यसाधन के लिये तेरी सृष्टि की है, उसी काम को तू कर। इसीसे तुझे सिद्धि प्राप्त होगी, तू स्वेच्छा से कार्य करने वाला पुरुष नहीं है। अर्थात् कार्य करने में तू स्वतंत्र नहीं है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अश्मन्-जनक-संवाद

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर अपने सगे नातेदारों के नष्ट हो जाने से जब शोकविह्वल हो प्राण त्यागने को तैयार हुए; तब वेदव्यास जी ने उनका शोक दूर करने के अभिप्राय से उनको यह उपदेश दिया।

व्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर! प्रसङ्गवश मैं तुम्हें एक प्राचीन उपाख्यान सुनाता हूँ। यह उपाख्यान अश्मन् ब्राह्मण ने विदेह जनक को

सुनाया था। दुःख एवं शोक से आतुर राजा जनक ने बुद्धिमान अश्मन् के सामने अपने मन का सन्देह प्रकट किया था। उन्होंने पूँछा कि, अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को अपनी जाति, अपने धन की वृद्धि और उनके विनाश के समय श्रेयस्कामी पुरुष को क्या करना चाहिये, यह आप मुझे बतलावें।

अश्मन् ने कहा—राजन्! सुख और दुःख को साथ लिये हुए ही प्राणिमात्र उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के पीछे पड़े हुए सुख या दुःख, मनुष्य के ज्ञान को वैसे ही नष्ट कर डालते हैं, जैसे वायु अपने वेग से बादलों को नष्ट कर डालता है। मनुष्य के कुमार्गगामी होने के तीन कारण हैं। प्रथम उसके मन में कुलीनता का अभिमान, द्वितीय उसका अपने मन में यह समझना कि, मैं सिद्ध हूँ, तीसरा उसका यह अहङ्कार कि, मैं साधारण मनुष्य नहीं हूँ। तदनन्तर वह अपने बाप का सञ्चित द्रव्य नृत्य, गान, भोग विलास में नष्ट कर डालता है। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसे दूसरों का धन हर लेना अच्छा लगता है। अतः वह शिष्टोचित मर्यादा को भङ्ग कर, दूसरों का धन चुराता है और दुराचारी बन जाता है। तब राजा लोग ऐसे अमर्यादित पुरुष को दण्ड दे वैसे ही नष्ट कर डालते हैं, जैसे शिकारी बाणप्रहार से मृगों को। इस प्रकार परद्रव्यापहारक चोर को सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगने को नहीं मिलती; प्रत्युत वह बीस या तीस ही वर्ष की उम्र में मर जाता है। अतः राजा का कर्त्तव्य है कि, वह अपनी अधीनस्थ प्रजा के आचरणों पर ध्यान दे और जो निर्धनता के कारण दुर्दशाग्रस्त हों, उन्हें, सोच विचार कर किसी उपाय से दुःख से उबारे। चित्तविभ्रम तथा पुत्र वियोग-जन्य-शोक को छोड़, तीसरा कारण मानसिक क्लेश का नहीं होता। भाँति भाँति के दुःख यथा विषयों के संग से होने वाले तथा विषय-जन्य दुःख मनुष्य को पीड़ित किया करते हैं। बली, निर्बल, ह्रस्व, दीर्घ, समस्त मनुष्यों को बुढ़ापा और मौत सिंह की तरह निगल जाती है। जो पुरुष आसमुद्रान्त धरामण्डल

को जीत लेता है, वह भी जरा और मृत्यु के फेरे से नहीं बचता। अतः जब जब पराधीन प्राणियों पर दुःख या सुख आ पड़ें, तब उन्हें उचित है कि वे उन्हें सहैं, क्योंकि, सुख और दुःख को हटाने की शक्ति किसी में भी नहीं है। हे राजन्! बाल्यावस्था में युवावस्था की और वृद्धावस्था में जवानी या लड़कपन की चाहना करना व्यर्थ है। इन तीनों अवस्थाओं को कोई नहीं हटा सकता। शत्रुओं का संयोग, मित्रों का वियोग, प्रिय, अप्रिय, इष्ट, अनिष्ट, सुख और दुःख ये सब बातें मनुष्यों को भाग्यानुसार प्राप्त होती हैं। प्राणियों का जन्म, मरण, लाभ, हानि ये सब भाग्याधीन हैं। अतः जो विद्वान् होते हैं, वे कभी न तो दुःखी और न सुखी ही होते हैं। जैसे भिन्न भिन्न फलों के रूप, स्वाद तथा गन्ध उनके कच्चे और पक्के होने पर पृथक पृथक हुआ करते हैं, वैसे ही अवस्थानुसार प्राणियों को भिन्न भिन्न प्रकार के सुख दुःख आ घेरते हैं। ये सब दैवाधीन हैं। बिस्तर, शैया, सवारी, स्थान, खान पान आदि सब पदार्थ समस्त प्राणियों को समयानुसार नियमित रूप से मिला करते हैं। अतः समझदार को मोह में पड़ने का कोई कारण नहीं है। सब का रोग हरने वाले विद्वान् वैद्य स्वयं भी रोगी होते हुए देखने में आते हैं, बलवान पुरुष भी निर्बल होते देखे जाते हैं और धनवान भी निर्धन हो जाया करते हैं। यह सब काल का खेल है।

उत्तम कुल में जन्म, वीरत्व, आरोग्यता, सौन्दर्य, सौभाग्य और ऐश्वर्य का उपभोग—ये सब दैवाधीन हैं। निर्धन मनुष्यों के न चाहने पर भी उनके बहु सन्तति हुआ करती है और धनी, पुत्र के लिये लालायित रहा करते हैं। अतः दैव का कर्त्तव्य विचित्र है। रोग, अग्नि, जल, शस्त्र, भूख, प्यास, आपत्ति, विष, ज्वर, मरण, ऊँच, नीच और अधोगति आदि सब प्राणियों के जन्म के समय जो जो उनके लिये रचा जाता है, वे उसको ही जन्म के बाद पाते हैं और उसका अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता। उन्हें छोड़ कर, अन्य वस्तु प्राप्त करने की शक्ति भी किसी में नहीं है।

प्रारब्धानुसार जो जिस वृत्ति को पा लेता है, वह उसीमें बना रहता है उसे वह छोड नहीं सकता। देखा जाता है कि, धनी लोग जवानी ही में मर जाते हैं और निर्धन लोग दुःख भोगते हुए सौ सौ वर्षों तक जीते जागते बने रहते हैं। इससे जान पड़ता है कि कर्म की गति बड़ी विचित्र है। हे राजन्! जिनके पास कुछ भी नहीं होता वे चिरजीवी होते हैं और धनियों के घरों में जन्म लेने वाले लोग पतंगों की तरह शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं। इस संसार में धनियों में भोगों को भोगने की शक्ति नहीं पायी जाती और निर्धन लकड़ियाँ भी बिलकुल पचा डालते हैं। यद्यपि मनुष्यों को काम करने की प्रेरणा काल किया करता है, तथापि मनुष्य अहंभाव के कारण समझा करता है कि, अमुक काम का करने वाला मैं ही हूँ। वह असन्तोषी बन मनमाना पापाचरण करता है और पापों से डरता भी नहीं है। आखेट, द्यूत, वेश्यागमन, मद्यपानादि दुर्व्यसनों की शास्त्रों में निन्दा की गयी है, तो भी पढ़े लिखे जन, इन दुर्व्यसनों में पड़े हुए देखे जाते हैं। इससे प्राणियों को काल के प्रभाव से इष्ट और अनिष्ट समस्त पदार्थों से सम्बन्ध हो जाया करता है। इसका कारण दैव को छोड़ और हो ही क्या सकता है? वायु, आकाश, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, दिन, रात, तारागण, नदी और पर्वतों को काल उत्पन्न करता है और काल ही धारण करता है। सरदी, गरमी, वर्षा भी काल पाने ही से हुआ करते हैं। मनुष्यों को सुख दुःख भी काल के योग से प्राप्त हुआ करते हैं। जब मृत्यु या बुढ़ापा लोगों को आकर घेर लेता है, तब औषधोपचार, यंत्र, मंत्र, जप, होम—कोई भी नहीं बचा सकता; किन्तु महासागर में दैवयोग से जैसे दो लक्कड़ एकत्रित हो जाते हैं, वैसे ही दैवयोग से प्राणी परस्पर मिल कर पुनः विलगा जाते हैं। दैव योग ही से लोग स्त्री-विलास, गान, वाद्य आदि मनोरञ्जक कार्यों में दिन व्यतीत कर डाला करते हैं; किन्तु इन दोनों प्रकार के मनुष्यों की मृत्यु तो एक ही सी होती है। अनादि संसार के प्रवाह में पड़े हुए प्राणियों ने सहस्रों माताओं पिताओं के रजवीर्य से जन्म ले कर जन्म मरण का अनुभव

अगणित वार प्राप्त किया है। इसी प्रकार सैकड़ों पुत्रों के जनक, स्त्रियों के पति आदि होने का अनुभव प्राप्त किया है; किन्तु अन्त काल में हमारा और उनका सम्बन्ध कुछ भी नहीं रह जाता। अन्तकाल के बाद किसी का सम्बन्ध किसी से नहीं रह जाता और न आगे होगा। जैसे मार्ग में पथिकों का आपस में सम्बन्ध हो जाता है, वैसे ही स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र आदि का सम्बन्ध समझना चाहिये। मैं अब कहाँ हूँ? आगे मुझे कहाँ जाना है? मैं कौन हूँ? क्यों यहाँ आया हूँ? क्यों दुःखी होता हूँ? इन विवेकी जनों को अपने मन में नित्य विचार करना चाहिये। चक्र की तरह घूमते हुए इस अनादि काल के सांसारिक प्रवाह में पतित विवेकी पुरुषों को माता, पिता, पुत्र, भाई इन सब के साथ बटोहियों के मरण से शोकातुर हुए राजा से युधिष्ठिर को उपदेश दे और उनका शोक दूर करने के लिये वेदव्यास जी ने पुनः उनसे यह कहा—हे युधिष्ठिर! तुम अपने प्रियजनों के लिये शोकाकुल मत हो। तुम्हें इस बात का भी शोक न होना चाहिये कि, मदमत्त पुरुष नरक में गये होंगे। क्योंकि परलोक को किसी ने मानसिक नेत्रों से प्रत्यक्षतः नहीं देखा। यह तो केवल शास्त्र के वचनों द्वारा ही बोधगम्य है। यदि तुम भी शास्त्र के वचन मानते हो तो जो युद्ध में मारे गये हैं, उनकी सद्गति हुई है—इसका तुम अपने मन में निश्चय कर लो। कल्याणकर और सुखद वेदवाक्यों का उल्लङ्घन मत करो। उनके ऊपर श्रद्धा रखो। तुम्हारे लिये यही अच्छा है। विद्वान् पुरुष को उचित है यह कि मृत पुरुषों का श्राद्ध करे और उनकी सद्गति की कामना से अन्य सत्कर्म करे। इन्द्रादि देवताओं का यजन करना चाहिये। धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों का सेवन करना उचित है। शोक है कि, जिस महासागर में जरा और मृत्यु रूपी बड़े बड़े मगर मच्छ हैं, उस काल रूपी गम्भीर महासागर में यह सारा जगत पूर्णतः निमग्न है। किन्तु उसके स्वरूप को कोई भी नहीं जानने पाता; परन्तु जैसे आयुर्वेदाध्यायी कितने वैद्य दूसरों के रोगों की निवृत्ति के लिये बड़े बड़े आडम्बरों की रचना किये हुए बैठे हैं; किन्तु वे स्वयं जिन

रोगों से पीड़ित हैं, उन्हें निवृत्त करने में वे असमर्थ हैं। वे सदा स्वयं भाँति भाँति के काढ़े पीते हैं, घी आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन करते हैं, तो भी जैसे समुद्र किनारे को नहीं लांघ सकता। वैसे ही वे वैद्य भी मृत्यु को नहीं जीत सकते हैं, या जैसे बड़े बड़े हाथी छोटे छोटे हाथियों का तिरस्कार करते हैं, वैसे रसायनी रसवैद्यों का बुढ़ापा तिरस्कार करता है। वेदाध्यायी, तपस्वी, दानदाता और यज्ञकर्त्ता—कोई भी क्यों न हो, मृत्यु और जरा से नहीं बच सकता। इस संसार में जितने जीव उत्पन्न होते हैं, उनके आयु को दिन, रात, पक्ष, मास और वर्ष के परिमाण से नापता हुआ कालचक्र, उनके ऊपर सदैव घूमा करता है। पुण्यपापाधीन एवं क्षणभङ्गुर पुरुष को अनिवार्य एवं सकल प्राणियों से सेवित जन्म-मरण रूपी मार्ग में काल-वश जाना ही पड़ता है। चाहे तो जीव से देह की अथवा देह से जीव की उत्पत्ति मानी जाय; किन्तु इस संसार रूपी मार्ग में, स्त्री, पुत्र तथा भाई बंदों का पथिकों की तरह समागम होता है। साथ ही यह सम्भव नहीं कि, इनमें से किसी के भी साथ कोई चिरकाल तक रह सके। जब यह जीव निज शरीर के साथ ही चिरकाल तक नहीं रह सकता। फिर अन्य सम्बन्धियों के साथ तो रहने ही क्यों लगा? हे अनघ! तुम्हारे पिता और पितामह कहाँ हैं? अब न तो तुम ही उन्हें देख सकते हो और न वे ही तुम्हें देख सकते हैं। हे राजन्! कोई भी जीव अपने आप स्वर्ग, नरक को नहीं देख सकता; किन्तु आप्त प्रमाणों के आधार पर, हम लोग शास्त्र की दृष्टि से उन्हें देखते हैं। अतएव तुम्हें उचित है कि, तुम भी शास्त्र के आधार पर इस संसार में वर्तो। मनुष्य आयु के प्रथम भाग में अखण्ड ब्रह्मचर्य, का पालन करे, पुनः पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण से छूटने के लिये गृहस्थ बने। तदनन्तर पुत्रादि सन्तान उत्पन्न कर के और ईर्ष्यात्याग, पितृ एवं देवपूजन करे। ब्रह्मचर्य व्रत पूरा कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुआ विद्वान् पुरुष, सन्तानोत्पत्ति कर, यज्ञादि कर्मानुष्ठानादि क्रियाओं से जगत् का हित कर के वानप्रस्थ आश्रम में रहता हुआ, हृदय का अन्धकार दूर करता है। अन्त

में इस संसार का त्याग कर, वह स्वर्गगमन करता है। जो राजा रागद्वेष को त्याग कर, यथाविधि धर्माचरण करता है, न्याय से धनोपार्जन करता है, उसकी कीर्ति चराचरात्मक समस्त लोकों में छा जाती है। युधिष्ठिर! इस प्रकार अश्मन् मुनि से धर्मरहस्य सुन, विदेह जनक की बुद्धि पवित्र हो गयी। उसका शोक भी दूर हो गया और वह अश्मन् मुनि को प्रणाम कर, निज स्थान को चला गया। हे युधिष्ठिर! अश्मन् मुनि के उपदेश से राजा जनक का शोक जैसे दूर हुआ था, वैसे ही तुम भी शोक को दूर कर उठो और खड़े हो जाओ। चन्द्रमा की तरह मन में हर्षित हो और क्षात्र धर्म से जीती हुई पृथिवी का उपभोग करो। उसका तिरस्कार करना तुम्हें उचित नहीं।

उनतीसवाँ अध्याय

मरुत्त-चरित्र

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! व्यास जी के इन वचनों को सुन कर, राजा युधिष्ठिर चुप रहे और कुछ न बोले। यह देख पाण्डुनन्दन अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा—हे शत्रुतापन जनार्दन! धर्मराज युधिष्ठिर सम्बन्धियों का संहार हो जाने के कारण बड़े विकल हो, शोकसागर में डूब रहे हैं। अतः आप इन्हें आश्वासन दें। हे जनार्दन! राजा युधिष्ठिर के शोक को देख कर, हम सब पुनः सन्देह में पड़ गये हैं, अतः हे महाबाहो! आप इनका शोक दूर करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से यह कहा, तब कमल-नयन श्रीकृष्ण, जा कर धर्मराज के निकट बैठ गये। धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण की बात टाल नहीं सकते थे, क्योंकि लड़कपन ही से श्रीकृष्ण के ऊपर उनका अर्जुन से भी अधिक स्नेह था। श्रीकृष्ण पर्वत की

तरह दृढ़ और विचारवान थे। वे चन्दन-चर्चित राजा युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर, प्रसन्न होते हुए बोले। उस समय सूर्य के उदय होने पर खिले हुए कमल की तरह, धर्मराज से वार्तालाप करते हुए सुन्दर-नयन और सुन्दर दन्त-पंक्ति-सम्पन्न श्रीकृष्ण का मुखकमल बड़ा सुहावना जान पड़ता था।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे नरव्याघ्र! आप शरीर को शुष्क करने वाले शोक को त्याग दें। क्योंकि शोक करना व्यर्थ है। शोक करने से रण में मारे गये लोग आपके आ कर मिल नहीं सकते। राजन्! स्वप्न में हम जो कुछ देखते हैं, जागने पर वह सब मिथ्या सा जान पड़ने लगता है। अतः इसी तरह आप रण में मरे हुए क्षत्रियों को अब मिथ्या जानें। रण के शोभा रूप उन क्षत्रियों ने सामने छाती कर युद्ध किया था और वे समरविजयी हो मृत्यु को प्राप्त हुए थे। उनमें से एक भी पीठ दिखा कर, नहीं मरा। समस्त वीरों ने लड़ कर, अपने प्यारे प्राण गँवाये थे। शस्त्रप्रहार से पवित्र हो, वे सब स्वर्गवासी हुए हैं। अतः उनके लिये शोकाकुल होना तो उचित नहीं है। वेदवेदाङ्ग-पारग, क्षात्रधर्मानुरागी उन वीरों को पवित्र वीरगति प्राप्त हुई है। तुम्हें उनके लिये दुःखी न होना चाहिये, संग्राम में बड़े बड़े राजाओं का मारा जाना सुन कर आपका मन दुःखी हुआ है। उस दुःख को दूर करने के उद्देश्य से मैं आपको एक प्राचीन उपाख्यान सुनाता हूँ। आप ध्यान लगा कर उसे सुनें। पुत्र के शोक से अत्यन्त मर्माहत राजा सृञ्जय को उपदेश देते हुए नारद मुनि ने कहा था—हे सृञ्जय! मुझे, तुझे तथा अन्य समस्त प्रजा जनों को सुख दुःख से छुटकारा नहीं है। काल आने पर सब को मरना पड़ेगा। अतः शोक करना व्यर्थ है। तेरा शोक दूर करने के उद्देश्य से मैं तुझे प्राचीन राजाओं का जो इतिहास सुनाता हूँ; उसे तू सुन। नारद ने जो उपाख्यान सृञ्जय से कहा था, वही उपाख्यान श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

हे सृञ्जय! सर्वप्रथम तू सावधान हो कर, मृत राजाओं का वृत्तान्त सुन, जिससे तेरा दुःख दूर हो। तेरे सन्ताप को शमन करने के लिये

मैं तुझे प्राचीन राजाओं के उपाख्यान विस्तारपूर्वक सुनाता हूँ। सुन! इन उपाख्यानों के सुनने से कहने सुनने वाले का आयु बढ़ता है और क्रूरग्रह शान्त हो जाते हैं।

नारद जी बोले—हे राजन्! पूर्वकाल में अश्वपतिनन्दन मरुत्त नामक एक राजा हो गया है। सुनते हैं, वह बड़ा रूपवान् और बड़ा पराक्रमी था। उस राजा ने एक महा यज्ञ किया था। उसमें ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, बृहस्पति आदि भी सम्मिलित हुए थे। राजा मरुत्त ने यज्ञारम्भ करने के पूर्व बृहस्पति को बुला कर उनसे कहा मैं एक ऐसा महायज्ञ करना चाहता हूँ, जिससे इन्द्र पराजित हों। मरुत्त के इस वचन को सुन कर, इन्द्र के पक्षपाती बृहस्पति ने पक्षपातवश, मरुत्त को यज्ञ कराना अस्वीकृत किया। तब राजा मरुत्त ने बृहस्पति के छोटे भाई संवर्त्त से यज्ञ करवाया। उस यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं को और बृहस्पति को भी आना पड़ा था। हे राजन्! जिस समय राजा मरुत्त इस धराधाम पर राज्य करता था, उस समय यह पृथिवी विविध धान्यों और औषधियों से भरी पूरी थी। राजा मरुत्त के यज्ञ में विश्वेदेवा सभापति हुए थे। मरुत्त और साध्य नामक देवगण ने इस यज्ञ में समागत पाहुनों का आगत स्वागत और भोजनादि कराने का कार्य भार अपने ऊपर लिया था। मरुद्गण स्वयं सोम-रस-पान कर, हर्षित होते थे। उस राजा ने उस महायज्ञ में इतनी दक्षिणाएँ बाँटी थीं कि, उन दक्षिणाओं के धन को मनुष्य तो क्या, देवता और गन्धर्व भी नहीं उठा सके। हे सृञ्जय! धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य में राजा मरुत्त तुझसे भी अधिक था और तेरे पुत्र से भी बढ़ कर पुण्यात्मा था। तिस पर भी वह कालवश हो मरण को प्राप्त हुआ। अतः तुझे अपने पुत्र के लिये शोक न करना चाहिये।

हे सृञ्जय! सुनते हैं, अतिथियों का सत्कार करने वाला राजा, सुहोत्र भी नहीं रहा। इस राजा के राज्यकाल में देवराज इन्द्र ने एक वर्ष पर्यन्त सुवर्ण वृष्टि की थी।

[नोट—सुवर्ण वृष्टि से अभिप्राय ऐसी सुन्दर जलवृष्टि से है, जिससे प्रभूत धान्य उत्पन्न हुआ था ।]

इस राजा के राजत्व काल में पृथिवी का नाम वसुमती सार्थक हुआ था । इस राजा के राज्य में नदियों में सोना बहता था । लोकपूज्य इन्द्र ने इस राजा के राज्य में बहने वाली नदियों में रहने वाले कच्छों, मच्छों, मगरों, सूँसों, केकड़ों को सुवर्ण का बना दिया था । यह देख अतिथि प्रेमी सुहोत्र ने कहा था । मेरे राजत्व काल में जलवृष्टि के साथ साथ आकाश से सहस्रों जलजन्तु भी गिरे हैं । राजा सुहोत्र ने कुरुजाङ्गल देश में जलवृष्टि के साथ गिरे हुए सुवर्ण को एकत्र करवाया और एक महायज्ञ कर, वह एकत्रित किये हुए सुवर्ण को ब्राह्मणों को दे डाला । धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में तेरी अपेक्षा कहीं बढ़ चढ़ कर, तथा तेरे पुत्र से कहीं अधिक पुण्यात्मा अतिथिप्रेमी राजा सुहोत्र भी काल के गाल में समा गया । अतः तू अपने पुत्र के लिये शोक मत कर । तेरे पुत्र ने तो एक भी यज्ञ नहीं किया था । अतः उसने ब्राह्मणों को दक्षिणा में धनादि पदार्थ भी नहीं दिये थे ।

हे राजन् ! सुना है, प्राचीन काल में अङ्ग देश का बृहद्रथ नामक जो राजा था, वह भी अब नहीं रहा । वह भी मर गया । इस अङ्गदेशाधिपति ने विष्णुपद नामक पर्वत पर, एक बड़ा भारी यज्ञ कर के ब्राह्मणों को दस लख श्वेत वर्ण के घोड़े, दस लच्च सुवर्ण के आभूषणों से भूषित कन्याएँ, दस लच गज, सोने की हमेले पहने हुए एक करोड़ बैल और सेवकों सहित एक हज़ार गौएँ, ब्राह्मणों को दक्षिणा में बाँटी थीं । हे राजेन्द्र ! प्रथम उसने सैकड़ों यज्ञ किये थे । उन यज्ञों में सोमपान कर इन्द्र और दक्षिणाएँ पा कर ब्राह्मण गण उन्मत्त हो गये थे । दक्षिणाओं के इतने पदार्थ थे कि, देवता, मनुष्य, गन्धर्व उन्हें उठा नहीं सकते थे । अङ्गराज ने अपने इन सात सोम यागों में जितनी दक्षिणाएँ दी थीं, उतनी दक्षिणाएँ देने वाला अन्य पुरुष न तो कोई हुआ और न आगे होगा ही । सो अङ्गराज, धर्मानुष्ठानदि कार्यों में तुझसे कहीं अधिक चढ़ बढ़ कर था । तेरे पुत्र

से कहीं अधिक पुण्यवान् था। तिस पर भी वे दोनों मर गये। अतः तू अपने पुत्र के लिये शोक मत कर।

हे राजन्! सुनते हैं, उशीनर का पुत्र शिवि भी मर गया। उस राजा के विशाल रथ की घरघराहट से पृथिवी प्रतिध्वानित हो उठी थी। उसने चर्माच्छादित उस रथ पर सवार हो समस्त पृथिवी अपने वश में कर ली थी। उसने यज्ञ में अपना समस्त गोधन, अश्वधन तथा वनवासी अन्य उपयोगी पशु धन दान कर दिया था। इन्द्र के समान पराक्रमी राजा शिवि के समान पराक्रमी कोई राजा न तो हुआ और न आगे होवे ही गा। यह मत प्रजापति ब्रह्मा का था। राजा शिवि ज्ञानादि में तुझसे कहीं अधिक चढ़ बढ़ कर था और तेरे पुत्र से बहुत अधिक पुण्यात्मा था। तिस पर भी वह मर गया। अतः तू भाग से रहित, अपने पुत्र के लिये शोक मत कर।

हे सञ्जय! सुनते हैं कि, राजा दुष्यन्त का पुत्र भरत भी अब इस संसार में नहीं है। वह शकुन्तला की कोख से जन्मा था। उसके पास बहुत सा धन था। महात्मा राजा भरत ने देवताओं के प्रसन्न करने के लिये यमुनातट पर तीन सौ, सरस्वती नदी के तट पर बीस और गङ्गा के तट पर चौदह घोड़े बाँध प्रथम एक सहस्र अश्वमेध और शत राजसूय यज्ञ किये थे। जैसे मनुष्य दोनों हाथों से उड़ कर आकाश में गमन नहीं कर सकता, वैसे ही अन्य समस्त राजा लोग भरत की तरह बड़े बढ़े कार्य नहीं कर सकते थे। इस राजा भरत के यज्ञ में एक हज़ार ब्राह्मणों को दस करोड़ घोड़े दिये गये थे और अपने पालनकर्त्ता कण्व ऋषि को उसने असंख्य घोड़े तथा बहुत सा धन दिया था। हे सञ्जय! वह राजा भरत ज्ञानादि में तुझसे श्रेष्ठ था और तेरे पुत्र से चढ़ बढ़ कर पुण्यात्मा था। सो वह राजा भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। अतः तू अपने पुत्र के लिये शोक मत कर। हे सञ्जय! मैंने सुना है कि, दशरथनन्दन श्री रामजी परलोक को चले गये। यह श्रीरामचन्द्र अपनी प्रजा का पालन निज

पुत्रवत् करते थे। उनके शासनकाल में कोई स्त्री विधवा नहीं होती थी। न उनके राज्य में कोई अनाथ ही था। वे स्वयं पिता की तरह अपने राज्य का पालन करते थे। उनके राज्यत्व काल में यथासमय जलवृष्टि हुआ करती थी। पृथिवी पर अन्न पकता था। सदा सुकाल ही रहता था। प्राणी जल में डूब कर नहीं मरते थे; और न कहीं आग लगती थी। उनके राज्य में तरह तरह की बीमारियाँ भी नहीं फैलती थीं। लोगों की कामनाएँ पूर्ण होती थीं। स्त्रियों और पुरुषों की उम्र हज़ारों वर्षों की हुआ करती थी। कोई भी किसी रोग से पीड़ित नहीं होता था। उनके राज्य में स्त्रियों में आपस में कलह नहीं होता था। उनकी प्रजा अपने धर्म में तत्पर रहती थी। सब लोग सन्तुष्ट थे। सब लोग निर्भय, स्वतंत्र और सत्यवादी थे। आँधी तूफ़ान नहीं आया करते थे। अतः वृक्ष सदा फला फूला करते थे। उनके राज्य में गौएँ नित्य एक एक घड़ा भर कर दूध दिया करती थीं। श्री रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा से चौदह वर्षों तक वनवास किया था। फिर बड़े नामी दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। उन यज्ञों में आने जाने की किसी को रोक टोक न थी। श्रीरामचन्द्र युवा, श्यामवर्ण, लाल नेत्रों वाले, यूथपति गज की तरह बलवान् और घुटनों तक लंबी भुजाओं वाले थे। उनका मुख सुन्दर था। उनके कंधे सिंह के कन्धों की तरह उभड़े हुए और भुजाएँ लंबी थीं। श्रीराम ने ग्यारह हज़ार वर्षों तक अयोध्या पुरी के राजसिंहासन पर आसीन हो राज्य किया था। अतः श्रीराम ज्ञानादि में तुझसे चढ़ बढ़ कर थे और तेरे पुत्र की अपेक्षा अधिक पुण्यवान थे। तिस पर भी वे राम परलोक सिधार गये। अतः हे सञ्जय! तू अपने पुत्र के लिये शोक मत कर।

हे राजन्! मैंने सुना है कि, राजा भगीरथ भी मर गया। इसके महायज्ञ में देवराज इन्द्र सोमपान कर उन्मत्त हो गये थे। अतः उन्होंने निज भुजबल से सहस्रों असुरों को पराजित किया था। राजा भगीरथ ने जो महायज्ञ किया था, उसकी दक्षिणा में उसने दस लक्ष कन्याएँ ऐसी दान की थीं जो सोने के आभूषण पहिने हुए थीं। इनमें

से हर एक कन्या को चार घोड़ों से युक्त एक एक रथ प्रत्येक रथ के साथ सोने की हमेलें पहिने हुए सौ सौ हाथी थे। प्रत्येक हाथी के पीछे एक एक हज़ार घोड़े और प्रत्येक घोड़े के पीछे एक एक हज़ार गौएँ और प्रत्येक गौ के पीछे दो दो हज़ार भेड़ें और बकरे थे। निकटवर्त्ती राजा भगीरथ की गोद में गङ्गा देवी आ बैठी थीं। अतः वे उर्वशी नाम से विख्यात हुई थीं। त्रिपथगा गङ्गा बहुदक्षिणा युक्त यज्ञ करने वाले राजा भगीरथ की पुत्री के रूप में उत्पन्न होने के कारण गङ्गा का दूसरा नाम भागीरथी पड़ा।

हे राजा सृञ्जय—ज्ञानादि चारों बातों में तुझसे कहीं उत्तम राजा भगीरथ भी कालवश मृत्यु को प्राप्त हुए। वे तो तेरे पुत्र से कहीं अधिक पुण्यवान थे। अतः तू अपने पुत्र के लिये शोक मत कर।

हे सृञ्जय! हमने सुना है कि, राजा दिलीप भी अब नहीं रहे। यह राजा ऐसा पुण्यवान हो गया है कि, आज तक ब्राह्मण लोग उसका गुणगान किया करते हैं। इस राजा ने यज्ञ की दक्षिणा में धनधान्य से भरी पूरी पृथिवी ब्राह्मणों को दे डाली थी। इस राजा ने अपने पुरोहित को प्रत्येक यज्ञ में सुवर्णभूषित एक सहस्र हाथी दिये थे और यज्ञ में सुवर्ण स्तम्भ खड़ा किया गया था। इसने जब यज्ञ किया था, तब उस यज्ञ में इन्द्रादि बड़े बड़े देवता प्रत्यक्ष रूप से आये थे। इसके समस्त यज्ञीय पात्र सुवर्ण के थे। इसीके यज्ञ में छः हज़ार गन्धर्व और देवताओं ने आ कर सप्तस्वरों के अनुसार नृत्य किया था। जब वे सब नाचते थे तब गन्धर्व, विश्वावसु उन सब के मध्य में खड़े हो कर वीणा बजाता था। उसने ऐसे विचित्र ढंग से वीणा बजायी कि हर एक दर्शक ने यही जाना कि, मानों वह गन्धर्व उसीके सामने खड़ा खड़ा वीणा बजा रहा है। हज़ारों राजा सुवर्ण से सजे हुए मदोन्मत्त हाथियों की भेंट ले कर राजा दिलीप के पास आये थे। उस शतधन्वा, सत्यवादी, महात्मा राजा दिलीप को जिन लोगों ने देखा, वे भी मरणोपरान्त स्वर्गवासी हुए। उसके निज राजप्रासाद में सदैव तीन शब्द हुआ करते थे—अर्थात् वेदध्वनि का, धनुष

टंकार का और याचकों का। हे सञ्जय! तुझसे कहीं अधिक ऐश्वर्यवान और तेरे पुत्र से भी अधिक पुण्य वाला राजा दिलीप भी कालकवलित हो गया। अतः तू अपने पुत्र के लिये शोक क्यों करता है?

नारद जी ने कहा—हे सञ्जय! हमने सुना है कि, राजा युवनाश्व का पुत्र मान्धाता भी मर गया। इस राजा को मरुद्गण ने उसके पिता की कोख से निकाला था। उसकी जन्म-सम्बन्धिनी कथा इस प्रकार है—उसके पिता के पुत्र नहीं होता था। अतः पुत्रोत्पत्ति के लिये एक ऋषि ने दही और घी मिला कर चरु बनाया। उस चरु को राजा युवनाश्व ने अनजान में खा लिया। अतः वह गर्भवान् हो गया। बहुत दिनों बाद गर्भस्थ बालक राजा का पेट चीर बाहिर निकल आया। उस कुमार का जन्म अभिमंत्रित चरु के प्रभाव से हुआ था—अतः वह बड़ा कान्तिमान और त्रैलोक्य-विजयी राजा हुआ। राजा युवनाश्व के पेट से पुत्रोत्पत्ति का संवाद पा देवगण उसके निकट गये और राजा की गोद में लेटे हुए देवतुल्य प्रभासम्पन्न पुत्र को देख कर, वे आपस में कहने लगे कि, इस बालक को जीवित रखने के लिये किसके दूध का प्रबन्ध किया गया है? इस पर इन्द्र ने कहा था—मान्धाता—मेरा दूध पीवेगा और यह कह दूध की धार बहाती अपनी एक उंगली उस बालक के मुख में डाल दी। इन्द्र ने उसी समय उसका नाम मान्धाता रख दिया। इन्द्र की उंगली का दूध पी कर मान्धाता एक दिन में सौ दिवस जैसा और बारह दिवस में बारह वर्षों जैसा बड़ा जान पड़ने लगा। बड़े प्रतापी, धर्मात्मा और युद्ध करने में इन्द्र की समान महापराक्रमी राजा मान्धाता ने एक ही दिन में समस्त पृथिवी अपने अधीन कर ली थी। मान्धाता ने युद्ध में अङ्गारराज, मरुत्त, असित, गय, अङ्ग तथा राजा बृहद्रथ को जीत लिया था। युवनाश्व का पुत्र मान्धाता जब अङ्गारराज के साथ लड़ रहा था, तब देवताओं ने यह समझा कि, इस राजा मान्धाता के धनुष के टंकार शब्द से कहीं स्वर्ग तो टूट कर न गिर पड़ेगा। जिस स्थान पर सूर्य उदय होते हैं और जिस स्थान पर सूर्य अस्त

होते हैं, उन दोनों स्थानों के बीच के देश पर मान्धाता का आधिपत्य था। हे राजन्! राजा मान्धाता ने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये थे। उसने ब्राह्मणों को लाल मछलियाँ दान में दी थीं। ये रोहित जाति की मछलियाँ थीं और ये मछलियाँ सुवर्ण की बनी हुई थीं और उनकी ऊँचाई दस योजन थी। ब्राह्मणों ने उनको आपस में बाँट लिया था। हे सृञ्जय! ज्ञानादि चार पदार्थों में तुमसे श्रेष्ठ और तेरे पुत्र से कहीं अधिक पुण्यात्मा राजा मान्धाता ही जब मृत्यु को प्राप्त हुआ; तब तू अपने पुत्र के लिये शोक क्यों करता है?

नारद जी ने कहा—हे सृञ्जय! नहुषनन्दन राजा ययाति भी काल-कवलित हो गया। सुना है, उसने भी इस समुद्रों सहित पृथिवी को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। एक बलिष्ट पुरुष अपना सारा बल लगा एक शमी दण्ड फेंके और वह जितनी दूर पर जा कर गिरे, उतने स्थान को घेर राजा ययाति ने यज्ञवेदी बनवा कर. समुद्रतट तक भूमि पर प्रधान यज्ञ कर के इस भूमि की शोभा बढ़ायी थी। इसने एक हज़ार (विविध) यज्ञ और सौ वाजपेय यज्ञ किये थे। यह दक्षिणा देते समय उसने सोने के तीन पर्वत बनवाये थे और तीनों पर्वतों को ब्राह्मणों को दे उसने उन्हें सन्तुष्ट किया था। राजा ययाति ने असुरों के साथ भयानक युद्ध कर के, उनको हराया था। तदनन्तर सारी पृथिवी के विभाग कर, उन भागों को अपने पुत्रों में बाँट दिया था। पीछे से यदु, द्रुह्यु आदि राजकुमारों को छोड़ और पुरु नामक सब से छोटे राजकुमार को राजसिंहासन पर बिठा राजा ययाति अपनी रानी को साथ ले वन को चले गये। हे राजन्! तुझसे अत्याधिक ऐश्वर्यशाली और तेरे पुत्र से अधिक पुण्यवान राजा ययाति को भी जब काल ने न छोड़ा, तब तू अपने पुत्र के लिये क्यों शोकातुर होता है।

नारद जी बोले—हे सृञ्जय! सुनते हैं—नाभागनन्दन राजा अम्बरीष भी मर गया। राजा अम्बरीष बड़ा प्रजापालक था और प्रजा पर उसका पूर्ण स्नेह था। उसने जब यज्ञ किया, तब यज्ञ में वरण किये गये ब्राह्मणों

की सेवा शुश्रूषा के लिये राजाओं को नियुक्त किया था। राजा अम्बरीष ने जब यज्ञ कर ब्राह्मणों को दक्षिणा बाँटी, तब उन ब्राह्मणों ने तथा अन्य लोगों ने राजा अम्बरीष की प्रशंसा करते हुए कहा था—न तो आज तक कभी किसी ने ऐसा यज्ञ किया और न आगे ही कोई ऐसा यज्ञ कर सकेगा। राजा अम्बरीष के यज्ञ में ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा में सैकड़ों राजा लगे रहते थे। उन सब राजाओं को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिला था और वे उत्तरायण सूर्य होने पर हिरण्यगर्भ लोक में गये थे। हे राजा सृञ्जय! जब राजा अम्बरीष भी, जो तुझसे ज्ञानादि में श्रेष्ठतर था और तेरे पुत्र से भी अधिक पुण्यात्मा था, नहीं बचा और मर गया; तब तू अपने पुत्र के लिये दुःखी क्यों होता है।

हे सृञ्जय! सुना है कि, चित्ररथनन्दन राजा शशविन्दु भी अब इस संसार में नहीं है। उस महात्मा राजा की एक लाख रानियाँ थीं। उनकी प्रत्येक रानी के दस दस पुत्र थे। वे सब सुवर्ण-कवच-धारी और हाथ में उत्तम आयुध धारण करने वाले थे। उसके प्रत्येक राजकुमार के सौ सौ रानियाँ थीं और प्रत्येक रानी के साथ दहेज़ में सौ सौ हाथी और प्रत्येक हाथी के पीछे सौ सौ रथ और प्रत्येक रथ के साथ सौ सौ घोड़े आयी थीं। वे घोड़े नामी दिलावरों और सोने की हमेलें पहिने हुए थे। प्रत्येक घोड़े के साथ सौ गौएँ और प्रत्येक गौ के साथ सौ सौ भेड़ें और बकरे थे। राजा शशविन्दु ने अश्वमेध महायज्ञ कर के अपनी विपुल समस्त सम्पत्ति ब्राह्मणों को दे डाली थी। हे सृञ्जय! राजा शशविन्दु जो तुझसे हर तरह से श्रेष्ठ और तेरे पुत्र से कहीं अधिक धर्मात्मा था, जब इस धराधाम पर नहीं रहा और मर गया तब तुझे अपने पुत्र के लिये शोक न करना चाहिये।

हे सृञ्जय! सुनते हैं—अमूर्तरय का पुत्र राजा गय भी अब जीवित नहीं है। इस राजा ने रात दिन सौ वर्षों तक यज्ञ करने के अनन्तर में यज्ञशेष अन्न खाया था। यज्ञक्रिया से प्रसन्न हो अग्नि देव ने जब राजा गय से

वरदान माँगने को कहा था, तब राजा गय ने वर में यह माँगा था कि, मुझे कभी न निघटने वाला धन दीजिये और मेरी श्रद्धा धर्म में पूर्ण रीति से बढ़ा दीजिये। हे अग्निदेव! आपकी कृपा मुझ पर ऐसी हो कि, मेरा मन सत्य से कभी न डिगे। राजा गय ने अग्नि देव से वरयाचना कर अपने समस्त मनोरथ पूरे कर लिये थे। राजा गय पूर्णिमा और अमावास्या और वर्षाऋतु में कई बार यज्ञ कर चुका था। इसका यह क्रम एक हज़ार वर्षों तक जारी रहा था। वह राजा नित्य बड़े तड़के उठ बैठता था और एक लक्ष गौ और सौ खच्चर ब्राह्मणों को दान में देता था, उस महात्मा राजा गय ने सोम याग कर के देवगण सन्तुष्ट किये थे और ब्राह्मणों को दक्षिणा दान से प्रसन्न किया था। उसने स्वधाकार से पितरों को और कामनाएँ पूर्ण कर स्त्रियों को प्रसन्न किया था। राजा गय ने अश्वमेध कर चुकने पर पचास हाथ चौड़ी और सौ हाथ लंबी एक सोने की वेदी बनवायी थी और वह चबूतरा ब्राह्मणों को दान में दे डाला था। गङ्गा के वालू जितने कणों के समान राजा गय ने गोदान दिये थे। हे सृञ्जय! राजा गय तुझसे कहीं अधिक ऐश्वर्यवान और तेरे पुत्र की अपेक्षा कहीं अधिक पुण्यात्मा था। वह राजा भी काल-कवलित हो गया। अतः तू अपने पुत्र के लिये शोक करना त्याग दे।

नारद जी बोले हे राजन्! सुनते हैं संस्कृतिनन्दन रन्तिदेव भी अब इस धराधाम पर नहीं हैं। इस महातपस्वी राजा ने इन्द्र का यथा-विधि आराधन कर, उनसे यह वर माँगा था कि, मेरे राज्य में खूब अन्न उपजे, अतिथि मेरे यहाँ याचना करने नित्य आवें। धर्म पर मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जाय और मुझे किसी के आगे किसी भी वस्तु के लिये हाथ फैलाना न पड़े। इस राजा के निकट ग्राम्य पशु और वनपशु जाते थे और कहते थे कि, तुम हमारी बलि दो—तुम हमारी बलि दो। क्योंकि राजा रन्तिदेव के द्वारा किये यज्ञों में जो पशु मारे जाते थे, उन सब के चमड़ों का ढेर लगाया जाता था। उसी ढेर से चर्मण्वती नदी की उत्पत्ति हुई है।

उसने एक महासभा की थी जिसमें ब्राह्मणों को सोने की मोहरें बाँटी थीं। वे ब्राह्मण आपस में यह कहते थे कि, लो मैं तुम्हें सौ निष्क देता हूँ, लो मैं तुम्हें सौ निष्क देता हूँ। उनके इस कोलाहल से वहाँ का वातावरण प्रतिध्वनित हो उठा था। उसके यज्ञ में समस्त यज्ञीय पात्र, जैसे घड़े, कठौते, थालियें, चौड़े मुँह वाले काठ के बड़े पात्रों की जगह सब पात्र तथा गृहोपकरण सामान सुवर्ण के थे। रन्तिदेव के घर में एक रात भी रहने वाले अतिथि ब्राह्मण को बीस सहस्र एक सौ गौएं मिलती थीं। इस राजा के पाचक (बावर्ची) कानों में सुवर्ण के कुण्डल पहिनते थे और खड़े खड़े चिल्लाते थे कि जिसे खाना हो वह आकर इच्छानुसार पकवान खा जाय, किन्तु आज पूर्ववत् माँसाहारी नहीं मिल सकेगा। हे सृञ्जय! राजा रन्तिदेव बड़ा धनवान और तेरे पुत्र से कहीं अधिक धर्मात्मा था। वह भी जब मर गया, तब तुझे अपने पुत्र के लिये दुःखी न होना चाहिये।

नारद मुनि ने कहा—हे सृञ्जय! सुनते हैं इक्ष्वाकु वंशी, पुरुषसिंह, महापराक्रमी महात्मा राजा सगर भी काल के गाल में समा गया। राजा सगर साठ हज़ार पुत्रों का पिता था। जैसे शरद् कालीन विमल आकाश में चन्द्रमा के पीछे तारागण चलते हैं; वैसे ही उसके पुत्र उसके पीछे चला करते थे। राजा सगर अपने बाहुबल और प्रताप से सम्राट् बना था। उसने एक हज़ार अश्वमेध यज्ञ कर के देवगण तृप्त किये थे। इस राजा ने सुवर्ण-स्तम्भ-भूषित राजमहल ब्राह्मणों को दक्षिणा में दिये थे। उसने कमलदल-नयनी प्रमदाएं, उनके शयन के लिये सेजें और अन्य अनेक सामग्रियाँ दान में दी थीं। इसके अतिरिक्त वह विप्रों के अन्य समस्त मनोरथ पूर्ण किया करता था। कुपित हो राजा सगर ने समुद्र तट पर्यन्त की भूमि खुदवा डाली थी। इसीसे इस राजा के नाम पर समुद्र का नाम सागर पड़ा। हे सृञ्जय! सगर जैसा ज्ञानी राजा भी जो हर बात में तुझसे और तेरे पुत्र से बढ़ बढ़ कर था जब मर गया, तब तू अपने पुत्र के लिये शोक मत कर।

नारद जी बोले—हे सृञ्जय! सुना है कि, वेनपुत्र राजा पृथु को भी मरना पड़ा। ऋषियों ने राजा पृथु का राज्याभिषेक दण्डक वन में किया था। उसका नाम रखते समय ऋषियों ने कहा था यह राजा धर्म की मर्यादा बाँधेगा और तदनुसार प्रजा जनों को चलावेगा। अतः इसका नाम हम पृथु रखते हैं। प्रजा की प्रहार (क्षत्) से रक्षा करेगा। अतः वह संसार में क्षत्रिय कहलावेगा। वेननन्दन पृथु को देख कर सब लोगों ने एक स्वर से कहा था। हम इस राजा से सन्तुष्ट हैं। प्रजारञ्जन करने से वह जगत में राजा कहलाया। जिस समय राजा पृथु का राज्य था, उस समय पृथिवी विना जोते ही अन्न उपजाती थी। समस्त औषधियाँ रसवती और वृक्ष फलवान होते थे। गौएं भी घड़े भर भर कर दूध दिया करती थीं। उसके राज्य में न तो कोई आदमी बीमार पड़ता था और न किसी को किसी का भय रहता था। सब की अभिलाषाएं पूर्ण होती थीं। मनुष्य घरों और खेतों में जहाँ चाहते वहाँ रहते थे। प्रजाजन सर्वथा निर्भय रहते थे। जब राजा पृथु समुद्र के पार जाना चाहता था, तब समुद्र का जल थिरा जाता था, नदियों को पार करते समय नदियों का प्रवाह मन्द पड़ जाता था। उसकी ध्वजा को तोड़ने वाली प्रचण्ड हवा भी कभी नहीं चलती थी। उसने बड़े बड़े अश्वमेध यज्ञ कर के दक्षिणा में ब्राह्मणों को बारह सौ हाथ ऊँचे सुवर्ण के इक्कीस ढेर दिये थे। हे सृञ्जय! राजा पृथु, तुझसे कहीं अधिक ऐश्वर्य-शाली और तेरे पुत्र से कहीं अधिक धर्मात्मा था। वह राजा पृथु अब इस संसार में नहीं रहा। अतः तू अपने पुत्र के लिये शोक मत कर।

नारद ने कहा—हे सृञ्जय! तू चुपचाप क्यों बैठा है? क्या तू मेरी बातें नहीं सुनता? मेरा कथन निष्फल नहीं है। मृत्युशैया पर शयान पुरुष को जैसे दवा दी जाती है, वैसे ही मैंने तुझसे यह वचन कहे हैं।

नारद के वचन सुन सृञ्जय ने कहा—हे नारद! रंग बिरंगे महकदार पुष्पों की माला की तरह राजर्षियों की पवित्र चरितावली को सुन कर, मेरा पुत्र-मरण-जन्य शोक दूर हो गया। हे नारद! आपका कथन व्यर्थ नहीं

गया। हे महर्षे! मेरा शोक तो आपके दर्शन करने ही से दूर हो गया है। हे महाराज! मैंने आपका कथन भली भाँति सुन लिया। मेरा मन अब वैसा ही सन्तुष्ट है जैसा अमृतपान कर के सन्तुष्ट होता है; किन्तु हे नारद! पुत्र-शोक मुझे सन्तप्त कर भस्म किये डालता है। यदि मुझ पर आपका अनुग्रह हो तो मुझे मेरे पुत्र से आप मिला दें।

नारद जी बोले—ऋषि पर्वत ने तुझे काञ्चनष्ठीवी (सुवर्ण थूकने वाला) पुत्र दिया था। वह तो अब रहा नहीं और मारा गया। वह तो तुझे अब मिल नहीं सकता; किन्तु मैं तुझे हिरण्य नाम का पुत्र देता हूँ। वह एक हज़ार वर्षों तक जीवित रहेगा। यह कह नारद जी ने राजा सृञ्जय को चिरजीवी पुत्र दिया।

तीसवाँ अध्याय

नारद और पर्वत का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने पूछा—हे कृष्ण! सृञ्जय के काञ्चनष्ठीवी पुत्र कैसे हुआ था। पर्वत मुनि ने सृञ्जय को ऐसा पुत्र क्यों दिया था? फिर वह पुत्र कैसे मर गया? जिस समय लोगों की उम्र एक हज़ार वर्षों की होती थी, उस समय काञ्चनष्ठीवी पूर्ण आयु भोगे बिना ही क्यों मर गया? उसका नाम काञ्चनष्ठीवी "यथा नाम तथा गुण" वाली कहावत को चरितार्थ करने वाला था अथवा वह नाम मात्र का काञ्चनष्ठीवी था? मुझे आप यह सब सुनावें।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे राजन्! मैं अब तुम्हें यह वृत्तान्त ज्यों का त्यों सुनाता हूँ। सुनो। इस धराधाम पर नारद और पर्वत नाम के दो प्रसिद्ध ऋषि हैं। उनका आपस में मामा भाँजे का नाता है। उन दोनों में परस्पर बड़ी प्रीति थी। वे दोनों एक बार लोकहितार्थ स्वर्ग से मर्त्यलोक

में आये। वे देवताओं की पसंद का और घृत संयुक्त हविष्यान्न खाकर मनुष्य लोक में विचरा करते थे। वे दोनों तपस्वी पृथिवी पर विचरते और मनुष्योपयोगी भोगों का उपभोग किया करते थे। उन दोनों में बड़ी प्रीति तो थी। अतः उन दोनों ने आपस में यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि, हमारे दोनों के मनों में खोटा या खरा जैसा भी कुछ सङ्कल्प विकल्प उठे, वह हम आपस में एक दूसरे से कह दिया करेंगे। यदि हम दोनों में से एक भी इस प्रतिज्ञा के विरुद्ध काम करेगा, तो वह दूसरे के शाप का पात्र बनेगा। इस प्रकार की परस्पर प्रतिज्ञा कर नारद और पर्वत घूमते फिरते श्वितिनन्दन राजा सृञ्जय के निकट गये और कहने लगे—तेरी भलाई के लिये हम कुछ दिनों तेरे यहाँ रहना चाहते हैं। अतः हे राजन्! तू रहने के लिये हमें हर्षित हो स्थान दे। यह सुन राजा ने उन दोनों ऋषियों की अच्छी तरह खातिरदारी और सेवा की। वे दोनों तपस्वी ऋषि बहुत दिनों तक सृञ्जय के राज्य में रहे।

एक दिन हर्षित हो राजा सृञ्जय ने उभय ऋषियों के निकट जा कर, उनसे यह कहा-सुवर्णवर्णिनी मेरे एक ही कन्या है। यह सुन्दरी है, इसके समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग सुन्दर हैं और देखने योग्य हैं। यह बड़ी सुशीला है, बड़ी सदाचारिणी है और कमलकेसर की तरह रूपवती है। अभी तक इस कन्या का विवाह नहीं हुआ है। यह आपके निकट रह आपकी सेवा करना चाहती है।

राजा सृञ्जय के इन वचनों को सुन कर उभय ऋषियों ने कहा—आपकी जैसी इच्छा हो वैसा आप कीजिये। तब राजा सृञ्जय ने राजकुमारी से कहा—हे बेटी! तू इन दोनों ऋषियों को देवत् समझ इनकी वैसी ही सेवा शुश्रूषा कर जैसे एक बेटी को अपने पिता की सेवा करना उचित है। धर्मचारिणी राजकुमारी ने पिता के इस वचन को सुन और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर राजा से कहा—बहुत अच्छा, तदनन्तर राजकुमारी उसी दिन से उन दोनों ऋषियों की प्रतिदिन सेवा करने लगी। उसकी सेवा

और उसके रूपलावण्य से नारद जी के शरीर में चिरसुप्त कामदेव सहसा जाग उठा । कामदेव उनके शरीर में उत्तरोत्तर वैसे ही बढ़ने लगा जैसे शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ा करता है ; किन्तु लज्जावश अपने मन का यह भाव नारद ने अपने भाँजे पर्वत के सामने प्रकट न किया । तिस पर भी नारद जी का कामातुर होना पर्वत को निज तपः प्रभाव से तथा नारद जी की बाह्य चेष्टाओं से विदित हो गया । तब तो वे अपने मामा, नारद पर बहुत कुपित हुए और उन्हें शाप देते हुए बोले—तुमने मन को स्वाधीन कर मुझसे प्रतिज्ञा की थी कि, हम दोनों के मनों में भले बुरे जो भाव उत्पन्न होंगे—वे सब हम एक दूसरे से कह दिया करेंगे; किन्तु तुमने सो अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर डाली, अतः अब मैं तुम्हें शाप दूँगा । तुम राजकुमारी पर आसक्त हो गये और मुझे यह बात नहीं बतलायी, अतः मैं तुम्हें शाप दूँगा । तुम ब्रह्मचारी हो, गुरु हो, तपस्वी हो, ब्राह्मण हो, यह सब होने पर भी तुमने प्रतिज्ञा भङ्ग की है । अतः अत्यन्त कुपित हो मैं तुम्हें शाप देता हूँ । सुनो । हे नारद ! इसमें तो सन्देह नहीं कि, वह राज-कुमारी तुम्हारी भार्या बन जायगी; किन्तु इसके साथ विवाह करने पर तुम्हारा रूप वानर जैसा हो जायगा और वह तुम्हारा रूप सब लोगों को दिखलायी पड़ेगा ।

पर्वत के इस शाप को सुन नारद जी बड़े झल्लाये और क्रोध में भर उन्होंने भी अपने भाँजे पर्वत को शाप दिया । यद्यपि तू तपस्वी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय है और धर्मपरायण है, तथापि तुझे स्वर्गप्राप्ति न होगी ।

इस प्रकार आपस में एक दूसरे को शाप दे और क्रोध में भरे दो गजों की तरह वे दोनों ऋषि वहाँ से चल दिये । तदनन्तर पर्वत पृथिवी पर विचरने लगे ।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भरतवंशी राजन् ! तेजस्वी होने के कारण लोक-पूजित नारद का विवाह उस राजकुमारी के साथ हो गया ; किन्तु विवाह

के बाद नारद जी की मुखाकृति, वानर की मुखाकृति जैसी हो गयी। विवाह काल में ब्राह्मणों ने मंत्रोच्चारण किया और राजा ने नारद को कन्यादान दिया। तदनन्तर राजनन्दिनी ने देखा कि नारद की मुखाकृति तो वानर जैसी है। यद्यपि नारद जी का मुख वानर जैसा हो गया था, तथापि उस राजपुत्री का प्रेम नारद जी पर कम नहीं हुआ। वह उनकी बड़ी प्रीति के साथ सेवा करती थी। वह अपने पति को छोड़ देवता, यक्ष, मुनि आदि अन्य किसी का कभी चिन्तवन भी न करती थी। वह सदा पतिसेवा ही में लगी रहती थी। एक दिन पर्वत मुनि घूमते फिरते नारद मुनि के आश्रम में पहुँचे, जो निर्जन वन में बना हुआ था। नारद को आसीन देख पर्वत ने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बोले—हे नारद! आप मुझ पर प्रसन्न होवो और मुझे स्वर्ग जाने की आज्ञा दो। शाप से दीन और करबद्ध हो खड़े हुए पर्वत मुनि को देख, नारद जी ने कहा—तुम्हींने तो पहिले मुझे शाप दिया था कि, मेरी मुखाकृति वानर जैसी हो जाय। पश्चात् जब मुझे क्रोध आया, तब मैंने तुम्हें शाप दिया कि, तुम्हें स्वर्गप्राप्ति न होगी। हे पर्वत! मैं तो तुम्हें निज पुत्रवत् समझता हूँ। तुमने कोई अनहोना कार्य नहीं किया है। अतः हम दोनों को उचित है कि, हम दोनों एक दूसरे को अपने अपने शापों से मुक्त करें। नारद के ऐसा कहने पर दोनों, दोनों के शापों से छूट गये। नारद की मुखाकृति पूर्ववत् मनुष्य जैसी हो गयी। यह देख सृञ्जय की सुकुमारी राजपुत्री को धोखा हो गया, वह नारद के चेहरे को सहसा बदला हुआ देख उन्हें अन्य पुरुष समझ बैठी और आश्रम छोड़ वहाँ से भागी। उसे भागते देख, पर्वत मुनि ने उससे कहा—यही तेरे पति हैं, तू इनके बारे में ज़रा सा भी सन्देह मत कर। यह तेरे पति भगवान् नारद हैं। अतः धोखे में न पड़ कर तू इन्हें सावधान हो कर पहचान। इस प्रकार जब पर्वत ने उसे बहुत समझाया और शाप का वृत्तान्त कहा, तब उसने नारद को अपना पति माना। पर्वत मुनि वहाँ से स्वर्ग को चले गये और नारद जी अपने आश्रम की पर्णकुटी में पूर्ववत् रहने लगे।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे युधिष्ठिर ! नारद जी यहीं विद्यमान हैं। अतः इस उपाख्यान के विषय में आप इन्हींसे पूँछ लें। यह आपको सब वृत्तान्त सुना देंगे। यह कह श्रीकृष्ण जी चुप हो गये।

इकतीसवाँ अध्याय

सुवर्णष्ठीवी का उपाख्यान

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! श्रीकृष्ण की बात सुन कर सभा में स्थित नारद मुनि से पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे नारद ! सृञ्जय का पुत्र सुवर्णष्ठीवी कैसे उत्पन्न हुआ था ? मैं यह सुनना चाहता हूँ।

युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन नारद जी ने उन्हें सुवर्णष्ठीवी का उपाख्यान ज्यों का त्यों सुनाया।

नारद जी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! श्रीकृष्ण की कही बात यथार्थ है। तिस पर भी जब तुम पूँछते हो, तब मैं तुम्हें शेष वृत्तान्त सुनाता हूँ। सुनो ! मैं और मेरा भाँजा महामुनि पर्वत, मर्त्यलोक में वास करने के लिये मर्त्यलोक में आये थे। अतः घूमते फिरते हम दोनों राजा सृञ्जय की राजधानी में जा निकले, उसने हम दोनों की यथाविधि पूजा की और विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का हम लोगों के लिये प्रबन्ध कर दिया। हम उसके राजप्रासाद ही में रहने लगे। वर्षाकाल के चार मास हमने सृञ्जय के राजभवन में वास कर व्यतीत किये। हम जब वहाँ से चलने लगे तब पर्वत ने अर्थयुक्त मुझसे यह बात कही कि, हम इस राजा के घर में बड़े सुख चैन से रहे हैं—अतः इस उपकार के बदले में हमें इसे क्या देना उचित है ? दर्शनमात्र से कल्याणप्रद महामुनि पर्वत के इन वचनों को सुन, मैंने उनसे कहा—तुम मेरे भाँजे हो। अतः यदि तुम मेरा कहना मानो तो

राजा को बुला कर वह जो वर माँगे सो उसे दे दो, यह बहुत अच्छा हो यदि हम लोगों के तपःप्रभाव से राजा का मनोरथ पूर्ण हो जाय।

नारद मुनि कहने लगे—हे धर्मराज! वर देने को प्रस्तुत महामुनि पर्वत ने राजा सृञ्जय को बुला कर उनसे कहा—हे राजन्! आपने जैसा चाहिये वैसा हम लोगों का आतिथ्य किया है, अतः हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। हे राजन्! हम तुमको आज्ञा देते हैं। तुम जो चाहो सो वर हमसे माँग लो। हे राजन्! तुम हमारे कृपापात्र हो। अतः ऐसा वर माँगो जिसके देने में हमें क्लेश न हो और मनुष्य जाति का नाश न हो।

पर्वतमुनि के इन वचनों को सुन कर, राजा सृञ्जय ने कहा—आप दोनों का मेरे ऊपर प्रसन्न होना ही मेरे कृतकृत्य होने के लिये यथेष्ट पुरस्कार है। मेरी समझ में तो आपका प्रसन्न होना मेरे लिये महान् लाभ है।

यह सुन, पर्वत ने पुनः राजा से कहा—हे राजन्! तुम अपनी चिर अभिलषित कामना के अनुसार हमसे वर की याचना करो।

इस पर राजा सृञ्जय ने कहा—हे मुने! मुझे ऐसा एक पुत्र दीजिये जो वीर हो, बड़ा पराक्रमी हो, दृढ़व्रत हो, आयुष्मान हो, महाभाग्यशाली हो और इन्द्र की तरह कान्तिमान हो।

यह सुन पर्वत ने कहा—राजन्! तुम्हारी यह मनोवाञ्छा पूर्ण होगी; किन्तु तुम्हारा पुत्र चिरजीवी नहीं होगा वह अल्पायु होगा। क्योंकि तुम्हारे मन में इन्द्र को परास्त करने का पाप है। तुम्हारा भावी पुत्र सुवर्णष्ठीवी के नाम से प्रख्यात होगा; किन्तु तुम्हें उचित है कि, तुम इन्द्र से उसकी रक्षा करते रहना, क्योंकि वह बालक इन्द्र की तरह तेजस्वी होगा। अतः बहुत सम्भव है कि, एक दिन वह इन्द्र के हाथ ही से मार डाला जाय।

पर्वत के इन वचनों को सुन, राजा सृञ्जय ने उन्हें प्रसन्न करते हुए पुनः यह भी कहा—हे मुने! मेरा पुत्र इन्द्र के हाथ से मारा जाय—यह अनर्थ तो न होना चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि, आपके तपःप्रभाव से मेरा भावी पुत्र आयुष्मान हो।

इन पर पर्वत ने सृञ्जय को कुछ भी उत्तर न दिया क्योंकि पर्वत की इन्द्र के ऊपर बड़ी कृपा थी।

नारद जी कहने लगे—हे धर्मराज! जब सृञ्जय, पर्वत के सामने बहुत गिड़गिड़ाया. तब मैंने उससे कहा—सृञ्जय! तू चिन्ता न कर, मैं तुझको तेरे मृतपुत्र से मिला दूँगा; किन्तु जब तेरे पुत्र पर कोई विपत्ति पड़े, तब तू मुझे स्मरण करना। राजन्! तेरा पुत्र मारा जा कर, यदि यमालय में भी चला जायगा तो भी मैं वहाँ से उसे ला कर तुझे दे दूँगा। तू दुःखी एवं चिन्तित मत हो।

यह कह हम दोनों वहाँ से चल दिये और राजा हर्षित होता हुआ अपने भवन में चला गया। इस घटना के बहुत दिनों बाद सृञ्जय के घर में महाप्रतापी और महातेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बालक दिनों दिन वैसे ही बड़ा होने लगा, जैसे सरोवर में कमल बढ़ता है। उस बालक के गुणानुसार उसका नाम सुवर्णष्ठीवी रखा गया। नारद जी कहने लगे—इस अद्भुत राजकुमार को जगत् भर में प्रख्यात होते देर न लगी। इतने ही में देवराज इन्द्र को, पर्वत द्वारा राजा सृञ्जय को दिये गये वरदान का वृत्तान्त अवगत हुआ। बृहस्पति के कहे में चलने वाले देवराज इन्द्र भयभीत हो गये। उन्होंने मन ही मन विचारा कि—एक न एक दिन इस राजकुमार द्वारा मुझे पराजित होना पड़ेगा। अतः चुपके चुपके इन्द्र उस राजकुमार के घात में रहने लगे। एक दिन उन्हें जब अवसर हाथ लगा, तब उन्होंने अपने दिव्यास्त्र वज्र को आदेश किया कि, तुम व्याघ्र का रूप रख कर, सुवर्णष्ठीवी को मार डालो। तदनुसार वज्र ने व्याघ्र का रूप धारण कर, उस राजकुमार को मार डाला। इन्द्र ने यह आदेश देते समय वज्र से कहा था—हे वज्र! यदि सृञ्जयनन्दन सुवर्णष्ठीवी बड़ा हो गया, तो वह मुझे परास्त करेगा क्योंकि पर्वतमुनि यह बात राजा सृञ्जय से कह भी चुके हैं। परपुरञ्जय वज्र को इन्द्र ने ज्यों ही यह आज्ञा दी त्यों ही वह व्याघ्र का रूप धारण कर, नित्य उस राजकुमार की घात में उसके पीछे पीछे डोलने लगा। उधर इन्द्र-

वत् कान्तिमान सुवर्णष्ठीवी को देख, राजा सृञ्जय की प्रसन्नता की सीमा न रही। वह रानियों सहित वन में रहने लगा। एक दिन राजकुमार अपनी धात्री के साथ गङ्गातटस्थ एक निर्जन वन में खेल रहा था और इधर उधर दौड़ रहा था। यद्यपि वह राजकुमार अभी केवल पाँच ही वर्ष का था, तथापि उसके शरीर में एक विशाल गज जितना बल था। खेलता खेलता वह राजकुमार एक महाबली व्याघ्र के निकट चला गया। उस व्याघ्र ने उस बालक को पकड़ लिया, तब तो वह बालक थरथर काँपने लगा। इतने में उस व्याघ्र ने राजकुमार को मार डाला। राजपुत्र निर्जीव हो भूमि पर गिर पड़ा। यह देख उसकी धाय हाय! हाय! कह कर रोने लगी। इस बीच में व्याघ्र रूपधारी वज्र अपना काम पूरा कर वहाँ ही अदृश्य हो गया। धात्री का रुदन सुन, राजा सृञ्जय घबड़ाया और दौड़ कर वहाँ गया जहाँ व्याघ्र का मारा हुआ राजपुत्र पड़ा हुआ था। उसने जा कर देखा कि, व्याघ्र ने सुवर्णष्ठीवी के शरीर का रक्त चूस लिया है और वह गगनच्युत निस्तेज चन्द्रमा की तरह मरा पड़ा है। यह दृश्य देख राजा बड़ा दुःखी हुआ। वह मृत राजपुत्र को गोद में रख विलाप करने लगा। इतने में उसकी समस्त रानियाँ भी रोती और विलाप करती हुई वहाँ जा पहुँचीं जहाँ राजपुत्र के शव को गोद में रख राजा सृञ्जय बैठा हुआ था।

नारद जी कहने लगे—हे धर्मराज! उस समय सृञ्जय ने मुझे स्मरण किया। मैं समाधि द्वारा यह वृत्तान्त जान तुरन्त उसके निकट जा पहुँचा। हे धर्मराज! जिन राजाओं का चरित्र श्रीकृष्ण अभी आपको सुना चुके हैं, वे ही चरित्र सुना कर मैंने सृञ्जय को धीरज धराया। तदनन्तर सृञ्जय के बहुत आग्रह करने पर मैंने इन्द्र को समझा बुझा कर और उनकी आज्ञा से सृञ्जय के मृतपुत्र को पुनः जीवित कर दिया। हे राजन्! भावी को कोई टाला चाहे, तो भी वह किसी के टाले टलती नहीं। महाप्रतापी एवं वीर सुवर्णष्ठीवी पुनः जी उठा। उसे जीवित देख उसके पिता और उसकी माताएँ अत्यानन्दित हुईं। राजा सृञ्जय के स्वर्गवासी हो जाने पर सुवर्ण-

ष्ठीवी ने ग्यारह सौ वर्षों तक राज्य किया। महाकान्तिमान उस राजकुमार ने बड़े बड़े यज्ञ कर और उनमें बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ ब्राह्मणों को दे कर देवताओं को और श्राद्धादि कर्मों द्वारा पितरों को सन्तुष्ट किया। तदनन्तर दीर्घ आयु पूरी कर वह भी परलोक सिधार गया। हे राजन्! तुम भी बन्धुबान्धवों के मारे जाने से उत्पन्न शोक सन्ताप को त्याग दो और श्रीकृष्ण और महातपा वेदव्यास जी के कथनानुसार पिता, पितामह के राजसिंहासन पर बैठो और राज्य भार उठाओ तथा पुण्य को बढ़ाने वाले बड़े बड़े यज्ञों को कर, परलोक सिधारो।

[नोट:—ये ही सब उपाख्यान आगे द्रोणपर्व में अभिमन्युवध प्रसङ्ग में आये हैं; किन्तु सुवर्णष्ठीवी के उस पर्व में वर्णित और इस पर्व में वर्णित उपर्युक्त उपाख्यानों में कई स्थलों पर अन्तर पाया जाता है।]

बत्तीसवाँ अध्याय

कर्म-विवेचन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! नारद जी के इन वचनों को सुन युधिष्ठिर चुप हो गये। उनके मन में शोक का वेग बढ़ गया। यह देख धर्मतत्त्वज्ञ एवं महातपा वेदव्यास जी ने युधिष्ठिर से कहा।

व्यास जी बोले—हे कमलनयन युधिष्ठिर! राजाओं का यह धर्म है कि, वे प्रजा पालन करें। जो कर्मानुसार चला करते हैं, वे सदा धर्म ही को प्रमाण मानते हैं। अतः हे राजन्! तुम भी धर्मानुसार चल कर, परम्परा से प्राप्त राज्य को ग्रहण करो। वेद में निश्चय रूप से कहा गया है कि, तपस्या-परायण होना ब्राह्मणों का कर्त्तव्य कर्म है, क्योंकि वे सदा से तप करते चले आते हैं। धर्म की रक्षा करना क्षत्रियों का कर्त्तव्य है; किन्तु जो पुरुष विषयासक्त हो स्वयं धर्म को विध्वंस करता है, समाज-

बन्धन को भङ्ग करने वाले उस पुरुष को पंधवा कर बन्दीगृह में डाल देना राजा का कर्त्तव्य है। जो पुरुष मूर्खतावश प्रमाण को अप्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा करे, वह भले ही अपना पुत्र, सेवक अथवा कोई तपस्वी ही क्यों न हो, राजा को उचित है कि, ऐसे पापी पामर को राजा या तो पकड़ कर बंदीखाने में डाल दे अथवा उसे मरवा डाले। जो राजा इसके प्रतिकूल बर्त्ताव करता है वह पापी समझा जाता है। जो राजा नष्ट होते हुए धर्म की रक्षा नहीं करता वह स्वयं ही धर्मविध्वंस-कारियों में परिगणित किया जाता है। हे धर्मराज! तुमने भी धर्मनाशकों का उनके सहायकों सहित नाश किया है। अतः तुमने जो किया है वह धर्म ही का काम किया है। तुम तो स्वयं धर्माचरणपरायण हो। फिर तुम शोक क्यों करते हो? राजा का तो क 'व्य है कि, जो धर्मानुसार बर्त्ताव न करता हो, उसे दण्ड दे, जो सुपात्र हो, उन्हें दान दे तथा धर्मानुसार प्रजा की रक्षा करे।

राजा युधिष्ठिर बोले—हे तपोधन! आपके कथन में मुझे तिल बराबर भी सन्देह नहीं है, क्योंकि आप सर्वधर्मज्ञों में श्रेष्ठ हैं और आपको धर्म का रूप प्रत्यक्ष देख पड़ता है; किन्तु हे ब्रह्मन्! मैंने राज्यप्राप्ति के पीछे अनेक अवध्यों का भी वध किया है। बस जब इस बात का विचार मन में उत्पन्न होता है, तब मेरा शरीर भस्म होने लगता है।

व्यास जी ने कहा—हे राजन्! रणक्षेत्र में युद्धार्थ सामने आये हुए योद्धा जो मार डाले गये, उनका वध करने वाला जीव है या ईश्वर? यावत् कार्य प्रकृति द्वारा सम्पादन हुआ करते हैं। हमको जो सुख दुःख प्राप्त होते हैं, वे हमारे पूर्वजन्म कृत कर्मों के फलस्वरूप हैं। यह जीव ईश्वर की निर्दिष्ट की हुई विधि की प्रेरणा ही से शुभाशुभ कर्म किया करता है। यदि तुम इसे स्वीकार करते हो तो भी पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि शुभाशुभ कर्मों की प्रेरणा करने वाला तो जीव के लिये

कोई दूसरा ही है। अतः इसका फल तो उस प्रेरक ही को प्राप्त होगा। जैसे कोई मनुष्य वन में जा कुल्हाड़ी से कोई वृक्ष काटे तो वृक्ष काटने का पाप उस काटने वाले मनुष्य ही को लगता है, कुल्हाड़े को नहीं। यदि तुम यह कहो कि, कुल्हाड़ा अचेतन होने के कारण वह पाप का भागी नहीं है; किन्तु जीव तो चेतन है अतः उसे तो उन कर्मों का, जिन्हें वह करता है, फल अवश्य भोगना ही पड़ेगा। अतः कुल्हाड़े को नहीं; किन्तु कुल्हाड़ा बनाने वाले को तो पाप अवश्य लगेगा ही। जो ऐसा विचार करते हैं, वे भूलते हैं। क्योंकि एक मनुष्य वृक्ष को काटे और अन्य पुरुष उसके पाप का भागी हो यह हो नहीं सकता। अतः समस्त कर्म प्रेरक ईश्वर ही को अर्पण कर दो। कदाचित् तुम कहो कि, शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता जीव ही है, उसका प्रेरक अन्य कोई भी नहीं है, तो तुम्हें यह भी स्वीकृत करना पड़ेगा कि, जगत का नियंत्रण करने वाला भी कोई नहीं है। यदि ऐसा है तो तुम अशुभ कर्म करो। फिर तुम्हें डरने की आवश्यकता ही क्या है? किन्तु हे राजन्! अब मैं जो कुछ कहूँ उसे तुम ध्यान देकर सुनो। जिस प्रकार वृक्ष को काटने वाले का पाप, कुल्हाड़ी बनाने वाले को नहीं लगता, उसी प्रकार प्रारब्ध के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता— अर्थात् प्रारब्ध के अधीन हो कर ही प्राणिमात्र कार्य करते हैं। यदि स्वभाव को कर्त्ता मान लिया जाय तो भूत काल में अथवा भविष्यत् काल में तुम्हारा और पाप का कोई सम्बन्ध रह ही नहीं सकता। यदि तुम लोगों के सुख दुःख को देख कर, स्वभाववाद को न भी मानो तो भी धर्माधर्म के बिना सुख दुःख का होना सम्भव नहीं है। उस धर्म अधर्म का ज्ञान शास्त्र द्वारा प्राप्त हो सकता है। धर्मशास्त्र कहता है कि, राजाओं को उचित है कि, उच्छृङ्खल एवं उद्दण्ड लोगों को वह दण्ड दे। अतः तुमने कौरवों को दण्ड दिया है।

हे युधिष्ठिर! प्रजापालन करने वाले राजा को बरबस शुभाशुभ कर्म करने पड़ते हैं। मेरे मतानुसार उन कर्मों का फल राजा को ही मिलता

है। हे महाबाहो! अशुभ फल देने वाले पापों की प्रवृत्ति करने वाले कर्म उत्पन्न हुआ ही करते हैं। अतः तुम पाप उत्पन्न करने वाले कर्मों का त्याग करो। यदि तुम्हें अपना क्षात्र धर्म दोषावह जान पड़ता हो तो भी तुम अपने धर्मानुसार ही बर्त्ताव करो। अतः तुम आत्मघात का विचार त्याग दो। हे कुन्तीनन्दन! शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तों को शरीरधारी कर सकता है; किन्तु जो शरीर रहित हैं, वे प्रायश्चित नहीं कर सकते, अतः वे निस्तेज होते हैं। हे राजन्! यदि तुम जीवित रहे तो तुम प्रायश्चित कर के पापों से छुटकारा पा सकते हो, और यदि कहीं प्रायश्चित किये बिना ही मर गये तो तुम्हें अपने कर्मों के लिये परलोक में उत्तरदायी होना पड़ेगा।

तैंतीसवाँ अध्याय

काल की करतूतें

राजा युधिष्ठिर बोले—हे भगवन्! पुत्र, पौत्र, भाई, चचा, ससुर, गुरु, मामा, पितामह, बड़े बड़े अन्य क्षत्रिय, नातेदार, मित्र, समवयस्क, स्नेही, भाँजे, जाति वाले और भिन्न भिन्न देशों से आये हुए बहुत से बड़े बड़े राजाओं को मैंने राज्य के लोभ से मरवा दिया है। हे तपोधन! महापराक्रमी नित्य धर्म में लगे रहने वाले अनेक बार सोमयाग कर के सोम बल्ली का रस पीने वाले वीर राजाओं को मैंने रण में मरवा डाला है। सो इस पातक का फल मुझे क्या मिलेगा? हे भगवन्! युद्ध में मारे गये उन बड़े बड़े राजाओं का जब मैं स्मरण करता हूँ, तब मेरा शरीर भस्म सा होने लगता है। अपने नातेदारों तथा असंख्य प्राणियों के उस दारुण संहार का स्मरण करने से मेरे मानसिक सन्ताप की सीमा नहीं रहती। पुत्र, पोते तथा भाइयों से रहित हुई उन वीरों की स्त्रियों की

इस समय क्या दशा होगी ? वे दुःखी, दीन और दुर्बल विधवा स्त्रियाँ और रानियाँ अपने पतियों की हत्या करने वाले पाण्डवों और वृष्णियों को अकोसती हुई और विलाप करती हुई पृथिवी पर पछाड़ें खा कर गिरती होंगी। उन्हें जब अपने बाप, भाई, पति और पुत्र न देख पड़ेंगे तब वे प्रेम, स्नेह और वात्सल्यवश अवश्य मर जायगी। सचमुच धर्म का स्वरूप बड़ा सूक्ष्म है। अतः मुझे निश्चय ही इन स्त्रियों के मरने के पाप का भी भागी होना पड़ेगा। हम लोगों ने अपने स्नेहियों का वध करके असीम पाप किया है अतः हम अब औंधा सिर कर नरक में गिरेंगे। अतएव हे व्यास देव ! मैं इसी लिये उग्र तप कर शरीरत्याग करना चाहता हूँ। अब आप मुझे कोई आश्रमों में उत्तम आश्रम बतलावें, जिससे तदनुसार मैं बर्ताव करूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन व्यास जी बहुत सोच विचार कर युधिष्ठिर से कहने लगे।

व्यास जी ने कहा —राजन् ! तुम्हें क्षात्रधर्म के लिये खेद करना उचित नहीं है, हे क्षत्रियोत्तम ! तुमने रण में क्षत्रियों का वध किया है —सो तुम्हारा यह कर्म क्षात्रधर्मानुसार है। जो राजा लोग लड़ाई में मारे गये हैं, वे भी धन और समस्त पृथिवी का आधिपत्य प्राप्त करने की इच्छा रखते थे। समय आने पर वे भी दूसरे के प्राण लेने में कभी सङ्कोच न करने वाले थे, अतः वे अपने दोष ही से मारे गये हैं। तुमने, भीम ने, अर्जुन ने, नकुल ने अथवा सहदेव ने उनका वध नहीं किया, वे तो केवल काल द्वारा ही यमपुर भेजे गये हैं। जो माता-पिता-हीन हैं, जिसके पास से होकर भी दया नहीं निकली, जो प्राणी मात्र के कर्मों का साक्षी है, इसी काल ने राजाओं का संहार किया है; तुमने उन राजाओं का वध नहीं किया। यह युद्ध तो उनके वध का निमित्त मात्र था। प्राणियों का विनाश करने की शक्ति काल को छोड़ और किसी में नहीं है। वही एक प्राणी द्वारा दूसरे प्राणी का नाश करवाता है। वह काल ईश्वर रूप है;

किन्तु वह काल कर्माधीन है। वह जीवों के पाप पुण्यमय कर्मों का साक्षी है और वही पाप-पुण्य-रूपी दुःख सुख को देने वाला है। अतः काल विषमता अथवा निष्ठुरता के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता। हे युधिष्ठिर! कौरव जिन पापकर्मों के पीछे मारे गये हैं ज़रा उन कर्मों पर भी तुम विचार करो। तुम स्वयं सोचो कि तुम सदा शान्तमय व्रतधारी हो, तिस पर भी दैव ने जब तुम्हें घेरा, तभी तुम इस हिंसामय कर्म में प्रवृत्त हुए। लुहार की बनायी कल जैसे उस कल के चलाने वाले के अधीन होती है —और वह उसे जैसे चलाता है, वैसे ही वह चलती है, वैसे ही यह समस्त जगत, काल के साथी कर्म के अधीन है, वह संसार को जैसे चलाता है, वैसे ही वह चलता है। पुरुष का जन्म और मरण जैसे बिना कारण के स्वाभाविक रीत्या हुआ करता है, वैसे ही हर्ष और विषाद भी स्वभावतः होते रहते हैं। अतः हर्ष शोक के लिये चिन्तित होना व्यर्थ है। राजन्! प्राणि मात्र की मृत्यु निज कर्मानुसार होती है। यह सब होने पर भी तुमने समझ रखा है कि उन सब को तुमने मारा है। इस भेद का कारण मोह है। अतः तुम यदि इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहते हो तो करो।

हे राजन्! सुनते हैं कि पूर्व काल में आपस में देवताओं और असुरों का युद्ध हुआ था। असुर बड़े और सुर छोटे भाई थे। धन के पीछे असुर और सुर बारह हज़ार वर्षों तक लड़े थे। अन्त में रक्तरञ्जित इस भूमण्डल को उठा कर समुद्र में डुबो दिया था और असुरों का संहार कर वे स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। पीछे उन्हें उस पृथिवी का राज्य भी मिल गया था, उस समय अभिमान से मोहित कितने ही वेदपारग ब्राह्मण आजीविका के पीछे दैत्यों के सहायक बन गये थे। अतः सुर और असुर में युद्ध हुआ। उस युद्ध में त्रिलोक प्रसिद्ध शालावृक जाति के अस्सी सहस्र असुरों को सुरों ने मार डाला था। ऐसे धर्मनाशक और अधर्म-प्रवर्त्तक दुष्टों को मार डालना ही उचित था। यदि एक पुरुष का वध करने से

सारा कुल सुखी रह सकता हो तो उस पुरुष को मार डाले। उसी प्रकार एक कुल का नाश करने से समस्त देश सुखी होता हो तो उस कुल का भी नाश कर दे। जो ऐसा करता है, उसे पाप नहीं लगता।

हे राजन्! किसी किसी समय कोई कर्म देखने में तो अधर्ममूलक जान पड़ता है; किन्तु शास्त्रदृष्टि से वह धर्ममय होता है। इसी प्रकार जिस कर्म को लोग कभी कभी धर्म रूप समझते हैं वह शास्त्रानुसार अधर्ममय होता है। धर्मकार्य कौन सा होता है और अधर्म कार्य कौन सा—इसकी मीमांसा शास्त्रज्ञ विद्वान ही कर सकते हैं। अतः तुम अपनी बुद्धि को स्थिर करके विचार करो। जिस मार्ग को पूर्वकाल में सुरों ने ग्रहण किया था उसीका अनुसरण तुम भी करो। तुम जैसे धार्मिक पुरुष कभी नरकगामी नहीं होते। अतः तुम्हें उचित है कि, तुम अपने भाइयों और स्नेहियों को धैर्य बँधाओ, जो आदमी अपने मन में पापवासना रख कर पापकर्म करता है और पापकर्म कर के अपने मन में भी ज़रा भी भयग्रस्त नहीं होता, और लजाता भी नहीं—उसे अवश्य उस पाप का फल भोगना पड़ता है। यह वेद का मत है। ऐसे पापों का शास्त्रकारों ने प्रायश्चित्त भी नहीं बतलाया। अतः ऐसे पुरुष के उस पाप का कभी नाश भी नहीं होता। हे राजन्! आपका हृदय तो स्वच्छ था; किन्तु दुष्ट दुर्योधन आदि के दोष से वह मलिन हो गया था। अतः इच्छा न रहते भी तुम्हें लड़ना पड़ा था, अतः तुम विषाद क्यों करते हो? फिर तिस पर भी यदि तुम्हारी इच्छा प्रायश्चित्त करने की है तो प्रायश्चित्त स्वरूप तुम अश्वमेध यज्ञ करो। इस यज्ञ के करने से तुम उस पाप से मुक्त हो जाओगे। जब देवराज इन्द्र ने मरुद्गण की सहायता से असुरों पर विजय प्राप्त किया, तब प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने भी अश्वमेध यज्ञ ही किये थे। सौ यज्ञ कर देवराज शतक्रतु की उपाधि से विभूषित हुए थे। स्वर्ग को जीत लेने के पश्चात् इन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ किये थे और वे हत्याजनित पाप से मुक्त हुए थे और मरुद्गण से घिर कर अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित कर, स्वर्ग में राज्य करते थे। देव और ऋषिगण उनकी उपासना

करते थे और अप्सराएँ उनका पूजन किया करती थीं। हे अनघ! जिस पृथिवी को इन्द्र ने पाया था वही पृथिवी अब तुम्हें निज पराक्रम से मिली है और निज पराक्रम ही से तुमने समस्त राजाओं को परास्त किया है। तुम्हें उचित है कि तुम अपने स्नेही राजाओं को साथ ले, उन नगरों और राज्यों को पुनः बसाओ, जो अब राजाओं से शून्य हैं और उन मृत राजाओं के वंशधरों को मृत राजाओं के शून्य राजसिंहासनों पर अभिषिक्त करो। युद्ध में मारे गये जिन राजाओं की रानियाँ गर्भवती हों उन्हें तुम जाकर धीरज बँधाओ और प्रजाजनों को सन्तुष्ट रख, पृथिवी का शासन करो। जिन राजाओं के कन्याएं ही हैं और कोई पुत्र नहीं है, उन मृत राजाओं के शून्य राजसिंहासन पर उनकी बेटियों ही को विठा कर, उनकी विधवा रानियों के मन का शोक दूर कर दो। स्त्रियों के मन कामनाओं से परिपूर्ण हुआ करते हैं; किन्तु तुम उन्हें धीरज धरा कर, उनका शोक दूर कर सकते हो। हे राजन्! तुम इस प्रकार सब लोगों को ढाँढस बँधा अश्वमेध यज्ञ करो। तदनन्तर तुम वैसे ही विजयी हो, जैसे पूर्वकाल में अश्वमेध यज्ञ कर के देवराज इन्द्र विजयी हुए थे।

हे क्षत्रिय श्रेष्ठ राजन्! जो बड़े बड़े क्षत्रिय युद्ध में मारे गये हैं, उनके लिये शोक करना अब उचित नहीं। वे यमराज के बल से मुग्ध हो, क्षात्र धर्मानुसार मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। तुमने क्षात्रधर्म का पालन ठीक ठीक किया है। इसीसे तुम्हें यह निष्कराटक राज्य मिला है। अतः अब तुम निज क्षात्रधर्म की रक्षा करो। क्योंकि ऐसा करने ही से परलोक में तुम्हारा कल्याण हो सकेगा।

चौतीसवाँ अध्याय

पाप-पुण्य की व्याख्या

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! कृपया आप मुझे यह बतलावें कि, किन कर्मों के करने से मनुष्य को प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता होती है और वे कौन से व्रतानुष्ठान हैं, जिनके करने से मनुष्यों के पाप छूट जाते हैं ?

इसके उत्तर में व्यास जी कहने लगे—राजन् ! वेद में वर्णित विहित कर्मों के न करने से तथा वेदवर्जित कर्मों के करने से तथा कपट व्यवहार करने से मनुष्य को प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता होती है।

जो ब्रह्मचारी सूर्यास्त और सूर्योदय के समय पड़ा पड़ा सोया करता है उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो कुनखा हो, जिसके काले दाँत हों, समझ लेना चाहिये उसने पूर्वजन्म में सुवर्ण की चोरी की थी और मदिरापान किया था। ऐसे लोगों को इन पापों से छुटकारा पाने के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। विवाहित छोटे भाई का अविवाहित ज्येष्ठ भ्राता तथा वह विवाहित छोटा भाई ब्रह्मघाती, परनिन्दक, विवाहिता लौहरी कन्या की बड़ी बहिन के साथ विवाह करने वाला (दिधिषूपति) तथा बड़ी बहिन के क्वाँरी रहने पर छोटी बहिन के साथ विवाह करने वाला (अग्रेदिधिषूपति) प्रायश्चित्तार्ह हैं और इन सब को प्रायश्चित्त करना चाहिये। खण्डित ब्रह्मचर्य व्रत वाले को, द्विज का वध करने वाले को, कुपात्र को दान देने वाले को और सुपात्र को दान न देने वाले को प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता है। समूचे ग्राम का नाश करने वाले, आग लगाने वाले, वेतनभुक्त वेदाध्यायी गुरु, स्त्रीघातक, अकारण पशुओं को मारने वाले, माँसविक्रेता, मिथ्या-भाषण कर पेट भरने वाले (जैसे आजकल के अधिकांश वकील पेशे वाले लोग प्रायः किया करते हैं) गुरु का तिरस्कार करने वाले पापी कहलाते हैं और ऐसे पापियों को पाप का प्रायश्चित्त करना नितान्त आवश्यक है।

हे राजन् ! अब मैं तुम्हें उन कर्मों को बतलाता हूँ, जिनके करने की वेद में मनाही की गयी है, ध्यान दे कर सुनो। स्वधर्मत्याग, परधर्म ग्रहण, पतित व्रात्यादि को यज्ञ करवाना, अभक्ष्य भक्षण, शरणागत का त्याग, भरण पोषण करने योग्य अपने सम्बन्धियों का भरण पोषण न करना, अपने आश्रित जनों का भरण पोषण न करना, दुग्ध, घृत आदि रसों का विक्रय, पशु पक्षियों का वध, शक्ति रहते भी अग्निहोत्रादि कर्मों को न करना, नित्य देने योग्य गोग्रास न देना, ब्राह्मणों को दक्षिणा न देना, ब्राह्मणों का सर्वस्वापहरण आदि ये ऐसे कार्य हैं, जिन्हें धर्मशास्त्रज्ञों ने पापकर्म बतलाया है।

हे राजन् ! जो पुत्र अपने बाप से लड़ते हैं, जो लोग गुरु की शय्या पर शयन करते हैं, जो ऋतुमती निज स्त्री के साथ सम्भोग नहीं करते, वे लोग पाप के भागी होते हैं। ऐसे कितने ही कामों का वर्णन विस्तृत रूप से और कितने ही का संक्षिप्त रूप से वेदों में किया गया है। इनमें से कितने ही कर्म तो ऐसे हैं जिनको करने से करने वाला पातकी होता है और कितने ही ऐसे हैं जिनको न करने से मनुष्य निष्पाप बना रहता है। अब मैं उन कारणों की व्याख्या सुनाता हूँ, जिनसे पाप कर्मों को करने से भी मनुष्य पाप का भागी नहीं होता। यदि वेदवेदाङ्गपारग ब्राह्मण भी हाथ में हथियार ले रणभूमि में लड़ने को आवे, तो उसका वध करने से वध करने वाले को ब्रह्महत्या का पातक नहीं होता। क्योंकि जो अपना नाश करना चाहे, उसका नाश करने से पाप नहीं लगता। हे कुन्तीनन्दन ! वेदभ्रष्ट, आततायी ब्राह्मण का वध करने वाले को ब्रह्महत्या नहीं लगती। क्रोध में प्रवृत्त हो कर, किये हुए कर्म का फल क्रोध ही में जाता है अर्थात् वहाँ तो क्रोध को क्रोध मारता है। यदि रोगादि के कारण शरीर से प्राण ही क्यों न निकलते हों, तो भी वैद्य (डाक्टर) के कहने से मदिरापान न करे और न अनजाने ही मदिरापान करे। यदि पी ले तो पुनः संस्कार करे। यदि अभक्ष्य पदार्थों में से कोई पदार्थ खा लिया हो, तो प्रायश्चित्त करने से वह खाने वाला

शुद्ध हो जाता है। गुरुपत्नी से समागम करने से पाप लगता है; किन्तु गुरु की आज्ञा से गुरुपत्नी के साथ समागम करने वाले को पाप नहीं लगता। जैसे उद्दालक की आज्ञा से उनके शिष्य ने गुरुपत्नी के साथ समागम करके, श्वेतकेतु को पैदा किया था।

यद्यपि चोरी करना निषिद्ध है, तथापि आपत्तिकाल में गुरु के लिये चोरी करना निषिद्ध नहीं माना गया, किन्तु शर्त यह है कि चोरी करने वाले ने चोरी अपनी इच्छा से न की हो। आपत्तिकाल में विप्र के धन को छोड़ अन्य वर्ण वालों का धन चुराया जा सकता है, किन्तु चुराने वाले को उस द्रव्य का उपभोग स्वयं न करना चाहिये। ऐसे को चोरी करने का पाप नहीं लगता। यदि झूठ बोलने से अपनी या किसी अन्य की प्राणरक्षा होती हो, तो भी झूठ बोलने से पाप नहीं लगता। इसके अतिरिक्त एकान्तगमन के समय स्त्री के साथ और विवाहप्रसङ्ग में मिथ्याभाषण करने में पाप नहीं लगता। यदि किसी ब्रह्मचारी का वीर्य स्वप्न में गिर पड़े तो उसका व्रत खण्डित नहीं होता, तो भी उसे प्रज्वलित अग्नि में घृत से हवन कर के प्रायश्चित्त कर डालना आवश्यक है। ज्येष्ठ भ्राता पतित हो गया हो, संन्यासी हो गया हो, तो यदि उसका छोटा भाई विवाह कर ले, तो उसे दोषभागी नहीं होना पड़ता। पुरुष की इच्छा न होने पर भी यदि कोई स्त्री पुत्र प्राप्ति की कामना से अनुचित प्रार्थना करे, तो उसके उदर में गर्भस्थापन करने में पुरुष को दोष नहीं लगता। व्यर्थ पशुहिंसा न तो स्वयं करे और न दूसरे को ऐसा करने के लिये उत्तेजित ही करे। यज्ञ में विधिवत् जो पशुहिंसा की जाती है वह हिंसा—हिंसा नहीं कहलाती; किन्तु उस पशु के ऊपर अनुग्रह समझा जाता है। अनजाने यदि किसी कुपात्र ब्राह्मण को कोई दान दे दिया गया हो, तो पाप नहीं लगता। इसी प्रकार यदि अनजान में किसी सत्पात्र ब्राह्मण का सत्कार न किया जाय तो भी सत्कार न करने वाले को दोषभागी नहीं होना पड़ता। व्यभिचारिणी स्त्री को बारंबार भर्त्सना करने तथा उसे एकान्त स्थान में रख, उसका भरण

पोषण करने से पाप नहीं लगता; किन्तु उसके साथ स्वयं किसी प्रकार का अनुचित सम्बन्ध न रखना चाहिये। सोमवल्ली बेचना पातकी बनना है; किन्तु सोमवल्ली के स्वरूप को जान कर उसका विक्रय करने वाले को दोष नहीं लगता। इसी प्रकार गौत्रों के लिये वन दग्ध करने वाले को भी पाप नहीं लगता। हे राजन्! जिन दोषार्ह कर्मों के करने से भी करने वाले को दोष नहीं लगता, उन कर्मों को तुमसे कह कर, अब मैं तुम्हें प्रायश्चित्तों की व्यवस्था सुनाता हूँ।

पैंतीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-व्यवस्था

व्यास जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य एक बार कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत करता है, अग्निहोत्रादि कर्म करता है, सुवर्णादि का दान देता है और फिर पाप नहीं करता, तो वह पापों से मुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्यारे को उचित है कि वह भिक्षा माँग कर एक ही वार भोजन करे। उसे अपने समस्त कर्म स्वयं ही करने चाहिये। उसे हाथ में खप्पर और मूसल धारण करना चाहिये। ऐसा पातकी ब्रह्मचर्यव्रत पालन करे और वीरासन से बैठे। वह किसी से ईर्ष्या द्वेष न करे, पृथिवी पर सोवे और अपना पापकर्म जगत् में जाहिर करे। जो पापी इस प्रकार बारह वर्षों तक करता है, उसकी ब्रह्महत्या छुट जाती है। जो विद्वान हो कर शस्त्र धारण कर चुका हो, उसे या तो स्वयं दूसरे के शस्त्र का लक्ष्य बन जाना चाहिये या धधकती आग में नीचा सिर कर तीन बार कूदे अथवा किसी भी वेद को पढ़ता हुआ वह सौ योजन चला जावे अथवा किसी वेदपाठी ब्राह्मणी को अपना सर्वस्व दे दे अथवा वेदज्ञ ब्राह्मण को इतना सामान दे जिससे उसका पोषण हो सके अथवा गोब्राह्मण की रक्षा करे। इन

ओं में सब कर्मों से अथवा एक भी कर्म करने से ब्रह्महत्यारा ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। * कृच्छ्र भोजनव्रत छः वर्षों तक करने से ब्रह्महत्या छूट जाती है।

एक वर्ष तक † अति तीव्र व्रत करने से भी ब्रह्महत्या छूट जाती है। इससे भी अधिक तीव्र व्रत करने वाले की ब्रह्महत्या थोड़े ही काल में छूट जाती है। अश्वमेध यज्ञ करने से भी ब्रह्महत्या का पाप छूटता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वेद कहता है कि अवभृथ अर्थात् यज्ञान्त स्नान करने से भी ब्रह्महत्या का पाप छूट जाता है। जो लोग ब्राह्मणों के पीछे युद्ध में मारे जाते हैं, वे भी ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाते हैं। सुपात्र को एक लाख गोदान करने से भी केवल ब्रह्महत्या ही के पाप से नहीं; किन्तु समस्त पापों से दाता छूट जाता है। जो पापी दुग्धवती पचीस हज़ार कपिला गौएँ सुपात्र को देता है वह समस्त पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य मरते समय सवत्सा एक हज़ार दुधार गौएं देता है, वह पापों से छूट जाता है।

जो पापी, काम्बोज देशोत्पन्न सौ अश्व किसी सुपात्र को देता है, वह भी पापमुक्त हो जाता है। जो एक मनुष्य का मनोरथ पूर्ण करने योग्य धन दान करता है और उस दान का स्वयं ढिंढिम नहीं पीटता, वह भी पापमुक्त हो जाता है। यदि कोई मनुष्य एक बार भी मद्यपान कर ले तो उसे उचित है कि मदिरा को तपा कर आग की तरह लाल कर पी ले। ऐसा करने से उसका आत्मा इस लोक और परलोक में पवित्र हो जाता है, जो पहाड़ी पर्वत से कूद कर धधकती हुई आग की चिता में अथवा हिमालय के बर्फस्थान में गल कर शरीर त्याग करता है, तो वह समस्त पापों से छूट

* कृच्छ्र भोजनव्रत—सात दिन प्रातःकाल, सात दिन सायंकाल और सात दिन अयाचित भोजन करना, सात दिन उपवास करना, एक मास सायंकाल में और एक मास उपवास करना कृच्छ्र भोजनव्रत कहलाता है।

† एक मास अयाचित भोजन, तथा एक मास तक उपवास करना अति तीव्र व्रत कहलाता है।

जाता है, जिस ब्राह्मण ने मद्यपान किया हो, उसे बृहस्पतिसव नामक याग करना चाहिये। इस यज्ञ का करने वाला ब्राह्मण समस्त पापों से मुक्त हो ब्राह्मणों की सभा में बैठने योग्य हो जाता है। यह वेद का मत है। जो मनुष्य (ब्राह्मणेतर) मदिरा पान कर, मदिरापान के पाप से छूटना चाहे, उसे निष्कपट भाव से भूमिदान देना चाहिये और फिर कभी मदिरा न पीनी चाहिये। ऐसा करने से वह पाप से छूट जाता है। जो मनुष्य गुरु-पत्नी गमन का पाप करता है, उसे उस पाप से छूटने के लिये तपायी हुई लोहे की चद्दर पर शयन करना चाहिये अथवा उसे अपना लिङ्ग काट और उसे गोद में रख तथा आकाश की ओर देखते हुए नैर्ऋत्य कोण की ओर चला जाना चाहिये। ऐसा करने से भी गुरुपत्नीगामी पाप से छूट जाता है। अथवा ऐसा पापी यदि शरीर त्याग दे तो भी वह गुरुपत्नी समागम के पाप से छुटकारा पा जाता है। यदि कोई महापातकी भी हो और वह महाव्रत* का आरम्भ करे अथवा गुरु के पीछे किसी लड़ाई में मारा जाय, तो वह पापमुक्त हो जाता है। कपट व्यवहार से आजीविका चलाने वाला, गुरु का तिरस्कार करने वाला पुरुष यदि गुरु को अभिलषित वस्तु प्रदान कर, गुरु को प्रसन्न कर ले तो वह पापमुक्त हो जाता है। जिसका ब्रह्मचर्यव्रत खण्डित होजाय उसे उचित है कि, वह ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त करे और छः मास तक शरीर पर गोचर्म धारण करे। ऐसा करने से वह पाप-मुक्त हो जाता है। पर-स्त्री गामी और परस्वापहरण करने वाला पुरुष यदि एक वर्ष पर्यन्त कोई कठिन व्रत धारण करे तो वह पापमुक्त हो जाता है। यदि किसी ने किसी का माल चुराया हो और उसे अपने काम में ले आया हो तो चोरी किये हुए माल की बराबर मालधनी को माल लौटाने से चोरी करने का पाप छूट जाता है। यदि बड़े भाई के अविवाहित रहते, छोटा भाई विवाह कर ले तो उस विवाहित छोटे भाई की परिवेत्ता संज्ञा होती है और बड़े भाई की परिवित्ति। यदि परिवेत्ता और परिवित्ति—दोनों द्वादश-

* एक मास तक जल त्याग देना और जलपान न करना महाव्रत कहलाता है।

दिवस-व्यापी कृच्छ्र* व्रत करें। तो दोनों शुद्ध हो जाते हैं बड़े भाई के कोरे रहते विवाह कर लेने वाला छोटा भाई अपने पितरों के उद्धारार्थ, बड़े भाई के विवाह कर लेने के बाद अपनी विवाहिता स्त्री के साथ पुनः विवाह करे। ऐसा करने से उस पुरुष और स्त्री को दोष नहीं लगता। यदि किसी स्त्री ने महापातक किया हो तो वह † धारण पारणव्रत धारण करने से पाप-मुक्त हो जाती है, यह धर्मशास्त्र का मत है। यदि किसी को अपनी स्त्री के ऊपर किसी प्रकार के पापाचरण का सन्देह उत्पन्न हो जाय तो जब तक वह ऋतुमती न हो, तब तक पुरुष को उसके निकट न जाना चाहिये। क्योंकि जिस प्रकार फूल का बर्तन राख से माँजने पर साफ हो जाता है, वैसे ही स्त्री रजोदर्शन से शुद्ध हो जाती है।

अब मैं पात्रों की शुद्धि का वर्णन करता हूँ। सुनिये। यदि कोई फूल का बना बर्तन शूद्र से छू जाय, गौ सूँघ ले या कोई उसमें कुल्ला कर दे, उस काँसे के बरतन को अग्नि में तपावे और पञ्चगव्य, मिट्टी, जल, राख तथा आँवले से माँजे। ऐसा करने से वह पात्र शुद्ध हो जाता है। धर्म-शास्त्र-वेत्ताओं ने ब्राह्मणों के लिये चार चरणों वाला पूर्ण धर्म, क्षत्रियों के लिये तीन चरणों वाला, वैश्यों के लिये दो चरणों वाला और शूद्र के लिये एक चरण वाला धर्म बतलाया है। उचित है कि धर्म का निर्णय करते समय उनके गौरव और लघुता का विचार रखे। पशु पक्षियों को मारने वाला और वृक्षों को काटने वाला पुरुष यदि तीन दिवस वायु भक्षण कर रहे और अपना पाप सब के सामने प्रकट कर दे, तो ऐसा करने वाला पुरुष पाप

---

* प्रथम तीन दिवस आठ तोले औटाया दूध पीवे, फिर तीन दिन तक चार तोले गर्मागर्म घी पीवे, फिर तीन दिवस १२ तोले गरमागरम जल पीवे और अन्तिम तीन दिवस कुछ भी खाय पीवे नहीं। यही द्वादश-दिवस-व्यापी कृच्छ्र व्रत कहलाता है।

† प्रथम दिवस उपवास कर, द्वितीय दिवस मध्याह्नकाल में भोजन करना धारण पारणव्रत कहलाता है।

विनिर्मुक्त हो जाता है, अब अगम्या स्त्री के साथ समागम करने का प्रायश्चित्त वर्णन किया जाता है, सुनिये।

हे राजन्! निम्न वर्ण की स्त्री के साथ समागम करने वाला उच्च जाति का पुरुष यदि छः मास पर्यन्त ओढ़े कपड़े पहिन, राख पर सोवे, तो वह पापमुक्त हो जाता है। अन्य समस्त पापों के लिये धर्मशास्त्रों में कारण बतला कर, इसी विधि का उल्लेख किया गया है। यही विधि ब्राह्मण के लिये भी है। जो पुरुष किसी प्राणी की हत्या नहीं करता, जो राग द्वेष से अपने को दूर रखता है, जो किसी के साथ वार्तालाप नहीं करता, जो परिमित आहार कर और जो पवित्र स्थल में बैठ गायत्री मंत्र का जप करता है, उसके समस्त पाप छूट जाते हैं। जो पुरुष दिन में ऊपर आकाश की ओर देखता और रात होने पर चबूतरे पर सोता है, जो दिन में और रात में त्रिकाल स्नान करने को सवस्त्र किसी नदी या तालाब में घुसता है और व्रतकाल में स्त्री, शूद्र एवं पतितजनों के साथ वार्तालाप नहीं करता, वह द्विज अज्ञात किये हुए पापों से छूट जाता है। जो कर्म किये जाते हैं, उनके साक्षी पञ्च महाभूत होते हैं। इन खरे खोटे कर्मों का फल जीव को मरणोत्तर भोगना पड़ता है, सो भी पुण्य का फल पहले—पाप का पीछे। अतएव मनुष्य को उचित है कि वह दान दे, तप करे और अग्निहोत्रादि कर्मों का अनुष्ठान करे और अपने लिये पुण्यफल की वृद्धि करे जिससे पापों का फल नष्ट हो कर पुण्यफल बढ़े और वह पुरुष पवित्र हो। पापों से बचने के लिये पुण्य कर्म करने चाहिये। सुपात्र को दान देने से पापी का पाप छूट जाता है। धर्मशास्त्रों के मतानुसार पाप के परिमाण के हिसाब से प्रायश्चित्त का परिमाण बतलाया गया है; किन्तु महापातक का प्रायश्चित्त नहीं बतलाया गया।

हे राजन्! भक्ष्याभक्ष्य का, वाच्य कुवाच्य का और ज्ञाताज्ञात पापों का प्रायश्चित्त ही धर्मशास्त्रों में निरूपण किया गया है। जो पाप जान बूझ कर किये जाते हैं, उनकी गणना महापातकों में की जाती है। अज्ञात पापों का पापफल अल्प माना गया है और उन्हीं पातकों के लिये धर्मशास्त्रों में

प्रायश्चित्त विधान किया गया है। शास्त्रोक्तविधि के अनुसार जो प्रायश्चित्त किया जाता है, वह पापनाशक है और उसकी विधि केवल आस्तिक और श्रद्धालु जन ही के लिये है। जो पुरुष नास्तिक अथवा श्रद्धाशून्य है, उसके लिये प्रायश्चित्त का विधान नहीं है। इस लोक और परलोक में सुखाभिलाषी धार्मिक पुरुष को, शिष्टाचरित श्रेष्ठ धर्माचरण का अनुसरण करना चाहिये।

हे राजन् ! प्राणरक्षा के लिये मैंने तुमसे जिन प्रायश्चित्तों का निरूपण किया है, उन प्रायश्चित्तों के करने से तुम मनुष्यवध के पाप से छूट जाओगे। तुमने तो आत्मरक्षा करने, धन पाने अथवा यथोचित कर्म पालन करने के लिये कौरवों का वध किया है। इस पर भी यदि तुम्हें अपने किये पर परिताप है तो तुम प्रायश्चित्त कर डालो ; किन्तु सामान्यजनोचित खेद के वशीभूत हो अपना सर्वनाश स्वयं मत करो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब व्यास जी ने धर्मराज से यह कहा, तब कुछ देर तक सोच विचार कर धर्मराज ने तपोधन व्यास जी से पुनः यह कहा।

छत्तीसवाँ अध्याय

भक्ष्याभक्ष्य मीमांसा

महाराज युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! अब आप मुझे यह भी बतलावें कि क्या खाने योग्य (भक्ष्य) है और क्या खाने योग्य नहीं (अभक्ष्य) है ? दान कौन सा श्रेष्ठ है ? दान के लिये पात्र कौन है और अपात्र कौन है ?

वेदव्यास जी बोले—हे राजन् ! इस प्रसङ्ग में, मैं तुझे एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ। इस वृत्तान्त में प्रजापति मनु और सिद्धों का वार्त्तालाप है। सृष्टि के आरम्भ में समस्त सुव्रत ऋषिगण एकत्र हो स्वस्थचित्त हो बैठे हुए प्रजापति मनु के निकट गये और उनसे धर्म का स्वरूप पूँछा।

ऋषिगण बोले—हे प्रजापते ! कुटुम्ब के भरण पोषण के लिये किस प्रकार का अन्न ले ? पात्र, दान, अध्ययन, तप तथा कार्याकार्य के लक्षण क्या हैं ?

ऋषियों के इन प्रश्नों को सुन कर, भगवान् स्वायम्भुव मनु ने कहा—मैं तुम्हें धर्म का यथार्थ स्वरूप—संक्षेप से और विस्तार से बतलाता हूँ। सुनो। शास्त्रों में जिन पापों का प्रायश्चित्त वर्णन नहीं किया गया—उनको दूर करने के लिये गायत्री जप, होम और निराहार व्रत करना चाहिये। ऐसे पुरुष को वहाँ रहना चाहिये जहाँ जपादि धर्मानुष्ठान करने वाले धार्मिक पुरुष रहते हों। ऐसा करने से पाप दूर हो जाता है। कितने ही पाप पवित्र तीर्थों में, कितने ही ब्रह्मगिरि आदि पावन पर्वतों पर जा वहाँ रहने से, सुवर्ण-प्राशन से तथा उन नदियों में स्नान करने से जिनमें रत्नादि हों—दूर होते हैं। कितने ही पाप देवदर्शन एवं घृतप्राशन से निश्चय ही नष्ट होते हैं। चिर कालीन जीवन चाहने वाले विद्वज्जन को कभी अभिमान प्रदर्शित न करना चाहिये। यदि गर्व हो तो* तप्तकृच्छ्र व्रत करे। एक बार दान दी हुई वस्तु को लौटावे नहीं, सुपात्र को दान दे, वेद का स्वाध्याय करे, तप करे, हिंसा न करे, सत्यभाषण करे, क्रोध न करे और यज्ञाचरण करे—येही धर्मकार्य हैं। देश और काल का विचार करने पर प्रसङ्गानुसार धर्माधर्म की व्यवस्था हुआ करती है। प्राणभयादि आपत्तिकालीन दशाओं को ले कर चोरी, मिथ्या-भाषण, हिंसा आदि लक्षणाक्रान्त अधर्म तो धर्म और धर्म, अधर्म हो जाता है। देशकालज्ञ विवेकी जन, ही धर्माधर्म की मीमांसा कर सकते हैं। लोकाचारविहित और वेद के मतानुसार धर्म को प्रवृत्ति रूप और निवृत्ति

---

*तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः ॥

अर्थात् औटाया हुआ दूध, घी और पानी एक एक कर नित्य पीने से और एक रात्रि उपवास करने से तप्तकृच्छ्रव्रत पूर्ण होता है। यह याज्ञवल्क्य की परिभाषा है।

रूप (अर्थात् कतिपय विधेय और कतिपय वर्जित कर्म) धर्म माने गये हैं। निवृत्ति-धर्माचरणी पुरुष मुक्ति को पाता है और प्रवृत्ति-मूलक धर्मानुष्ठान से मनुष्य को बार बार जन्म लेना और मरना पड़ता है। शुभ कर्मों का (मोक्ष प्राप्ति आदि) शुभफल और अशुभ कर्मों का फल अशुभ (खोटा) होता है। इसीसे कर्म—शुभ और अशुभ—दो श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं। इनका पता मनुष्य के खरे खोटे चरित्र से चल जाता है। देवता के निमित्त शास्त्रोक्त विधि से अपने प्राण की रक्षा के लिये तथा आवश्यक स्वामी के लिये जो हिंसा जान बूझ कर की जाती है उसका फल अशुभ न हो कर शुभ होता है। भविष्यत् में अनिष्ट करने के लिये किया हुआ कर्म तथा वह कर्म जिसका अनर्थ रूप परिणाम जगत् में प्रसिद्ध है—यदि इच्छापूर्वक किया जाय, तो ऐसे कर्मों के लिये भी प्रायश्चित्त का शास्त्रों में विधान है। क्रोधवश या मोहवश यदि कोई अपराध बन पड़े तो ऐसे दुष्कर्म का प्रायश्चित्त यह है कि दुष्कर्मकर्त्ता को कथा सुनावे, शास्त्रों के विचार सुनावे, व्रतादि करवा कर, उसके शरीर को कष्ट दे। यदि कोई ऐसा कर्म बन आवे जो अपने को प्रिय अथवा अप्रिय लगे, तो हविष्यान्न खा के मंत्रों का जप करे, तीर्थयात्रा करे और व्रतोपवास कर, प्रायश्चित्त कर डाले। ऐसा करने से पाप दूर हो जाता है। यदि कोई राजा दण्डार्ह को दण्ड न दे, तो उसकी शुद्धि के लिये राजा को तीन रात्रि उपवास करना चाहिये। यदि पुत्र कलत्र की मृत्यु से दुःखी पुरुष शोकान्वित हो किसी शस्त्रादि से आत्महत्या करने की चेष्टा करे; किन्तु मरे नहीं, तो उसे इस पापकर्म की निवृत्ति के लिये तीन रात्रि उपवास करना चाहिये। किन्तु जो पुरुष अपने जातिधर्म, आश्रमधर्म, और कुलधर्म का त्याग करता है, उसके लिये शास्त्र में कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं। यदि ऐसा पातकी पुरुष प्रायश्चित्त करना चाहे तो उसे धर्मज्ञ एवं शास्त्रज्ञ दस ब्राह्मणों को जमा कर उनसे व्यवस्था माँगनी चाहिये और वे जो बतलावें उसके अनुसार करे। तैल, मृत्तिका, छोटे छोटे कीड़े, लसोड़ा, विष, बिना

काँटे की मछली, चार पैर वाला कछुआ, जल में उत्पन्न होने वाला मेंढक, भास नामक जलपक्षी, हंस, गरुड़पक्षी, चकवा, जलमुरगाबी, बगला, काक, गोह, गिद्ध, बाज, उल्लू, आदि जीव द्विज न खावे। माँसाहारी, तीक्ष्ण दंष्ट्राओं वाले, चौपाये, ऊपर नीचे दोनों ओर चार दाँतों वाले और चार दाढ़ों वाले जीवधारी भी अभक्ष्य हैं। भेंड़, घोड़ी, गधी, ऊटनी, सद्यःप्रसूता गौ और हिरनी का दूध भी ब्राह्मणों के लिये अपेय है। राजा का अन्न तेजनाशक है, शूद्रान्न ब्रह्मतेजनाशक है, सुनार का अन्न आयुनाशक है, और पुत्र-पति-हीन स्त्री का अन्न भी आयुनाशक है, सूदखोर का अन्न विष्टा के समान है। वेश्या का अन्न इन्द्रियों के मल (वीर्य) के समान है, व्यभिचारिणी स्त्री-जित् पुरुष का अन्न भी निषिद्ध है। यज्ञदीक्षा से दीक्षित क्षत्रिय, अग्निषोमीय पशु का होम जब तक न करे, तब तक उसका अन्न ब्राह्मण को न खाना चाहिये। कायर, यज्ञ-फल-विक्रेता, मोची, बढ़ई, कुलटा स्त्री, धोबी, वैद्य, और चौकीदार का अन्न भी निषिद्ध माना गया है। नाटक में अभिनय करने वाली नारी की आय से निर्वाह करने वाले पुरुष का अन्न ग्रहण न करे। बड़े भाई के क्वारे रहते जिस छोटे भाई ने विवाह कर लिया हो तो उन दोनों भाइयों का अन्न न ले। भाट, चारण का अन्न, ज्वारी का अन्न, वामहस्त से लाया हुआ अन्न, बासी अन्न, जूठा अन्न, निषिद्ध माना गया है।

जिस अन्न में मदिरा की छींटे पड़ गयी हों, अथवा मद्यपात्र में जो अन्न रखा हो, वह भी वर्जित है। जब तक कुटुम्बी लोग न खा लें, तब तक स्वयं न खावे, आटे के, ईख के और शाकों से तैयार किये हुए आसवों को न पीवे। फटे हुए दूध से बनाये गये पदार्थों को न खावे। सत्तू, गर्मा कर कूटे हुए जौ की बोहरी, दधिमिश्रित सत्तू—ये पदार्थ यदि देर तक रखे रहे हों तो उनको न खावे। दूधपाक, तिल, चावल की खिचड़ी, मालपुए, माँस और रसीले पदार्थ यदि देवता के उद्देश से न बनाये गये हों, तो उन्हें न खावे। गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण को, देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और घर के इष्ट देवताओं को अर्पण कर के अन्न खाना चाहिये।

गृहस्थ को उचित है कि वह घर में त्यागी बन कर रहे। देवता, पितृ, अतिथि तथा घर के लोगों के भोजन कर लेने के बाद जो बचे वह खाय। जो सपत्नीक गृहस्थ इस प्रकार रहता है, वह पुण्यफल पाता है। गृहस्थ को उचित है कि वह यश के लिये दान न दे। नचैया, गवैया, भाँड़, मदमत्त, उन्मत, चोर, चुगलखोर, तेजोहीन, अङ्गहीन, बौना, दुर्जन, नीच और उपनयनादि संस्कारविहीन विप्र को सुपात्र समझ कभी दान न देना चाहिये। वेद न पढ़ने वाले मूर्ख ब्राह्मण को कभी दान न दे, क्योंकि जो दान मूर्ख ब्राह्मण को दिया जाता है वह दान, दान ही नहीं गिना जाता। ऐसा दान असत् माना जाता है। ऐसा दान देने वाला और लेने वाला दोनों पाप के भागी माने जाते हैं। खैर की लकड़ी अथवा प्रस्तरखण्ड को पकड़ कर समुद्र के पार जाने वाला पुरुष जैसे जल में डूब जाता है—वैसे ही मूर्ख ब्राह्मण को दान देने वाला दान-दाता और दान-गृहीता दोनों ही नरकगामी होते हैं। जैसे गीली लकड़ियों में लगी आग सुलग कर भी धधक कर नहीं जलती, वैसे ही तप, स्वाध्याय और चरित्रहीन और दान लेने वाला ब्राह्मण शोभा नहीं पाता। मनुष्य कपाल में भरा जल और कुत्ते की खाल में भरा हुआ दूध (स्वयं पवित्र होने पर भी पात्र दोष से) अपेय होता है, वैसे ही दुराचारी के संग से दुराचारी ब्राह्मण का शास्त्राध्ययन आश्रयदोष से दूषित हो जाता है। यदि ब्राह्मण वेदज्ञ न हो, व्रत न रखता हो और परनिन्दारत न हो, तो ऐसे ब्राह्मण को भी दान का पात्र समझना चाहिये और उस पर दया दृष्टि रखनी चाहिये। दीन, आर्त्त, रोगी पर दया कर उसे कुछ दे। यह शिष्टाचार है; किन्तु पुण्यप्राप्ति की आशा से न दे। वेदाध्ययन वर्जित ब्राह्मण को दान न दे। क्योंकि वह दान का पात्र नहीं। ऐसे को दिया हुआ दान व्यर्थ होता है। जैसे काठ का हाथी और चमड़े का मृग नाम मात्र के हाथी और मृग होते हैं, वैसे ही वेद न पढ़ा हुआ ब्राह्मण भी नाम मात्र का ब्राह्मण है। जैसे नपुंसक किसी भी स्त्री के गर्भ से सन्तान पैदा नहीं कर सकता, जैसे गाय से गाय के बच्चा नहीं हो सकता, जैसे पंख

रहित पत्ती की गणना पक्षियों में नहीं होती, वैसे ही वेदाध्ययन शून्य ब्राह्मण की गणना ब्राह्मणों में नहीं होती। वह दाता को फल नहीं दे सकता। अन्न-हीन गाँव, जलहीन कूप, भस्म में हवन किया हुआ हवि—जैसे व्यर्थ हैं; वैसे ही मूर्ख को दिया हुआ दान निष्फल होता है। मूर्ख शत्रु रूप है—क्योंकि वह हव्य कव्य दोनों का नाश करने वाला है। वह वृथा धन को छीन लेने वाला है। अतः उसे दान देने वाला परलोक प्राप्ति के योग्य नहीं होता। हे भरतसत्तम! तुमने मुझसे जो पूछा था, वह मैंने तुम्हें संक्षेप में सुना दिया। आर्यपुरुषों को यह वृत्तान्त सुनना चाहिये।

सैंतीसवाँ अध्याय

हस्तिनापुर में युधिष्ठिर का प्रवेश

युधिष्ठिर ने कहा—हे महामुने! हे भगवन्! हे द्विजवर! मैं राजधर्म और चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्मों को विस्तृत रूप से सुनना चाहता हूँ। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! आपत्तिकाल में राजा के लिये कर्त्तव्य क्या क्या है? मैं धर्मपथ का अनुसरण करता हुआ, इस पृथिवी को कैसे अपने अधीन कर सकता हूँ। उस प्रायश्चित्त का वृत्तान्त, जिसमें भक्ष्याभक्ष्य को त्याग कर, उपवास करना पड़ता है, वह तो बड़ा ही कुतूहलोत्पादक है, उसे सुन कर मैं तो बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। आपके कथित धर्माचरण और राज्यशासन तो परस्पर विरोधी हैं। अतः मैं जब इन दोनों विषयों पर विचार करता हूँ, तब मैं चक्कर में पड़ जाता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धर्मराज के इन वचनों को सुन कर वेदविदाम्बर वेदव्यास जी ने सर्वज्ञों के अग्रणी नारद जी की ओर देख कर, धर्मराज से कहा—हे महाबाहो! हे युधिष्ठिर! यदि आप धर्म व्यवस्था सुनना चाहते हैं, तो तुम्हें उचित है कि, तुम कुरुवृद्ध भीष्म पितामह के निकट जाओ। क्योंकि श्रीगङ्गानन्दन सर्वज्ञ हैं और समस्त धर्मों के ज्ञाता

हैं। धर्म सम्बन्धी तुम्हारे यावत् सन्देहों को वह दूर कर देंगे। जिस महात्मा का जन्म त्रिपथगा गङ्गा की कोख से हुआ है, जिसे इन्द्रादि समस्त देवगण का साक्षात्कार हो चुका है, उस तुम्हारे समर्थ पितामह ने बृहस्पति आदि देवर्षियों की चिरकाल तक सेवा कर, प्रसन्न किया और उनसे राजनीति का अध्ययन किया है। शुक्राचार्य एवं बृहस्पति के नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र का, व्याख्या सहित अध्ययन भीष्म कर चुके हैं। उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर, भृगुनन्दन च्यवन तथा वसिष्ठ जी से साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन किया है और ब्रह्मा जी के प्रथम मानसिक पुत्र महाकान्तिमान नारद मुनि से वे अध्यात्मशास्त्र का अध्ययन किये हुए हैं। उन्होंने मार्कण्डेय से यतिधर्म और परशुराम से तथा इन्द्र से शस्त्रविद्या सीखी है। भीष्म ने मानव योनि में जन्म ले कर भी मृत्यु को अपने अधीन कर रखा है। उनकी पवित्र कीर्ति का गान स्वर्ग तक में हुआ करता है। पवित्र चरित्र ब्रह्मर्षि उनके सभा के सभासद थे और ज्ञानयज्ञ के सम्बन्ध में उनसे कोई भी बात छिपी नहीं है। वे धर्मज्ञ हैं और धर्मार्थ के सूक्ष्म तत्वों से अभिज्ञ हैं। वे तुम्हें धर्मोपदेश करेंगे। शरीर-त्याग के पूर्व ही तुम उनके निकट जाओ।

जब वाग्विदाम्वर वेदव्यास जी ने प्रज्ञावान एवं धीमान कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर से ये वचन कहे, तब धर्मराज ने उनसे कहा—हे भगवन्! मेरे द्वारा ज्ञाति का लोमहर्षणकारी महासंहार किया गया है। मैं लोक का संहारकारी होने के कारण महापराधी हूँ। मैंने उन शुद्धान्तःकरण भीष्म को युद्ध में कपट से मरवाया है। अतः मैं किस मुँह से उनके निकट जा धर्म एवं नीति सम्बन्धी अपने संशय मिटा सकता हूँ?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन कर, चारों वर्णों के लोगों के हित के लिए महाबाहु, महाकान्तिमान यदुवर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा।

वासुदेव बोले—राजन्! अब तुम शोक मत करो और भगवान्

वेदव्यास जी के कथनानुसार कार्य करो। जैसे वर्षा काल में मेघ को स्वामी मान कर, लोग उसकी उपासना किया करते हैं, वैसे ही तुम्हारे भाई तथा महाशक्तिशाली ब्राह्मण तुम्हें अपना स्वामी मान कर, तुम्हारा सेवन करते हैं। मरने से बचे हुए राजा तथा चारों वर्णों के मनुष्य एवं तुम्हारी कुरु-जाङ्गल-देश-वासिनी प्रजा के लोग तुम्हारी सेवा शुश्रूषा करने को प्रस्तुत हैं। अतः हे शत्रुतापन! हे शत्रुनाशन! अमित-तेज-सम्पन्न गुरुवर्य व्यास जी के आदेशानुसार ऐसा कार्य कीजिये जिससे ब्राह्मणों का, तुम्हारे सुहृदों का, द्रौपदी का तथा देश के प्रजाजनों का तथा इन समस्त लोगों का कल्याण हो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब कमलनयन श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से ये वचन कहे, तब समस्त लोगों के हितार्थ उदारमना राजा युधिष्ठिर उठ खड़े हुए। हे पुरुषव्याघ्र! जब श्रीकृष्ण, वेदव्यास, देवस्थान, अर्जुन तथा अन्य अनेक पुरुषों ने राजा युधिष्ठिर को समझाया, तब उन महारथी धर्मराज ने अपने मानसिक दुःख एवं सन्ताप को त्यागा। तदनन्तर वेदज्ञ, उपनिषद एवं मीमांसाशास्त्र में दक्ष, पाण्डुनन्दन धर्मराज ने अपने कर्त्तव्य पर आरुढ़ हो, शान्ति प्राप्त की। ताराओं से जैसे चन्द्र घिरा हो, वैसे ही वेदव्यासादि से घिरे हुए युधिष्ठिर धृतराष्ट्र को आगे कर हस्तिनापुर को चल दिये। हस्तिनापुर में प्रवेश करने के पूर्व धर्मराज ने देवताओं का तथा धर्मज्ञ सैकड़ों ब्राह्मणों का पूजन किया। तदनन्तर बन्दीजनों से स्तूयमान एवं ब्राह्मणों के मंत्राशीर्वाद से युक्त धर्मराज सुन्दर चमचमाते अपने नये उस रथ पर, जिसमें सफेद रंग के सोलह बैल जुते हुए थे, बनात के अस्तर से मढ़े मृगचर्म का जिस पर परदा पड़ा हुआ था, जो चमक रहा था—वैसे ही सवार हुए; जैसे चन्द्रमा अमृतोपम रथ पर सवार होता है। उस समय भीम पराक्रमी भीमसेन ने बैलों की रासें पकड़ीं और अर्जुन ने उन पर सफेद छत्र ताना। उस समय वह सफेद छत्र आकाशस्थित ताराओं से युक्त, शुभ्र मेघ की तरह

जान पड़ता था। नकुल और सहदेव हाथ में चन्द्रवत् शुभ्र दो चवर ले धर्मराज के ऊपर डुला रहे थे।

हे राजन्! जब वे पाँचों भाई इस प्रकार सज कर रथ पर सवार हुए, तब ऐसा जान पड़ा मानों, पाँच महाभूत एकत्र हो गये हैं। मन के समान वेगवान् सफेद रंग के घोड़ों से युक्त रथ पर सवार हो युयुत्सु, धर्मराज के रथ के पीछे हो लिया था।

पाण्डवों के रथ के पीछे श्रीकृष्ण, सात्यकि सहित अपने रथ पर सवार हो आ रहे थे। श्रीकृष्ण के रथ में शैब्य और सुग्रीव नामक घोड़े जुते हुए थे। उनका रथ सुवर्ण भूषित होने के कारण ख़ूब चमक रहा था। युधिष्ठिर के पितृव्य—चाचा पालकी पर सवार हो गान्धारी सहित धर्मराज के रथ के आगे चले जाते थे। कुन्ती, द्रौपदी आदि कौरव-कुल की स्त्रियाँ अपनी पद-मर्यादा के अनुसार बढ़िया और सामान्य सवारियों पर सवार हो चली जा रही थीं। स्त्रियों का सवारियों के पीछे विदुर जी थे। उनके पीछे अनेक गज, रथ तथा अश्वारोही एवं पैदल सिपाही चले जा रहे थे। जब युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया, तब वैतालिकों, सूतों और मागधों ने युधिष्ठिर की प्रशंसा के गीत गाये। युधिष्ठिर के जलूस की शोभा अनुपम थी। इस जलूस को देखने के लिये नगर में दर्शकों की अपार भीड़ थी। अतएव उस समय बड़ा कोलाहल हो रहा था। नगरवासियों ने इस हर्षावसर पर नगर को भली भाँति सजाया था। सड़कों पर जहाँ देखो वहाँ सफेद फूल बिछे हुए थे। सड़कों के उभयपार्श्व ध्वजा पताकाओं से भूषित थे और राजमार्ग धूप से सुवासित थे। राजभवन के चारों ओर की सड़कों पर चन्दन का बुरादा डाला गया था। भाँति भाँति की पुष्प मालाओं और सुगन्धित बेलों की वंदनवारें राजभवन में लटकायी गयी थीं। नगर के भीतर प्रत्येक गृह के द्वार पर जल से भरे हुए नये घड़े रखे हुए थे, और सफेद फूल बिखेर कर गौर वर्ण की लड़कियाँ खड़ी की गयी थीं। चारों ओर धर्मराज की जय हो! जय हो!! की ध्वनि हो रही थी। इस

प्रकार से सम्हारी हुई हस्तिनापुरी में बन्धुबान्धवों सहित धर्मराज ने प्रवेश किया।

अड़तीसवाँ अध्याय

चार्वाक वध

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पाण्डवों के नगर-प्रवेश करते समय नगर में लाखों मनुष्यों की भीड़ हुई थी। जैसे चन्द्रोदय के समय सागर उमड़ता है, वैसे ही हस्तिनापुर के सुसज्जित चतुष्पथों पर जनता उमड़ी पड़ती थी। राजमार्ग के उभय-पार्श्ववर्त्ती मकानों की सजावट देखने योग्य थी। सवारी का जलूस देखने को इतनी स्त्रियाँ जमा हुई थीं कि, जान पड़ता था कि उनके बोझ से मकानों के छज्जे कहीं गिर न पड़ें। लज्जावती नागरिक स्त्रियाँ पाँचों पाण्डवों की प्रशंसा कर, कह रही थीं कि—हे कल्याणी! हे पाञ्चालराजपुत्री! सचमुच तू बड़ भागिन है। क्योंकि तू पाण्डवों की सेवा वैसे ही करती है, जैसे गौतमी सप्तर्षियों की। हे भामिनी! तेरे सत्कर्मानुष्ठान और व्रतोपवास सफल हुए। यह कह वे नारियाँ द्रौपदी की भी सराहना कर रही थीं। उन स्त्रियों के प्रशंसा-युक्त वचनों, पारस्परिक वार्तालाप तथा प्रेम पूरित वाक्यों से समस्त नगरी प्रतिध्वनित हो रही थी। जब धर्मराज की सवारी मन्दगति से नगर में होती हुई, सुसजित एवं शोभामय राजभवन के द्वार पर पहुँची, तब राज्य के अधिकारीवर्ग तथा सेनापति, सचिव, प्रधान नागरिक प्रजा प्रतिनिधि वर्ग ने धर्मराज को अभिवादन किया और उनके निकट जा, कर्णमधुर शब्दों से युक्त ये वचन कहे—हे शत्रुसंहारकारी युधिष्ठिर! सौभाग्य से आपने अपने बैरियों को हरा दिया है। और दैव आनुकूल्य, धर्मबल तथा शारीरिक बल से आपको राज्य मिला है, आप अब हम लोगों पर सौ वर्षों तक शासन करें। आप प्रजापालन वैसे ही करें जैसे स्वर्ग में देवराज इन्द्र अपनी प्रजा

का पालन किया करते हैं। इस प्रकार के शिष्टाचार के अनन्तर राजप्रासाद के द्वार पर, विप्रों ने मङ्गलाचार कर धर्मराज के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित किया और वैदिक मंत्र पढ़, उन्हें आशीर्वाद दिये। आशीर्वादों को सुनते हुए धर्मराज रथ से उतरे। श्रद्धावान एवं समरविजयी धर्मराज ने अपने इन्द्रभवन तुल्य राजभवन में प्रवेश किया। तदनन्तर राजभवन के भीतर पहुँच धर्मराज ने इष्टदेव के दर्शन किये और उनकी चन्दन पुष्पादि से पूजा कर, उनके सामने रत्नों की भेंट चढ़ायी। फिर हाथ में माङ्गलिक पदार्थ ले कर खड़े हुए ब्राह्मण के धर्मराज ने दर्शन किये। आशीर्वाद देने वाले विप्रों के बीच खड़े धर्मराज की उस समय वैसी ही शोभा हुई जैसी शोभा ताराओं से घिरे चन्द्र की निर्मलाकाश में हुआ करती है। धर्मराज ने अपने पुरोहित धौम्य और पितृव्य धृतराष्ट्र को आगे कर, विधिपूर्वक जलादि से ब्राह्मणों का पूजन किया। उनको पुष्प, मोदक, रत्न, सुवर्ण, गौएँ और वस्त्र दिये। उस समय धर्मराज के नौकर चाकर ब्राह्मणों से बड़ी विनम्रता के साथ पूँछने लगे—आपकी क्या अभिलाषा है? आपको क्या चाहिये?

तदनन्तर ब्राह्मणों ने पुण्याहवाचन का कृत्य आरम्भ किया। कर्ण-सुखदायी पुण्याहवाचन के मंत्रों को सुन कर पाण्डवों के समस्त सम्बन्धी प्रसन्न हुए और उस समय ब्राह्मणों का किये हुए पुण्याहवाचन के वैदिक मंत्रों का घोष स्वर्ग तक सुन पड़ा। वेदवेत्ता, विद्वान ब्राह्मणों की अर्थ, पद और सुन्दर अक्षरों से युक्त वाणी, हंस की तरह स्थिरचित्त हो लोगों ने सुनी थी। राजन्! पुण्याहवाचन होने के बाद विजय-सूचक दुन्दभी और शङ्खों की मधुरध्वनि सुन पड़ी। जब ब्राह्मणों का मंत्र पाठ बंद हुआ, तब ब्राह्मण वेश बनाये हुए चार्वाक नामक राक्षस ने चिल्ला कर युधिष्ठिर से कहा—चार्वाक असल में दुर्योधन का मित्र था और संन्यासी का वेश धारण कर वह ब्राह्मण मण्डली में घुस गया था। उसके गले में रुद्राक्ष की माला पड़ी थी, सिर पर उसके चोटी थी तथा हाथ में त्रिदण्ड था।

[नोट—मूल यह है—

" साक्षः शिखी त्रिदण्डी च धृष्टो विगत साध्वसः ।"

इससे जान पड़ता है कि, महाभारत के काल में त्रिदण्डी और शिखी संन्यासी होते थे। त्रिदण्ड और शिखा धारण करने की प्रथा श्रीरामानुज सम्प्रदाय में अब भी पायी जाती है—अतः यह सम्प्रदाय पुरातन है ।]

वह बड़ा ढीठ और निर्लज्ज था तथा आशीर्वाद देने वाले सहस्रों तपस्वी सुव्रत ब्राह्मण के बीच में खड़ा था। ब्राह्मणों से अनुमति लिये बिना ही वह दुष्ट, महाबली पाण्डवों की निन्दा करता हुआ धर्मराज से बोला।

चार्वाक ने कहा—(ये समस्त ब्राह्मण अपनी ओर से मुझसे कहला रहे हैं,) कि तुझे धिक्कार है, धिकार है। तू बड़ा दुष्ट राजा है। तू अपने नातेदारों की हत्या करने वाला हत्यारा है। तुझे अपने नातेदारों को मरवाने से क्या लाभ हुआ? अपने से बड़े और पूज्यजनों की हत्या कराने की अपेक्षा तो तेरा स्वयं मर जाना ही अच्छा है। उस दुष्ट के इन वचनों को सुन समस्त ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गये। वे मन ही मन उदास हो कह उठे। उस समय वे ब्राह्मण अत्यन्त लज्जित और व्याकुल हो चुपचाप खड़े थे। यही दशा महाराज युधिष्ठिर की भी थी। वे भी लज्जित और विकल हो चुपचाप खड़े हुए थे। कुछ देर बाद युधिष्ठिर ने कहा—हे विप्रो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ और आप लोगों से यह याचना करता हूँ कि, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। इस समय मैं स्वयं बहुत दुःखी हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन समस्त ब्राह्मणों ने एक स्वर से कहा—आपका मङ्गल हो। हमने इसके द्वारा अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहलाया। वेदवेत्ता और तपः द्वारा शुद्ध अन्तःकरण वाले उन महात्मा ब्राह्मणों ने ज्ञानदृष्टि से देख कर, उस दुष्ट को पहचान लिया और धर्मराज से कहा।

ब्राह्मण बोले—अरे! अरे! यह तो दुर्योधन का मित्र चार्वाक राक्षस है। यह तो संन्यासी का रूप धर, यहाँ दुर्योधन का काम साधने आया है।

हे राजन्! हम लोग आपकी भर्त्सना नहीं करते। आप और आपके भाइयों का भय दूर हो तथा आप लोगों का मङ्गल हो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर उन पवित्रमना ब्राह्मणों ने क्रुद्ध हो उस पापी राक्षस को अपमान पूर्वक हुङ्कार कर के मार डाला। जैसे बिजली गिरने पर अंकुरित वृक्ष जल कर भस्म हो जाता है, वैसे ही वेदवेत्ता ब्राह्मणों के तेज से चार्वाक राक्षस जल कर भस्म हो गया। तदनन्तर धर्मराज ने ब्राह्मणों का पूजन किया। पूजा ग्रहण कर और राजा को आशीर्वाद दे वे समस्त ब्राह्मण वहाँ से चल दिये और धर्मराज युधिष्ठिर तथा उनके सगे नातेदार हर्षित हुए।

उनतालीसवाँ अध्याय

चार्वाक का वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भाइयों सहित विराजमान युधिष्ठिर से सर्वदर्शी देवकीनन्दन श्रीकृष्ण कहने लगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे तात! इस संसार में ब्राह्मण मेरे पूज्य हैं। क्योंकि वे भूदेव हैं; किन्तु उनकी वाणी में विष है और वे सहज ही में प्रसन्न होने वाले हैं। हे महाबाहो! पूर्वकाल में सत्ययुग में चार्वाक नामक एक राक्षस हो गया है। उसने बदरिकाश्रम में रह कर, चिरकाल तक तप किया था, उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ब्रह्मा ने उससे वर माँगने के लिये बारंबार कहा। तब उसने समस्त प्राणियों की ओर से अभयदान माँगा। इस पर ब्रह्मा ने उसे यह वर दिया कि, तू समस्त प्राणियों से तो अभय किया जाता है, किन्तु ख़बरदार ब्राह्मणों का अपमान कभी मत करना। अमित पराक्रमी, महाबली और भीमकर्मा वह पापी राक्षस, ब्रह्मा जी से वर प्राप्त कर, देवताओं को भी कष्ट देने लगा। उसके बल से ब्रह्मा जी को भी हार

माननी पड़ी। तब वे जुड़ बटुर कर ब्रह्मा जी के निकट गये और उस राक्षस का नाश करने के लिये ब्रह्मा जी से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुन कर ब्रह्मा जी ने उनसे कहा—मैंने प्रबन्ध कर दिया है। कुछ ही दिनों पीछे वह जायगा। मर्त्यलोक में दुर्योधन नामक राजा से उस राक्षस की मैत्री होगी, उस मैत्री के अनुरोध से चार्वाक, ब्राह्मणों का तिरस्कार करेगा। तब वाग्बल से सुसम्पन्न ब्राह्मण, चार्वाक द्वारा अपमानित हो क्रोध करेंगे और उस पापी को नष्ट कर डालेंगे।

श्रीकृष्ण कहने लगे—हे राजेन्द्र! ब्राह्मणों के शाप से निर्जीव हो पृथिवी पर पड़ा हुआ यह वही चार्वाक राक्षस है, तुम किसी बात का सोच मत करो। तुम्हारे जो नातेदार युद्ध में मारे गये हैं, वे सब क्षात्र धर्मानुसार मर कर स्वर्गवासी हुए हैं। हे दृढ़मना! अब तुम शोक को त्याग कर राजधर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो अर्थात् शत्रुओं का नाश कर प्रजा का पालन करो तथा विप्रों का सन्मान करो।

चालीसवाँ अध्याय

धर्मराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

वैशम्पायन जी बोले—राजन्! जब श्रीकृष्ण जी ने इस प्रकार समझाया; तब शोक को त्याग और हर्षित हो सोने के एक सुन्दर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बैठ गये। उनके सिंहासन जैसे दो सुन्दर सिंहासन उनके सामने बिछाये गये, जिन पर शत्रुदमनकारी सात्यकि और श्रीकृष्ण बैठे गये। राजसिंहासन के अगल बगल रत्नजटित दो कोमल आसन थे, जिनके ऊपर महाबली भीम और अर्जुन बैठे। दूसरी ओर हाथी दाँत के काम के सुवर्णनिर्मित दो शुभ्र सिंहासनों पर नकुल और सहदेव के साथ कुन्ती बैठी। कौरवों के पुरोहित सुधर्मा, विदुर, पाण्डवों के पुरोहित धौम्य, कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र, अग्नि की समान कान्तिमान् सुवर्ण सिंहासनों पर बैठे।

युयुत्सु, सञ्जय सहित यशस्विनी गान्धारी वहाँ आ बैठी जहाँ राजा धृतराष्ट्र बैठे हुए थे। राज्याभिषेक का कृत्य आरम्भ होने पर सिंहासनासीन युधिष्ठिर ने सफेद रङ्ग के पुष्प, स्वस्तिक, अक्षत, पृथिवी, सुवर्ण, चाँदी और मणियों को हाथ से छुआ। तदनन्तर समस्त प्रजाजन, राजपुरोहित धौम्य को आगे कर और हाथों में माङ्गलिक पदार्थों को लिये हुए दर्शनार्थ राजा युधिष्ठिर के आगे गये, मिट्टी, सोना, विविध प्रकार के रत्न, सर्वोषधि युक्त अभिषेक जल से भरा घट, जल पूरित मिट्टी, चाँदी और तांबे के पात्र, पुष्पमालाएँ, धान की खीलें (लावा) मयूरपंख, गोरस, शमी, पीपल, ढाक, समिधा, शहद घी, गूलर की लकड़ी का स्रुवा और सोने से मढ़ा शङ्ख, आदि अभिषेकोपयोगी समस्त सामग्री एकत्रित की गयी, तदनन्तर श्रीकृष्ण की आज्ञा और शास्त्रोक्त विधि से धौम्य ने पूर्व और उत्तर हवन करने के लिये ढलवा वेदी बनायी। फिर द्रौपदी सहित युधिष्ठिर को सर्वतोभद्र आसन पर बिठाया। यह सर्वतोभद्र आसन प्रज्वलित अग्नि जैसी कान्ति वाला था और उसके ऊपर एक व्याघ्राम्बर बिछा हुआ था, महाराज युधिष्ठिर तथा द्रौपदी को सर्वतोभद्र आसन पर बिठा, पुरोहित धौम्य ने वैदिक मंत्रों से यथाविधि घृत की आहुतियाँ दीं। होम समाप्त होने पर, पाञ्चजन्य शङ्ख में जल भर धौम्य ने उस जल से धर्मराज का अभिषेक किया। तदनन्तर श्रीकृष्ण के कथनानुसार उसी जल से धृतराष्ट्र एवं मंत्रियों ने युधिष्ठिर का अभिषेक किया। पाञ्चजन्य शङ्ख में भरे जल से अभिषिक्त राजा युधिष्ठिर और उनके भाई बड़े सुन्दर जान पड़ते थे, उसी समय मङ्गलवाद्य नगाड़े, नफीरी, झाँझ, बजाये गये। तदनन्तर प्रजाजनों की भेंटे धर्मराज ने लीं। भेंटे देने वाले प्रजाजनों का धर्मराज़ ने यथोचित सत्कार किया, फिर वेदाध्यायी, धृतिवान् एवं शीलवान ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवा, उनमें से प्रत्येक को दक्षिणा में एक एक सहस्र अशरफियाँ दीं। तब उन ब्राह्मणों ने हर्षित हो हंस जैसे मधुर स्वर से धर्मराज को आशीर्वाद दिये आपका मङ्गल हो, आपका जय हो। वे लोग धर्मराज की सराहना करते हुए बोले—हे महाबाहो! हे राजा

युधिष्ठिर ! हे पाण्डुपुत्र ! सौभाग्य से आप विजयी हुए हैं और निज पराक्रम से निज धर्म की आपने रक्षा की है। सौभाग्य ही से आप भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव सकुशल रहे हैं। वीर-संहारकारी उस भीषण महासमर में वैरियों को परास्त कर, आप अक्षत रहे हैं। अब आप आगे के कार्य शीघ्र सुसम्पन्न कीजिये। इस प्रकार शिष्टाचार हो जाने पर भद्र लोगों ने धर्मराज के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। नाते रिश्तेदारों की सहायता से धर्मराज युधिष्ठिर एक विशाल राज्य के राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

इकतालीसवाँ अध्याय

राज्य का प्रबन्ध

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब राज्याभिषेक-क्रिया सुसम्पन्न हो चुकी, तब देश और काल के अनुरूप प्रजाजनों के वचनों को सुन कर, कहने लगे—हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! पाण्डव सचमुच बड़े भाग्यशाली हैं। यदि ऐसा न होता तो तुम लोग एकत्र हो इस प्रकार उनके खरे खोटे गुणों का गान न करते। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, मैं कह सकता हूँ हम लोग सचमुच उन लोगों की कृपा के पात्र हैं। क्योंकि तुम लोग निष्कपट भाव से हम लोगों को गुणवान बतला रहे हो। यह महाराज धृतराष्ट्र हमारे पिता हैं। अतः ये हमारे सर्वोपरि देवता हैं। जो लोग अब ऐसे काम करना चाहते हैं, जो हमें रुचिकर हों उन्हें उचित है कि, वे हमारे आज्ञानुवर्ती बने रहें और महाराज धृतराष्ट्र को प्रसन्न रखें। अपने नातेदारों और रिश्तेदारों की एक बड़ी भारी संख्या का संहार करने के बाद मैं शेष हूँ सो इन्हींके लिये मेरा अब यह परम कर्त्तव्य है कि, मैं सदा सावधान रह कर, इनकी सेवा करूँ। तुम और मेरे अन्य सम्बन्धी जो मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहें, उनके प्रति मेरा यह विनम्र निवेदन है कि वे लोग राजा धृतराष्ट्र के साथ पूर्ववत् भक्तिभावमय व्यवहार करें, क्योंकि

महाराज धृतराष्ट्र सारे जगत् के तथा तुम सब के और हम सब लोगों के राजा हैं। यह सम्पूर्ण पृथिवी और हम सब पाण्डव भी इन्हींके हैं। मेरे इस कथन को तुम लोग अपने हृदयपटल पर भली भाँति अङ्कित कर लो।

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर ने फिर कहा—अब आप लोग निज स्थानों को जा सकते हैं। यह कह धर्मराज ने देशवासियों और नगर-निवासियों को विदा किया। तदनन्तर युधिष्ठिर ने भीमसेन को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। महाराज युधिष्ठिर ने हर्षित हो बुद्धिमान विदुर को प्रधान राजकीय परामर्शदाता और *परराष्ट्रीय विभाग का अधिपति बनाया। निश्चित और अनिश्चित आय और व्यय के नियंत्रण के लिये सर्व-गुण-सम्पन्न एवं वृद्ध सञ्जय को नियुक्त किया। समरसचिव के पद पर नकुल नियुक्त किये गये और उनको सैनिक की गणना, उनके भोजनों की व्यवस्था और उनकी नियुक्ति वियुक्ति तथा उनकी देखभाल का काम सौंपा गया। परराष्ट्रों पर आक्रमण करने का तथा दुष्टों के दमन करने का कार्य अर्जुन को सौंपा गया। दानाध्यक्ष के पद पर राजपुरोहित धौम्य नियुक्त किये गये और उनको ब्राह्मणों की एवं देवपूजनादि कार्यों की देख भाल का और शान्ति पौष्टिक कर्मों की व्यवस्था कराने का कार्य सौंपा गया। सहदेव को धर्मराज ने (अपना एडीकांग बना) सदा साथ रह कर, राजा की रक्षा का काम सौंपा। महाराज युधिष्ठिर ने योग्यतानुसार पुरुषों को काम सौंप दिये। विदुर, सञ्जय और महाधीमान् युयुत्सु से धर्मात्मा एवं धर्मवत्सल परन्तप युधिष्ठिर ने कहा—आपको उचित है कि आप मेरे पिता धृतराष्ट्र का जो कुछ काम हो वह सावधानतापूर्वक करते रहें। क्या पुरजनवासी और क्या देशवासी जनों के जो कुछ भी कार्य हों, उनको भी आप लोग आपस में विभक्त कर, मेरे पूज्य महाराज धृतराष्ट्र के आज्ञानुवर्त्ती बने रहें।

---

* परराष्ट्र विभाग में छः कार्य मुख्य होते हैं—यथा, १ सन्धि, २ विग्रह, ३ यान, ४ आसन, ५ संश्रय और ६ द्वैधीभाव।

बयालीसवाँ अध्याय

कृतज्ञता प्रकाश

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! तदनन्तर उदारमना राजा युधिष्ठिर ने महासमर में मारे गये अपने नातेदारों का श्राद्धकर्म अलग अलग करवाने का प्रबन्ध किया। राजा धृतराष्ट्र ने अपने मृत पुत्रों का श्राद्ध कर्म कर, ब्राह्मणों को इच्छा भोजन करवाये और दान में गौएँ, धन और बहुमूल्य विविध रत्न दिये। द्रौपदी सहित महाराज युधिष्ठिर ने द्रोण, कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, घटोत्कच, विराट् आदि राजा, उपकारपरायण निज नातेदारों राजा द्रुपद और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का श्राद्ध किया और पिण्ड-दान किया।

[नोट—यज्ञादि कर्मों की तरह सस्त्रीक बैठ कर पुरुष के लिये श्राद्ध कर्म करने की विधि शास्त्रों में नहीं पायी जाती और न सस्त्रीक बैठ कर श्राद्ध करने की प्रथा ही प्रचलित है। तब महाभारत-कार ने यह क्यों लिखा

"द्रुपदद्रौपदेयानां द्रौपद्या सहिता ददौ।"

इस शङ्का का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि, द्रौपदी के विद्यमान रहते महाराज युधिष्ठिर को द्रौपदी के पिता भाई और भतीजों का श्राद्ध और पिण्डदान करने का अधिकार न था—अतः युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी ने भी अपने मातृकुल के मृत सम्बन्धियों का श्राद्ध किया था।]

मृत वीरों में से प्रत्येक वीर के आत्मा की सद्गति के लिये सहस्रों ब्राह्मण, गोदान, धनदान, और रत्नदान द्वारा तृप्त किये गये। इनके अतिरिक्त जो राजा निःसन्तान युद्ध में मारे गये थे अथवा जिनके पीछे कोई भी श्राद्ध कर्म करने वाला नहीं रह गया था—उन राजाओं के श्राद्ध भी महाराज युधिष्ठिर ही ने किये। इतना ही नहीं मृत वीरों के स्मरणार्थ और कल्याणार्थ अनेक अन्नसत्र और धर्मशालाएँ, पानशालाएँ (प्याऊँ)

और तालाब भी उनके नामों पर स्थापित किये गये। इस प्रकार उन वीरों के श्राद्धादि कर्म कर, महाराज युधिष्ठिर उनके ऋण से मुक्त हुए और अपने को लोगों की दृष्टि में निर्दोष बनाया। राजा युधिष्ठिर धर्मानुसार प्रजापालन कर, कृतकृत्य हुए। वे पूर्ववत् ही धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर का सम्मान किया करते थे। उन्होंने समस्त मान्य कौरवों और राज्याधिकारियों का सत्कार किया। जिन कुरुवंशियों की ललनाओं के पति और पुत्र मारे गये थे, उनके जीवननिर्वाह का भी यथोचित प्रबन्ध धर्मराज ने किया। ग़रीबों, अंधों और दुःखियों के रहने के घर, पहनने को वस्त्र और भोजन के लिये अन्नप्रदान कर, धर्मराज ने आग्रहपूर्वक उनका पालन पोषण किया। सारांश यह कि दयालुहृदय महाराज युधिष्ठिर ने राजसिंहासन पर बैठ दयावश हो, सब पर अनुग्रह किया। महाराज युधिष्ठिर, समस्त पृथिवी को जीत कर, शत्रुऋण से उऋण हुए और निष्कण्टक हो सुख से दिन बिताने लगे।

तैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! राज्याभिषेक का कार्य समाप्त होने पर शुद्धमना एवं महाबुद्धिमान महाराज युधिष्ठिर ने, दोनों हाथ जोड़ कर, कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण! आपके अनुग्रह, आपके नीतिचातुर्य, आपके बल, आपकी बुद्धिमत्ता एवं पराक्रम से मैंने अपने पूर्वजों के इस साम्राज्य को पुनः हस्तगत कर लिया है। हे पुण्डरीकाक्ष! हे शत्रुदमन! अतः आपको बारंबार मैं प्रणाम करता हूँ। सुव्रत ब्राह्मण आपको अद्वितीय पुरुष और सात्वतों के पति कहते हैं। यही नहीं आपको अनेक नामों से पुकारते और आपका स्तव करते हैं। आप ही विश्वकर्मा, आप ही विश्वात्मा और आप ही विश्व को उत्पन्न करने वाले हैं।

आप ही विष्णु हैं, आप ही जिष्णु हैं, आप ही हरि हैं, आप ही कृष्ण हैं, आप ही वैकुण्ठ हैं और आप ही पुरुषोत्तम हैं। आपको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। यद्यपि आप पुराणपुरुष हैं, तथापि आप अदिति के गर्भ से* सात बार जन्म ले चुके हैं। विद्वान् आपको तीन युगल रूपों में वर्णन करते हैं—अर्थात् १ धर्म और ज्ञान, २ वैराग्य और ऐश्वर्य, ३ श्री और यश। आप पवित्र कीर्ति वाले (शुचिश्रवा) हैं। आप इन्द्रियों के प्रेरक (हृषीकेश) हैं। आप यज्ञपुरुष (घृतार्चि) हैं। आप हंस हैं। आप त्रिनेत्र शम्भु और एक मूर्तिरूपी हैं। आप सर्वव्यापक (विभु) और आप ही दामोदर हैं। आप वराह, अग्नि, सूर्य, धर्म, गरुड़ध्वज, शत्रु-सैन्य-विध्वंसक शिपिविष्ट पुरुष हैं। आप सब के शरीरों में प्रवेश करने वाले महापराक्रमी, उत्तम मूर्तिधर, सेनाग्रणी, सत्यस्वरूप, अन्नदाता (वाजसनि), देवसेनापति (गुह) अच्युत, शत्रुसंहारकारी, विप्ररूप, अनुलोम, प्रतिलोम, जातिरूप, संन्यासिरूप, यज्ञरूप इन्द्र के गर्वनाशक, हरिहर मूर्ति, सिन्धुरूप, निर्गुण, पूर्व-उत्तर-ईशान नामी दिशारूप, सूर्य-अग्नि चक्ररूप और स्वर्ग में भी अवतीर्ण होने वाले हैं। आप सम्राट्, विराट्, स्वराट् देवराट्, संसार को उत्पन्न करने वाले, व्यापक, सत्तारूप, वपुहीन (पाञ्चभौतिक शरीर रहित और दिव्य शरीर युक्त), कृष्ण और यज्ञ प्रवर्त्तक हैं। आप अपने को रचने वाले, देववैद्य अश्विनीकुमारों के पिता हैं। आप कपिल मुनि, वामन, यज्ञ, ध्रुव, सूर्य और यज्ञसेन हैं। आप शिखण्डी, नहुष, बभ्रु, हैं। आप आकाशस्पर्शी पुनर्वसु हैं। आप सुबभ्रु (बिलकुल पीले) हैं। आप रुक्म-यज्ञ, सुषेण, उदार, काल चक्र, और श्रीपद्म हैं। आप पुष्कर मेघरूप हैं। आप पुष्पों के धारण करने वाले, सम्पत्तिशाली (ऋतु) व्यापक, (विभु) और सूक्ष्मदर्शी हैं। आप सुन्दर चरित्रों वाले हैं। वेद आप ही के गुण गाता है। आप

---

* सातों जन्मों के नाम हैं—१ आदित्य, २ वामन, ३ पृश्निगर्भ, ४ परशुराम, ५ दाशरथि श्रीरामचन्द्र, ६ बलराम और ७ श्रीकृष्ण।

जलनिधिरूप हैं, ब्रह्मा हैं। आप पवित्रधाम और हिरण्यगर्भ हैं। स्वधा, स्वाहा, केशव आदि नामों से लोग जिनका स्तव किया करते हैं, वे आप ही हैं। हे कृष्ण! आप ही इस जगत् की उत्पत्ति और इस जगत् का लय, करने वाले हैं। आप ही द्वारा सृष्टि के आरम्भ में इस जगत् की रचना की जाती है। हे विश्वयोनि! हे शार्ङ्गधर! हे सुदर्शनधर! हे खड्गधर! यह सचराचर विश्व आपके अधीन है। हे कृष्ण! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार जब धर्मराज ने भरी सभा में श्रीकृष्ण की स्तुति की तब यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने प्रसन्न हो विविध वाक्यों से धर्मराज की प्रशंसा की

चौवालीसवाँ अध्याय

कौरवों के राजप्रासाद में पाण्डव

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब युधिष्ठिर ने दरबार विसर्जित किया, तब सब दरबारी अपने अपने निवासस्थानों को चले गये। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर ने, भीमपराक्रमी भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव को सान्त्वना प्रदान कर, उनसे कहा—महासमर में शत्रुओं के विविध शस्त्रों के प्रहार से तुम लोगों के शरीर क्षत विक्षत हो गये हैं। तुम लोग लड़ते लड़ते थक गये हो और शोक तथा क्रोध से सन्तप्त हो रहे हो। तुमने मेरी भूल के पीछे सामान्य जनों की तरह वास कर वन में बड़े बड़े कष्ट सहे हैं; किन्तु अब तुम लोग हर्षित हो, सुख के साथ, विजय लाभ के सुखों को भोगो, विश्राम करो और वर्त्तमान परिस्थिति का ज्ञान सम्पादन करो। मैं तुमसे कल फिर मिलूँगा। तदनन्तर महाराज धृतराष्ट्र की अनुमति से राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन के रहने का राजभवन, रहने के लिये, भीमसेन को दिया। यह राजभवन बड़ा सुन्दर था, इसमें कमरे बहुत से थे। इसकी सजावट विविध प्रकार के रत्नों से की गयी थी। उसमें बहुत से

दास और दासियाँ काम काज किया करती थीं। भीमसेन ने उस राजभवन में वैसे ही प्रवेश किया, जैसे देवराज इन्द्र अपने भवन में प्रवेश करते हैं। दुर्योधन के राजमहल की टक्कर ही का राजभवन, उसके भाई दुःशासन का था। उसमें भी बहुत से कमरे थे और उसके सिंहाद्वार पर सोने की बन्दनवारें लटक रही थीं। उसमें धन धान्य का अटूट भाण्डार था। उसमें अगणित दास दासियाँ काम करते थे। दुःशासन का वह महल महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से अर्जुन को रहने के लिये दिया गया।

दुर्मर्षण का राजभवन, दुःशासन के राजभवन से भी बढ़ कर और कुबेरभवन जैसा था। वह मणियों और सुवर्ण से सजाया गया था। सुख भोगने योग्य उन नकुल को यह भवन धृतराष्ट्र की अनुमति से दिया गया, जिन्होंने वनवास के समय अनेक कष्ट भोगे थे। दुर्मुख का राजभवन युधिष्ठिर ने अपने परम-हितैषी सहदेव को दिया। इसमें भी सुवर्णमय सामानों की सजावट थी और वह कमलनयनी प्रमदाओं के शयनगृहों से परिपूर्ण था। जैसे कुबेर को कैलास पाने पर हर्ष हुआ था वैसे ही सहदेव को यह राजभवन पा कर प्रसन्नता हुई।

हे राजन्! तदनन्तर युयुत्सु, विदुर, सञ्जय, सुधर्मा और राजपुरोहित धौम्य अपने अपने घरों को चले गये। सात्यकि सहित श्रीकृष्ण जी, अर्जुन के भवन में वैसे ही गये; जैसे सिंह गुफा में जाता है। अन्य समस्त राजा लोग भी अपने अपने आवासस्थानों को चले गये। फिर वे खा पी कर आराम से सोये। अगले दिन सवेरा होते ही वे हर्षित होते हुए जागे और युधिष्ठिर की सेवा में आ उपस्थित हुए।

पैतालीसवाँ अध्याय

राज्य व्यवस्था

जनमेजय ने पूछा—हे वैशम्पायन ! दीर्घबाहु धर्म-पुत्र युधिष्ठिर ने राजसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् जो जो कार्य किये हों, वे सब आप मुझे सुनावें । हे ब्रह्मन् ! त्रैलोक्यगुरु वीरवर श्रीकृष्ण ने भी जो जो कार्य किये हों, उनका भी वर्णन आप करें ।

वैशम्पायन जी बोले -- हे अनघ ! हे राजेन्द्र ! पाण्डवों ने शत्रुओं को जीतने के बाद श्रीकृष्ण को आगे कर और क्या क्या कार्य किये, वे सब ज्यों के त्यों मैं सुनाता हूँ । सुनो । हे महाराज ! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त करने के बाद चारों वर्णों को उनकी योग्यता के अनुसार, अलग अलग पदों पर नियत किया । महाराज युधिष्ठिर ने एक सहस्र महात्मा स्नातक ब्राह्मणों में से प्रत्येक को एक एक सहस्र सुवर्णमुद्रा (अशरफियाँ) दान में दीं । फिर अपने आश्रित नौकरों चाकरों, अतिथियों तथा पंथ्य एवं रक्षणीय लोगों को मुँहमाँगा पदार्थ दे कर, उनकी कामनाएं पूरी कीं । धर्मराज ने अपने राजपुरोहित धौम्य को दस हज़ार गायें, सुवर्ण, चाँदी और विविध प्रकार के वस्त्र दिये । धर्मराज ने कृपाचार्य के साथ वैसा ही बर्ताव किया जैसा कि, वे आचार्य द्रोण के साथ किया करते थे, सदाचारी युधिष्ठिर ने विदुर का पूज्यजनोचित सम्मान किया । धर्मराज ने आश्रित जनों को भाँति भाँति के भक्ष्य भोज्य पेय आदि पदार्थ, तरह तरह के वस्त्र, शय्या, आसनादि दे कर तुष्ट किया । धर्मराज ने जो धन एकत्र किया था, उसका उन्होंने सदुपयोग किया । यशस्वी युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्र युयुत्सु की भी खूब ख़ातिरदारी की । धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर को वह राज्य दे कर, राजा युधिष्ठिर स्वस्थ हो, सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे ।

हे राजन् ! इस प्रकार समस्त नगरनिवासियों को प्रसन्न कर, युधिष्ठिर

ने श्रीकृष्ण के पास गमन किया और उनके निकट पहुँच धर्मराज हाथ जोड़ खड़े हो गये। उस समय सुवर्ण-भूषित एवं मणिखचित एक पर्यङ्क पर, श्याममेघ घटा की तरह श्यामकान्ति सम्पन्न श्रीकृष्ण बैठे हुए थे। धर्मराज ने श्रीकृष्ण के दर्शन किये। उस समय दिव्य तेज से सम्पन्न श्रीकृष्ण तेजोमय देख पड़ते थे। दिव्य आभूषणों से सजे हुए और पीताम्बर पहने हुए होने के कारण वे सोने की अँगूठी में जड़े हुए नीलम की तरह जान पड़ते थे। उनका वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि से शोभित था। उन श्रीकृष्ण के निकट जा कर राजा युधिष्ठिर ने मुसक्या कर और मन्द स्वर से कहना आरम्भ किया, जिनके समान तीनों लोकों में कुछ भी नहीं है।

युधिष्ठिर बोले—हे बुद्धिमतांवरिष्ठ! हे श्रीकृष्ण! रात में आप सोये तो अच्छी तरह? हे अच्युत! आपकी समस्त इन्द्रियाँ सुप्रसन्न तो हैं? हे महाबुद्धिमान्! आपकी बुद्धि तो स्थिर है? हे पराक्रमी! आप ही के अनुग्रह से हमें राज्य मिला है और यह पृथिवी हमारी अधीनता में आयी है। आप ही की कृपा से हमें सर्वोत्तम विजय और सर्वोत्तम यश मिला है। आप ही के अनुग्रह से हम धर्मभ्रष्ट नहीं होने पाये।

इस प्रकार अनेक वचन शत्रु-दमन-कारी महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहे; किन्तु श्रीकृष्ण ने धर्मराज की इन बातों का कुछ भी उत्तर न दिया, वे ध्यान में मग्न जहाँ के तहाँ बैठे रहे।

छियालीसवाँ अध्याय

भीष्म का यशवर्णन

जब धर्मराज ने देखा कि, श्रीकृष्ण ध्यान में मग्न हैं, तब वे बोले—हे अपारपराक्रमी भगवन्! आप महाआश्चर्यप्रद कौन सा ध्यान कर रहे हैं। हे लोकपरायण! तीनों लोकों का मङ्गल तो है? तीन अवस्थाओं अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे ध्यानमार्ग का आपने आश्रय लिया है

और* तीनों शरीरों से परे आप चले गये हैं। अतः मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे गोविन्द! शरीर में व्याप्त और पाँच प्रकार की क्रियाओं से सम्पन्न वायु को तथा क्रियाशील पाँचों इन्द्रियों को आपने अपने अधीन कर रखा है। आपने इन्द्रियों सहित मन को बुद्धि में स्थापित किया है। आपने शब्दादि को और उनके अधिष्ठातृ देवताओं को जीवात्मा में स्थापन किया है। हे माधव! आपका एक रोम भी तो नहीं हिलता। आपकी बुद्धि और आपका मन स्थिर हो गये हैं। आप काष्ठ, दीवाल अथवा शिला की तरह चेष्टारहित हो रहे हैं। जैसे निर्वात स्थान में दीपक की लौ स्थिर भाव से जलती रहती है, वैसे ही हे भगवन्! आप भी पत्थर की तरह निश्चल हो गये हैं। हे देव! यदि आप मुझे अधिकारी समझें और यदि इसमें कोई गोपनीय रहस्य न हो तो आप मेरे सन्देह को दूर कर दें। मैं आपके शरण हूँ और आपसे याचना करता हूँ।

हे पुरुषोत्तम! आप कर्त्ता, विकर्त्ता, क्षर, अक्षर, आदि-अन्त-रहित और सब के आदिपुरुष हैं। मैं आपके शरण में आया हूँ। आपका अनन्य भक्त हूँ और सीस नवा कर आपको प्रणाम करता हूँ। आप अपने इस ध्यान का मुझे यथार्थ तत्त्व बतला दें।

राजा युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन कर एवं मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने अपने स्थानों पर स्थित कर, भगवान् उपेन्द्र श्रीकृष्ण मुसक्याते हुए कहने लगे।

वासुदेव ने कहा—हे धर्मराज! बुझी हुई आग की तरह शर-शय्या-शायी पुरुषव्याघ्र भीष्म जी मेरा ध्यान कर रहे हैं। अतः इस समय मेरा मन उनके निकट था। जो धनुष की डोरी से वज्र जैसा टंकार शब्द निकालते थे, उन भीष्म के निकट मेरा मन गया हुआ था। काशी में समस्त राजाओं को परास्त कर, काशिराज की अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नाम्नी कन्याओं को, विचित्रवीर्य के साथ विवाह करने के लिये जिन भीष्म

* स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीन प्रकार के शरीर माने गये हैं।

ने हरा था। उन्हींके निकट मेरा मन गया हुआ था। जो भीष्म तेईस दिन तक परशुराम के साथ लड़े थे और जिन्हें परशुराम हरा नहीं सकते थे, उन्हीं भीष्म के निकट मेरा मन था। भीष्म इन्द्रियों और बुद्धि सहित मन को जीत कर, मेरे शरण हुए थे। अतः मैं मन द्वारा उनके निकट गया हुआ था। जो भीष्म, गङ्गादेवी की कोख से जन्मे थे और जिनको अपना शिष्य मान वसिष्ठ ने शिक्षा दी थी, उन भीष्म के निकट, मैं मन द्वारा गया हुआ था। जो महातेजस्वी एवं बुद्धिमान् भीष्म, दिव्यास्त्र धारण करने वाले हैं और साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों का अध्ययन किये हुए हैं, उनके निकट मैं इस समय मन से गया हुआ था। हे युधिष्ठिर! जो जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी के प्रिय शिष्य हैं, जो समस्त विद्याओं के आधार हैं, उन भीष्म के पास मेरा मन गया हुआ था। हे राजन्! जो भीष्म भूत, भविष्यत् और वर्तमान-तीनों कालों की बातों के ज्ञाता हैं, उन्हीं धर्मज्ञश्रेष्ठ के निकट इस समय मेरा मन था। भीष्म जी अपने कर्मों से इस धराधाम को त्याग कर, जब स्वर्ग सिधारेंगे, तब यह पृथिवी वैसे ही तेजरहित हो जायगी, जैसे चन्द्रमा के अस्त होते ही, रात्रि निस्तेज हो जाती है। अतएव हे युधिष्ठिर! भीमपराक्रमी गङ्गा-नन्दन भीष्म जी के निकट तुम जाओ और उनके चरणयुगल का स्पर्श कर, अपने मन के सन्देह दूर कर डालो। तुम्हें उचित है कि, तुम भीष्म जी से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का रहस्य पूँछो। होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा सहित यज्ञादि क्रिया का तत्त्व पूँछो। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामक चारों आश्रमों के विशेष धर्मों तथा राजधर्मों को तुम भीष्म जी से जाकर पूँछो। भीष्म धर्म-धुरन्धर हैं। उनके मरते ही समस्त ज्ञान अस्त हो जायगा। अतः मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम भीष्म के निकट जाओ।

श्रीकृष्ण के इन उत्तम वचनों को सुन कर धर्मज्ञ युधिष्ठिर गद्गद् हो गये और बोले—माधव! आप द्वारा कथित भीष्म के प्रभाव को मैं भली भाँति जानता हूँ। मुझे इसमें तिल बराबर भी सन्देह नहीं है। भीष्म

के सौभाग्य, उनके प्रभाव और उनके यश को गाने वाले महात्मा ब्राह्मणों के मुख से मैं भीष्म पितामह की महिमा सुन चुका हूँ। हे शत्रुनाशन! हे जगदुत्पत्ति-कारण! आपका वचन सत्य है। हे यादवनन्दन! आपकी आज्ञा मुझे सर्वथा मान्य है। यदि आप मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं, तो मैं आपको अपना अग्रणी बना कर भीष्म पितामह के निकट जाना चाहता हूँ। उत्तरायण सूर्य होने पर भीष्म महाप्रस्थान करेंगे। अतः आप उनके निकट चल उन्हें दर्शन दें, क्योंकि आप आदिदेव, चर और अचर रूप हैं। भीष्म को आपके दर्शन का होना, उनके लिये बड़े लाभ की बात है, क्योंकि आप ज्ञान के भाण्डार हैं और परब्रह्म हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धर्मराज के इन वचनों को सुन निकट बैठे हुए सात्यकि से श्रीकृष्ण ने कहा—मेरा रथ तैयार करवाओ। यह सुन कर झट सात्यकि उठा और दारुक के निकट जा शीघ्र श्रीकृष्ण का रथ तैयार करने को कहा। तब दारुक ने तुरन्त श्रीकृष्ण का रथ जोत कर तैयार किया। वह रथ सुवर्णजड़ित होने से बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। रथ के अगले और पिछले भागों में मरकतमणियाँ, सूर्यकान्तमणियाँ और चन्द्रकान्तमणियाँ जड़ी हुई थीं। उसके पहियों पर भी सुनहला काम था। सूर्यरश्मियों की तरह चमकती हुई कान्ति वाला, तेज़ दौड़ने वाला, और सद्यः उदय हुए सूर्य की तरह चमकने वाला, श्रीकृष्ण का रथ बड़ा शोभायमान जान पड़ता था। रथ के ऊपर फहराती हुई ध्वजा पर गरुड़ विराजमान थे। उस रथ पर जगह जगह अनेक पताकाएँ फहरा रही थीं। इसमें सुनहले साज से सजे हुए सुग्रीव, शैब्य आदि चार घोड़े जुते हुए थे। ऐसे रथ को दारुक ने श्रीकृष्ण के निकट ला उपस्थित किया और स्वयं उनके आगे हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

सैंतालीसवाँ अध्याय

भीष्म-स्तवराज

जनमेजय ने पूँछा—हे वैशम्पायन! शरशय्या पर लेटे हुए भरत-वंशियों के पितामह भीष्म ने किस प्रकार और कौन से योग को धारण कर, शरीर त्यागा था।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! आप पवित्र और सावधान हो कर, एवं मन को एकाग्र कर, महात्मा भीष्म के शरीर त्याग का वृत्तान्त सुनें। जब सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हो गये, तब भीष्म ने सावधानता पूर्वक अपना मन स्थिर किया। उनका सारा शरीर बाणों से विद्ध था और उनके आस पास श्रेष्ठ ब्राह्मणगण विराजमान थे। उस समय उनकी शोभा वैसी ही हो रही थी जैसी शोभा, इधर उधर फैली हुई रश्मियों से सूर्य की हुआ करती है। वेदज्ञ वेदव्यास, देवर्षि नारद, देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्तु, जैमिनी, महात्मा पैल, शाण्डिल्य, देवल, धीमान् मैत्रेय, असित, वसिष्ठ, कौशिक, हारीत, लोमश, आत्रेय, बृहस्पति, शुक्राचार्य, च्यवन, सनत्कुमार, वाल्मीकि, तुम्बरु, कुरु, मौद्गल्य, परशुराम, तृणविन्दु, पिप्पलाद, वायु, संवर्त, पुलह, कच, कश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतम, गालव, धौम्य, विभाण्ड, माण्डव्य, धौम्र, कृष्णानुभौतिक, उलूक, मार्कण्डेय, भास्करि, पूरण, कृष्ण, परम धार्मिक सूत तथा अन्य महाभाग्यशाली, श्रद्धा, दम तथा शम सम्पन्न महात्मा मुनियों से आवृत भीष्म जी वैसे ही शोभायमान जान पड़ते थे, जैसे ग्रहों से घिरा हुआ चन्द्रमा शोभायमान होता है। शरशय्या पर पड़े पड़े भीष्म पितामह हाथ जोड़े, मन, वाणी और शरीर से पवित्र हो, श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। पर धर्मात्मा और वाग्मिवर भीष्म, उन विजयशील योगेश्वर भगवान् मधुसूदन की गम्भीर स्वर से स्तुति करने लगे—जिनकी नाभि-कमल पुष्पवत् गोल है, जो जगत्पति हैं और सर्वव्यापक हैं।

भीष्म जी ने कहा—श्रीकृष्ण की आराधना करने की इच्छा से संक्षिप्त और विस्तृत रूप से जिस वाणी से मैं स्तुति करना चाहता हूँ उससे पुरुषोत्तम, मेरे ऊपर प्रसन्न हों। निर्दोष, पवित्रधाम, सब के परे, 'तत्त्वमसि' महावाक्य में तत्पद के अर्थ स्वरूप! हिरण्य गर्भरूप, प्रजापति, स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर से रहित और आत्मस्वरूप। आपके मैं शरण आया हूँ। आदि और अन्त शून्य, परब्रह्म स्वरूप, आपको देवता या ऋषि नहीं जानते। आपको तो ब्रह्मा या श्री हरि ही जानते हैं। फिर ऋषिगण, सिद्ध गण बड़े बड़े नाग देवगण, देवर्षिगण आपके परम अविनाशी रूप को जानते हैं। देवता, दानव गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नग यह नहीं जानते कि, भगवान् कौन हैं और उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है। समस्त प्राणी आप में रहते हैं और अन्त में आपही में लय भी हो जाते हैं। जैसे माला के मनियां सूत्र में ओत-प्रोत होते हैं; वैसे ही परमात्मा आपमें सत्वादि गुणों वाले सब प्राणी आपमें ओतप्रोत हैं। जैसे लंबे और दृढ़ डोरे में माला बनी होती है, वैसे ही नित्य, व्यापक विश्व के आधारभूत और विश्व को रचने वाले आप परमात्मा में यह सत् और असत् रूप विश्व गुथा हुआ है। जो सहस्र मस्तकों वाले, सहस्र चरणों वाले, सहस्र नेत्रों वाले, सहस्र भुजाओं वाले सहस्र मुकुटों वाले और सहस्र उज्जल मुखों वाले हैं, जिनको विश्व का परम आधार कहते हैं, जो छोटे से छोटे और बड़े से बड़े तथा भारी से भारी और उत्तम से भी उत्तम है। * वाकों और † अनुवाक में, ‡ निषदों, § उपनिषदों तथा सत्य सामों में जिन सत्यकर्म, सत्यरूप परमात्मा का स्तवन किया गया है। जिन परम देव की मुनिगण, गुप्त, ‖ दिव्य श्रेष्ठ नामों से पूजा करते हैं, जिनको प्रसन्न करने के लिये नित्य लोग तप करते हैं, जो सब के मनों में रहने वाले हैं, जो सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वरूप, सब को उत्पन्न

---

* वाक—मंत्र। † अनुवाक—वेद के ब्राह्मण भाग के वचनों में। ‡ निषद—कर्म के अङ्ग देवता आदि ज्ञान वचनों में। § उपनिषद—आत्मज्ञान प्रतिपादक वचन। ‖ दिव्य—वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामों से।

करने वाले हैं; जैसे अरणी प्रज्वलित आग को उत्पन्न करती है, वैसे ही देवकी देवी ने पृथिवी पर विद्यमान (ब्रह्म) वेद ब्राह्मण और यज्ञ की रक्षार्थ जिन देव को उत्पन्न किया है; जिसकी समस्त आशाएं दूर हो जाती हैं, वही मुमुक्षु पुरुष; अनन्य भाव से (दूसरे की ओर दृष्टिपात न करके) अपने हृदय में समस्त दोषों से शून्य गोविन्द को सूक्ष्म दृष्टि से देखता है और मुक्त हो जाता है; जिनका पराक्रम वायु और इन्द्र से भी अधिक है जो सूर्य से भी बढ़ कर तेजस्वी हैं, जिनके स्वरूप को बुद्धि और इन्द्रियाँ नहीं जान पातीं उन्हीं प्रजापति नारायण के मैं शरण होता हूँ।

पुराण जिनको पुरुष कहते हैं, युग के आरम्भ में जो ब्रह्म कहलाते हैं और प्रलयकाल में जिनकी सङ्कर्षण संज्ञा होती है उन उपास्य भगवान को मैं उपासना करता हूँ।

जो एक हो कर भी इन्द्रादि रूप धारण कर अनेक रूपों में प्रकट हो रहे हैं, जो इन्द्रियजित् हैं और जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, और जिनका यज्ञादि कर्मानुष्ठान वाले अनन्य भक्त भजन किया करते हैं, जिनको जगत् का कोश अर्थात् स्थान कहते हैं, जो सब प्रजाओं के आश्रय-स्थल हैं और जिनमें ये समस्त लोक वैसे ही भासमान होते हैं जैसे जल में तैरते हुए हंस; जो सत्य रूप, एक अक्षर (प्रणव—ओंकार) रूप ब्रह्मसत् असत् से परे हैं, जिसका न आदि है, न अन्त है और न मध्य है, जिस ब्रह्म को देवता, ऋषि, सुर, असुर, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि और महानाग भी नहीं जान पाते; और जिन स्वयम्भू नारायण को दुःख की परमौषधि जान लोग नित्य तत्पर हो पूजा किया करते हैं; जिनको न तो कोई देख सकता है और न कोई जान पाता है, जो विश्व के कर्त्ता, चराचरात्मक जगत् के स्वामी हैं और जो इस जगत् के अध्यक्ष, अक्षर और परमपद कहलाते हैं, उनको मैं उपासना करता हूँ।

अथ भीष्मस्तवराज

जो तपे हुए सुवर्ण की तरह तेजस्वी, अद्वितीय, और दैत्यविनाशक हैं,

और जो अदिति के गर्भ से द्वादश आदित्यों के रूप में उत्पन्न हुए हैं उन सूर्य रूपी नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। जो शुक्लपक्ष में देवताओं और कृष्णपक्ष में पितरों को अमृतपान करा तृप्त करते हैं और जो द्विजराज हैं, उन सोम रूपी नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। जो महातेजस्वी पुरुष संसार रूपी महाअन्धकार के परे हैं और जिनको जान कर, जानने वाला पुरुष मृत्यु के पार हो जाता है उन ज्ञेयरूप पुरुषोत्तम को मेरा प्रणाम है। जिस ब्रह्म की स्तुति उक्थ नामक महायज्ञ में की जाती है और अग्निचयन महायाग में ब्राह्मणगण जिनका यशोगान करते हैं उन वेदमूर्ति परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के धाम रूप, * पाँच प्रकार के हवि रूप एवं सप्त तन्तु (सप्त व्याहृति) रूप जिन भगवान का भाव, यज्ञ विस्तार करते हैं, उन यज्ञरूपी भगवान को प्रणाम है। "आश्रावय" "अस्तु श्रौषट्," "यज्" "यजामहे" और पुनः "वषट्" से जिनको हवि दिया जाता है, उन होमात्मा भगवान् को प्रणाम है। जो पुरुष रूप हैं, जिनका नाम यज्ञ है, गायत्री छंद आदि जिनके अवयव हैं, तीनों वेदोक्त यज्ञ जिनके तीन सिर हैं, रथन्तर और बृहत्साम, जिनके प्रीति-वचन हैं, उन स्तवरूप भगवान को मेरा नमस्कार है। एक हज़ार वर्ष व्यापी प्रजापतियों के महायज्ञ में सोने के परों वाले पक्षी के रूप में जो प्रकट हुए थे, उन हंस रूप ऋषि को मेरा नमस्कार है। सुबन्त, तिङन्त पद जिसके अङ्ग हैं, पाँचों प्रकार की सन्धियाँ जिसके अङ्ग के जोड़ हैं, स्वर व्यञ्जन जिसके आभूषण हैं और जो दिव्य अक्षर कहलाता है। उस वाणी रूप परमात्मा को नमस्कार है। जिसने महायज्ञ का अङ्गरूप वराह बन कर, त्रैलोक्य हितार्थ पृथिवी को उबारा था उस वीर्यात्मा भगवान को नमस्कार है। जो अपनी योगमाया का आश्रय ले कर, शेषनाग के हज़ार फणों से रचित एवं सुशोभित पर्यङ्क पर शयन करते हैं, उन निद्रारूप भगवान् को मेरा प्रणाम है। धर्म के लिये ही जिनका बोलना आदि व्यापार हुआ करता है, ऐसे इन्द्रिय

---

* धाना, करम्भ, परिवाप, पुरोडाश और दुग्ध—ये पांच प्रकार के हवि हैं

निग्रह द्वारा मोक्षदाता एवं वेदोक्त सत्य उपाय से पुण्यात्माओं को संसार-सागर से उबारने वाले योगधर्म रूप सेतु बाँधने वाले सत्यरूप परमात्मा को मेरा प्रणाम है। पृथक् पृथक् धर्मों का आचरण करने वाले और पृथक् पृथक् धर्मों के फलों को चाहने वाले पुरुष पृथक् पृथक् धर्मों द्वारा जिनकी पूजा किया करते हैं, उन धर्म रूपी भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ। जिस अनङ्ग द्वारा कामना रूपी शरीर वाले समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जो सब प्राणियों के उन्माद रूप हैं, उन कामरूप परमात्मा को प्रणाम है; व्यक्त शरीर की इन्द्रियों के अगोचर रूप से वास करने वाले और जिसको महर्षि ढूंढा करते हैं, उस क्षेत्रात्मा को नमस्कार है। जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति रूपी तीन अवस्थाओं वाला है, जो आत्मस्वरूप में रहता है, जो * सोलह विकारों से युक्त है, जिसे साँख्यशास्त्रकार सत्रहवाँ तत्व बतलाते हैं, उस साँख्य रूप परमात्मा को नमस्कार है। जो निद्रा से नहीं सताये जाते, जो प्राणों को वश में रखने वाले हैं, जो इन्द्रियों को उनके विषयों से विरक्त कर अपने मन को स्थिर रखने वाले हैं, योगाभ्यास परायण योगी जिस ज्योतिःस्वरूप का दर्शन करते हैं, उन योगरूप परमात्मा को प्रणाम है। पाप पुण्य के क्षीण होने पर, पुनर्जन्म वर्जित शान्त संन्यासी जिसे पाते हैं, उस मोक्ष रूपी परमात्मा को प्रणाम है, जो हज़ार युग के अन्त में प्रलय कालीन धधकते हुए और लपटों से युक्त अग्नि रूप बन, समस्त प्राणियों को खा डालता है, उस घोर रूप परमात्मा को प्रणाम है। जो समस्त प्राणियों का भक्षण कर के और सकल संसार को एक समुद्र रूपी जलमय करके, बालरूप में अकेला शयन करता है, उस मायारूपी परमात्मा को प्रणाम है। कमल जैसी नाभि वाले, परमात्मा के नाभि देश से कमल उत्पन्न हुआ है और जिस कमल में यह चराचर विश्व निवास करता है, उस कमल रूपी नारायण को प्रणाम है। जिस के हज़ार मस्तक हैं, जिसके असंख्य रूप हैं, जिसमें चार महासागर तुल्य चार विशाल कामनाएं नष्ट हो चुकी है—उस योगनिद्रा रूप परमात्मा को

---

* पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पञ्चभूत और मन—ये सोलह विकार हैं।

प्रणाम है। जिसके केशों में मेघ हैं, जिसके शरीर के जोड़ों में नदियाँ हैं, और कुक्षि में चार समुद्र हैं, उस जल रूपी नारायण को नमस्कार है। जिस से उत्पत्ति और संहार रूपी समस्त विकारों की उत्पत्ति होती है और जिसमें फिर सब लीन हो जाते हैं, उस कारण रूप नारायण को नमस्कार है। जो रात और दिन में (सोते जागते) साक्षि रूप से सदा जागता रहता है, और जो जीवों के शुभाशुभ अर्थात् पुण्य-पाप-मय कर्मों का द्रष्टा है, उस द्रष्टा रूप भगवान को प्रणाम है। जो बिना किसी अड़चन के समस्त कार्यों को कर डालता है, जो सदा धर्मकार्य करने को उद्यत रहता है, वैकुण्ठ जिसका रूप है, उस कार्यरूप परमात्मा को मेरा प्रणाम है।

जिन क्षत्रियों ने अधर्म से धर्म की मर्यादा के गौरव को अतिक्रम किया था, जिसने ऐसे क्षत्रियों का क्रोध में भर इक्कीस बार नाश किया, उन क्रूरात्मा अर्थात् परशुराम रूपी परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। जो अपने पाँच विभागों में पञ्चवायु रूप हो सब के शरीरों में विचरण किया करता है और समस्त प्राणियों को जो चेष्टावान बनाता है, उस वायु रूप परमात्मा को मेरा प्रणाम है। जो सतयुग आदि युगों में योगमाया के प्रभाव से मत्स्य, कूर्म आदि रूपों में अवतीर्ण होता है और जो मास, ऋतु, अयन तथा वर्षों द्वारा जगत् की उत्पत्ति और उसका लय किया करता है, उस कालरूपी परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। ब्राह्मण जिसका मुख, क्षत्रिय जिसकी बाहु, वैश्य जिसकी जंघा और शूद्र जिसके पैर हैं, उस वर्ण रूप परमात्मा को मैं सिर नवाता हूँ। जिसका मुख अग्नि, मस्तक स्वर्ग, नाभिदेश आकाश, उभय चरण जिसके पृथिवी, सूर्य चन्द्र जिसके उभय नेत्र और दिशाएं जिसके दोनों कर्ण हैं, उस लोक रूप परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। जो काल, यज्ञ और पर से भी परे है और जो विश्व का आदि है, उस अनादि विश्वात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। वैशेषिक दर्शन में वर्णित गुणानुसार मनुष्य जिसको जगत् का रक्षक समझते हैं, उस जगत् रक्षक रूपी परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अन्न जल रूपी इंधन से शरीर में रस और प्राणों की वृद्धि किया

करता है और समस्त प्राणियों की स्थिति का कारण है, उस प्राणात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। जो प्राण-धारणार्थ चार प्रकार के अन्न खाया करता है और शरीर के भीतर अग्नि के रूप में वास कर, खाये हुए पदार्थों को पचाया करता है, उस पाक रूप परमात्मा को प्रणाम है। अर्धमनुष्य और अर्धसिंह जैसा शरीर धारण करने वाले, जिसके नेत्र और गरदन के बाल पीले हैं, जो डाढ़ों और नखों के अस्त्रों से सुसज्जित है और जिसने दानवेन्द्र हिरण्यकशिपु का नाश किया था, उस अहङ्कार रूपी नृसिंहावतार रूपी भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ। जिसके यथार्थ रूप को देवता, गन्धर्व, दैत्य और दानव नहीं जान पाते, उस सूक्ष्मरूप को प्रणाम है। जो श्रीमान्, अनन्त, भगवान् और व्यापक है, जो अनन्त अर्थात् शेष रूप से पाताल में जा, समस्त विश्व को अपने सीस पर धारण किये हुए है उस वीर्यात्मा को प्रणाम है। जो सृष्टि की रक्षा के लिये स्नेहपाश रूपी बन्धनों से बाँध प्राणियों को मोह में डालता है, उस मोहात्मा परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। पञ्चमहाभूतों में स्थित जिस अज्ञात रूप आत्मज्ञान को जान कर, योगी जन उस ज्ञान द्वारा जिस स्वरूप को प्राप्त करते हैं, उस ज्ञानात्मा को प्रणाम है। जो इन्द्रिय अगोचर शरीरधारी है, जो अपने बुद्धिरूपी नेत्रों से सर्वत्र व्याप्त है, जो असंख्य पदार्थों से परिपूर्ण है, उस दिव्य-देह-धारी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो सदा जटा और दण्ड धारी है, जो लम्बोदर वपुधारी है, जो कमण्डलुस्थ जलरूपी माथे वाला है, उस ब्रह्मारूपी परमात्मा को प्रणाम है। जो शूलधारी है, जो देवताओं का स्वामी है, जो तीन नेत्रों वाला है, जो महात्मा है, जो शरीर पर भस्म रमाता है, जो उन्नति मूर्ति वाला है, उस रुद्रात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। जो माथे पर अर्द्धचन्द्रमा को धारण किये हुए है, जिसके हाथों में पिनाक और त्रिशूल है, उस उग्ररूपी परमात्मा को प्रणाम है। जो समस्त जीवधारियों का आत्मा स्वरूप तथा आदि और अन्त का कारण है, जिसमें मोह और द्रोह नहीं है, उस शान्त रूप को प्रणाम है। जिसमें यह समस्त विश्व विद्यमान है,

और जिससे इस विश्व की उत्पत्ति हुई है, जो सर्वस्वरूप है, जो सब में व्याप रहा है और जो नित्य सर्वमय है, उस सर्वात्मा को नमस्कार है। हे विश्वरचयिता! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे विश्वात्मन्! हे विश्व-सम्भव! हे मुक्ति-स्थित! आप पाचों भूतों से परे हैं। हे त्रैलोक्यव्यापी! आप को प्रणाम है। हे त्रैलोक्य से परे रहने वाले, आपको प्रणाम है। हे सर्वदिक् व्यापी! आपको प्रणाम है। इसमें सन्देह नहीं कि, आप सर्वमय भाण्डार हैं। हे लोकोत्पत्तिकारी! हे लोकसंहारकारी! हे भगवन्! हे विष्णो! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे हृषीकेश! आप निश्चय ही उत्पत्तिकर्त्ता, प्रलय-कर्त्ता और अजेय हैं। मैं त्रिकाल में कभी भी आपके दिव्यरूप को नहीं देख सकता; किन्तु तत्वरूप से आपके सनातन रूप को मैं देखता हूँ। आपके मस्तक से स्वर्ग, चरणों से पृथिवी और पराक्रम से तीनों लोक व्याप्त हैं। क्योंकि यथार्थ में आप ही तो सनातन पुरुष हैं। दिशाएं आपकी भुजाएं हैं, सूर्य आपके नेत्र, वीर्य आपका शुक्र है। हे अपार पराक्रमी! आपके वायु से सप्तमार्ग अवरुद्ध हैं। अलसी के फूल की तरह कान्ति वाले पीत पटधारी हे अच्युत *गोविन्द! आपको जो प्रणाम करते हैं, उन्हें मृत्यु नहीं होता। जो एक वार भी श्रीकृष्ण भगवान् को प्रणाम करता है, उसे दस अश्वमेध के अवभृथ स्नान करने का फल प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, प्रत्युत दस अश्वमेध करने वाले को तो पुनः जन्म लेना पड़ता है; किन्तु श्रीकृष्ण जी को प्रणाम करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वह जीवन मरण से मुक्त हो जाता है। जो श्रीकृष्ण सम्बन्धी व्रतोपवास करते, श्रीकृष्ण ही का स्मरण करते हैं, जो श्रीकृष्ण का नाम ले सोते और श्रीकृष्ण का नाम लेते हुए जागते हैं वे मरण के वाद श्रीकृष्ण के लोक में वैसे ही प्रवेश करते हैं जैसे घृत की आहुति अग्नि में। नरक-यातना से सम्पूर्णतः रक्षा करने वाले, और संसार रूपी नदी के भँवरों से तरने के लिये नौकारूप विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ। ब्राह्मणों के देव, गौ और ब्राह्मणों के हितैषी, जगत् का

*गोविन्द—वेदवाणी के रक्षक।

कल्याण करने वाले और वेदों के रक्षक अर्थात् गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूँ। संसार रूपी वन में "हरि" नामक दो अक्षर प्राणियों के आधार हैं। साथ ही ये दो अक्षर संसाररूपी रोग को नष्ट करने वाली औषधरूप हैं और दुःख तथा शोक से बचाने वाले हैं। जैसे विष्णु सत्यमय हैं, वैसे ही यह जगत भी विष्णुमय है और जैसे समस्त चराचर विष्णुमय है, वैसे ही मेरा मन भी विष्णुमय होने के कारण मेरे समस्त पाप नष्ट हो जाँय।

हे पुण्डरीकाक्ष! आपका यह भक्त इच्छित वरप्राप्ति की कामना से आप के शरणागत होता है। अतएव हे देवसत्तम! आप वही करें जिससे इसका कल्याण हो। जो विद्या एवं तप का कारण रूप है, जो अजन्म, विष्णु रूप है, जिसकी मैंने स्तुति की है और जो स्तुतिरूपी यज्ञ से पूजित हुआ है वह जनार्दन देव मेरे ऊपर सुप्रसन्न हो। परब्रह्म नारायण रूप हैं, तप नारायण के आधार पर है, क्योंकि नारायण परम देव हैं और यह सब सदा नारायण रूप हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जिन जीवों की लगन श्रीकृष्ण से लग गयी है, उन भीष्म जी ने इस प्रकार स्तुति कर और श्रीकृष्णाय नमः कहते हुए श्रीकृष्ण को प्रणाम किया।

योगद्वारा भगवान् श्रीकृष्ण ने भीष्म की भक्ति को जान उन्हें वह दिव्य ज्ञान दिया, जिससे वे तीनों लोकों को देख पाये। तदनन्तर भीष्म जी का मन शरशय्या-शयान शरीर में पुनः आ गया।

जब भीष्म की बोली बंद हो गयी; तब वेदाध्यायी ब्राह्मण नेत्रों में आँसू भर गद्गद कण्ठ से उनकी प्रशंसा करने लगे। प्रथम उन ब्राह्मणसत्तमों ने श्रीकृष्ण की स्तुति की, फिर वे धीरे धीरे कोमलस्वर से भीष्म की प्रशंसा करने लगे। (हस्तिनापुर में) योग द्वारा श्रीकृष्ण जी अपने में भीष्म की अनन्यभक्ति जान कर, उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सहसा उठ कर, अपने

रथ पर सवार हो गये। उनके साथ सात्यकि भी उसी रथ पर सवार हुआ। दूसरे रथ पर युधिष्ठिर और अर्जुन बैठे। तीसरे रथ पर नकुल और सहदेव भीष्म सहित सवार हुए। इनके अतिरिक्त कृपाचार्य, युयुत्सु और सूतवंशी परन्तप सञ्जय अपने अपने रथों पर सवार हो श्रीकृष्ण के रथ के साथ हो लिये। वे रथ नगर जैसे विशाल आकार प्रकार के थे। उनके पहियों की घरघराहट से पृथिवी काँपने लगी। वे सब कुरुक्षेत्र की ओर भीष्म के निकट गये। जब वे सब इस प्रकार चले जा रहे थे, तब रास्ते में श्रीकृष्ण ने (योगबल से) ब्राह्मणों की उक्त स्तुति को हर्षित मन से सुना। रास्ते में जाते समय कितने ही ब्राह्मण हाथ जोड़ उनको प्रणाम करने लगे। उन भगवान् केशव ने भी उन प्रणाम करने वाले ब्राह्मणों को प्रणाम किया।

अड़तालीसवाँ अध्याय

परशुराम-सरोवर

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! (ऊपर हम कह आये हैं कि) श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, कृपाचार्य और चारों पाण्डव तथा अन्य लोग उन रथों पर सवार हो, जो नगर की तरह विशाल थे, ध्वजा पताकाओं से शोभायमान जान पड़ते थे और जिनमें शीघ्रगामी बढ़िया घोड़े जुते हुए थे, हस्तिनापुर से भीष्म जी के पास कुरुक्षेत्र को प्रस्थानित हुए। वे उस कुरुक्षेत्र की समरभूमि में जा पहुँचे जहाँ महात्मा क्षत्रिय योद्धा मारे गये थे और जहाँ केश, मज्जा और अस्थियों के ढेर लगे हुए थे। वे अस्थियों के ढेर मनुष्यों, गजों और अश्वों की हड्डियों के थे, वे ढेर पर्वत जैसे ऊँचे थे और उनके आस पास योद्धाओं की खोपड़ियों के ढेर लगे हुए थे। उस स्थान पर सहस्रों चिताएं धधक रही थीं। समरभूमि कवचों और अस्त्र शस्त्रों से परिपूर्ण थी। वह भूमि ऐसी जान पड़ती थी, मानों वहाँ कालदेव के जलपान करने की भूमि है और भोजन करने के बाद कालदेव वहाँ से चल दिये हैं। वह समरभूमि भूतों

प्रेतों और राक्षसों के दलों की क्रीड़ास्थली और आवासभूमि सी बनी हुई थी। उस समरभूमि को देखते हुए वे लोग आगे बढ़े चले जाते थे। समस्त यादवों के आनन्द को बढ़ाने वाले श्रीकृष्ण ने रास्ते में युधिष्ठिर को परशुराम के पराक्रम का वृत्तान्त सुनाने के अभिप्राय से कहा।

श्रीकृष्ण बोले—हे युधिष्ठिर! देखो वे जो पाँच सरोवर दिखलायी पड़ रहे हैं, वे पाँचों परशुराम के नाम से प्रसिद्ध हैं। परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों के रुधिर से इन सरोवरों को भर कर अपने पितरों को सन्तुष्ट किया था। इस घोर कर्म से विदित होता है कि, बहुत प्राचीन काल से शत्रुवध की प्रथा प्रचलित है।

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! आपका कथन है कि, पूर्वकाल में परशुराम ने इक्कीस बार यह पृथिवी क्षत्रियहीन की थी सो मुझे तो यह बात सुनने से बड़ा विस्मय हो रहा है। हे कृष्ण! जब परशुराम ने यह धराधाम क्षत्रियरहित कर दिया था, तब क्षत्रियों की उत्पत्ति पुनः कैसे हुई थी? परशुराम ने क्यों क्षत्रियों का नाश किया था? जब क्रोध में भर परशुराम ने प्रथम बार ही करोड़ों क्षत्रियों को नष्ट कर डाला, तब फिर पृथिवी पर इतने क्षत्रिय कहाँ से आ गये? कुरुक्षेत्र में परशुराम ने क्षत्रियों का नाश क्यों किया? इस सम्बन्ध में मेरे मन में जो सन्देह उत्पन्न हो गये हैं, उन्हें आप दूर कर दें। हे उपेन्द्र! हे कृष्ण! मैं तो आपके वचन वेद से भी बढ़ कर मानता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर के प्रश्नों को सुन, गद के बड़े भाई श्रीकृष्ण ने वह समस्त वृत्तान्त कहा और बतलाया कि, मृत क्षत्रियों से कुरुक्षेत्र की समरभूमि क्यों कर भर गयी थी।

उनचासवाँ अध्याय

परशुराम-चरित

श्रीकृष्ण जी बोले—हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! मैंने महर्षियों के मुख से कथाप्रसङ्ग में परशुराम के प्रभाव, पराक्रम और उत्पत्ति का जो वृत्तान्त सुना है, वह मैं आपको सुनाता हूँ। सुनिये। जमदग्नि-नन्दन परशुराम ने जिन करोड़ों क्षत्रियों को मार डाला था—वे राजाओं के वंशों में पुनः उत्पन्न हुए और वे ही इस महाभारत के समर में पुनः मारे गये हैं, उनका वृत्तान्त आप सुनिये।

हे राजन् ! जन्हु के अज नामक पुत्र हुआ। अज के बलाकाश्व, बलाकाश्व का धर्मज्ञ कुशिक था। कुशिक इस धराधाम पर इन्द्र की तरह बलवान माना जाता था। उसने त्रैलोक्य-विजयी पुत्र प्राप्त करने के लिये बड़ी भारी तपस्या की। कुशिक को विकट तप करते देख सहस्राक्ष इन्द्र स्वयं उसके घर में पुत्र रूप से उत्पन्न हुए और उनका नाम गाधि पड़ा। गाधि की सत्यवती नाम्नी पुत्री थी। सत्यवती का विवाह भृगुनन्दन ऋचीक के साथ हुआ था। सत्यवती की बहिर्पवित्रता से ऋचीक ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और उसे पुत्रप्रदान करने के लिये चरु तैयार किया। साथ ही अपने ससुर गाधि को भी पुत्र प्रदान करने के उद्देश्य से उन्होंने चरु तैयार किया। ये दोनों चरु अलग अलग तैयार किये। जब वे चरु तैयार हो गये तब ऋषि ने अपनी पत्नी को बुला कर कहा—तू इस चरु को स्वयं खा ले और दूसरा चरु अपनी माता को खिला दे। इस चरु के भक्षण करने से तेरी माता के जो पुत्र उत्पन्न होगा वह बड़ा तेजस्वी और साँड़ की तरह क्षत्रियों में बड़ा बलवान् होगा। वह क्षत्रियों के अहङ्कार को उतारेगा और संसार का कोई भी क्षत्रिय उसे न जीत सकेगा। हे कल्याणी ! तेरे भी दूसरे चरु के भक्षण करने से एक पुत्र होगा जो बड़ा धैर्यवान्, शान्त स्वभाव और तपस्वी होगा, वह ब्राह्मणों में श्रेष्ठ माना जायगा।

अपनी पत्नी सत्यवती से कह कर, महर्षि ऋचीक तप करने के लिये वन में चले गये। इतने ही में तीर्थाटन करता हुआ राजा गाधि अपनी रानी सहित ऋचीक के आश्रम में पहुँचा। तब हर्षितमना सत्यवती ने व्यग्रतावश दोनों चरु अपनी माता को दे दिये। सत्यवती की माता ने भूल कर, वह चरु जो उसे स्वयं खाना चाहिये था— अपनी पुत्री को दे दिया और जो चरु सत्यवती को खाना चाहिये था वह स्वयं खा लिया। इससे सत्यवती के अत्यन्त तेजस्वी और देखने में भयानक—क्षत्रियों का नाश करने वाला बालक उत्पन्न हुआ। सत्यवती के गर्भ में क्षत्रिय अंश वाले ब्राह्मण कुमार को देख, पुरुषसिंह भृगुवंशी ऋचीक ने देवोपमा सत्यवती से कहा— तेरी माता ने चरुओं की उलटाफेरी कर मुझे छला है, अतः तेरा पुत्र महाक्रूर कर्मों का करने वाला होगा। वह किसी की भी बात को न सह सकेगा; किन्तु तेरी माता के गर्भ से उत्पन्न तेरा भाई बड़ा तपस्वी और शुद्ध ब्राह्मण होगा। क्योंकि मैंने तेरे चरु में ब्राह्मणव्यापी तेज रखा था और तेरी माता के चरु में क्षात्र तेज रखा था; किन्तु चरु की उलटाफेरी हो जाने के कारण अब वैसा न होगा। तेरी माता के ब्राह्मणपुत्र उत्पन्न होगा और तेरे क्षत्रिय।

जब ऋचीक ने महाभाग्यवती सत्यवती से ये वचन कहे, तब वह काँपने लगी और ऋषिप्रवर के चरणों में सीस नवा उसने कहा—भगवन्! आपको ऐसा करना उचित नहीं। क्योंकि क्या मेरे गर्भ से आपके ब्राह्मणत्व से हीन क्षत्रिय पुत्र का होना उचित है।

ऋचीक बोले—मैं ऐसा चाहता थोड़े ही था कि, तेरे क्षत्रिय सन्तान हो; किन्तु चरु में उलट फेर हो जाने से तेरे भीमकर्मा पुत्र होगा।

इस पर सत्यवती कहने लगी—हे मुने! आपमें तो इतनी सामर्थ्य है कि यदि आप चाहें तो अपरलोक की रचना कर सकते हैं, फिर पुत्र की रचना आपके लिये कौन बड़ी कठिन बात है? हे प्रभो! मुझे तो आप शान्त दान्त एक पुत्र दें।

ऋचीक बोले—मैंने जो बात हँसी में भी कही है वह भी कभी मिथ्या नहीं हुई। फिर वेदमंत्र से अभिमंत्रित अग्नि में सिद्ध किये हुए चरु का फल मैं अन्यथा क्यों कर कर सकता हूँ? मैं तो तपःप्रभाव से पहले ही देख कर जान चुका हूँ कि, तेरे पिता का समस्त कुल ब्राह्मण होगा।

ऋचीक के इन वचनों को सुन सत्यवती ने कहा—हे प्रभो! मेरा पौत्र भले ही क्षात्रधर्मावलम्बी हो; किन्तु मेरा पुत्र अति शान्त और सरल ब्राह्मण हो।

ऋचीक बोले—हे वरवर्णिनी! मैं तो पुत्र और पौत्र में कुछ भी भेद नहीं समझता; किन्तु जब तू आग्रह ही करती है, तब ऐसे ही सही। तेरा पुत्र जैसा तू चाहती है वैसा ही होगा; किन्तु तेरा पौत्र बड़ा क्रूरकर्मा होगा और वह क्षत्रियों का नाश करेगा। मेरा कथन कभी अन्यथा नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे राजन्! तदनन्तर सत्यवती की कोख से शान्त तपस्या-प्रिय और इन्द्रियजित् जमदग्नि नामक बालक उत्पन्न हुआ। गाधि के घर में विश्वामित्र नामक एक बालक उत्पन्न हुआ। वह जगत्प्रसिद्ध ब्राह्मणोचित गुणों से सम्पन्न था। यद्यपि वह एक क्षत्रिय कुल में जन्मा था; तथापि उसने ब्रह्मर्षि की पदवी प्राप्त की थी।

ऋचीक के यहाँ तप का भाण्डार जमदग्नि जन्मे। यथासमय जमदग्नि ने एक पुत्र उत्पन्न किया। उसका नाम परशुराम था, वह समस्त विद्याओं में निष्णात और धनुर्वेदपारग, क्षत्रियों का नाशक, प्रज्वलित अग्नि की तरह कान्तिमान और महाभयङ्कर था। परशुराम ने गन्धमादन पर्वत पर जा तप किया था। उसके तप से शिव जी उस पर प्रसन्न हुए और वर स्वरूप शिव ने परशुराम को अस्त्र तथा चमचमाता एक फरसा दिया। यह फरसा ऐसा था कि इसकी धार कभी कुण्ठित नहीं होती थी। इस अनुपम फरसे को पा कर, परशुराम इस जगत में अप्रतिभ योद्धा हुए। इस बीच में राजा

कृतवीर्य-नन्दन और हैहय जाति के क्षत्रियों के प्रभु राजा अर्जुन हुए। यह बड़ा बलवान् और तेजस्वी था। दत्तात्रेय के वर से अर्जुन के एक हज़ार भुजाएं थीं। इस महा प्रतापी सम्राट ने अश्वमेध कर के भुजबल से जीती हुई सप्तद्वीपवती पृथिवी पर्वतों सहित ब्राह्मणों को दान कर दी थी। यह राजा धर्म कर्मों में बड़ा निपुण था।

हे कुन्तीनन्दन! एक दिन बुभुक्षित अग्नि ने राजा अर्जुन से भिक्षा माँगी, तब सहस्रबाहु अर्जुन ने अग्निदेव को भिक्षा दी। राजा के बाण के फल से प्रकट हो, महाबलवान् अग्निदेव ने ग्राम, नगर, देश तथा गोष्ठों को जला कर, भस्म कर डाला और अन्त में पवन द्वारा प्रचण्ड रूप धारण कर, अग्नि ने हैहयराज की सहायता से आपव नामक महात्मा के निर्जन और रमणीय आश्रम को भी भस्म कर डाला। हे महाबाहो! इस पर क्रुद्ध हो आपव ने राजा को शाप दिया कि, राजन्! तूने मेरे वनस्थित विशाल आश्रम को भी नहीं छोड़ा और उसे भी जलवा कर भस्म कर डाला। अतः, तेरी इन हज़ार भुजाओं को रण में परशुराम काट डालेगा; किन्तु महा-तेजस्वी, बली, सदा शान्तचित्त, शूरवीर, दानी, शरणागतरक्षक एवं ब्राह्मण-पालक अर्जुन ने आपव के शाप पर कुछ भी ध्यान न दिया; किन्तु अर्जुन के क्रूर एवं उग्र प्रकृति के पुत्रों ने सोचा कि, ऋषि के शापवश तो हमारे पिता का नाश हो जायगा। इससे वे बड़े क्रुद्ध हुए और सहसा जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण किया और उनकी होम की सवत्सा गौ को हर कर ले गये। यह बात परशुराम को जब अवगत हुई, तब वे अत्यन्त कुपित हुए और उन में तथा हैहयवंशी क्षत्रियों में घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में क्रुद्ध परशुराम जी ने अर्जुन की हज़ार बाहें काट डालीं। फिर वे उसके राजभवन में घुस, वहाँ घूमती फिरती अपनी गाय और बछड़े को निज आश्रम में ले आये। तदनन्तर अर्जुन के पुत्रों ने एकत्र हो जमदग्नि के आश्रम पर चढ़ाई की और उन अज्ञानियों ने भाले से जमदग्नि का सिर काट डाला। जमदग्नि का सिर काट कर, वे आश्रम से रफूचक्कर हो गये।

उस समय परशुराम जी वन में कुश लाने गये हुए थे। वहीं उन्हें हैहयराज के पुत्रों द्वारा अपने पिता का सिर काटे जाने का दुःखदायी समाचार मिला, तब तो उनके क्रोध की सीमा न रही। उसी समय शस्त्र पकड़ उन्होंने प्रतिज्ञा की कि, मैं इस पृथिवी को क्षत्रियहीन कर दूँगा। तदनन्तर परशुराम जी ने राजा अर्जुन के पुत्र पौत्रों पर चढ़ाई की और हज़ारों हैहयवंशी क्षत्रियों को मार डाला। प्रतापी परशुराम ने पृथिवी को रुधिर की कीच से पूर्ण कर दिया और पृथिवी के समस्त क्षत्रिय मार डाले; किन्तु पीछे जब उनके मन में दया का सञ्चार हुआ, तब वे वन को लौट गये और वहाँ रह कर उन्होंने हज़ारों वर्ष बिता दिये। तदनन्तर एक दिन परशुराम ने भरी सभा में अपनी निन्दा होती हुई सुनी। विश्वामित्र के पौत्र और रैभ्य के पुत्र महातपस्वी परावसु ने स्वयं भरी सभा में परशुराम का अपमान करते हुए कहा—हे राम! जिस यज्ञ में राजा ययाति का अधःपात हुआ था, उस यज्ञ में समवेत प्रतर्दनादि, सन्त जन क्या क्षत्रियवीर्य से उत्पन्न नहीं हुए थे। परशुराम! तुम मानव समाज में बैठ बड़ी डींगे मारा करते हो और कहा करते हो कि, मैं समस्त क्षत्रियों को मार डालूँगा; किन्तु तुम तो उनसे डर कर पहाड़ पर जा बसे हो। तुम तो झूठे पड़ गये।

परशुराम ने परावसु के इन वचनों को सुन एक बार पुनः शस्त्र धारण किया और हज़ारों क्षत्रियों का पुनः नाश कर डाला। इस बीच में परशुराम के शान्त हो बैठ जाने से क्षत्रियों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। वे लोग बल के अभिमान में चूर हो कर पृथिवी के अधीश्वर बन गये थे। अतः परशुराम ने छोटी उम्र के क्षत्रिय बालकों को मार डाला। पुनः पृथिवी क्षत्रियहीन हो गयी। इसके कुछ दिनों बाद पुनः पृथिवी पर क्षत्रिय हो गये। पुनः पृथिवी क्षत्रियों से पूर्ण हो गयी। जैसे जैसे क्षत्रिय बालक उत्पन्न होते गये; वैसे ही वैसे परशुराम जी, उनका नाश करते गये; किन्तु इस बार क्षत्रियाणियों ने बहुत से क्षत्रिय बालकों को छिपा लिया और वे बालक बच गये। इस प्रकार परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया और

स्वयं अश्वमेध यज्ञ किया और दक्षिणा में समूची पृथिवी कश्यप को दे दी। उस समय शेष क्षत्रियों की रक्षा करने को कश्यप ने पृथिवी का दान लेने के पश्चात् हाथ में श्रुवा ले और हाथ उठा परशुराम से कहा।

कश्यप बोले—हे परशुराम! अब तुम दक्षिण सागर के तट पर चले जाओ और एक क्षण भी मेरे राज्य के भीतर मत रहो। यह सुन कर परशुराम दक्षिण सागर के तट पर चले गये। तब समुद्र ने जमदग्नि-नन्दन के रहने के लिये अपने तट के निकट * शूर्पारक नामक देश बसा दिया। हे राजन्! तदनन्तर दान में प्राप्त पृथिवी की व्यवस्था अन्य ब्राह्मणों को सौंप कश्यप स्वयं भी तप करने वन में चले गये। उस समय पृथिवी का नियमन करने वाला कोई क्षत्रिय नहीं था। अतः वैश्य और शूद्र उच्छृङ्खल हो स्वेच्छाचारी बन गये। वे ब्राह्मणियों के साथ व्यभिचार करने लगे। जब पृथिवी पर कोई क्षत्रिय राजा नहीं रह गया, तब बलवान् जन निर्बल जनों को सताने लगे। कोई भी अपनी सम्पत्ति का स्वामी न रह सका, क्योंकि वे ब्राह्मण जिनको कश्यप राज्य की व्यवस्था करने का भार सौंप गये थे, यथोचित शासन न कर सके। काल के प्रभाव से पापियों द्वारा पीड़ित यह पृथिवी, अत्याचारों और दुर्व्यवस्था से त्रस्त हो कर, रसातल-गामिनी होने लगी। इसका कारण यह था कि, धर्मरक्षक किसी क्षत्रिय नरेश ने उसकी यथानियम रक्षा नहीं की। पृथिवी को त्रस्त हो रसातल में जाते देख, उदारमना कश्यप ने अपनी जाँघ चीर पृथिवी को उसमें रखा। तब से पृथिवी का दूसरा नाम उर्वी पड़ा। पृथिवी देवी ने अपनी रक्षा के लिये पृथिवीनाथ कश्यप को प्रसन्न कर, उनसे यह वर माँगा कि, मैंने कतिपय उत्तम क्षत्रियों को स्त्रियों द्वारा छिपा कर बचा रखा है। अतः मैं चाहती हूँ कि वे हैहयवंशी क्षत्रिय मेरी रक्षा करें। हे मुने! एक तो पुरुवंशी राजा विदूरथ

---

* आधुनिक बंबई प्रान्त के बीजापुर ज़िले में जमखण्डी के निकट का स्थान इसका नामान्तर शूरपल्य है।

का पुत्र है। उसे * ऋक्षवान पर्वत पर रीछों ने पाल कर बड़ा किया है। यज्ञशील एवं अपार-बल-शाली पराशर ने दयावश सौदास के पुत्र को बचाया है। वह यद्यपि क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुआ है तथापि शूद्रवत् वह ऋषिसेवा किया करता है, इसीसे लोग उसे सर्वकर्मा कह कर पुकारा करते हैं। वही मेरी रक्षा कर सकता है। शिवि का गोपति नामक एक महातेजस्वी पुत्र है। उसे वन में गोपों ने पाला है। वह भी मेरी रक्षा कर सकता है। दिविरथ का पुत्र और दधिवाहन का पौत्र उसकी गौतम ने छिप कर गङ्गा के तट पर रक्षा की है। उस विपुल विभूति वाले परमतेजस्वी राजा बृहद्रथ की गृध्रकूट पर गोलाङ्गूल जाति के वानरों ने रक्षा की है। मरुत्तवंश के बहुत से क्षत्रिय कुमारों की रक्षा की गयी है, वे सब इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं, उनकी रक्षा समुद्र ने की थी। सुना है कि क्षत्रियों के वे कुमार भिन्न भिन्न स्थानों पर हैं। इन दिनों वे लोग सुनारों और मैमारों के आश्रित हो रह रहे हैं। यदि वे मेरी रक्षा करें तो मैं निश्चिन्त हो सकती हूँ। मेरे पीछे परशुराम जी ने इनके पिताओं और पितामहों को मार डाला है। अतः हे महामुने! मुझे उनका सेवन करना चाहिये। मैं चाहती हूँ कि, धर्माचरण-परायण क्षत्रिय मेरी रक्षा करें। अतः आप मेरी रक्षा का प्रबन्ध अविलम्ब कीजिये।

श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! तदनन्तर कश्यप ने पृथिवी के बतलाये हुए पराक्रमी राजाओं को राजसिंहासनों पर बिठा दिया। पीछे उनके पुत्र पौत्र हुए और इस प्रकार उनके वंश पुनः पृथिवी पर प्रतिष्ठित हो गये।

हे युधिष्ठिर! आपने मुझसे जो पुरातन वृत्तान्त पूछा, वह मैंने आपको सुना दिया।

वैशम्पायन जी कहते हैं—हे राजन् जनमेजय! यादव-वंशीय महावीर महात्मा श्रीकृष्ण धर्मनिष्ठों में उत्तम राजा युधिष्ठिर से यह कह और रथ

---

* विन्ध्यगिरि माला का पूर्वीय भाग।

पर सवार हो तथा समस्त दिशाओं को सूर्य की तरह आलोकित करते हुए बड़ी तेज़ी से चल दिये।

पचासवाँ अध्याय

पाण्डवों का भीष्म पितामह के निकट गमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! महाराज युधिष्ठिर परशुराम के महापराक्रम को सुन कर बड़े विस्मित हुए और श्रीकृष्ण से पूछने लगे—हे कृष्ण! महाबली परशुराम का पराक्रम तो, इन्द्र की तरह विस्मयोत्पादक है। क्योंकि क्रोध आने पर परशुराम जी ने यह पृथिवी क्षत्रियहीन कर डाली थी; किन्तु गौओं ने, समुद्र ने, गोलाङ्गूलों ने, रीछों ने और वानरों ने, परशुराम के भय से त्रस्त क्षत्रिय बालकों की रक्षा की थी। अहो! सचमुच यह मर्त्यलोक और पृथिवी पर वास करने वाले बड़े भाग्यशाली हैं। क्योंकि यहाँ पर ब्राह्मणों ने ऐसा धर्मकृत्य किया अर्थात् क्षत्रियों को पापमुक्त कर, स्वर्ग भेजा।

हे तात! श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर इस प्रकार आपस में वार्त्तालाप करते हुए वहाँ जा पहुँचे जहाँ गङ्गानन्दन भीष्म शरशय्या पर पड़े हुए थे, उनके साथ उनके चारों भाई पाण्डव और कृपाचार्यादि भी थे। जब उन लोगों ने शरशय्या पर भीष्म को पड़ा हुआ देखा, तब उनको जान पड़ा, मानों रश्मिजाल को विस्तारित करते हुए सायङ्कालीन सूर्य की तरह भीष्म पितामह निज कान्ति से प्रकाशमान हो रहे हैं। जैसे देवता इन्द्र की उपासना करते हैं वैसे ही मुनिगण उनकी उपासना कर रहे थे। गङ्गानन्दन कुरुक्षेत्र में ओघवती नदी के परम पवित्र तट पर लेटे हुए थे। जहाँ से भीष्म दिखलायी पड़े वहींसे युधिष्ठिरादि अपने अपने रथों से उतर पड़े और मन को सावधान कर और इन्द्रियों को अपने वश में कर, वहाँ जा पहुँचे, जहाँ ऋषियों की

मण्डली बैठी हुई थी। वहाँ पहुँच युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, सात्यकि आदि ने व्यासादि महर्षियों को प्रणाम किया और भीष्म जी को घेर कर उनके चारों ओर बैठ गये। बुझी हुई आग की तरह भीष्म जी को पड़ा देख, उन लोगों के मन दुःखी हुए और वे उदास हो गये। श्रीकृष्ण ने भीष्म से पूछा—

हे वाग्विदाम्वर! आपका ज्ञान तो पूर्ववत् बना हुआ है न? आपकी बुद्धि तो ठीक ठिकाने है न? बाणों की चोट से घायल अंगों में वेदना तो नहीं हो रही है? क्योंकि मानसिक दुःख से शारीरिक कष्ट महाप्रबल होता है। हे धर्मज्ञों में अग्रणी! आपने अपने पिता के दिये हुए वर के अनुसार इच्छित मृत्यु पायी है, सो यह सामर्थ्य केवल आपको अपने पिता के अनुग्रह ही से प्राप्त है। यह शक्ति तो मुझमें भी नहीं है। हे राजन्! जब जरा सा काँटा शरीर में कहीं चुभ जाता है तब वह वेदना उत्पन्न कर देता है; किन्तु आप तो बाणों की सेज पर पड़े हैं। फिर आपके शरीर में पीड़ा क्यों न होगी? हाँ यह सत्य है कि, इस पीड़ा का प्रभाव आपके मन के ऊपर नहीं पड़ सकता, क्योंकि आप प्राणियों के जन्म और मृत्यु का रहस्य भली भाँति जानते हैं। आपसे ऐसी बातें कहनी हमें न चाहिये, क्योंकि आप तो देवताओं को भी उपदेश दे सकते हैं। हे पुरुषोत्तम! आप वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध हैं। आप त्रिकाल की घटनाओं के ज्ञाता हैं, आप प्राणियों के नाश के कारण के ज्ञाता और धर्मफल अर्थात् पुण्य को भी जानने वाले हैं। आप सचमुच धर्म के भाण्डार हैं, आप ऐश्वर्यवान् एक विशाल राज्य में रहते थे। तब भी आपका ब्रह्मचर्य व्रत खण्डित नहीं हुआ। आप आजन्म ब्रह्मचारी बने रहे। हे युधिष्ठिर! धर्मपरायणता, सत्यभाषण और वीरता में भीष्म की टक्कर का मुझे तो अन्य कोई देख नहीं पड़ता। क्या यह भी किसी में शक्ति है कि, भीष्म की तरह शरशय्या पर पड़े पड़े, निज तप के प्रभाव से मृत्यु को अपने वश में कर लिया हो। फिर भीष्म से श्रीकृष्ण ने कहा—हे देव! सत्यभाषण, तपश्चर्या, वदान्यता, यज्ञानुष्ठान, धनुर्विद्या, वेद एवं नीतिशास्त्र

के ज्ञान में तथा शरणागतरक्षण में मैंने तो आपको छोड़, आज तक कोई और मनुष्य न देखा और न सुना। आपकी तरह दयालु, पवित्र, इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला, प्राणिमात्रहितैषी और महारथी मनुष्य आपके अतिरिक्त और कोई मैंने देखा सुना नहीं। देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष और राक्षसों को आप अकेले ही एक रथ की सहायता से निस्सन्देह जीत सकते हैं। भीष्म! आप पराक्रम में इन्द्र के समान हैं और आपका जन्म वसुओं के अंश से हुआ है। ब्राह्मण आपको नवम वसु बतलाते हैं और गुणों में आप हैं भी वसुओं ही के समान। हे पुरुषोत्तम! आप अपनी शक्ति के कारण देवताओं में भी नरश्रेष्ठ कहलाते हैं। हे मानवेन्द्र! इस धराधाम पर तो आपके समान कोई दूसरा पुरुष मानव जाति में तो देखा सुना नहीं जाता। हे राजन्! आप समस्त गुणों में देवताओं से भी बढ़ चढ़ कर हैं। आप अपने तपःप्रभाव से इस चराचरात्मक लोक की रचना कर सकते हैं। अतः अपनी करनियों से यदि आप स्वर्गलोक पा लें तो इसमें आश्चर्य की तो कोई बात है ही नहीं। हे भीष्म! पाण्डुपुत्र में युधिष्ठिर अपने सगे नातेतों के मारे जाने से सन्तप्त रहा करते हैं। आप इनके शोक को दूर कर दें। आप शास्त्रकथित वर्णाश्रम धर्मों के पूर्ण ज्ञाता हैं। आप चारों विद्याओं एवं वेदों के ज्ञाता हैं और सांख्य-शास्त्रोक्त धर्म को एवं चारों वर्णों के सेवन करने योग्य अविरोधी सनातन धर्म को आप व्याख्या सहित जानते हैं। अनुलोम और प्रतिलोम आदि वर्णसङ्करों के धर्मों को भी आप जानते हैं, देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म तथा वेदोक्त धर्म और शिष्टाचार को भी आप भली भाँति जानते हैं, आप इतिहासों, पुराणों और धर्मशास्त्रों के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आपमें यह सामर्थ्य है कि, इस लोकवासियों के यावत् सन्देहों को आप दूर कर सकते हैं। आप अद्वितीय विद्वान हैं। अतः हे राजन्! आप महाराज युधिष्ठिर के शोक को अपने उपदेश से दूर कर दें। क्योंकि आप जैसा उत्तम और विशाल-बुद्धि-सम्पन्न पुरुष ही दुःख से सन्तप्त पुरुष को उपदेश द्वारा शान्ति दे सकता है।

इक्यावनवाँ अध्याय

भीष्म से धर्मोपदेश के लिये याचना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनने के लिये भीष्म ने अपना सिर थोड़ा सा ऊपर उठाया और हाथ जोड़ कर वे श्रीकृष्ण भगवान् की स्तुति करते हुए बोले ।

भगवन् ! आप समस्त लोकों की उत्पत्ति और उनका नाश करने वाले हैं । आप ही कर्त्ता, इन्द्रियों के स्वामी हैं । हे संहारकर्त्ता ! हे हृषीकेश ! आप अजेय हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वोत्पादक, परम-पद-वासी और पाँचों भूतों से परे परमात्मा हैं, मैं आप को प्रणाम करता हूँ । हे योगेश्वर ! आप त्रैलोक्यव्यापी हैं । आप तीनों लोकों से परे हैं और समस्त लोकों के परम आश्रयस्थल हैं । आपको मैं प्रणाम करता हूँ । आपने मेरे विषय में जो बात कही है, उससे मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है । हे गोविन्द ! इससे मैं आपके दिव्य भावों को और आपके सनातन रूप को देख सकता हूँ । आपने परमतेजस्वी पवन के सातों पथ अवरुद्ध कर दिये हैं । आपके मस्तक से स्वर्ग, उभय चरणों से पृथिवी, उभय भुजाओं से समस्त दिशाएं व्याप्त हैं, सूर्य आपके नेत्र हैं और आपके वीर्य में शुक्र का वास है । आपका शरीर अतसीपुष्प जैसा है और पीताम्बर आप पहिने हुए हैं । हे अच्युत ! विद्युत् से ढके हुए मेघ की तरह आपका शरीर जान पड़ता है । हे देवसत्तम ! हे श्रीकृष्ण ! मैं तो आपका भक्त हूँ और आपके शरण में आया हुआ हूँ । मैं इच्छित गति प्राप्त करने की कामना वाला हूँ । अतः हे पुण्डरीकाक्ष ! आप मुझे ऐसा उपाय बतलावें, जिससे मेरा कल्याण हो ।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! आपकी अपने ऊपर विशेष भक्ति जान कर ही मैंने आपको अपने दिव्यरूप के दर्शन करवाये हैं । क्योंकि जो मेरा भक्त नहीं है अथवा जो कुटिल और अशान्तात्मा है, उसे मैं आत्मदर्शन

नहीं करवाता। आप मेरे अनन्य भक्त एवं अखण्ड धर्मव्रतधारी हैं, आप दम, तप, सत्य और दान में संलग्न रहते हैं, आप पवित्र हैं। आप अपने तपःप्रभाव से मेरा दर्शन करने योग्य हैं। आप उन लोकों में जाने का अधिकार प्राप्त कर चुके हैं, जहाँ गये हुए प्राणी को इस लोक में लौट कर आना नहीं पड़ता। हे भीष्म! आप अभी छप्पन दिन और इस धराधाम पर रहेंगे। तदनन्तर आप इस शरीर को त्याग कर, अपने पुण्यों के फल रूप उत्तम लोकों में जावेंगे। देखिये, धधकते हुए अग्नि की तरह चमचमाते विमानों में बैठे हुए अदृश्य देवगण और वसुगण उत्तरायण काल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे महात्मन्! आप उन्हीं लोकों में गमन करेंगे जिनमें गये हुए ज्ञानी जन लौट कर इस मर्त्यलोक में फिर कभी नहीं आते; किन्तु यह सब कार्य होंगे तभी जब इस सृष्टि के नियमानुसार उत्तरायण होगा। हे वीर! आपके इस लोक से विदा होते ही आपके साथ ही यहाँ से समस्त ज्ञान भी विदा हो जाँयगे। अतः ये लोग एकत्रित हो आपके निकट ज्ञानोपदेश सुनने के अर्थ ही आये हैं। इस समय नातेदारों का वध कर डालने के कारण उत्पन्न शोक से इन सब का ज्ञान अपहृत हो गया है। अतः सत्य-प्रतिज्ञ युधिष्ठिर को आप राजनीनि, धर्मनीति, अर्थनीति और योगविद्या सम्बन्धी सत्य वचनों का उपदेश दे इनका शोक शीघ्र नष्ट कर दें।

बावनवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का आदेश

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! श्रीकृष्ण के धर्मार्थयुक्त एवं हितकारी वचनों को सुन कर, भीष्म पितामह ने हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण से कहा—हे लोकनाथ! हे महाबाहो! हे कल्याणकारी! हे नारायण! हे अच्युत! मैं आपके वचनों को सुन कर, आनन्द में मग्न हो गया हूँ। हे प्रभो! मैं आपके सामने भला क्या कहूँ? संसार के यावत् वचन (उपदेश)

आपके दिव्य वचन (वेद रूपी वाणी) के अन्तर्गत हैं। बुद्धिमान जनों का इस लोक में जो कर्त्तव्य है और परलोक के लिये उन्हें जो कर्म करने चाहिये, हे देव! ये सब आप ही से उत्पन्न हुए हैं। आपके सामने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में कहना, वैसे ही धृष्टता करना है, जैसा इन्द्र के सामने स्वर्गलोक का वर्णन करने की धृष्टता करना। हे मधुसूदन! मेरे घावों में इस समय बड़ी वेदना हो रही है, मेरे समस्त शरीर में पीड़ा हो रही है। इसीसे मेरी बुद्धि मलिन हो रही है और मन खिन्न हो रहा है। हे गोविन्द! विष और अग्निवत् तीक्ष्ण बाणों के प्रहारों से मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, अतः मेरी बुद्धि इस समय ठीक नहीं है। मैं किसी भी विषय पर विचार करने में असमर्थ हूं। मुझे तो ऐसा जान पड़ रहा है कि, मेरे शरीर का सारा बल निकल गया और प्राण शरीर से निकलना ही चाहते हैं। मेरे मर्मस्थलों में जलन हो रही है और मेरा मन ठीक नहीं है। निर्बलता के कारण मुँह से वचन भी नहीं निकलते। अतः मैं धर्मोपदेश क्योंकर दे सकता हूं? हे कृष्ण! आप मेरे ऊपर सुप्रसन्न हो, आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैं अब कुछ भी न बोलूँगा। क्योंकि हे अच्युत! आपके सामने तो बोलने में बृहस्पति भी हिचकिचावेंगे, फिर औरों का तो पूछना ही क्या है? हे मधुसूदन! इस समय मुझे पृथिवी आकाश और दिशाओं तक का ज्ञान नहीं रह गया। मैं तो आपकी कृपा ही से प्राणों को रोके हुए हूं, अतः आप अविलंब धर्मराज को वह धर्मोपदेश दें, जिसे आप इनके लिये हितकर समझें। क्योंकि आप तो शास्त्रों के नियन्ता हैं। आप जगत्कर्त्ता और सनातन हैं। जैसे गुरु की उपस्थिति में शिष्य उपदेश नहीं कर सकता, वैसे ही आपके सम्मुख मुझ जैसा मनुष्य क्योंकर उपदेश दे सकता है।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भीष्म! आप कौरव-धुरन्धर, परमपराक्रमी, परम-सत्त्वशील और धैर्यवान् और सर्वअर्थज्ञ हैं। आपने जो वचन कहे हैं, वे आप ही के योग्य हैं। हे गङ्गा के पुत्र! बाण-प्रहार से होने वाली पीड़ा के विषय

में आपने जो कुछ कहा है, वह मुझे अवगत है; किन्तु हे प्रभो! मैं आपको जो वरदान देता हूँ उसे स्वीकार करो। हे गङ्गानन्दन! तब न तो आपके मन में ग्लानि उत्पन्न होगी, न आपको मूर्छा आवेगी, न मर्मस्थानों में जलन होगी, न पीड़ा और न भूख प्यास ही आपको सतावेगी। हे अनघ! आपको समस्त ज्ञान अपने आप भासने लगेगा और आपकी बुद्धि मलिन न होगी। हे भीष्म! आपका मन नित्य सत्त्वगुणी रहेगा तथा जैसे चन्द्रमा मेघ से युक्त रहता है, वैसे ही आप रजोगुण और तमोगुण से रहित रहेंगे। आप धर्म तथा अर्थ वाले जिस जिस विषय का चिन्तवन करेंगे वे वे विषय अपने आप आपकी बुद्धि में आ उपस्थित होंगे। हे असीम बल वाले राजसिंह! आप दिव्यचक्षु पा कर, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज, इन चार प्रकार के प्राणियों को देख सकोगे।

हे भीष्म! जैसे निर्मल जल में मछली देखी जाती है—वैसे ही तुम ज्ञानदृष्टि से जन्म मरण वाले प्राणियों को ज्यों का त्यों देख सकोगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर व्यास जी ने तथा समस्त महर्षियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के मंत्रों से स्तवन कर, श्रीकृष्ण का पूजन किया। उस समय जहाँ भीष्म और युधिष्ठिर के सहित श्रीकृष्ण थे, वहाँ आकाश से समस्त ऋतुओं में लगने वाले फूलों की वर्षा हुई। सब प्रकार के बाजे बजने लगे। अप्सराएं गाने लगीं। वहाँ उस समय कोई भी अपशकुन न देख पड़ा। सुखद एवं सुगन्धित स्वच्छ वायु चलने लगा, समस्त दिशाएं शान्त और स्वच्छ देख पड़ने लगीं। मृग और पक्षी शान्तिमय बोलियाँ बोलने लगे। इतने में सहस्ररश्मि भगवान् भुवन-भास्कर पश्चिम दिशा को गमन करते हुए देख पड़े। उस समय समस्त महर्षि खड़े हो गये और श्रीकृष्ण, भीष्म तथा युधिष्ठिर को उन लोगों ने आशीर्वाद दिये। तब श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, सात्यकि, सञ्जय और कृपाचार्य ने उन ऋषियों को प्रणाम किया और भली भाँति पूजन किया। वे धर्मात्मा महर्षि अगले दिन पुनः आने की सूचना दे, वहाँ से चल दिये। तदनन्तर

श्रीकृष्ण और पाण्डव भी भीष्म की परिक्रमा कर अपने अपने सुन्दर रथों पर जा बैठे। फिर वे सुवर्णनिर्मित विचित्र रथों पर, पर्वत समान मदमाते हाथियों पर और गरुड़ के समान वेगवान घोड़ों पर सवार हो रवाना हुए। उनके रथों के आगे पीछे धनुर्धर पैदल सिपाही चले जाते थे, थोड़ी ही देर में वे चन्द्रदेव, जिनका रस दिन में सूर्य की किरणों ने सोख लिया था, पाण्डवों की सेना को हर्षित करते हुए तथा औषधियों को अपनी शीतलता से पुष्ट करते हुए पूर्व दिशा में निकलते हुए देख पड़े। उस चाँदनी रात में यदुवंशी तथा पाण्डव उस कौरवपुरी में जा पहुँचे, जो स्वर्ग जैसी मनोहारिणी थी। सिंह जैसे गुफा में प्रवेश करे, वैसे ही वे राजा अपने अपने उत्तम राजभवनों में घुस गये।

तिरपनवाँ अध्याय

पाण्डवों का भीष्म के निकट ज्ञानोपदेश सुनने के लिये आगमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर श्रीकृष्ण जी सेज पर आनन्द से जा लेटे और सो गये। जब सवेरा होने में आधा प्रहर रह गया तब वे जागे। उस समय उन्होंने बुद्धि को स्थिर कर और इन्द्रियों को अपने अधीन कर, ज्ञानमार्ग द्वारा सनातन ब्रह्म का चिन्तवन किया। तदनन्तर शिक्षित मागध और बन्दीजन, उन श्रीकृष्ण की, जो विश्वकर्मा और प्रजापति रूपी हैं—मधुर कण्ठ से स्तुति करने लगे। वीणा बजाने वाले, स्तुतिपाठक, गवैया, अनेक बाजे बजाने वाले, शङ्खों, मृदङ्गों, ढोलकों और बाँसुरी में भाँतिभाँति के राग रागिनी अलापने लगे। श्रीकृष्ण के महल की यह आनन्दध्वनि दूर दूर तक सुन पड़ी। उधर महाराज युधिष्ठिर के महल में भी गान वाद्य होने लगा। स्तुतिपाठक मधुर कण्ठ से स्तुतिपाठ करने लगे। गान वाद्य होने लगा, महाबाहु अच्युत श्रीकृष्ण शय्या त्याग उठ खड़े हुए और प्रातःकाल के स्नानादि आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो, उन्होंने एकाग्र मन कर और

हाथ जोड़ कर गोपनीय मंत्र का जप करके अग्नि में होम कर फिर समस्त वेदों के ज्ञाता एक सहस्र ब्राह्मणों में से प्रत्येक को एक एक सहस्र गोदान दिये और उनसे स्वस्तिवाचन करवाया। फिर माङ्गलिक पदार्थों * का स्पर्श कर दर्पण में अपना मुख निहारा और सात्यकि से कहा—हे सात्यकि! तुम राजभवन में जा कर देख आओ कि, भीष्म जी के निकट चलने को महाराज युधिष्ठिर पोशाक पहन कर तैयार हुए कि नहीं। इस पर सात्यकि बड़ी फुर्ती के साथ राजभवन में गया और धर्मराज से बोला-राजन्! धीमान् श्रीकृष्ण जी का रथ तैयार खड़ा है और श्रीकृष्ण जी भी भीष्म पितामह के निकट जाने को तैयार हैं और आपकी प्रतीक्षा में बैठे हैं। अब आप जैसा उचित समझें करें। सात्यकि के ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—अर्जुन! हमारा रथ तैयार करवा लो। आज साथ में सेना के चलने की आवश्यकता नहीं है। हम ही वहाँ जायँगे, महात्मा भीष्म को हम दुःखी करना नहीं चाहते। अतएव मेरे आगे चलने वाले सैनिक यहीं रहें। आज से भीष्म पितामह बड़े बड़े गुप्त रहस्यों का हमें उपदेश देंगे। अतः हे अर्जुन! सर्वसाधारण जनों को मैं अपने साथ वहाँ ले चलना ठीक नहीं समझता।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! कुन्तीपुत्र अर्जुन ने राजा की बात सुन कर, तुरन्त उनके उत्तम रथ को जोड़ कर, उनके निकट ला खड़ा किया। तदनन्तर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव उस रथ पर सवार हो कर श्रीकृष्ण के डेरे पर पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचते ही सात्यकि सहित श्रीकृष्ण अपने रथ पर सवार हो गये। साथ ही उन्होंने युधिष्ठिरादि से रात के कुशल समाचार पूँछे और पूँछा कि रात सुख से तो बीती? इस प्रकार कुशल प्रश्न पूछ वे लोग मेघ की तरह घरघराहट करने वाले रथों पर सवार हो, कुरुक्षेत्र की ओर चल दिये। दारुक, श्रीकृष्ण के बलाहक, मेघपुष्प शैब्य और सुग्रीव नामक घोड़ों को हाँकता हुआ जाने लगा। वे महा-

* गौ, दही, दूध आदि माङ्गलिक पदार्थ कहलाते हैं।

बली एवं वेगवान् घोड़े अपने खुरों से पृथिवी खोदते हुए से जाने लगे। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानों वे आकाश को निगल जाँयगे। कुछ ही देर बाद वे लोग धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पर भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े हुए थे। उस समय भीष्म जी महर्षियों के बीच शरशय्या पर लेटे हुए थे और ऐसा जान पड़ता था मानों देवताओं के बीच ब्रह्मा जी बैठे हों। भीष्म जी को देखते ही श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि रथों से उतर पड़े और हाथ जोड़ कर ऋषियों को प्रणाम किया। उस समय युधिष्ठिर की वैसी ही शोभा हो रही थी जैसी शोभा ताराओं से घिरे हुए चन्द्र की होती है। जैसे इन्द्र लोकपितामह ब्रह्मा जी के निकट जाते हैं, वैसे ही युधिष्ठिर भी भीष्म पितामह के निकट गये। वहाँ जा भयत्रस्त एवं आश्चर्य-चकित धर्मराज ने देखा कि, आकाश-च्युत सूर्य की तरह भीष्म पितामह शरशय्या पर लेटे हुए हैं।

चौवनवाँ अध्याय

भीष्म से धर्मोपदेश दिलवाने का हेतु

जनमेजय ने पूछा—हे वैशम्पायन! वीर पुरुषों का समागम होने पर समस्त सेनाएं मारी गयी थीं और महाबली, बड़े वीर्यवान्, सत्यप्रतिज्ञ, मनस्वी, महाभाग्यशाली और पुरुषसिंह शान्तनुसुत एवं गङ्गानन्दन देवराज भीष्म जी शरशय्या पर पड़े हुए थे और पाण्डव उनकी सेवा में उपस्थित थे।

जनमेजय ने कहा—हे वैशम्पायन जी! उस समय जो जो बातें कही सुनी गयी हों—वे सब तुम मुझे सुनाओ।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन्! जब कौरवों के वीरधुरन्धर भीष्म पितामह शरशय्या शायी हो गये, तब नारदादि अनेक ऋषि और सिद्ध वहाँ पहुँचे। युद्ध में मारे जाने से बचे हुए युधिष्ठिरादि पाण्डव तथा अन्य

राजागण, युधिष्ठिर को आगे कर, आकाशच्युत सूर्य की तरह शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह के निकट गये और शोक करने लगे। दो घड़ी तक कुछ विचार कर नारद जी ने युधिष्ठिरादि को सम्बोधन कर उनसे यह कहा—मेरे मतानुसार तो जो कुछ तुम्हें पूँछना हो वह पूँछ लो। क्योंकि इनसे प्रश्न करने का यही समय है। क्योंकि भीष्म जी कुछ काल बाद सूर्य की तरह सदा के लिये अस्त होने वाले हैं, क्योंकि अब उनकी अन्तिम श्वासें चल रही हैं। वे शरीर त्यागने को अब तैयार ही हैं। अतः तुम लोग धर्मसम्बन्धी सब बातें उनसे पूँछ लो। वे समस्त धर्मों को जानते हैं। यह बूढ़े बाबा अब शरीरत्याग कर परलोक सिधारने ही वाले हैं। अतः तुम लोगों के मन में जो जो सन्देह हों, उन सब को इस समय दूर कर दो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! नारद जी के यह कहने पर समस्त राजा भीष्म पितामह के निकट गये; किन्तु प्रश्न न कर सके और एक दूसरे के मुख को निहारने लगे। तदनन्तर धर्मराज ने श्रीकृष्ण से कहा—देवकीनन्दन श्रीकृष्ण को छोड़ और कोई भी भीष्म जी से प्रश्न नहीं कर सकता। अतः हे यादवश्रेष्ठ कृष्ण! प्रथम आप ही प्रश्न करें। क्योंकि हम सब में समस्त धर्मों के ज्ञाता एवं श्रेष्ठजन आप ही हैं।

इस पर श्रीकृष्ण जी दुराधर्ष भीष्म जी के निकट गये और उनसे इस तरह प्रश्न करना आरम्भ किया। वासुदेव जी बोले—हे राजश्रेष्ठ! रात को आप आनन्द से तो रहे? आपकी बुद्धि तो अब स्थिर है? हे अनघ! आपकी समस्त इन्द्रियाँ चैतन्य तो हैं? आपको किसी प्रकार का दुःख तो नहीं है? आपका मन व्यग्र तो नहीं है?

भीष्म जी ने उत्तर दिया—हे कृष्ण! मेरे शरीर की थकावट, पीड़ा और जलन, मेरे मन का मोह, दुःख एवं ग्लानि, आपके अनुग्रह से एक ही दिन में दूर हो गये। अब तो मुझे हथेली पर रखे हुए फल की तरह भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान दिखलायी पड़ रहे हैं। हे अच्युत! वेद में

कथित अग्निहोत्रादि धार्मिक अनुष्ठानों का विधान और वेदान्तशास्त्र में कथित शम दमादि के वास्तविक रूप को आपके अनुग्रह से मैं भली भाँति जान गया हूँ। चारों आश्रमों के धर्मों में जो तत्व भरा हुआ है वह भी मेरे हृदयस्थ हो गया है। शिष्टों का कहा हुआ शिष्टाचार रूपी धर्म भी मेरे में बसा हुआ है। हे जनार्दन! मैं भिन्न भिन्न देशों और कुलों में होने वाले आचारों और धर्मों को जानता हूँ। हे केशव! मुझे राजधर्म भी मालूम हैं। जिस स्थल पर जो कहना चाहिये, वह मैं कहूँगा। आपके अनुग्रह से मेरे मन में अब शुभ विचार उत्पन्न हो रहे हैं। आपका ध्यान करने से मेरे मन में एक प्रकार की दृढ़ता सी आ गयी है। हे जनार्दन! आपकी कृपा से मैं अब हितकर उपदेश दे सकता हूँ; किन्तु हे माधव! आप स्वयं ही पाण्डवों को उनके हित की बातों का उपदेश क्यों नहीं देते? इसका कारण आप शीघ्र बतलावें।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे कुरुवंशी! आपको विदित है कि, यश और प्रेम का मूल मैं ही हूँ। सत् और असत् यावत् पदार्थों की उत्पत्ति मुझी से हुई है। यदि कोई यह कह उठे कि चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं—तो इस कथन से क्या कोई विस्मित होगा? भीष्म! मैं इस संसार में आपका यश फैलाना चाहता हूँ। इसीसे मैंने आपकी बुद्धि स्थिर कर दी है और आपके धर्मभावों को जाग्रत कर दिया है। हे पितामह! जब तक यह भूमि है, तब तक आपकी कीर्ति भी अचल बनी रहेगी। प्रश्नकर्त्ता युधिष्ठिर को आप जो धर्मोपदेश देंगे, वह वेदोपदेश की तरह इस भूमण्डल पर अचल अटल रहेगा। साथ ही जो लोग आपके कथित एवं प्रामाणिक उपदेश को सुन कर, अपना मन ईश्वर की ओर लगा देगा, उसे मरने के बाद समस्त पुण्यफल प्राप्त होंगे। अतः हे भीष्म! मैंने इस संसार में आपके यश का विस्तार करने के उद्देश्य ही से आपको दिव्य दृष्टि प्रदान की है। पृथिवी पर जब तक पुरुष की कीर्ति बनी रहती है, तब तक लोग उसका यशोगान किया करते हैं। हे राजन्! मरने से बचे

हुए ये राजा धर्मसम्बन्धी जिज्ञासा के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। इन्हें आप धर्मोपदेश दें। आप वयोवृद्ध हैं, आपने वेदों की व्यवस्था सुनी है। आप सदाचारी हैं, समस्त राजधर्मों में निपुण हैं तथा अन्य विषय भी आप जानते हैं। जब से आप जन्मे हैं, तब से ले कर आज तक आपमें किसी को कोई छिद्र नहीं देख पड़ा। सब लोगों का यह मत है कि आप धर्म के तत्त्व के ज्ञाता हैं। जैसे पिता पुत्र को धर्मोपदेश देता है, वैसे ही आप भी इनको राजनीति का उपदेश दीजिये। आपने सदा ही ऋषियों और देवताओं की उपासना की है। अतः आप निश्चय ही सब प्रकार के उपदेश दे सकते हैं। क्योंकि यदि कोई किसी महात्मा विद्वान से धर्मसम्बन्धी प्रश्न करे तो उस विद्वान को चाहिये कि, ऐसे जिज्ञासुओं को अवश्य धर्मोपदेश दें। विद्वज्जनों का कथन है कि—ऐसा करना उनका कर्त्तव्य है।

हे राजन्! जो मनुष्य प्रार्थना करने पर भी धर्मोपदेश नहीं करता उसे दुःखदायी पाप लगता है। अतः हे भरतसत्तम! आप अपने इन जिज्ञासु पुत्रों और पौत्रों को सनातन धर्म का उपदेश दें।

पचपनवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर को प्रश्न करने की अनुमति देना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! श्रीकृष्ण के इस कथन को सुन कर, परमतेजस्वी भीष्म जी कहने लगे—हे गोविन्द! आपके अनुग्रह से मेरी वाणी और मन सबल हो गये हैं। अतः मैं अब धर्मोपदेश करूँगा। आप सनातन पुरुष और समस्त प्राणियों के आत्मा हैं। आपका कहना मैं टाल नहीं सकता। अब युधिष्ठिर मुझसे नीति और कर्त्तव्य के सम्बन्ध में प्रश्न करें, मैं सहर्ष उन्हें उनके प्रश्नों के उत्तर दूँगा।

जब युधिष्ठिर का जन्म हुआ था; तब समस्त ऋषियों को हर्ष हुआ था। अतः वे ही युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न करें। उज्ज्वल यश वाले और कौरवों में बेजोड़, राजा युधिष्ठिर सहर्ष मुझसे धर्म सम्बन्धी प्रश्न करें। युधिष्ठिर में धैर्य, दम, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धर्म, ओज और तेज सदा विद्यमान रहते हैं, अतः वे मुझसे प्रश्न कर सकते हैं। जो राजा युधिष्ठिर अपने नातेदारों का अतिथियों का, भृत्यों का और आश्रित जनों का सम्मान पूर्वक सत्कार करते हैं, वे युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न कर सकते हैं। दान, तप, शूरता, शान्ति, चातुर्य और धैर्यादि सद्गुण जिनमें सदा पाये जाते हैं, वे युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न कर सकते हैं। जो युधिष्ठिर सदा सत्यभाषण करते हैं, जो सदा क्षमावान् और ज्ञानवान् बने रहते हैं, जो अतिथि-प्रिय हैं, जो सदा सत्पात्रों को दान दिया करते हैं, वे मुझसे प्रश्न कर सकते हैं। यज्ञानुष्ठान और स्वाध्याय-परायण, धर्मात्मा, क्षमावान् और शास्त्र रहस्य को सुनने वाले युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न कर सकते हैं।

श्रीकृष्ण जी बोले—धर्मराज युधिष्ठिर शर्माते हैं वे डरते हैं कि, कहीं आप उनको शाप न दे दें। अतः आपके सामने आते सङ्कोच करते हैं। हे राजन्! लोकनाथ युधिष्ठिर जगत् का संहार कर, शाप के भय से आपके निकट नहीं आते। युधिष्ठिर आपके निकट आते हुए इस लिये हिचकिचाते हैं कि, उन्होंने अपने पूज्यों, मान्यों, भक्तों, गुरुवों, नातेदारों, बन्धु बान्धवों और उन लोगों को, जिन्हें अर्घ्य देना उचित था, बाणप्रहार से मार डाला है। अतः वे आपके सामने आते हुए हिचकते हैं।

भीष्म जी बोले—हे कृष्ण! जैसे वेद पढ़ना, पढ़ाना तथा तप करना यह ब्राह्मणों का धर्म है, वैसे ही समर में जूझ कर शरीरपात करना क्षत्रियों का धर्म है। क्षत्रिय का यह धर्म है कि यदि पिता, चाचा, ताऊ, बाबा, भाई, गुरु, नातेदार, बन्धु बान्धव खोटे काम करें, तो उन्हें युद्ध में मार डाले। हे केशव! जो अपने धर्म को भूल कर और लोभी बन

जाय, उस पापिष्ठ को जो क्षत्रिय समर में मार डालता है, वही क्षत्री क्षात्रधर्म का ज्ञाता है। जो क्षत्रिय रण में इस धरा को रक्तरूपी जल से केशरूपी तृणों से, गजरूपी पर्वतों से और ध्वजारूपी वृक्षों से युक्त बना देता है, वह क्षात्रधर्म को जानने वाला है। यदि कोई क्षत्री लड़ने की ललकार सुन कर लड़ता है तो रणधर्म के अनुसार उसे स्वर्ग मिलता है और उसका परलोक सुधरता है। यह मनु जी का मत है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब भीष्म ने ये वचन कहे, तब बड़ी विनम्रता के साथ धर्मराज महाराज युधिष्ठिर भीष्म के निकट उनका दर्शन करने को जा खड़े हुए। फिर उन्होंने भीष्म जी के चरण स्पर्श कर, उन्हें प्रणाम किया और उनका मस्तक सूँघ उनसे कहा—बैठ जाओ। समस्त धनुर्धरों में श्रेष्ठ गङ्गापुत्र ने युधिष्ठिर से कहा—हे कुरुकुल में श्रेष्ठ! भयभीत मत हो। तुम्हें जो कुछ पूँछना हो निःसङ्कोच भाव से पूछो।

छप्पनवाँ अध्याय

राजधर्म

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को तथा भीष्म पितामह को प्रणाम कर तथा व्यासादि पूज्यजनों से आज्ञा माँग, भीष्म जी से प्रश्न किया—हे भगवन्! समस्त धर्मवेत्ता राजधर्म (अर्थात् प्रजापालन) को श्रेष्ठ बतलाते हैं; किन्तु मैं इस भार का उठाना दुरूह कार्य समझता हूँ। अतः आप मुझे राजधर्म सुनावें। हे पितामह! आप मुझे क्रम से राजधर्म सुनावें। क्योंकि सारे जगत् का परमाधार धर्म राजधर्म के ऊपर निर्भर है। यह इस लिये कि, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षधर्म राजधर्म ही में प्रतिष्ठित हैं। जैसे घोड़े को काबू करने में लगाम सहायता देती है, जैसे हाथी को वश में करने के लिए अङ्कुश

उपयोगी है, वैसे ही समस्त लोगों को वश में करने के लिए राजधर्म उपयोगी है, यह शास्त्रज्ञों का कथन है। राजर्षियों के सेवित धर्मानुसार जो लोग नहीं चलते हैं, उनकी व्यवस्था ठीक नहीं रहती और इसका परिणाम यह होता है कि, सारा जगत् घबड़ा जाता है। जैसे सूर्य उदय हो कर अशुभ अन्धकार का नाश करता है, वैसे ही मनुष्यों की अशुभ गति को रोक कर, उनका परलोक सुधारने वाला राजधर्म है। हे पितामह! अतः आप मुझे सर्वप्रथम राजधर्म सुनावें, क्योंकि आप धर्मनिष्ठों में अग्रणी हैं। साथ ही परन्तप वासुदेव आपको महा-बुद्धिमान मानते हैं। अतः मेरी अभिलाषा है कि, हम सब आपके मुख से परम रहस्य सुनें।

भीष्म जी ने कहा—इस परम धर्म को और पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण तथा ब्राह्मणों को प्रणाम कर, मैं मनुष्यों के सनातन धर्मों का बखान करता हूँ। हे युधिष्ठिर! मैं तुम्हें समस्त राजधर्म सुनाता हूँ। तुम सावधान हो कर सुनो। इसके अतिरिक्त और जो कुछ तुम सुनना चाहो वह भी सुनो। हे राजन्! प्रजा का रञ्जन करने की इच्छा रखने वाला राजा शास्त्रोक्त विधि से देवता और विप्रों की सेवा करे। क्योंकि जो राजा देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करता है, वह धर्मलोप होने के कारण उत्पन्न होने वाले ऋण से उऋण हो जाता है और प्रजा भी उसे चाहने लगती है। हे वत्स! तुम सदैव अपने विजय के लिये प्रयत्न कर के पुरुषार्थ किया करना। क्योंकि राजाओं के काम केवल दैव पर निर्भर रह कर और बिना पुरुषार्थ के सिद्ध नहीं होते। यद्यपि दैव और पुरुषार्थ कार्यरूपी रथ के दो पहियों के समान हैं; तथापि मैं दैव की अपेक्षा पुरुषार्थ को श्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि पुरुषार्थ के बिना दैव की सिद्धि ही नहीं होती। यदि प्रारम्भ किया हुआ कोई काम निष्फल हो जाय, तो उसके लिये, तुम्हें सन्ताप न करना चाहिये। बल्कि प्रारम्भ किए हुए कार्य की सफलता के लिये निरन्तर उद्योग करते रहना चाहिये। क्योंकि ऐसा करना राजाओं का परम

धर्म है। सत्य को छोड़ राजाओं के सफल-मनोरथ होने का अन्य कोई भी साधन नहीं है। सत्य का व्यवहार करने वाले राजा को इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र! ऋषियों का परम धन सत्य ही है। दूसरों के मनो में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने का साधन सत्य छोड़ और कुछ भी नहीं है। जो राजा गुणी, शीलवान्, सरल स्वभाव, कोमल प्रकृति, धर्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, प्रसन्नमना, स्थूललक्ष्य वाला और बड़ा उदार होता है, उस पर राज्यलक्ष्मी की सदा कृपा बनी रहती है। हे राजन्! राजा को न्याय करते समय पक्षपात न करना चाहिये। राजा को अपने राजकीय विचार गुप्त रखने चाहिये और परच्छिद्रान्वेषण में तत्पर रहना चाहिये। राजा को तीन कामों में सरलता से काम न लेना चाहिये। वे तीन काम ये हैं। निज-दोष-गोपन, शत्रु के दोष खोजना, जिस काम को करना हो उसे सिद्ध करने के पूर्व प्रकट न करना। जो राजा कोमल स्वभाव वाला होता है, उसका प्रायः सब लोग अपमान कर बैठते हैं और उग्र स्वभाव वाले राजा से प्रजाजन डरा करते हैं। अतः राजा को समयानुसार अथवा आवश्यकतानुसार कोमल और उग्र होना चाहिये।

हे परमोदार! तुम ब्राह्मणों को दण्ड कदापि मत देना। क्योंकि ब्राह्मण इस जगत में उत्तम कोटि के प्राणी माने जाते हैं। हे राजेन्द्र! महात्मा मनु ने इस सम्बन्ध में दो श्लोक कहे हैं, वे राजधर्म से सम्बन्ध रखते हैं—अतः उन्हें तुम अपने हृदयपटल पर अङ्कित कर लो। जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ है। इनका सर्वव्यापी तेज अपनी ही योनि में जाकर शान्त होता है। जब लोहे से पत्थर पर प्रहार किया जाता है, अग्नि जल में डाला जाता है और क्षत्रिय ब्राह्मण से द्वेष करने लगता है, तब ये तीनों हततेज हो जाते हैं। अतएव हे राजन्! तुम ब्राह्मणों को सदैव प्रणाम करना। यदि उत्तम ब्राह्मणों का यथोचित सत्कार किया जाय, तो वे वेदाध्ययन और यज्ञानुष्ठान-

परायण रहते हैं। हे नरव्याघ्र! यदि कोई सर्वथा पूज्य ही क्यों न हो; किन्तु जो तीनों लोकों को दुःखदायी हो, उसे राजा भुजबल से शिक्षा दे कर अपने वश में कर ले। पूर्वकाल में शुक्राचार्य इस विषय में दो श्लोक कह गये हैं। उन दोनों श्लोकों को, हे युधिष्ठिर! तुम एकाग्र हो कर सुनो। वेद और वेदान्त शास्त्र को पढ़ लेने पर भी जो ब्राह्मण हाथ में शस्त्र ले अपने ऊपर चढ़ आवे तो धर्मरक्षक राजा को उचित है, कि उस आततायी को राजधर्मानुसार शिक्षा दे। जो नष्ट होते हुए धर्म की रक्षा करता है, वही धर्मज्ञ है। आततायी का वध करने वाला धर्मनाशक नहीं समझा जाता। क्योंकि क्रुद्ध आततायी का नाश उसका क्रोध ही करता है।

हे राजन्! इस तरह ब्राह्मणों की रक्षा करे और यदि वे कोई सङ्गीन अपराध करें तो उन्हें राजा देशनिकाले का दण्ड दे। यदि किसी ब्राह्मण पर सत्य या असत्य—किसी भी प्रकार का दोष लगा हो तो राजा (एक बार) अवश्य उस पर ध्यान न दे अर्थात् दया प्रदर्शित करे। किसी ब्राह्मण ने यदि ब्रह्महत्या कर डाली हो, यदि अपनी गुरुपत्नी के साथ खोटा काम किया हो और गर्भपात करवाया हो या स्वयं किया हो, अथवा वह राजद्वेषी हो गया हो, तो ऐसे ब्राह्मण को राजा अपने राज्य के बाहिर कर दे; किन्तु ब्राह्मण को प्राणदण्ड कदापि न दे। राजा को उचित है कि वह ब्राह्मणभक्तों के साथ प्रीति रखे। ब्राह्मण-भक्त-जनों के संग्रह से बढ़ कर, दूसरा श्रेष्ठ भाण्डार नहीं है। शास्त्र में निश्चय किये हुए * छः प्रकार के दुर्गों में शास्त्रकारों ने मनुष्यरूपी दुर्ग को परम दुर्जेय माना है। अतएव बुद्धिमान राजा सदैव चारों वर्णों की प्रजा के ऊपर दया रखे।

धर्मात्मा और सत्यवादी राजा अपनी प्रजा के लोगों को सदा प्रसन्न रख सकता है। हे वत्स! तुझे उचित है कि, तू सब पर क्षमा प्रदर्शित न करे, क्योंकि क्षमावान् गज के समान क्षमावान राजा धर्म का विरोधी

---

* मरु, जल, पृथिवी, वन, पर्वत और मनुष्य—ये छः प्रकार के दुर्ग हैं।

माना गया है। पूर्वकाल में बृहस्पति की नीति में इस विषय पर एक श्लोक है। उसे मैं सुनाता हूँ। सुनो, जो राजा सदा क्षमा ही क्षमा प्रदर्शित करता है, उसका नीच पुरुष तक तिरस्कार करेंगे। क्योंकि महावत तो हाथी के सिर पर ही तो चढ़ना चाहता है। अतः राजा न तो नितान्त मृदु हो और न अति उग्र। राजा को तो वसन्तकालीन सूर्य की तरह न तो प्रखर आतप वाला होना चाहिये और न अति शीतल ही होना चाहिये। राजा को आवश्यकतानुसार कोमल और उग्र होना चाहिये। राजा को उचित है कि वह लोगों की परीक्षा * प्रत्यक्ष, † अनुमान और ‡ उपमान से करता रहे। तुम्हें सब प्रकार के § व्यसनों को छोड़ देना चाहिये। क्योंकि व्यसनी राजा अपनी प्रजा के साथ द्वेष करने लगता है और तब प्रजा घबड़ाने लगती है। राजा || प्रकृतिमण्डल के साथ सदा गर्भवती स्त्री जैसा व्यवहार करे। गर्भवती स्त्री जैसे व्यवहार का आशय क्या है, उसे भी तुम सुनो। गर्भिणी स्त्री जैसे अपना हित न विचार कर गर्भस्थ बालक का हित विचार कर तदनुरूप कार्य करती है, वैसे ही धर्मात्मा राजा अपने हित की परवाह न कर, प्रजाहित की ओर ध्यान रखे।

राजा को धैर्यच्युत कभी न होना चाहिये। जो राजा धैर्यवान् है और कुमार्गियों का शासन करने वाला प्रसिद्ध हो जाता है वही किसी से कभी डरता नहीं। हे वाग्विदाम्वर! राजा को अपने नौकरों चाकरों के साथ हँसी दिल्लगी न करनी चाहिये। ऐसा करने से जो खराबियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें सुनो। नौकरों को अधिक मुँह लगाने से वे अपने स्वामी का अपमान

---

* प्रत्यक्ष = उपकार अपकारादि कार्य। † अनुमान = मुख, नेत्र आदि के इशारे। ‡ उपमान = पहले या अन्यत्र किये हुए कार्य। § व्यसन = शिकार, जुआ, दिन में शयन, परनिन्दा करना या सुनना, स्त्रियों में आसक्ति, मदिरापान, नृत्य, गान, वाद्य, व्यर्थ घूमना आदि। || प्रकृति मण्डल = प्रजा और दरबारी।

करने लगते हैं और अपनी पदमर्यादा को भूल जाते हैं ; वे अपने मालिक की आज्ञाओं का पालन नहीं करते। यदि वे किसी काम पर भेजे जाँय, तो वे जाँय या न जाँय के विचार के उधेड़बुन में लग जाते हैं और काम करने में मन नहीं लगाते। गुप्त बातों को प्रकट कर देते हैं, जो वस्तुएँ न माँगनी चाहिये, उन्हें माँगने लगते हैं। इतना ही क्यों राजा के पीठ-पीछे, राजा के लिये जो भोजन बनाया जाता है, उसे खा लेते हैं। बात बात में चिल्लाते चीखते हैं और राजा से अधिक नाम पाने का उद्योग करते हैं। वे इतने ढीठ हो जाते हैं कि, वे राजा पर भी हुकुम चलाने लगते हैं। घूस ले और धोखा दे, राज्य के कार्यों में विघ्न उपस्थित करने लगते हैं। जाली फरमान जारी कर, राज्य में गड़बड़ मचा देते हैं। रनवास के रक्षकों को मिला कर रनवास में घुसने लगते हैं और राजा जैसी पोशाकें पहिन कर निकलते हैं। वे राजा के निकट बैठ जमुहाई लेते हैं, थूकते हैं, निर्लज्जता भरी फूहर बातें कहते हैं और गुप्त भेदों को दूसरों के सामने प्रकट कर दिया करते हैं।

यदि कहीं राजा कोमल स्वभाव का और हँसमुख हुआ तो पद पद पर वे उसका अपमान करते हैं और उसकी सवारी के हाथियों, घोड़ों और रथों पर स्वयं सवार हो निकला करते और घूमा करते हैं। वे लोग भरी सभा में राजा से वैसे ही बोलते हैं, जैसे मित्र से लोग बोला करते हैं। यथा—आप यह काम नहीं कर सकते अथवा यह काम अच्छा नहीं है। उनके ऐसे अनुचित व्यवहार से जब राजा क्रुद्ध होता है, तब वे अट्टहास करने लगते हैं। राजा जब उनका सत्कार करता है, तब भी वे प्रसन्न नहीं होते बल्कि बराबरी का दावा करने लगते हैं। राजकीय गुप्त भेदों को तथा राजा के दोषों को वे प्रकट कर देते हैं। राजा की आज्ञा की जीट उड़ाते हैं तब वे उसका पालन करते हैं। वे राजा को सुनाते हुए निडर हो, उसके वेष भूषा, आचार विचार की हँसी उड़ाया करते हैं। उनको जो अधिकार दिये जाते हैं, उनका तिरस्कार कर, वे उन्हें त्याग देते हैं।

उन्हें जो वृत्ति या वेतन दिया जाता है, उससे वे सन्तुष्ट नहीं होते और राजकीय धन को डकार जाते हैं। जैसे बालक डोरी में बँधी चिड़िया से खेलता है वैसे ही वे राजा के साथ भी खेल किया करते हैं और लोगों से कहते फिरते हैं कि, राजा तो हमारे वश में है। यदि कहीं राजा उन्माद हुआ या मृदुस्वभाव हुआ, तो उसमें ऊपर वर्णित समस्त दोष तथा इनके अतिरिक्त अन्य दोष भी प्रकट होते हैं।

सत्तावनवाँ अध्याय

सर्वप्रिय होने के लिये राजा को प्रजारक्षक होना आवश्यक है

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर ! राजा का सदैव पुरुषार्थी होना नितान्त आवश्यक है। जो राजा सदा उद्योगरत न हो कर स्त्री की तरह निठल्ला बैठा रहता है, उस राजा की लोग प्रशंसा नहीं करते हैं। इस विषय पर शुक्राचार्य का एक श्लोक प्रसिद्ध है—उसे तुम ध्यान दे कर सुनो। जैसे बिलों में रहने वाले मूसों को साँप निगल जाता है, वैसे ही उस राजा को जो दण्डार्ह को दण्ड नहीं देता और उस ब्राह्मण को, जो वेदाध्ययन के लिये बाहिर नहीं जाता, पृथिवी निगल जाती है। इन सब बातों को हृदयङ्गम कर लेने पर, तुम इस नीति के साथ मेल करने योग्य लोगों से मेल जोल कर लेना और वैर करने योग्य, मनुष्यों के साथ शत्रुता कर लेना। जो मनुष्य सप्ताङ्ग विशिष्ट राज्य का अनिष्ट करना चाहता हो—वह भले ही गुरु हो या मित्र, राजा को उचित है कि, उसे जान से मार डाले।

पूर्वकाल में राजा मरुत्त ने बृहस्पति के मतानुसार एक श्लोक कहा था—जिसका सारांश यह है—कार्याकार्य को न जानने वाले, अभिमानी एवं कुमार्गगामी गुरु को भी राजा दण्ड दे। बाहु के पुत्र राजा सगर ने

अपनी प्रजा के हितसाधन के लिये अपने ज्येष्ठराजकुमार असमञ्जस को त्याग दिया था। असमञ्जस प्रजाजनों के बालकों को पकड़ पकड़ कर, सरयू नदी में डुबो दिया करता था। अतः राजा सगर ने असमञ्जस को अपने देश से निकाल दिया था। श्वेतकेतु ब्राह्मणों को निमंत्रण तो देता; किन्तु उनका आतिथ्य नहीं करता था, अतः उसके पिता उद्दालक ऋषि ने अपने परम तपस्वी एवं प्रिय पुत्र को त्याग दिया था। राजा का कर्त्तव्य है कि, वह अपने प्रजा जनों को प्रसन्न रखे, सदा सत्य बोले और व्यवहार में सरलता से काम ले। राजा कर वसूल करने के लिये कृषकों का अनाज खेतों में न रुकवावे। क्योंकि ऐसा करने से वह अनाज, वर्षा आदि द्वारा नष्ट हो जाता है। नियत समय पर नौकरों को वेतन दे। सदा पराक्रमी, सत्यवादी और आवश्यकतानुसार क्षमावान् बने। जो राजा ऐसा करता है उसका कभी अकल्याण नहीं होता। जो राजा आये हुए क्रोध को रोक लेता है, मन को अपने काबू में रखता है, जिसे शास्त्रों में संशय नहीं होता, जो धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये सदा प्रयत्नशील बना रहता है, जो धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी विचारों को गुप्त रखता है, वही मनुष्य राजा होने योग्य होता है। गुप्त विचारों को गुप्त न रख सकने के बराबर दुःख राजा के लिये और कोई नहीं है।

राजा का यह सनातन कर्त्तव्य है कि वह चारों वर्णों के धर्मों की रक्षा करे। राजा जब कभी कर्मसाङ्कर्य होता देखे, तब तुरन्त उसे रोक दे। राजा अपने पिता के सेवक को छोड़, अन्य किसी मनुष्य पर विश्वास न करे। साथ ही जो अत्यन्त विश्वस्त हो उसका भी सदा विश्वास न करे। राजा * छः विषयों के गुणों और दोषों पर स्वयं सदा दृष्टि रखे। जो राजा अपने शत्रु के छिद्रों पर सदा दृष्टि रखता है और अपने छिद्रों को ढके रहता है, उसे धर्म, अर्थ और काम का यथार्थ रूप प्रकट हो जाता है। जिस राजा के गुप्तचर सदा घूमा फिरा करते हैं और जो राजा वैरियों के मंत्री सेनापति

* छः विषय ये हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव।

आदि को घूंस दे फोड़ लेता है, उस राजा की लोग प्रशंसा किया करते हैं। जो राजा यमोपम प्रभाववान् और न्यायवान होता है, कुबेर की तरह जो अपना धनागार भरा पूरा रखता है, तथा शत्रु पक्षीय मंत्री, राज्य, दुर्ग, धनागार और सैन्यबल का पता रखता है तथा जो राजा शत्रु के स्थान, वृद्धि और ह्रास को जानता रहता है, जो राजा शत्रु के पोषणीय आश्रित जनों को पोषण करता है और पालनियों के पालन का पता लगाता रहता है, जो सदा प्रसन्नवदन रहता है और जो सदा हँस हँस कर बातचीत किया करता है, वृद्धों की सेवा करता है, तन्द्रा को जीत लेता है, चपलता नहीं करता, सत्पुरुषों के प्रति अपने विचारों को स्थिर रखता है, अथवा सदाचार में दृढ़ निष्ठा रखता है, अपने आस पास रहने वाले पुरुषों को सन्तुष्ट रखता है, जो प्रिय दर्शन होता है, जो सत्पुरुषों के धन को नहीं छीनता, प्रत्युत दुर्जनों से धन छीन कर सज्जनों को देता है, वैरियों को जो स्वयं दण्ड देता है, समय समय पर सेवकों को इनाम देता है, अपने मन को अपने काबू में रखता है, भूषणों से भूषित रहता है, समय पर दान देता है, ऐश्वर्यों को भोगता है और शुद्धाचरणी होता है वही यथार्थ राजा है। जो राजा ऐश्वर्यवान होना चाहे, उसे उचित है कि वह ऐसे लोगों को अपना सहायक बनावे, जो वीर हों, भक्त हों, जिन्हें वैरी अपनी ओर फोड़ न सकें, जो कुलीन हों, जो शरीर से स्वस्थ हों, जो शिष्ट हों, उच्च विचार वाले और उच्च बर्त्ताव करने वाले हों, जो समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हों, जो लोकव्यवहार कुशल हों, जो शत्रु की देखभाल रखते हों, जो कर्त्तव्य-परायण हों तथा जो विपत्ति पड़ने पर पर्वत की तरह अटल अचल बने रहते हों अपने ऐसे सहायकों को राजा केवल छत्र लगाने का तथा आज्ञा देने का तो अधिकार न दे; किन्तु उनकी खातिरदारी में कसर न करे। उन्हें अपने जैसे ही भोग भुगवावें। ऐसे अपने सहायकों के साथ प्रत्यक्ष और परोक्ष में समान व्यवहार करे। जो राजा ऐसा व्यवहार करता है, उसे पीछे पछताना नहीं पड़ता; किन्तु जो राजा सब के ऊपर सन्देह करता है, प्रजा का सर्वस्व

छीन लेता है, जो राजा लोभी और कपटी होता है, उस राजा को अवसर हाथ आते ही उसके सेवक और कुटुम्बी मार डालते हैं। जो राजा भीतर बाहिर से एक सा पवित्र रहता है, जो राजा अपने प्रजाजनों को सन्तुष्ट रख उनका मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, वह राजा यदि शत्रुओं द्वारा घेर भी लिया जाय तो भी वह राज्यभ्रष्ट नहीं होता और यदि पराजित हो भी जाय, तो अपने सहायकों की सहायता से पूर्ववत् हो जाता है। जो राजा न तो क्रोधी है और न व्यसनी ही, जो राजा दण्ड देते समय मृदुता से काम लेता है, जो राजा जितेन्द्रिय होता है, उस राजा पर हिमालय पर्वत की तरह लोगों का अटल अचल विश्वास जम जाता है। जो राजा बुद्धिमान, दाता, शत्रु के छिद्रों को शीघ्र पा लेने वाला, प्रियदर्शन, चारों वर्णों की प्रजा की नीति अनीति को जानने वाला, प्रारम्भ किये हुए कार्य को शीघ्र पूरा करने वाला, क्रोध को रोकने वाला, पोष्यवर्ग पर अनुग्रह करने वाला, उदारमना, कोमल स्वभाव, कार्यकुशल, निज प्रशंसा से विरक्त होता है, वही राजा उत्तम समझा जाता है। जैसे पुत्र अपने पिता के घर में निर्भय हो विचरता है, वैसे ही जिस राजा के राज्य में प्रजाजन निडर हो कर रहते हैं, उस राजा को उत्तम समझना चाहिये। जिस राजा के प्रजाजनों का ऐश्वर्य प्रकट रहता है, जिसकी प्रजा के लोग नीति अनीति को जानते हैं, वही राजा उत्तम है। जिस राजा की प्रजा के लोग धर्म कर्म में निरत रहते हैं, शरीर की मोह ममता में नहीं फँसते; किन्तु जो शरीरसाध्य कार्यों पर आस्था रखते हैं, शान्त शिष्ट होते हैं उस राजा को सनातन धर्मावलम्बी समझना चाहिये। जो राजा, अपनी प्रजा का यथार्थ रूप से पालन करता है, जिसके राज्य के लोग अपने राजा के वश में रहते हैं तथा समझाने से मान जाते हैं, आज्ञानुवर्ती, कलह न करने वाले और दानशील होते हैं, उसीको श्रेष्ठराजा समझो। जिसके देश में दगा, कपट, माया और मत्सरता का प्रचार नहीं होता, उस राजा को सनातनधर्मी समझना चाहिये। पण्डितों का सत्कार करने वाला, शास्त्रों के विचार में अनुरक्त और

दूसरों के हित में तत्पर सन्मार्गगामी और दानशील राजा ही राज्य कर सकता है। जिसके जासूसों को शत्रु न जान पावे, जिसके गुप्त कार्यों को कोई जान न पावे, वही राजा राज्य करने योग्य है। शुक्राचार्य ने परशुराम का चरित्र कह कर, पीछे से राजा के कर्त्तव्यों के विषय में एक श्लोक पढ़ा था। वह यह है कि, मनुष्य प्रथम राजा को फिर स्त्री को और फिर धन को प्राप्त करे। क्योंकि यदि राजा ही न होगा तो स्त्री और धन की रक्षा क्यों कर होगी। राज्याभिलाषी राजाओं को अपनी प्रजा की रक्षा करने के अतिरिक्त और कोई भी सनातन धर्म नहीं है। क्योंकि रक्षाकार्य प्रजाजनों को प्रसन्न करने वाला है। हे नरेन्द्र! प्रचेता के पुत्र मनु ने राजधर्म का निरूपण करते हुए दो श्लोक कहे हैं, उन्हें तुम मन लगा कर सुनो। उपदेश न देने वाले आचार्य, वेद न पढ़ने वाले ऋत्विक्, प्रजा की रक्षा न करने वाले राजा, अप्रियभाषिणी पत्नी, ग्राम में रहने की इच्छा रखने वाले ग्वाला, और वन में रहने की इच्छा रखने वाले नाई (नापित) को वैसे ही त्याग दे; जैसे भग्न नौका को लोग समुद्र में त्याग देते हैं।

अट्ठावनवाँ अध्याय

प्रजाप्रिय होने का उपाय

भीष्म जी कहने लगे—हे युधिष्ठिर ! राजधर्म का जो सारांश था, वह मैंने तुम्हें समझा दिया। भगवान् बृहस्पति भी इस न्याययुक्त धर्म की प्रशंसा करते हैं। भगवान् कवि विशालनयन एवं महातपा शुक्राचार्य, महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भरद्वाज, गौरशिरा आदि वेदपारग ब्राह्मण राजनीति के रचयिता थे। राजधर्म में प्रजारक्षण ही की प्रशंसा है। अतः अब तू मुझसे राजधर्म के साधनों को सुन। राजा को दूत रखने चाहिये तथा अन्य राजाओं के राज्य में अपना प्रतिनिधि अर्थात् एलची रखना चाहिये। राजा

को उचित है कि, समय पर अपने नौकरों को धनादि से उनके कार्यों को पुरस्कृत किया करें। राजा बड़ी युक्ति के साथ प्रजा से कर वसूल करे। राजा बड़े यत्न से अपने राज्य में सत्पुरुषों का संग्रह करे। वीरता, युक्ति, सत्यभाषण, चातुर्य, प्रजाहित की दृष्टि से सरलता या कुटिलता से वैरियों में फूट डाले, राजा दुःखी मनुष्यों की और पुराने कुलीनों की खोज करे। राजा को उचित है कि अपराध की गुरुता या लघुता के अनुसार अपराधी को शारीरिक अथवा अर्थदण्ड (जुरमाना) दे। सत्पुरुषों का त्याग न करे, अपने निकट कुलीन पुरुषों को रखे, संग्राह्य धान्यादि पदार्थों का संग्रह करे, बुद्धिमान् जनों को अपना सहायक बनावे, सैनिकों का उत्साह बढ़ाता रहे, स्वयं नित्य प्रजा की देखभाल किया करे, काम करने में उदास न हो, भाण्डारों की वृद्धि करे, नगर की रक्षा में अन्धविश्वासों से काम न ले। यदि वैरियों ने नागरिकों को बहका दिया हो तो उनमें भेद डाल दे, वैरियों, तटस्थों और मित्रों को यथोचितरीत्या देखे अपने सेवकों की परीक्षा लेने को दूसरे लोगों से उन्हें दिखलावे। स्वयं जा कर नगरों की देखभाल किया करे, स्वयं किसी पर भी विश्वास न करे और वैरी को धीरज बँधा कर, उसके मन में अपनी ओर से विश्वास उत्पन्न कर ले। राजा को उचित है कि, वह तिरस्कार तो वैरियों का भी न करे, निष्ठुरजन को अपने राज्य से निकाल दे। राजनीति के अनुसार बर्त्ताव करे, शत्रु पर आक्रमण करने के लिये सदा तैयार रहे।

बृहस्पति का कथन है कि राजाओं को उचित है कि, चढ़ाई करने को तैयार रहें, क्योंकि यही तो राजधर्म का मूल है। इस प्रसङ्ग में उन्होंने जो नीति बतलायी है, उसे तुम सुनो। पूर्वकाल में उद्योग द्वारा इन्द्र को अमृत मिला था। उन्होंने उद्योग ही से पृथिवी पर तथा स्वर्ग में उत्कृष्टता प्राप्त की थी। निपुण उद्योगी पुरुष बहु-वाक्-वीर पण्डित से भी श्रेष्ठ है। उद्योगी पण्डित—वीरों को प्रसन्न कर, उनकी उपासना करते हैं। किन्तु उद्योगहीन राजा का निर्विष सर्प की तरह वैरी तिरस्कार करते हैं।

पुरुष बलवान हो कर भी निर्बल शत्रु का तिरस्कार न करे, क्योंकि अग्नि की ज़रा सी चिनगारी में भी भस्म कर डालने की शक्ति होती है, ज़रा सा भी विष प्राण लेने को पर्याप्त है। गजसेना, रथसेना, अश्वसेना और पैदल सेना—ये चार प्रकार की सेनाएं होती हैं। इनमें से शत्रु के पास एक भी सेना हो और वह यदि क़िले के बल पर बैठा हो तो, वह अपने वैरी सम्पत्तिशाली राजा को बहुत छका सकता है। राजा को उचित है कि वह अपने गुप्त विचारों को, सैन्य एवं प्रजासंग्रह को, विजय प्राप्ति के लिये निश्चय किये हुए कपटों तथा पापों को सावधानी से छिपा कर रखे और दिखलावे निष्कपटपन। राजा अपनी प्रजा को वश में रखने के लिये दम्भ पूर्वक धार्मिक कार्यों को करे। क्रूर राजा अथवा मृदुस्वभाव वाला राजा विशाल राज्य का कार्य नहीं चला सकता। जिस राज्य को सभी हड़प जाना चाहते हैं, उसकी रक्षा करना सहज काम नहीं है। अतः हे युधिष्ठिर! राजा को क्रूरता और मृदुता दोनों ही का सहारा ले कर शासन कार्य चलाना चाहिये। यदि प्रजारक्षण, करते हुए राजा पर कोई सङ्कट आपड़े तो भी राजा को उचित है कि, प्रजारक्षण को अपना परम धर्म माने। क्योंकि प्रजा की रक्षा करना—राजाओं को परमावश्यक है। हे युधिष्ठिर! यह तो राजधर्म का लेश मात्र वर्णन है। अब तुम और जो कुछ पूँछना चाहो, वह पूँछ लो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भीष्म जी के इन वचनों को सुन कर, वेदव्यास, देवस्थान, अश्म, श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा सञ्जय बहुत प्रसन्न हुए। उनके मुखकमल मारे हर्ष के खिल गये। वे बहुत ठीक, बहुत ठीक कहने लगे। साथ ही उन लोगों ने पुरुषव्याघ्र भीष्म की प्रशंसा की। तदनन्तर कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने आँखों में आँसू भर, भीष्म जी के चरणस्पर्श किये और दीन हो धीरे धीरे कहने लगे—पितामह! पृथिवी का रसपान कर सूर्य अस्ताचलगामी हो रहे हैं। सायङ्काल का समय उपस्थित है। अतः अब मैं कल प्रश्न करूँगा। यह कह युधिष्ठिरादि पाण्डवों

ने श्रीकृष्ण और कृपाचार्य सहित गङ्गानन्दन भीष्म की परिक्रमा की और वे हर्षित हो तथा रथों पर सवार हो, दृषद्वती के तट पर जा पहुँचे। वहाँ स्नान तथा जलदान, सन्ध्योपासन और जयादि माङ्गलिक कृत्य कर, वे हस्तिनापुर को लौट आये।

उनसठवाँ अध्याय

राजा और राज्य की उत्पत्ति-कथा

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अगले दिन सवेरा होते ही पाण्डवों और यादवों ने स्नानादि आवश्यक कृत्यों से निवृत्त हो, नगर के समान विशाल रथों पर सवार हो कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। कुरुक्षेत्र में पहुँच वे शरशय्या-शायी भीष्म के निकट जा पहुँचे। पाण्डवों ने भीष्म जी से रात का कुशल समाचार पूँछा और व्यासादि को प्रणाम किया। तब समस्त ऋषियों ने उनको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर वे सब भीष्म को घेर उनके चारों ओर बैठ गये। तदनन्तर यथाविधि भीष्म का पूजन कर और हाथ जोड़, युधिष्ठिर भीष्म जी से बोले—हे भगवन्! आप मुझे बतलावें कि, राजा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई और इस शब्द का प्रचार जगत में कैसे हुआ? राजा और अन्य लोगों के हाथों, हथेलियों कण्ठों, बुद्धि और अन्य इन्द्रियों में समानता पायी जाती है। राजा को भी सुख और दुःख का अनुभव सामान्य पुरुष जैसा होता है। राजा का मुख और पेट भी अन्य लोगों के समान ही है। राजा की और एक सामान्य पुरुष की हड्डियों में मज्जा में माँस और रुधिर में भी कोई अन्तर नहीं है। राजा वैसे ही स्वाँस लेता और निकालता है जैसे अन्य लोग। राजा और अन्य लोगों के प्राण और शरीर भी सामान्य होते हैं। इस प्रकार राजा अन्य सामन्य जन के समान होते हैं। इस प्रकार राजा की सामान्य पुरुष के साथ हर बात में समानता होने पर भी राजा नामक व्यक्ति विशेष

क्योंकर बड़े बड़े बुद्धिमान और वीर पुरुषों पर हुकूमत करता है? क्या कारण है जो वीर आर्यपुरुषों से परिपूर्ण इस पृथिवी का शासन एक व्यक्ति विशेष क्यों कर करता है और उसकी प्रसन्नता सम्पादन करने के लिये इतर जन क्यों लालायित रहा करते हैं? एक व्यक्ति की प्रसन्नता से सब लोग प्रसन्न होते हैं और एक की विकलता से सब लोग क्यों विकल हो जाते हैं? यह रीति क्योंकर प्रचलित हो रही है? मैं इन सब का उत्तर यथार्थरीति से सुनना चाहता हूँ।

हे राजन्! एक व्यक्ति विशेष के देववत् मान सब लोग प्रणाम करते हैं; इसका कारण सामान्य नहीं हो सकता।

भीष्म जी ने कहा—हे पुरुषव्याघ्र! पूर्वकाल में सत्ययुग में जैसे राज्य का सङ्गठन हुआ था, यह तुम सावधान होकर सुनो। पूर्वकाल में सत्ययुग में कोई राज्य न था और न कोई राजा ही था। उस ज़माने में न तो किसी प्रकार का दण्ड था और न दण्ड देने वाला ही कोई जन था। धर्मबन्धन में बँधे हुए प्रजाजन आपस में एक दूसरे की रक्षा किया करते थे। इस प्रकार बहुत सा समय बीत गया, लोगों को बड़ा श्रम हुआ। तब वे प्रमादी हो गये। मोहग्रस्त होने से उनका ज्ञान नष्ट हो गया और ज्ञान नष्ट होते ही उनका धर्म नष्ट हो गया। इससे वे सब के सब लोभ में फँस गये। लालच में फँस वे अप्राप्य पदार्थों की चाहना करने लगे। हे राजन्! तब वे काम के अधीन हो गये। कामवशवर्ती होते ही वे राग से आक्रान्त हुए। गमनागमन, वाच्या-वाच्य, भक्ष्याभक्ष्य, दोषा-दोष के विचार से वे सब शून्य हो गये। इससे मर्त्यलोक में बड़ा उपद्रव मचा और वैदिक-धर्म लुप्त होने लगा। यज्ञ याग बंद हो गये। वेदज्ञान के लुप्त होते ही यज्ञयागादि क्रियाएं बंद हो गयीं। यज्ञादि क्रियाओं के बंद होते ही देवताओं में भय का सञ्चार हुआ। तब सब देवता एकत्र हो ब्रह्मा जी के शरण में गये। वे सब ब्रह्मा जी के स्तुति द्वारा प्रसन्न कर, और स्वयं दुःखी हो हाथ जोड़ कर कहने लगे—मर्त्यलोक में सनातन

वेद लुप्त हो गया। वहाँ इस समय लोभ मोह का दौरदौरा है। अतः हम भयत्रस्त हो रहे हैं। वेदज्ञान का लोप होने से धर्म नष्ट हो गया है। अतः हे नाथ! हम भी मनुष्यों की कोटि के हो गये हैं। मनुष्य नीचे से यज्ञ करते थे और हम ऊपर से जलवृष्टि करते थे; किन्तु जब से मनुष्यों ने यज्ञ यागादि कर्म करना बंद कर दिया, तब से हम बड़े दुःखी रहते हैं। हे पितामह! अब आप वह काम करें जिससे हमारी भलाई हो। आप की कृपा से हमारा ऐश्वर्य और सत्य सङ्कल्पत्व आदि हमारा स्वभाव और सामान्य ज्ञान नष्ट न होना चाहिये।

यह सुन स्वयम्भू भगवान ब्रह्मा जी कहने लगे—तुम अपने मनों से भय को निकाल डालो। मैं तुम्हारी भलाई के लिये उपाय सोचूँगा। तदनन्तर ब्रह्मा जी ने निज बुद्धिबल से एक लक्षात्मक अध्यायों वाला नीतिशास्त्र का एक ग्रन्थ रचा जिसमें धर्म अर्थ काम का वर्णन किया गया था। उस ग्रन्थ का नाम त्रिवर्ग रखा। फिर ब्रह्मा जी ने भिन्न गुणों से सम्पन्न मोक्ष नामक चतुर्थ पदार्थ का भी निरूपण किया। सत्त्व, रज और तम को ले, उसमें भिन्न ही त्रिवर्ग का वर्णन किया। स्थान, वृद्धि, क्षय, रूपी दण्ड के त्रिवर्ग का भी वर्णन उसमें किया। इस ग्रन्थ में * मित्र, देश, काल उपाय, सहाय और कारण नीति के इन छः गुणों का भी वर्णन है। कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, कृषि, वाणिज्य, आदि जीविका के उपायों का वर्णन भी इस ग्रन्थ में किया गया है। दण्डनीति एवं अन्य विद्याओं का वर्णन भी इसमें है। मंत्रियों के ऊपर दृष्टि रखने वाले गुप्त-दूतों की नियुक्ति का विषय, राजपुत्र के लक्षण, विविध भेषधारी गुप्तचरों का वर्णन; साम, दान, दण्ड, भेद और उपेक्षा नामक पाँचों उपायों

---

* चार अवसर ये है १ अपने मित्रों का आधिक्य होने पर। २ धन का पर्याप्त संग्रह होने पर ३ शत्रु के मित्रों का क्षय होने पर और ४ शत्रु के धनागार के रिक्त होने पर।

का भी वर्णन इस ग्रन्थ में है। राजनैतिक समस्त विषय भी इस ग्रन्थ में पूर्णरीत्या वर्णित हैं। इस ग्रन्थ में राजनैतिक विचारों की गड़बड़ी, उनकी सिद्धि तथा उनकी निष्फलता के कारणों का भी वर्णन है। डर कर की गयी शत्रु के साथ हीन सन्धि, प्रतिष्ठा पूर्वक की गयी मध्यम सन्धि और धन द्वारा की गयी उत्तम सन्धि का वर्णन भी इस ग्रन्थ में है। शत्रु के ऊपर आक्रमण करने के चार अवसरों का भी वर्णन है, साथ ही उसमें धर्म, अर्थ और काम का भी विस्तृत निरूपण है। इस ग्रन्थ में धार्मिक विजय, आर्थिक विजय और आसुरी विजय का भी विस्तृत विवरण है। मंत्री, सेना, दुर्ग, देश और भाण्डार नामक पञ्चवर्ग का उत्तम, मध्यम, और अधम स्वरूप भी इस ग्रन्थ में दिया गया है। इस ग्रन्थ में प्रकट और अप्रकट सेना का वर्णन है। आठ प्रकार की प्रकट सेना और अनेक प्रकार की गुप्त सेनाएँ लिखी हुई हैं। रथ, गज, अश्व, पदाति, बेगार में पकड़े हुए मज़दूर, नौकर, गुप्तचर और आक्रमण किये गये देशवासी और अपने पक्षपाती लोगों का भी वर्णन इस ग्रन्थ में दिया गया है। पोशाक में, भोजन में, * स्थावर और † जङ्गम विषों के संमिश्रण की विधि कही गयी है। अभिचारादि क्रियाओं द्वारा मारण की विधि, शत्रु, मित्र और उदासीन पुरुषों की पहचान का भी इसमें वर्णन है। मार्ग के गुण, भूमि के गुण, मंत्र तंत्रादि से बचने के उपाय; रथ की बनावटों का निरूपण, मनुष्य, गज, और घोड़ों को बलवान और पुष्ट बनाने के उपाय, तरह तरह की व्यूह रचनाएं, विविध प्रकार के युद्ध कौशल, धूमकेतादि ग्रहों के उत्पात, उल्कापात भूकम्प आदि निपात, बड़े बड़े युद्ध, युद्ध को बरका कर निकल जाने का उपाय और शस्त्रों को पैनाने की विधि, इस ग्रन्थ में बतलायी गयी है। सङ्कट के समय सेना को अपने पक्ष में बनाये रखने के उपाय, सैनिकों को

---

* स्थावर विष—संखिया, अफीम आदि। † जंगम विष—सर्प, बिच्छू आदि का विष।

उत्साहित करने की विधि तथा सैनिकों के ऊपर पड़ी हुई विपत्ति और कष्टों को जान लेने की विधि, दुन्दभी बजाकर शत्रु पर आक्रमण करने का विधान, पताकादि को ऊपर चढ़ाने की विधि, दुन्दभी बजा और पताका फहरा कर शत्रु को भयभीत करने की विधि, चोरों तथा वनवासी लुटेरों द्वारा शत्रु के राज्य को तहस नहस करने की विधि, आग लगाने वालों, विष लगाने वालों तथा शिल्पियों द्वारा शत्रु को पीड़ित करने का विधान, शत्रुसैन्य के अधिकारियों को घूस दे कर मिलाने की विधि, शत्रुराज्य में उत्पन्न अनाज को नष्ट करके शत्रु को तंग करने की विधि, मंत्र तंत्रादि की सहायता से शत्रु के हाथियों को रोगी और पीड़ित करने की विधि और अपने पक्षपाती जनों के मनों में खातिरदारी कर के विश्वास उत्पन्न कर शत्रु के देश को पीड़ित करने की विधि, इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। सातों अंगों से युक्त राज्य का क्षय, और उसकी वृद्धि करने की विधि, दूत द्वारा देश की वृद्धि विधि; वैरी, मित्र और तटस्थ जनों का विस्तृत निरूपण, और बलवानों का अन्य लोगों की सेनाओं से नाश कराने के उपाय, राजसभा की बारीकियाँ, वैरी और चोरादि के समूल नाश की विधि, मल्ल विद्या और शस्त्रचालन की विधि, दान देने की विधि, धनसंग्रह करने के उपाय, पोष्य वर्ग के पोषण का विधान, आश्रित भृत्य वर्ग की देखभाल, अवसर पर सुपात्रों को धनादि के दान की विधि, द्यूत, मद्यपानादि व्यसनों का निषेध, राजा और सेनापति के सद्गुणों का वर्णन, धर्म, अर्थ और काम का साधन, गुण और दोषों का वर्णन विविध भाँति के दुराचरणों का वर्णन, नौकरों की आजीविका का वर्णन भी इस ग्रंथ में दिया हुआ है। राजा को किस प्रकार सब लोगों से सावधान रहना चाहिये, प्रमाद त्यागना चाहिये, अप्राप्त वस्तु को किस प्रकार प्राप्त करना चाहिये और प्राप्त वस्तु की किस प्रकार रक्षा और वृद्धि करनी चाहिये आदि विषयों का भी इस ग्रंथ में वर्णन है। इस ग्रन्थ में सुपात्र को बढ़ी हुई वस्तु का विधिपूर्वक दान देने की विधि, धर्म के लिये यज्ञादि क्रियायों को करने के लिये, कामभोगादि के लिये और दुःख का नाश करने के लिये धन

को खर्च करने की रीति भी इस ग्रन्थ में लिखी है। हे कुरुश्रेष्ठ! क्रोध से और काम से उत्पन्न होने वाले दस उग्र व्यसनों का वर्णन भी इसमें है। धर्मशास्त्र के आचार्यों का कथन है कि, ब्रह्मा जी ने स्वनिर्मित इस ग्रन्थ में आखेट, द्यूत, मद्यपान, और स्त्रीसंग के कामजन्य व्यसन बताये हैं। गाली गलौज करना, उग्रता दिखाना, मार कूट करना, अपने शरीर को क़ैद में रखना, परधन को उड़ा देना—ये क्रोधजन्य व्यसन हैं। अनेक प्रकार के यंत्र और उनकी क्रियाएं, परसेना में शत्रु के देश पर चढ़ाई कर शत्रु को पीड़ित करना, वैरी के नगरों और घरों को नाश करने की विधि, प्राचीन मन्दिरों और वृक्षों को नष्ट करने का विधान, कृषि की विधि, शस्त्र कवचादि के बनाने की विधि इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। हे युधिष्ठिर! ढोल, नगाड़े, शङ्ख और दुन्दभि आदि युद्ध के बाजों के बनाने की रीति तथा समय समय पर इन्हें बजाने की रीति, मणि, पशु, भूमि, वस्त्र, दास, दासी और सुवर्ण को प्राप्त करने की विधि तथा वैरी के पदार्थों को नष्ट कर डालने की विधि का भी इस ग्रन्थ में वर्णन है। नये जीते हुए देशों में शान्तिस्थापन करने की विधि, सब श्रेणी के पुरुषों के सम्मान करने की रीति, विद्वानों के साथ मैत्री करने के उपाय, दान एवं हवन की विधि, माङ्गलिक (कुश, सुवर्ण आदि) वस्तुओं के स्पर्श का विधान, शारीरिक शृङ्गार की रीति, भोजन करने की विधि, सदैव आस्तिक बने रहने के उपाय, अकेले राजा के वैरी पर आक्रमण करने की विधि, सत्यभाषण की मीमांसा, मधुरभाषी होने की आवश्यकता, घर पर ध्वजा लगाने की विधि, जिस जगह लोग नित्य जमा होकर वार्त्तालाप करते हों, उस जगह पर दूत नियुक्त कर लोगों का हाल जानते रहने की विधि भी इस ग्रन्थ में वर्णित है। ब्राह्मणों को दण्ड न देने की बात, दण्डार्ह व्यक्तियों को युक्तिपूर्वक दण्ड देने का विवरण, अपने सहायकों में घनिष्टता बढ़ाने के उपाय, गुणियों का सम्मान करने की विधि, नगरवासियों की रक्षा का विधान, राज्यवृद्धि का विधान, बारहों प्रकार के स्वतंत्र राजाओं के साथ सम्बन्ध रखने की मीमांसा

और विधान भी इस ग्रन्थ में दिये हैं। वैद्यकशास्त्र में प्रसिद्ध अनेक प्रकार के संस्कार, देशधर्म, जातिधर्म और कुलधर्म का भी इसमें वर्णन है। धनागार की वृद्धि करने वाली क्रियाओं का, माया के प्रयोगों का तथा प्रवाह वाली नदियों के जल को विपादि से दूषित करने का विधान भी इस ग्रन्थ में वर्णित है। इस ग्रन्थ में उन उपायों का भी वर्णन किया गया है, जिनसे मनुष्य सनातन आर्य-जाति उपयोगी धर्मकार्यों से भ्रष्ट न हो। शक्तिमान ब्रह्मा जी ऊपर वर्णित विषयों से युक्त इस ग्रन्थ को रच, बड़े प्रसन्न हुए और देवराज इन्द्र से बोले—मैंने सब लोगों के उपकार के लिये तथा धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग को स्थापित करने के लिये, अपनी वाणी के साररूप नीतिशास्त्र को रच कर अपनी बुद्धि का उत्कर्ष दिखलाया है। लड़ाई और दयालुहृदय से दिये हुए दण्डविधान सहित इस ग्रन्थ का लोगों में प्रचार हो जाने से लोगों की रक्षा होगी। ये सारा जगत् दण्ड से पुरुषार्थ का फल भोगने में समर्थ होता है, क्योंकि दण्ड बिना राजव्यवस्था ठीक ठीक नहीं होती। दण्डनीति तीनों लोकों में व्याप्त है। यह नीति दण्डनीति कहलाती है। नीति के छः गुणों से पूर्ण यह नीतिग्रन्थ महात्माओं की दृष्टि में सर्वाग्रगण्य माना जायगा। इस ग्रन्थ में चतुर्विध पुरुषार्थों का भी वर्णन है। अनेक रूपधारी, विशालनेत्र उमापति श्रीमहादेव जी को यह ग्रन्थ सर्वप्रथम प्राप्त हुआ। फिर मनुष्यों की आयु कम होते देख, ब्रह्मा के रचे हुए इस नीति शास्त्र को उन्होंने संक्षिप्त बना डाला। विशाल-नयन शिव द्वारा संक्षिप्त किये जाने के कारण इस ग्रन्थ का नाम वैशालाक्ष प्रसिद्ध हुआ। इस ग्रन्थ में दस सहस्र अध्याय हैं। सर्वप्रथम इस नीति शास्त्र का अध्ययन इन्द्र ने किया था। तदनन्तर इन्द्र ने इस ग्रन्थ को और भी संक्षिप्त कर, पाँच सहस्र अध्याय का एक ग्रन्थ रचा। उसका नाम बाहु-दन्तक पड़ा। तदनन्तर बृहस्पति ने इस ग्रन्थ को संक्षिप्त कर, अपनी बुद्धि से इसका सार तीन सहस्र श्लोकों में रचा और उसका नाम बार्हस्पत्य कहा जाता है। तदनन्तर अपार बुद्धिमान् महायशस्वी योगाचार्य शुक्रा-

चार्य ने इस ग्रन्थ को भी संक्षिप्त कर, एक सहस्त्र अध्यायों में रचा। महर्षियों ने जब देखा कि, मनुष्यों की आयु घटती जाती है, तब उनके हित के लिये, उन लोगों ने युगानुकूल इस ग्रन्थ को और भी संक्षिप्त कर डाला।

ब्रह्मा जी के द्वारा इस नीति ग्रन्थ की रचना हो चुकने के बाद देवताओं ने प्रजापति विष्णु के निकट जा कर उनसे कहा—हमें आप एक ऐसा पुरुष दें, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ हो। इस पर भगवान ने मनन कर विरज नामक एक मानसिक तैजस पुत्र उत्पन्न किया। इस भाग्यशाली विरज ने पृथिवी पर राज्य करना नहीं चाहा ; किन्तु हे पाण्डव ! उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। विरज के पुत्र का नाम कीर्तिमान् था। उसकी भी विषय में प्रीति न थी। उसका पुत्र कर्दम हुआ। वह भी बड़ा तपस्वी था। प्रजापति कर्दम के अनङ्ग नामक पुत्र हुआ। वह प्रजारक्षक, सज्जन और दण्डविधान शास्त्र में कुशल था। अनङ्ग के पुत्र का नाम अतिबल था। वह महाबली बड़ा बलवान और नीतिमान् तो था; किन्तु अपनी इन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर सका था। इस पर भी वह एक विशाल राज्य का अधीश्वर था। मृत्यु देव की स्त्री का नाम मानसी था। उसके गर्भ से सुनीथा नाम्नी एक लड़की उत्पन्न हुई। वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी। उससे अतिबल का वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह राजा राग तथा द्वेष के वशवर्ती हो, प्रजाजनों में अधर्म का प्रचार करने लगा। अतः वेदवेत्ता ऋषियों ने अभिमंत्रित कुशों से वेन को मार डाला। तदनन्तर उन्हीं ऋषियों ने उसकी दहिनी जंघा को मथ कर, बौना और भयानक शक्ल वाला एक पुरुष निकाला। उस पुरुष के शरीर का और सिर के बालों का रङ्ग जली हुई लकड़ी की तरह काला था। उसके नेत्र लाल थे। उसे देख ऋषियों ने कहा—निषीद—अर्थात् नीचे बैठ। यह कहते ही उस पुरुष के शरीर से निषद जाति के पुरुष उत्पन्न हुए। वे स्वभावतः क्रूर थे तथा पर्वतों और वनों में बस गये थे। उनमें से जो विन्ध्याचल में रहने लगे, वे म्लेच्छ हैं और उनकी संख्या लाखों पर है।

ऋषियों ने फिर वेन का दहिना हाथ मथा। उसमें से इन्द्र की तरह रूपवान् पुरुष उत्पन्न हुआ। उसके शरीर पर कवच था, कमर पर खड्ग था, उसके पास धनुष और बाण थे। वह वेद और वेदाङ्गों में निपुण तथा धनुर्वेद में पारङ्गत था। हे राजन्! सम्पूर्ण राजनीति ने उस महात्मा पुरुष का आश्रय लिया था। उस वेन राजा के पुत्र ने दोनों हाथ जोड़ कर महर्षियों से कहा—हे ऋषियों! धर्म तथा अर्थ का विचार करने में अतीव सूक्ष्म बुद्धि मेरी सहायता कर रही है, अतः उस बुद्धि से क्या करूँ? यह तुम मुझे ठीक रीति से बतलाओ। तुम मुझसे यदि कोई काम लेना चाहो, तो मैं उसे निःशङ्क हो कर करने को तैयार हूँ। इस पर देवताओं ने और महर्षियों ने उससे कहा—जो कार्य तुझे सब प्रकार से धर्ममय जान पड़े, उसे तू निडर हो कर। तू प्रिय अप्रिय का विचार त्याग और पक्षपात छोड़ कर, सब के साथ एक सा वर्त्ताव कर। काम, क्रोध, लोभ और मान को दूर ही से त्याग देना। तू धर्म-त्यागी मनुष्य को भुजबल से दण्ड देना और धर्म की देख-भाल किया करना। तू मन वचन और काया से हम लोगों के सामने प्रतिज्ञा कर कि, मैं मृत्युलोक के वेदतुल्य नीतिशास्त्र को सदा ब्रह्मरूप माना करूँगा और उसमें कथित नियमानुसार व्यवहार किया करूँगा। मैं निडर हो दण्डनीति-कथित धर्म का सदा पालन करूँगा और इन्द्रियों के वश में कदापि नहीं होऊँगा। हे विभो! तू प्रतिज्ञा कर कि मैं ब्राह्मण को कभी दण्ड न दूँगा और ब्राह्मणों की रक्षा करूँगा।

इस पर वेननन्दन ने उन देवताओं और ऋषियों से कहा—हे महापुरुषों! मैं महा भाग्यवान ब्राह्मणों की बात मानता हूँ। तब उन वेदवेत्ता ब्राह्मणों ने कहा—बहुत अच्छा और वेनपुत्र का समर्थन किया। साङ्गोपाङ्ग वेदों के ज्ञाता शुक्राचार्य ने उसका पुरोहित होना मंजूर किया। बालखिल्य ऋषि और सारस्वत ब्राह्मण उसके मंत्री बने और महर्षि गर्ग उसके ज्योतिषी बने। वेन का यह पुत्र राजा पृथु, विष्णु से आठवीं पीढ़ी में था। पृथु का जन्म होने के पूर्व सूत और मागध नामक दो वन्दीजन उत्पन्न हुए

थे। प्रतापी राजा पृथु ने प्रसन्न हो सूत को अनूप (समुद्र-तट-वर्त्ती) देश और मागध को मगध देश दे दिया। सुनते हैं कि, राजा पृथु के समय में पृथिवी बड़ी ऊबड़ खाबड़ थी। उसे राजा पृथु ने समतल किया। सब मन्वन्तरों में पृथिवी ऊबड़ खाबड़ हुआ करती है—अतः राजा पृथु ने पृथिवी पर पत्थर पटकवा कर समतल करवाया। हे महाराज! पृथु ने धनुष की नोंक से पहाड़ को विदीर्ण कर, सम किया। तत्पश्चात् विष्णु ने, देवेन्द्र ने, देवगण ने, ऋषिगण ने, प्रजापतियों ने और ब्राह्मणों ने राजा पृथु का राज्याभिषेक किया था। हे राजन्! यह पृथिवी मूर्तिमती हो राजा पृथु की सेवा किया करती थी। नदीपति समुद्र, देवराज इन्द्र तथा पर्वतराज हिमालय ने पृथु को अक्षय्य धन दिया। सुवर्णपूरित मेरुगिरि ने राजा पृथु को सुवर्ण दिया, यक्षों तथा राक्षसों के स्वामी एवं नरवाहन भगवान् कुबेर ने उसे धर्म, अर्थ, काम सम्पादन करने योग्य धन दिया। घोड़े, रथ, हाथी और करोड़ों पुरुष, पृथु के चिन्तवन करते ही उसे मिल गये। राजा पृथु के राज्य-काल में किसी मनुष्य को जरा दुष्काल, आधि, व्याधि, पीड़ा नहीं देती थी सर्प, अग्नि, चोर का भी भय किसी को नहीं था। राजा पृथु जब समुद्र पार जाना चाहता, तब समुद्र का जल स्थिर हो जाता था। पर्वत उसे राह दे देते थे। इससे उसके रथ का भुजदण्ड कभी नहीं टूटता था। इस राजा ने सत्तरह प्रकार के अनाज पृथिवी से पैदा किये थे। यक्ष, राक्षस, सर्प जिसने जो वस्तु माँगी उसे उसकाल में पृथिवी ने वही दी थी। राजा पृथु ने इस धराधाम पर धर्म का ख़ूब प्रचार किया और समस्त प्रजाओं का रञ्जन किया। अतः वह संसार में राजा की उपाधि से प्रसिद्ध हुआ। पृथु ने ब्राह्मणों का भय दूर किया था, अतः उसकी क्षत्रिय संज्ञा हुई। इसी प्रकार उसने धर्मपूर्वक पृथिवी का पालन किया था। अतः लोग धरा को पृथिवी कहने लगे। भगवान् विष्णु ने राजा पृथु के लिये स्वयं ही मर्यादा निर्दिष्ट कर दी थी और कह दिया था कि, कोई भी पुरुष तुझे परास्त

नहीं कर सकेगा। भगवान विष्णु ने स्वयं तपश्चर्या से उस राजा के शरीर में प्रवेश किया था। अतएव सारा जगत राजा को देवतावत् मानता था।

हे राजन्! तुम दण्डनीति की सहायता से अपनी प्रजा की रक्षा करना और जासूसों द्वारा शत्रुओं पर दृष्टि रखना। प्रजा की रक्षा इस प्रकार से करना कि, जिससे कोई भी पुरुष तुम्हें परास्त न कर पावे। हे राजेन्द्र! राजा के शुभ कार्यों ही से प्रजा का शुभ होता है। अतः राजा को अपनी बुद्धि के सहारे शुभाचरण करना चाहिये। राजा को जब जैसा अवसर मिले और साधन उपलब्ध हो, तब वह वैसा ही बर्ताव करे। हे युधिष्ठिर! सारा जगत राजा रूप मनुष्य के वश में रहता है। इसका कारण दैवीबल को छोड़ और हो ही क्या सकता है?

हे युधिष्ठिर! जिस समय विष्णु ने पृथु के शरीर में प्रवेश किया; उस समय उनके ललाट से एक सुवर्ण कमल निकला था। उसी कमल से धीमान् धर्म की धर्मपत्नी के समान श्री (लक्ष्मी) उत्पन्न हुई। उसी श्री से अर्थ की उत्पत्ति हुई। तब से राज्य में, श्री अर्थ और धर्म की स्थापना हुई है। जीव का पुण्य क्षीण होने पर, वह स्वर्ग से च्युत होता है और पृथिवी पर आ बुद्धिमान, दण्ड-नीति-वेत्ता और सत्वगुणी राजा होता है। देवगण उसका राज्याभिषेक करते हैं और वह उत्तम प्रकार के माहात्म्य को पाता है। अतः जगत की उसके ऊपर सत्ता नहीं चलती। हे राजन्! शुभ कर्म का फल भी शुभ ही होता है। यद्यपि हाथ पैर आदि शरीरावयव मनुष्यमात्र के समान हैं; तथापि उस पुण्यात्मा जन की आज्ञा के अनुसार सारा जगत बर्ताव करता है। जो पुरुष उसके आकर्षक मुख को देखता है वही उसके वश में हो जाता है। क्योंकि उसे तो वह बड़ा सुन्दर और धनवान जान पड़ता है। उस राजा के दण्ड के भय से धर्म का कारण रूप नीति का तथा न्याय का जगत् में प्रचार होता है और उस नीति से यह सब जगत् व्याप्त रहता है। पितामह ब्रह्मा जी के रचे हुए नीतिशास्त्र

में समस्त पुराणों की उत्पत्ति, तीर्थों, नक्षत्रों, चारों आश्रमों, चार प्रकार के होत्र कर्मों, चारों वर्णों और चारों विद्याओं का वर्णन है। इतिहास, वेद, न्यायशास्त्र, तप, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, असत्य, उत्तम प्रकार का न्याय, वृद्धों की शुश्रूषा, दान, भीतर बाहर की पवित्रता, एकाग्रता और समस्त प्राणियों के ऊपर दया भी इस नीति-शास्त्र में ब्रह्मदेव ने वर्णन की है। हे युधिष्ठिर! और अधिक कहाँ तक कहा जाय; इस भूतल और भूतल के नीचे यावत पदार्थ हैं, उन सब का वर्णन ब्रह्मा जी ने अपने इस ग्रन्थ में कर दिया है। तभी से इस धराधाम के विद्वान् कहने लगे हैं कि देवता और नरदेव—राजा में कुछ भी भेद नहीं है अर्थात् राजा देवोपम है। हे राजन्! राजा का महत्व मैंने तुम्हें सम्पूर्णतः सुना दिया। अब और क्या सुनने की तुम्हारी इच्छा है?

साठवाँ अध्याय

वर्णाश्रम धर्म का विवरण

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिर ने सावधान हो तथा हाथ जोड़ कर गङ्गानन्दन भीष्म पितामह को प्रणाम किया और उनसे पुनः पूछा—हे भरतवंश के महापुरुष! शास्त्रों में अनुलोम, प्रतिलोम जातियों के, चारों वर्णों के, चारों आश्रमों के तथा राजाओं के पृथक् पृथक् किन किन धर्मों का वर्णन किया गया है? राज्य की वृद्धि के क्या उपाय हैं? राजा की उन्नति कैसे होती है? नगर-निवासियों के तथा सेवक वर्ग की वृद्धि के साधन क्या हैं? वे कौन कौन से दुर्ग, सहायक-पुरुष, कोश, दण्ड, मंत्री, ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य हैं, जिनका राजा को त्याग कर देना चाहिये। किस प्रकार की आपत्ति के समय किस प्रकार के पुरुषों पर राजा को विश्वास करना चाहिये। राजा को आत्मरक्षा के लिये

कैसे पुरुषों पर विश्वास करना चाहिये। हे पितामह! ये सब बातें आप मुझे बतलावें।

भीष्म जी ने उत्तर दिया—मैं धर्मदेव को, परब्रह्म श्रीकृष्ण को यहाँ उपस्थित ब्राह्मणों को प्रणाम कर, मैं सनातनधर्म का वर्णन करता हूँ। अक्रोध, सत्यभाषण, *संविभाग, क्षमा, निज भार्या में सन्तानोत्पत्ति, भीतरी और बाहिरी पवित्रता, अद्रोह, सरलता, पोष्यवर्ग का पोषण—ये नौ बातें समस्त वर्णों के लिये समान मान्य एवं अनुष्ठेय हैं। अब मैं केवल ब्राह्मणों के अनुष्ठेय कर्मों का निरूपण करता हूँ।

हे धर्मराज! इन्द्रिय-दमन, ब्राह्मणों का प्राचीन धर्म है और स्वाध्याय-परायण होना भी ब्राह्मण के लिये परमावश्यक है। क्योंकि इससे समस्त कर्मों की पूर्ति हो जाती है। ऐसे शान्त, ज्ञानी, दुष्कर्मत्यागी एवं सत्कर्मी ब्राह्मण को जो शुद्ध धन प्राप्त हो, तो उसे विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करनी चाहिये। दान देना चाहिये, भजन करना चाहिये और सत्पुरुषों को हिस्सा दे, शेष स्वयं खाना चाहिये। यह विद्वानों का मत है। जो ब्राह्मण वेदों तथा शास्त्रों का पारायण करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है। फिर वह अन्य कर्म करे या न करे। ब्राह्मण में दयालुता का होना परमावश्यक है, क्योंकि ब्राह्मण प्राणीमात्र का मित्र कहलाता है।

हे धर्मराज! अब मैं तुम्हें क्षत्रियोचित धर्म बतलाता हूँ। क्षत्रिय को कभी याचना न करनी चाहिये; किन्तु दान देना चाहिए और यज्ञ न करा कर स्वयं यज्ञ करना चाहिये। क्षत्रिय को वेदाध्ययन दूसरों को न करा कर स्वयं करना चाहिये, क्षत्रिय को प्रजा का पालन, चोरों और अधर्मियों का नाश करने को सदा तैयार रहना चाहिये। क्षत्रिय को रण में पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिये। जो राजा लोग यज्ञों द्वारा परमात्मा का भजन करते हैं, जो राजा वेदज्ञ हैं, वे अपने इन शुभ कर्मों से परलोक में शुभ स्थान प्राप्त करने वालों

* संविभाग = बांट कर या भाग निकाल कर खाना।

में मुख्य होते हैं। जो क्षत्रिय घायल हो कर, रणभूमि से भाग जाते हैं, उन क्षत्रियों की पण्डित जन प्रशंसा नहीं करते; किन्तु यह कर्म अधम क्षत्रियों का माना जाता है। चोरों का नाश करने के कार्य को छोड़ राजा के लिये अन्य कोई श्रेष्ठ कर्म नहीं है। जिस प्रकार दान देने, स्वाध्याय परायण होने और यज्ञ करने से राजाओं का कल्याण होता है, वैसे ही उनके लिये उनके कल्याण का साधन युद्ध भी है। धर्माचरण चाहने वाले राजा को यत्न कर युद्ध में प्रवृत्त होना चाहिये। राजा को उचित है कि अपनी प्रजा के लोगों को उनके वर्णोचित धर्मकार्यों में लगावे। उन लोगों से धर्म के शान्ति की वृद्धि करने वाले समस्त कर्म करवावे। राजा अपनी अधीनस्थ प्रजा के लोगों की रक्षा करने से कृतकृत्य हो जाता है। राजा अपनी समस्त प्रजा का इन्द्र या स्वामी कहलाता है। अतः उसे उचित है कि वह प्रथम प्रजा की रक्षा करे, फिर दूसरा काम करे। यदि दूसरा काम वह न भी करे तो भी ठीक है।

हे धर्मराज! अब मैं तुम्हें वैश्योचित कर्मों का वर्णन सुनाता हूँ। वैश्यवर्ण के लोगों को वेदाध्ययन करना चाहिये, यज्ञानुष्ठान करना चाहिये, और पवित्रता से धर्मकर्म करने चाहिये। निज सन्तान की तरह समस्त पशुओं का सावधानतापूर्वक पालन करना वैश्य का कर्त्तव्य है। वैश्य को अपने वर्णोचित कर्मों को छोड़ अन्य कार्य न करने चाहिये। वैश्य के लिये शास्त्रोक्त वर्णोचित कर्मों के अतिरिक्त अन्य कर्म करना विकर्म कहलाता है। पशुपालन से वैश्य का परम कल्याण होता है। प्रजापति ने पशुओं को उत्पन्न कर उनके पालन पोषण का काम वैश्यों को वैसे ही सौंपा है जैसे ब्राह्मणों और क्षत्रियों को समस्त प्रजा का पालन पोषण सौंपा है।

हे धर्मराज! अब तुम वैश्य की आजीविका के साधनों का वर्णन सुनो। यदि वैश्य दूसरे की छः गौओं का पालन करे तो पारिश्रमिक रूप में वह छः गौओं में से एक गौ का दूध स्वयं ले। यदि वह सौ गौओं को

पाले तो प्रतिवर्ष वह बैल की एक जोड़ी वेतन स्वरूप ले ले। यदि वैश्य दूसरे के धन से व्यवसाय करे और इस व्यवसाय से जो लाभ हो तो उसमें से वैश्य अपने लिये सातवाँ भाग निकाल ले। सींग वाले पशुओं के व्यापार में जो लाभ हो, उस लाभ से भी वैश्य अपने लिये सातवाँ भाग निकाल ले। बढ़िया घोड़ों और खच्चरों के व्यापार से जो लाभ हो, उसमें से वैश्य को अपने लिये सोलहवाँ भाग निकाल लेना चाहिये। यदि वैश्य बीज उधार ले कर कृषिकार्य करे तो खेत की उपज का सातवाँ भाग उस वैश्य को मिलना चाहिये। यही उसका वार्षिक पारिश्रमिक है। वैश्य पशुपालन की आजीविका को कभी न छोड़े। जो वैश्य पशु-रक्षण के काम में लगा हो, उसे दूसरे की रक्षा का काम न सौंपना चाहिये।

हे राजन्! अब तुम शूद्रों के कर्त्तव्य कर्मों का विवरण सुनो। प्रजापति ने शूद्र को तीनों वर्णों का अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का दास बनाया है। अतएव शूद्र को तीनों वर्ण वालों की सेवा करनी चाहिये। क्योंकि ऐसा करने ही से शूद्र परम सुखी होता है। शूद्र के लिये धनसंग्रह करने का निषेध है। क्योंकि धन-संग्रह करने से शूद्र उच्छृङ्खल हो जाते हैं, और ब्राह्मणादि उच्चवर्ण के लोगों को वह अपने अधीन कर लेते हैं। तो भी राजा से आज्ञा माँग शूद्र धर्मकार्य करने के लिये धन का संग्रह कर सकता है। अब मैं शूद्र की आजीविका के साधन तुम्हें बतलाता हूं। तीनों वर्णों के पुरुषों को उचित है कि, वे शूद्र का भरण पोषण करें, सेवक शूद्र को पुराना छाता, वल्कल वस्त्र, जूता, पंखा आदि देवे। जो वस्त्र स्वयं पहनते पहनते फट गये हों, वे शूद्र सेवक को दे देने चाहिये। वह शूद्र का धार्मिक धन कहलाता है। यदि शूद्र किसी द्विजवर्ण की सेवा करना चाहे तो उचित है कि उसकी आजीविका बाँध दे, यह धर्मज्ञजनों का मत है। यदि किसी शूद्र सेवक का स्वामी सन्तान-रहित मर जाय, तो उसका शूद्र सेवक उसे पिण्ड दे सकता है। साथ ही

यदि मालिक बूढ़ा और निर्बल हो जाय, तो शूद्र सेवक उसका पालन पोषण करे। चाहे कैसी भी आफत आवे, शूद्र को अपने स्वामी का त्याग कभी न करना चाहिये। यदि स्वामी के धन का नाश हो जाय, तब भी शूद्र सेवक को अपने स्वामी को न छोड़ना चाहिये; प्रत्युत अपने कुटुम्बी से भी बढ़ कर स्वामी को मानना चाहिये। शूद्र भले ही धनवान् हो जाय; किन्तु वह धन उस शूद्र का नहीं हो सकता। क्योंकि उसके धन का मालिक तो उसका स्वामी है। हे राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को यज्ञ करने का अधिकार है; परन्तु शूद्र को स्वाहाकार, वषट्कार एवं वेद का कोई भी मंत्र उच्चारण करने का अधिकार नहीं है। अतएव शूद्र कोई भी श्रौतव्रत धारण न करे; किन्तु पाक यज्ञों द्वारा वह परमात्मा का यजन करे। शूद्र पाकयज्ञ में पूर्ण पात्र * की दक्षिणा दे, पौराणिक मंत्र पढ़े। यह धर्मशास्त्रों का मत है। हे राजन्! सुना है कि पूर्वकाल में पैजवन नामक किसी शूद्र ने इन्द्राग्नेय विधि से यज्ञ किया था और उस यज्ञ में एक लक्ष पूर्णपात्रों का दान दिया था।

[नोट—यज्ञ में एक लक्ष गौ अथवा एक लक्ष अश्वदान करने की विधि है; किन्तु यदि शूद्र यज्ञ करे तो उसे गौ अथवा अश्व के बदले में पूर्णपात्र दान करना चाहिये।]

तीनों वर्णों के लोग जो यज्ञ करते हैं, उसका कुछ फल उनके सेवक शूद्र को भी मिलता है। समस्त यज्ञों में श्रद्धा रूपी यज्ञ सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यज्ञानुष्ठान करने वालों का परम पवित्र और परम देवता श्रद्धा है। सेवक शूद्र के लिये उसका स्वामी ब्राह्मण परम देवता है। ब्राह्मण लोग अलग अलग कामनाओं को पूर्ण करने के लिये

---

*आठ मुट्ठी अन्न का एक किञ्चित् और आठ किञ्चित् का एक पुष्कल, चार पुष्कलों का एक पूर्णपात्र कहलाता है। एक पूर्णपात्र में लगभग २५६ मुट्ठियां होती हैं।

सावधान हो कर यज्ञ किया करते हैं। अन्तिम तीन वर्णों की अर्थात् क्षत्रिय वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति ब्राह्मणों से हुई है। ब्राह्मण तो देवताओं के भी देवता हैं। वे तुझसे जो कहें, उसीमें तेरा परमहित है। देवताओं के भी देवता होने के कारण भूदेवता ब्राह्मण को, द्विजों को यज्ञ कराने का अधिकार है। ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद पढ़ने वाला ब्राह्मण देववत् पूज्य माना जाता है; किन्तु शूद्र को वेदत्रयी में से किसी भी वेद के पढ़ने का अधिकार नहीं है, शूद्र का इष्ट देवता प्रजापति है। हे राजन्! मानसिक यज्ञ करने का समस्त वर्णों को अधिकार है। देवता अथवा अन्य लोग शूद्र के यज्ञों में बलि की कामना करते हैं। अतः समस्त वर्णों द्वारा किये हुए यज्ञों में श्रद्धा पूर्वक किया हुआ यज्ञ श्रेष्ठ माना जाता है। तीनों वर्णों के देवता ब्राह्मण माने गये हैं। ब्राह्मण स्वयं भी यज्ञ करते हैं और दूसरों के लिये भी यज्ञ करते हैं। धनी वैश्य के घर से लाया हुआ अग्नि वितान कहलाता है और मंत्रों से अभिमंत्रित किये जाने पर भी वह उत्तम नहीं माना जाता। इसीसे ब्राह्मण वर्ण अन्य तीनों वर्णों का यज्ञकर्त्ता माना गया है। ब्राह्मण से उत्पन्न होने के कारण तीनों वर्ण पवित्र हैं और पारस्परिक सम्बन्ध से युक्त हैं। सृष्टि के आरम्भ में जैसे एक साम, एक यजुष और एक ऋक् था, वैसे ही सब वर्णों में एक ब्राह्मण वर्ण ही था। हे राजन्! प्राचीन इतिहास जानने वाले पण्डितों ने इस विषय में यज्ञेच्छु वैखानस मुनियों के यज्ञ में यज्ञस्तुति रूप एवं विष्णुकथित कितनी ही गाथाएं कही थीं। उन्हें तुम सुनो। प्रातःकाल, मध्यान्ह काल और सायंकाल में जितेन्द्रिय एवं श्रद्धालुजन अग्नि में जो आहुति डालते हैं, वह सब श्रद्धावश, स्कन्न (मरुत) दैवत साधारण माना गया है और अस्कन्न उत्तम कहलाता है। जो पुरुष विविध फल देने वाले यज्ञों का करना जानता है, जिसने ज्ञान द्वारा आत्म स्वरूप को जान लिया है, जो श्रद्धालु है, वह द्विज ही यज्ञ करने योग्य माना गया है। चोर पापी अथवा महापापी होने पर भी जो यज्ञ पुरुष का यजन करना चाहता है, महात्मा उसे भी साधु ही कहते हैं।

ऋषि भी उसकी प्रशंसा करते हैं। निस्सन्देह वह ही साधु है। समस्त वर्णों को उचित है कि वे निश्चय पूर्वक यज्ञ करें। त्रिलोकी में यज्ञ के समान कोई भी धर्मानुष्ठान नहीं है। अतः द्विजों को स्पर्द्धा त्याग कर, श्रद्धा पूर्वक और पवित्र हो कर, शक्ति तथा इच्छानुसार यज्ञ करना चाहिये। यह महात्माओं की उक्ति है।

इकसठवाँ अध्याय

आश्रम धर्म

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! अब मैं चारों आश्रमों और चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों का वर्णन करता हूँ। सुनो। आश्रम चार हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चार में चतुर्थ आश्रम ब्राह्मणों से पूर्ण है, अर्थात् संन्यासी होने का अधिकार ब्राह्मण को ही है। इन चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम सब से बड़ा है। संस्कार होने के बाद द्विजों को उचित है कि; वे सिर पर जटा रखावें, वेदाध्ययन करें, विवाह कर अग्न्याधान करें, अन्य धर्मानुष्ठान करें। फिर गृहस्थोचित समस्त कार्यों को कर, जितेन्द्रिय और आत्मज्ञानी हो कर, सस्त्रीक अथवा विना स्त्री के अकेला वानप्रस्थाश्रम में जाय। इस आश्रमी को आरण्यक शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये। वानप्रस्थाश्रम में रह कर ब्रह्मचर्य-पालन का अभ्यास कर चुकने बाद, संन्यासी हो जिससे मरण के बाद मोक्ष प्राप्त हो। ब्रह्मचर्य-व्रतधारी विद्वान् मुनियों को सब से प्रथम ब्रह्मचर्य धारण करने का अभ्यास करना चाहिये। यह अभ्यास कर लेने बाद संन्यास ग्रहण का अधिकार प्राप्त होता है।

जहाँ पर सूर्यास्त हो वहीं ठहर कर संन्यासी को रात बिता देनी चाहिये। संन्यासी को समस्त कामनाएं त्याग देनी चाहिये। उसे घर द्वार रहित होना चाहिये। दैवेच्छा से जो कुछ मिल जाय, संन्यासी उसीसे अपना

ध्यान लगा ले। उसे पवित्र रहना चाहिये। संन्यासी को अपना मन और इन्द्रियाँ अपने वश में कर लेनी चाहिये। संन्यासी भोगों को तथा आशा-ममता को त्याग कर देना चाहिये। वह सब के साथ समान भाव से बर्त्ताव करे। कामादि मनोविकारों से वह दूर रहे। इस प्रकार संन्यासाश्रम के धर्मों का पालन करना चाहिये। ऐसा व्यवहार करने से ब्राह्मण को मुक्ति मिलती है। गृहस्थ को यथाविधि वेदाध्ययन करना चाहिये, समस्त धर्मानुष्ठान करने चाहिये, शास्त्रोक्त विधि से विवाह कर, सन्तानोत्पत्ति करनी चाहिये। सुख भोगने चाहिये, मन को सावधान रखना चाहिये और मुनियों के महाकठिन कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। गृहस्थ को ऋतुकाल में स्त्री-समागम करना चाहिये, शास्त्रोक्त आज्ञाओं को मानना चाहिये, सरल स्वभाव और शुद्ध रहना चाहिये, मिताहारी बनना चाहिये, देव-सेवा-परायण बनने की टेव डालनी चाहिये; किये हुए अपराध को जानना चाहिये। गृहस्थ को सत्यवादी, कोमलहृदय, दयालुस्वभाव और क्षमाशील होना चाहिये, शास्त्राज्ञा और गुरु आज्ञा को मानना चाहिये। वह केवल ब्राह्मण ही को नहीं; प्रत्युत समस्त लोगों को नित्य अन्नदान दे। नित्य श्रौत तथा स्मार्त कर्मों को करने वाला गृहस्थ मुक्ति पाता है।

हे तात! अब मैं तुम्हें महाप्रतापी महर्षियों की गम्भीर वह उक्ति सुनाता हूँ जिसे उन्होंने नारायण से सुना था। सुनो। गृहस्थ को उचित है कि, वह सत्य बोले, सब के साथ सरल व्यवहार रखे, अतिथियों का सत्कार करे, धर्मार्थ का सम्पादन करे, निज धर्मपत्नी के साथ रतिक्रीड़ा करे और ऐसा प्रयत्न करे, जिससे इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त हो। मेरा तो यही मत है। गृहस्थ का परमधर्म है कि वह अपने पुत्रों तथा स्त्रियों का पोषण करे। यह महर्षियों का मत है। जो ब्राह्मण यज्ञयागादि धर्मानुष्ठान-पूर्वक शास्त्रोक्त विधि से गृहस्थाश्रम के धर्म को निभाता है और न्यायोचित मार्ग से प्राप्त धन द्वारा अपनी आजीविका चलाता है, वह स्वर्ग में उत्तम फल पाता है। इतना ही क्यों, धर्मनिष्ठ एवं देहाभिमान-

त्यागी गृहस्थ की अविनाशी समस्त कामनाएँ, जब और जहाँ वह चाहता है, तभी और वहीं, उसके इच्छानुसार पूर्ण होती हैं।

ब्रह्मचारी द्विज को उचित है कि, वह सदा वेदाध्ययन करे, गुरु से प्राप्त मंत्र का जप करे, समस्त देवताओं को माने, अपने मैले कुचैले शरीर की उपेक्षा न करे, और अपने गुरु की सेवा में पूर्ण भक्तिमान हो। इस प्रकार ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियों को दमन कर कठोर व्रतों का पालन करे और उसे जो उपदेश मिले हों, उन पर भली भाँति मनन करे। ब्रह्मचारी वेदोक्त विधि से नित्य सन्ध्योपासनादि कर्म करे, निरन्तर गुरुसेवा करे, गुरु को प्रणाम करे। स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय और अतिथि-सत्कार—ये छः काम ब्रह्मचारी निष्काम भाव से करे। ब्रह्मचारी को प्रवृत्ति में अनुरक्ति न रखनी चाहिये। शत्रुओं को दण्ड देने अथवा उन पर अनुग्रह करने का अधिकार ब्रह्मचारी ग्रहण न करे। ब्रह्मचारी को शत्रुओं की सेवा न करनी चाहिये। हे तात! ब्रह्मचर्याश्रम के ये ही धर्म हैं।

बासठवाँ अध्याय

आश्रम-धर्म निरूपण

राजा युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! कल्याणकारी एवं सुखप्रद, विपुल फल देने वाले, हिंसावर्जित, मान्य, सुख के उपाय रूप और हम जैसों के लिये हितकर धर्मों का वर्णन आप करें।

भीष्म ने कहा—हे राजन्! धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण के लिये चार आश्रम बतलाये गये हैं। अन्य दो वर्ण अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य को चारों आश्रमों में जाने का अधिकार नहीं है; किन्तु वे दोनों केवल तीन आश्रम के अधिकारी हैं। यद्यपि उस राजधर्म के सम्बन्ध में, मैं बहुत कुछ कह चुका

हैं, जो स्वर्गप्राप्ति कराने वाले हैं; तथापि उन राजधर्मों का तुम्हारी इस समय की शङ्का से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। पूर्वकथित समस्त राजधर्म विनयी क्षत्रियों के लिये हैं। जो ब्राह्मण हो कर, क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र के कर्म करता है, वह मूढ़ ब्राह्मण इस लोक में निन्द्य होता है और मरने के बाद नरक में गिरता है। जो ब्राह्मण अपने वर्णोचित धर्मों को त्याग देता है, वह दास, कुत्ता, भेड़िया आदि पशुओं के नामों से पुकारा जाता है; किन्तु जो ब्राह्मण नित्य (प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तर्क और समाधि) षट्कर्म किया करता है, चारों आश्रमों के कर्त्तव्य कर्मों को उत्तरोत्तर करता हुआ समस्त धर्मों से युक्त होता है, उस ब्राह्मण की धर्म रक्षा करता है। वह कृतकृत्य हो जाता है। उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाने से उसके मन में कोई कामना ही नहीं रह जाती; प्रत्युत वह उदारमना हो जाता है। उसका मन तपस्या में लग जाता है, अतः मरने के बाद उसे अविनश्वर लोकों की प्राप्ति होती है। जो कर्म जिस परिस्थिति में, जिस समय और जिस स्थल पर जिस कारण वश किया जाता है, उस कर्म का फल उस कर्म के करने वाले को नियमानुसार अवश्य मिलता है।

अतएव हे राजन्! तुम्हें वेदाभ्यास करना उचित है। हे राजन्! व्याजबट्टा, खेती बारी, वाणिज्य व्यवसाय, शिकार आदि जीविका के अनेक साधन हैं और ये सभी समान हैं। मनुष्य काल के वशवर्ती है। वह पूर्वजन्म की वासना के अधीन रह कर, काल की प्रेरणा से उत्तम, मध्यम और अधम कर्म किया करता है। पूर्वजन्मकृत पाप पुण्य, देह को उत्पन्न करते हैं और जब वह शरीर नष्ट होता है, तब उसीके साथ वे नष्ट भी हो जाते हैं। जीव अविनाशी और सर्वत्र व्यापक है। वह निज वाञ्छित रागादि विषयों में लिप्त रहता है।

तिरसठवाँ अध्याय

राजधर्म की उत्कृष्टता

भीष्म जी कहने लगे—हे युधिष्ठिर! धनुष की प्रत्यञ्चा खींचना, शत्रुनिग्रह कृषिकर्म, व्यवसाय वाणिज्य, पशुपालन, और धन के लिये परसेवा—ये सब कर्म ब्राह्मण के लिये वर्जित हैं। बुद्धिमान, गृहस्थ ब्राह्मण तो अपने वर्णोचित षट्कर्मों में सदा निरत रहे और कृतकृत्य हो, अन्त में संन्यासी बन, वन में वास करे। जो ब्राह्मण ऐसा वर्त्ताव करता है वह श्रेष्ठ कहलाता है। राजसेवा, कृषि से उपार्जित धन, व्यवसाय से उपार्जित धन, कुटिलतापूर्ण बर्ताव, निज धर्मपत्नी को छोड़ परस्त्री से समागम, ब्याज खोरी—ये सब कार्य ब्राह्मण के लिये वर्जित हैं, दुश्चरित्र, अधर्मी, वृषलीपति, नट, राजा का दास, एवं अधर्म करने वाला ब्राह्मण अधम है। वह ब्राह्मण नहीं; किन्तु शूद्र है। भले ही वह वेदपाठी ही क्यों न हो; तथापि वह शूद्रवत् ही माना जाता है। ऐसे ब्राह्मण को शूद्रों के साथ बिठा कर जिमाना उचित है। हे राजन्! ऐसे ब्राह्मण को शूद्र के समान मानना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणों से देवपूजन, यज्ञ याग न करवावे और न इन कर्मों में उन्हें शरीक होने दे। जो ब्राह्मण धर्म की मर्यादा त्यागे हुए हो, अपवित्र रहता हो, क्रूरवृत्ति वाला हो, हिंसाप्रिय हो, स्वधर्म और सदाचार को त्यागे हुए हो, उसे हव्य कव्य अर्थात् देव एवं पितृ कार्य में कभी शामिल न करे। जो ऐसे ब्राह्मण को इन पवित्र कार्यों में सम्मिलित करता है, उसके वे देव पितृ कार्य व्यर्थ होते हैं।

हे राजन्! पूर्वकाल में ब्रह्मा ने चार आश्रम बनाये। इनमें दम, शौच और सरलता ब्राह्मण के लिये निर्दिष्ट की। जो ब्राह्मण इन्द्रियों को अपने वश रखता है, सोमयज्ञ कर सोमपान करता है, जो उत्तम स्वभाव वाला है, जो दयालु है, जो सुख दुःख सहिष्णु है, जो फल की इच्छा नहीं करता,

जो सरल, कोमल, क्रूरता रहित और क्षमावान है—वही यथार्थ ब्राह्मण है; किन्तु जो ब्राह्मण हो कर इनके विपरीत काम करता है, वह ब्राह्मण नहीं है। धर्माचरण करने वाले समस्त मनुष्य क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का आश्रय ले कर धर्माचरण करते हैं; परन्तु हे युधिष्ठिर! जो शान्त हैं, और अशान्त वृत्ति से नहीं रहते उन्हीं पर भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। जब भगवान विष्णु अप्रसन्न होते हैं, तब वर्णव्यवस्था नष्ट हो जाती है, वेदाध्ययन की प्रथा बंद हो जाती है, सब प्रकार के यज्ञयागादि, समस्त लौकिक क्रियायें बंद हो जाती हैं और चारों आश्रम नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। हे राजन्! जो राजा अपने राज्य में बसने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, और वैश्यों से अपने अपने वर्णोचित कर्मों का पालन करवाना चाहता हो, उसे कम से कम स्वयं भी चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्मों का ज्ञान होना आवश्यक है। वे कर्त्तव्य कर्म क्या हैं—वे मैं अब तुझे सुनाता हूँ। सुन। वेदान्ताध्ययन का अनधिकारी पुराणादि से आत्म स्वरूप जानने वाला, शारीरिक शक्त्यानुसार तीनों वर्णों की सेवा करने वाला, पुत्रवान्, आचार विचार में तीनों वर्णों के समान और योगक्रियाओं से अनभिज्ञ शूद्र को अधिकार है कि, वह समस्त आश्रमों के कर्त्तव्य कर्मों को करे; किन्तु राजा से आज्ञा प्राप्त किये बिना वह शूद्र संन्यास ग्रहण नहीं कर सकता।

[नोट—इससे स्पष्ट है कि, शूद्र को ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ आश्रमों के अतिरिक्त, स्त्री की तरह अलिङ्ग संन्यास लेने का अधिकार है।]

हे राजन्! शास्त्र में चतुर्थ आश्रम का सेवन करना क्षत्रिय और वैश्य की तरह शूद्र के लिये भी विहित बतलाया गया है। वृद्ध वैश्य जब पशुपालन करते करते कृतकृत्य हो जाय, तब राजाज्ञा से वह वैश्य भी उत्तरोत्तर आश्रमों के धर्मों का पालन करे। हे अनघ! हे धर्मराज! राजा को वेद और राजनीति का भली भाँति अध्ययन कर, सन्तान उत्पन्न करना चाहिये, सोमयाग करना चाहिये, अपनी प्रजा का धर्म और न्यायपूर्वक पालन करना चाहिये। उसे राजसूय, अश्वमेध तथा अन्यान्य यज्ञ यागादि

करने चाहिये तथा आह्वान पूर्वक देवता तथा ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये, शास्त्रोक्त विधि से राजा ब्राह्मण को दक्षिणा दे, रण में प्रवृत्त हो छोटा अथवा बड़ा विजय प्राप्त करना चाहिये। राज्य-धर्म-परायण निज पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाना चाहिये और पुत्र के अभाव में या योग्य पुत्र के अभाव में अपने गोत्र का या क्षत्रियों में से किसी योग्य को गोद ले, उसे अपनी जगह राजसिंहासन पर बिठाना चाहिये। उसे उचित है कि, वह पितृयज्ञ अर्थात् श्राद्धादि कर्मों से विधिपूर्वक पितरों का पूजन करे, यज्ञ यागादि कर, देवताओं का पूजन करे और वेदाध्ययन कर ऋषियों को तृप्त करे। फिर जब अन्तकाल उपस्थित हो, तब उत्तरोत्तर वानप्रस्थ, संन्यास आदि आश्रमों में रह कर, धर्माचरण करे, तो हे राजा युधिष्ठिर! वह राजा मोक्ष पाता है। जब क्षत्रिय गृहस्थाश्रम को त्याग दे, तब वह अपने को राजर्षि न माने। उसे संन्यास धर्म का पालन करने के लिये और केवल शरीर धारण मात्र के लिये भिक्षान्न ग्रहण करना चाहिये; किन्तु जिस क्षत्रिय की भोगवासना दूर नहीं हुई उसे संन्यास ग्रहण कदापि न करना चाहिये।

हे राजन्! (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) इन तीन वर्ण के लोगों को अवश्य संन्यास लेना ही चाहिये—शास्त्र में ऐसी कोई आज्ञा नहीं मिलती। संन्यास लेना न लेना—उनकी इच्छा पर है। यह सारा जगत् क्षत्रियों के भुजबल पर अवलम्बित है। यह वेद का मत है। हे राजन्! जैसे सब के पैर हाथी के पैर में आ जाते हैं, वैसे ही समस्त धर्म, राजधर्म के अन्तर्गत आ जाते हैं। धर्मवेत्ता पुरुषों ने अन्य धर्मों को अल्प आश्रय वाला बतलाया है; किन्तु राजधर्म को वे महान आश्रय वाला और महाफल देने वाला बतलाते हैं। राजधर्म के अन्तर्गत सब प्रकार के दान आ जाते हैं, और दान धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ है। इसे पुराण धर्म भी कहते हैं। अतः जिसके द्वारा समस्त वर्णों के लोगों का पालन हुआ करता है, वह राजधर्म समस्त धर्मों से श्रेष्ठ माना गया है। यदि दण्डनीति नष्ट हो जाय तो वेद का नाश

हो जाय। वेद का नाश होते ही धर्मोपदेष्टा शास्त्र भी नष्ट हो जाय। जब पुरातन राजधर्म का नाश हो जाय, तब चारों आश्रमों के धर्म नष्ट हो जाँय। राजधर्म को पालन करने ही से समस्त दान दिखलायी पड़ सकते हैं, राजधर्म ही में सब प्रकार की दीक्षाएं हैं। समस्त प्रकार की विद्याएं तथा समस्त लोकधर्म राजधर्म के अन्तर्गत ही हैं। जब एक नीचप्रकृति मनुष्य प्राणिहिंसन करता है, तब जिस प्रकार उसके हाथ से मारे गये पशु पक्षी उसके समस्त पुण्यफल अपहृत कर लेते हैं, उसी प्रकार यदि समस्त धर्मों में से राजधर्म अलग कर दिया जाय, तो प्रजाजनों पर कोई भी आक्रमण कर सकता है और इसका परिणाम यह हो कि, शान्तिकामी प्रजा विकल हो जाय और आत्मरक्षा ही में सदा निरत रह अपने वर्णोचित धर्मों का पालन ही न कर पावे। इसीसे राजधर्म सब धर्मों से उत्कृष्ट माना जाता है।

चौसठवाँ अध्याय

विष्णु-मान्धाता-संवाद

भीष्म जी कहने लगे—हे युधिष्ठिर! क्या लौकिक धर्म, क्या आश्रम-धर्म और क्या संन्यासधर्म—सब धर्मों का समावेश राजधर्म ही में है। इसका कारण यह है कि समस्त धर्म कर्मों का अनुष्ठान क्षात्रधर्म के अधीन है। यदि क्षात्रधर्म अव्यवस्थित हो जाय तो अन्य अनेक धर्मों का नाश हो जाता है। मानवधर्म अदृश्य फल वाला और बहुसाधन-साध्य है। खोटे मार्ग का अनुसरण करने से सनातन धर्म का नाश होता है। जो लोग वेद-कथित धर्मों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नहीं करते, वे लोग मनमाना निर्णय करने वाले दुर्जनतियों की बातों में आ जाते हैं। ऐसे धर्म-ज्ञान-शून्यों को धर्मग्रन्थों में परस्पर विरोध को छोड़ और कुछ देख ही नहीं पड़ता, अतः उनकी बुद्धि मारी जाती है।

रहा क्षात्र धर्म—सो तो प्रत्यक्ष है। अतः वह प्रत्यक्ष फल देने वाला है और सुखदायी है। हे युधिष्ठिर! मैं पहले तुमसे कह आया हूँ कि ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र वर्णों के उपयोगी धर्म क्षात्र धर्म पर और संन्यासी, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ आश्रमोचित धर्म, गृहस्थ आश्रम के धर्म पर अवलम्बित हैं। मानवों के पुण्य कर्मों का आधार राजधर्म है।

हे राजेन्द्र! एक बार बड़े बड़े महाबली और शूरवीर राजा लोग सर्वेश्वर भगवान् विष्णु के निकट गये और उनसे जिज्ञासा की कि, दण्डनीति और अन्य वर्णाश्रम धर्मों में श्रेष्ठ कौन है? हमें आप यह बात दृष्टान्त देकर समझावें। साध्य, देवता, वसु, अश्विनीकुमार, रुद्र, विश्वेदेवता, और मरुद्गण जिनकी उत्पत्ति के कारण आदिदेव भगवान् विष्णु ही हैं, वे सब क्षात्रधर्म का पालन करने वाले हैं। यह विषय और भी अधिक स्पष्ट कर देने के लिये मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। इस इतिहास में धर्म और अर्थ का निश्चय भरा हुआ है।

हे राजेन्द्र! पूर्वकाल में जब दानवरूपी महासागर, मर्यादारूपी तट को अतिक्रम कर, लोगों को पीड़ित करने लगा, तब मान्धाता नामक एक राजा उस समय इस धराधाम पर हो था। उसने आदि-मध्य-अन्त-रहित, देवादि देव, सर्वेश्वर, भगवान नारायण के दर्शन करने की कामना से, एक यज्ञ किया। उसने यज्ञ रूपी विष्णु के चरणों में अपना माथा टेका। इस पर भगवान् विष्णु ने इन्द्र के रूप में मान्धाता को दर्शन दिये। उस समय समस्त उपस्थित राजाओं सहित मान्धाता ने इन्द्र रूपधारी भगवान विष्णु को सीस झुका कर प्रणाम किया, विधिपूर्वक उनका पूजन किया। तदनन्तर मान्धाता और इन्द्र में महायशस्वी भगवान् विष्णु को ले बहुत देर तक कथोप-कथन होता रहा।

इन्द्र ने कहा—हे राजन्! तू किस कामना से अप्रमेय, अनन्त माया मय अपार पराक्रमी, आदिदेव, पुराणपुरुष भगवान के दर्शन करना चाहता है? विश्व स्वरूप भगवान् विष्णु का साक्षात्कार तो मुझे भी नहीं होता।

ब्रह्मा में भी उनका साक्षात् दर्शन करने की शक्ति नहीं है। हे राजन्! तेरी मनोभिलाषा मैं पूरी करूँगा, क्योंकि तू नरों का राजा है, सत्यवादी है, धर्मपरायण है, जितेन्द्रिय है, शूर है, बुद्धिमान, भक्तिमान और श्रद्धावान है। इन्हीं कारणों से देवता तेरे ऊपर प्रसन्न हैं। अतः मैं तुझे तेरी इच्छानुसार वर दूँगा। तू वर माँग।

राजा मान्धाता ने कहा—भगवन्! मैं सीस झुका आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ जिससे मुझे आदि देव भगवान् विष्णु के दर्शन मिल जाँय। मेरी इच्छा है कि मैं समस्त कामनाओं को त्याग कर, धर्मकामना से ऐसे वन में जाना चाहता हूँ जहाँ इस लोक में श्रेष्ठ समझे जाने वाले महात्मा लोग जाया करते हैं या गये हुए हैं। मैंने विशाल और अप्रमेय क्षात्र धर्म से समस्त लोकों को जीत लिया है। मैं अपना यश इस धराधाम पर स्थापित कर चुका हूँ; किन्तु यह सब कर के भी मैं यह नहीं जान पाया कि आदिदेव भगवान् विष्णु के प्रवर्तित, लोकश्रेष्ठ धर्म का पालन मैं किस विधि से करूँ।

इन्द्र बोले—यदि राजा लोग धर्माचरणी न हों तो लोग न तो निडर हो धर्माचरण ही कर पावें, न उन्हें धर्माचरण का फल ही प्राप्त हो और न वे अन्य धर्माचरणियों की सहायता ही कर सकें। अतः इससे सिद्ध होता है कि क्षात्र धर्म अन्य धर्मों का पोषक है। भगवान् विष्णु ने सर्वप्रथम राजधर्म को प्रचलित किया है तथा अन्य धर्म, राजधर्म के बाद प्रचलित किये गये हैं। क्षात्र धर्म को छोड़ अन्य धर्मों के फल नाशवान हैं। वानप्रस्थाश्रम की स्थापना पीछे से की गयी है। क्षात्र धर्म अक्षय्य और उत्कृष्ट है। अन्य बहुत से धर्मों का क्षात्र धर्म में अन्तर्भाव है। इसीसे क्षात्र धर्म श्रेष्ठ माना जाता है। पूर्व जन्मकृत श्रेष्ठ कर्मों द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त एवं अपार बली देवताओं, ऋषियों तथा अन्य जीवों की रक्षा, उनके शत्रुओं से, भगवान विष्णु ने क्षात्र धर्म द्वारा अर्थात् पराक्रम प्रदर्शन ही से की थी। हे भगवन्! यदि अप्रमेय भगवान् उन समस्त शत्रुओं का संहार न कर डालते

तो इस जगत् में ब्राह्मणों का नामनिशान भी न रह जाता। आदिकर्त्ता ब्रह्मा का पता न चलता और न आदि क्षात्र धर्म ही रहता। सारांश यह कि अन्य कोई भी धर्म न रह जाता। असुरों से व्याप्त इस पृथिवी का भगवान् विष्णु यदि उद्धार न करते, तो ब्राह्मण जाति का तो मूलोच्छेद ही हो जाता। जब ब्राह्मण ही न रह जाते, तब चारों वर्ण और चारों आश्रम भी नष्ट हो जाते। सनातन धर्मों का कई बार नाश हो चुका है; परन्तु क्षात्र धर्म ने पुनः उन सब को पुनर्जीवित किया है। प्रत्येक युग में ब्रह्मप्राप्ति के साधन रूप ब्राह्मण धर्म की प्रवृत्ति सर्वप्रथम हुआ करती है और ब्राह्मणधर्म की रक्षा क्षात्र धर्म सदा से करता चला आता है। इसीसे क्षात्र धर्म सर्वश्रेष्ठ माना गया है। रणक्षेत्र में शरीर त्याग, प्राणिमात्र पर दया, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकरक्षा, भयभीत प्रजाजनों के भय की निवृत्ति, दुःखी और पीड़ितों का दुःख से उद्धार आदि अनेक क्षात्र धर्म हैं। इन्हीं धर्मों के अनुसार राजा लोग चला करते हैं। कामी क्रोधी और मर्यादा त्यागी जन, राजभय ही से पापकर्म नहीं करते। धर्मसम्पन्न एवं शिष्टजन, अपने धर्म का और सदाचार का भली भाँति पालन करते हैं और क्षात्र धर्म की सराहना करते हैं। राजा लोग जब अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हैं; तब सब लोग इस धरामण्डल पर निर्भय हो फिरते हैं। यदि इस दृष्टि से देखा जाय, तो इस संसार में क्षात्र धर्म सर्वश्रेष्ठ है, सनातन है, अविनाशी है, सर्वोपकारक है और मोक्ष का साधन रूप है।

पैंसठवाँ अध्याय

विष्णु-मान्धाता-संवाद

इन्द्र ने कहा—इस प्रकार पराक्रमी एवं सर्वधर्म समावेशित क्षात्र धर्म सब धर्मों से उत्कृष्ट है। अतः तुझे जैसे उदारमना मनुष्य को, जीवों के हितार्थ, क्षात्र धर्म का पालन करना चाहिये। यदि क्षात्र धर्म का प्रति-

पालन न किया जाय तो समस्त प्राणियों का नाश कर दिया जाय। जो राजा समस्त प्राणियों पर दया रखता है, उसे क्षात्र धर्म का पालन अवश्य करना चाहिये। परती पड़ी हुई ज़मीन को खेती बारी योग्य बनवावे, आत्म वृद्धि के लिये बड़े बड़े यज्ञ करे, भीख न माँगे, प्रजा पालन करे और युद्ध में शरीर को त्याग दे। यह क्षत्रिय का श्रेष्ठ धर्म कहलाता है। मुनियों का कथन है कि यद्यपि त्यागधर्म (संन्यास) सर्वश्रेष्ठ है; तथापि रणक्षेत्र में शरीर त्याग करना सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। बहुश्रुत तथा गुरुसेवी धर्मज्ञ राजा लोग आपस में लड़ कर, निज शरीरों को त्यागते हैं। यदि क्षत्रिय धर्मग्रहण करना चाहे तो उसे ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये; क्योंकि गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ है। व्यावहारिक सामान्य विषयों के निर्णय करते समय राजा को नितान्त पक्षपातहीन होना चाहिये। राजा ने समय समय पर जो आज्ञाएं दी हैं, उनका पालन हुआ है कि नहीं, राजा देखे और यदि पालन न किया गया हो तो उन आज्ञाओं का वह पालन करावे। प्रजा का पालन करते हुए राजा को पृथक् पृथक् युक्तियों और साधनों से काम लेना चाहिये। क्षत्रिय धर्म पुरुषार्थ और प्रयत्न में प्रवेश करने वाला है, क्षात्र धर्म में समस्त धर्मों का समावेश है, इसीसे क्षात्र धर्म श्रेष्ठ माना जाता है। अन्य वर्णों के लोग क्षात्र धर्म के आधार से अपने अपने धर्मों का पालन कर सकते हैं। अतएव इतर वर्णों के लोग उन गुणों के लिये, जो क्षात्र धर्म के उत्पन्न करते हैं, क्षात्र धर्म ही का सहारा पकड़ें। जो मनुष्य लाभदायक अङ्कुशों (रोक थाम) की अवहेलना कर सांसारिक विषयों में लिप्त रहता है, उसे पण्डित जन "पशु" कहते हैं। मनुष्य राजधर्म की सहायता ही से धर्माचरण कर सकता है, अतएव समस्त धर्मों से राजधर्म श्रेष्ठ है। वेदत्रयी जानने वाले ब्राह्मणों को यज्ञ याग करना तथा आश्रमोचित धर्मों का पालन करना चाहिये। जो ब्राह्मण निर्दिष्ट धर्म का पालन नहीं करता, उसे राजा शूद्र की तरह मार डाले।

हे राजन् ! चारों आश्रमों के धर्मों का पालन और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान ब्राह्मण अवश्य करे। क्योंकि ब्राह्मण के लिये अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है। जो ब्राह्मण अपने वर्णोचित्त धर्म के विरुद्ध हैं, उनके निर्वाह के लिये किसी भी क्षत्रिय या वैश्य को कुछ भी प्रबन्ध न करना चाहिये। धर्माचरण से राजा के धर्म की वृद्धि होती है और निज वर्णोचित एवं आश्रमोचित धर्मों का पालन करने वाला ब्राह्मण साक्षात् धर्म रूप है। जो ब्राह्मण निज धर्म को त्याग बैठता है, वह सन्मान करने योग्य नहीं है। अपने कर्मों को त्यागने वाले ब्राह्मणों का कभी विश्वास न करे यह पण्डितों का मत है। राजा इस बात पर पूर्ण ध्यान दे कि, उसके राज्य में समस्त धर्मों का यथावत् पालन होता है कि नहीं। क्षात्र धर्म में यह व्यवस्था होने ही से वह उत्कृष्ट माना जाता है, अन्य धर्म नहीं, मैं तो वीर पुरुषों के लिये क्षात्र धर्म ही को परमोपयोगी मानता हूँ। जो क्षत्रिय क्षात्र धर्म का यथावत् पालन करते हैं वे ही सच्चे वीर हैं।

राजा मान्धाता ने कहा—हे इन्द्र ! यवन, किरात, गान्धार, चीन, शक, वर्वर, शवर, तुषार, कङ्क, पल्हव, आन्ध्र, मद्र, पौंड्र, पुलिन्द, रमठ, काम्बोज आदि देशवासी, ब्राह्मण और क्षत्रियों से उत्पन्न पुरुष, वैश्य एवं शूद्र जो मेरे राज्य में बसते हैं, वे किस प्रकार धर्माचरण करें ? जो लोग चोर डाँकू, लुटरे हैं, उनके साथ मुझ जैसे राजा को कैसा वर्ताव करना चाहिये ? वे किस प्रकार अपने वर्णोचित धर्मों का पालन करने के लिये विवश किये जा सकते हैं ? हे देवराज ! मैं यह विषय आपके मुख से सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझे सुनावें।

इन्द्र बोले— लुटेरे डाँकुओं को अपने अपने माता, पिता, आचार्य, गुरु, आश्रमवासियों तथा राजाओं की सेवा करनी चाहिये। वेदोक्त धर्मों का पालन करते हुए उन्हें श्राद्ध करना चाहिये। कूप, बावली बनवानी चाहिये। पौंसाले बैठाने चाहिये। शय्या, सुवर्ण और भूमिदान समयानुसार ब्राह्मणों को देना चाहिये। अहिंसा, सत्यभाषण, अक्रोधयुक्त

व्यवहार उन्हें करने चाहिये। ब्राह्मणों और अपने नातेदारों का उन्हें निर्वाह करना चाहिये, पुत्र स्त्री आदि का भरण पोषण करना चाहिये, भीतर बाहर पवित्र रहना चाहिये, शान्ति से काम लेना चाहिये। यज्ञ-याग कर समृद्धि-अभिलाषी दस्युओं को बड़े बड़े व्ययसाध्य पाकयज्ञ करने के लिये ब्राह्मणों को धन देना चाहिये—ये ही दस्युओं के लिये कर्त्तव्य हैं।

हे राजन्! प्रजापति ने सब लोगों के लिये इसी प्रकार कर्त्तव्यकर्म निर्दिष्ट किये हैं। इन सब कर्मों को लोगों को करना चाहिये।

राजा मान्धाता ने कहा—चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लोगों में डाँकू लुटेरे देख पड़ते हैं; किन्तु वे विविध प्रकार के वेशभूषा से अलंकृत होते हैं। अतः उनको पहचान कर पकड़ लेना बड़ा कठिन काम है।

इन्द्र ने कहा—हे राजन्! जब दण्डनीति नष्ट होती और राजधर्म भ्रष्ट हो जाता है, तब राजा की दुष्टता के कारण, समस्त प्राणी कार्याकार्य को भूल जाते हैं। इस सत्ययुग के समाप्त होने पर बहुत से यती और ब्रह्मचारी इस धराधाम पर उत्पन्न होंगे और आश्रमोचित्त धर्मों में भी फेरफार होगा। लोग कामी क्रोधी बन, पुराणश्रवण और धर्मानुष्ठान की ओर ध्यान न देंगे। वे उच्छृङ्खल हो जाँयगे। अतः महात्मा पुरुष यदि दण्डनीति से पापी को पाप से बर्जें, तो परम मङ्गलमय सनातनधर्म नष्ट न हो। जो सर्व-लोक-गुरु राजा का अपमान करता है, उसके किये हुए दान, यज्ञ और श्राद्ध कभी सफल नहीं होते। राजा, मनुष्यों का प्रभु है। सनातन देव रूप है और धर्मरक्षक है। राजा का अपमान देवता भी नहीं करते। जिस समय प्रजापति ने इस संसार की सृष्टि की उस समय लोगों को सत्कर्म में लगाने और असत् कर्मों से उन्हें निवृत्त करने के लिये क्षात्र धर्म की प्रतिष्ठा की। जो पुरुष बुद्धिपुरस्सर सत्कर्मों के अनुष्ठान में प्रवृत्त होता है, उस पुरुष को मैं मान्य एवं पूज्य समझता हूँ, क्योंकि उसमें क्षात्र धर्म प्रविष्ट है।

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! इन वचनों को कह इन्द्र रूप धारी भगवान् विष्णु मरुद्गण सहित अपने अविनश्वर सनातन लोक को चले गये। इस सर्व-श्रेष्ठ क्षात्र धर्म के प्रवर्तक परमात्मा विष्णु भगवान ही हैं। अतः कोई भी समझदार एवं बहुश्रुत जन क्षात्र धर्म की अवहेलना नहीं कर सकता। यदि क्षात्र धर्म का आतङ्क न हो तो अंधे पुरुष की तरह प्रवृत्ति-मय और निवृत्तिमय कर्म बीज ही में नष्ट हो जाय। सृष्टि के आरम्भ में प्रवर्तित और पूर्वपुरुषों द्वारा अनुष्ठित क्षात्र धर्म का तू पालन कर। हे नरव्याघ्र! क्षात्र धर्म पालन तू कर भी सकता है—यह बात मुझे भली भाँति मालूम है।

छियासठवाँ अध्याय

राजधर्म का पालन करने का फल

महाराज युधिष्ठिर ने पूँछा—हे भीष्म पितामह! आपने मुझे चारों आश्रमों का जो वृत्तान्त सुनाया वह मैंने सुना, किन्तु वह संक्षेप वृत्तान्त था—अब आप मुझे विस्तार से उनका वर्णन सुनाइये।

भीष्म जी कहने लगे—हे राजन्! जैसे मैं महापुरुषों से माने हुए समस्त सनातन धर्मों को जानता हूँ वैसे ही यावत् सनातन धर्म तुमको भी मालूम हैं; तथापि तेरा मुझ जैसे धर्म का सूक्ष्म रूप जानने वाले से प्रश्न करता है कि, राजधर्म का पालन करने से, आश्रम धर्मों का फल किस प्रकार प्राप्त होता है? इसका उत्तर सुन।

हे कुन्तीनन्दन! चारों आश्रमों के धर्मों का फल राजधर्म के अन्तर्गत है। राजधर्म का पालन करने से चारों आश्रमों के धर्मों के पालन का फल मिलता है। जो राजा राग, द्वेष, त्याग सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखता है, दण्डनीति से प्रजापालन के कार्य में काम लेता है। मरने के बाद

उस राजा को उत्तम लोक मिलते हैं। राजा को उचित है कि वह शास्त्रोक्त-रीत्या बर्त्ताव करे, धैर्यच्युत कभी न हो, आत्मस्वरूप को जाने, प्रजा के लोगों का निग्रह और उन पर अनुग्रह यथासमय करता रहे। जब प्रजा पर कोई विपत्ति पड़े तब प्रजा को उससे बचावे। ऐसे राजा को मरने बाद वही गति प्राप्त होती है, जो गृहस्थ की होती है। जो राजा पूज्य जनों को उनके मुँहमाँगे पदार्थ देता है उस राजा को मरने के बाद वह स्थान मिलता है, जो ब्रह्मचारी को प्राप्त होता है। जो राजा अपने दुःखी ज्ञाति बन्धु बान्धव, सगे नातेदार और मित्र का दुःख से उद्धार करता है, उसको वैखानस के पुण्यलोक मिलते हैं। जो राजा महात्माओं और धार्मिकों का सदा आदर सत्कार करता है। उसे मरने बाद उन लोकों की प्राप्ति होती है, जो वानप्रस्थ को प्राप्त होते हैं। जो राजा नित्य आन्हिक कर्मों को किया करता है, पितरों का श्राद्ध करता है, प्राणि मात्र को दान दे कर भूतयज्ञ करता है, अन्य यज्ञ कर देवताओं को सन्तुष्ट करता है, शिष्ट जनों की रक्षा के लिये शत्रु के देशों को नष्ट करता है, उसे वे ही लोक मरने के बाद मिलते हैं जिनमें वानप्रस्थ जा कर रहते हैं। अपने देश का प्रतिपालन करता हुआ राजा जितने प्राणियों की प्राणरक्षा करता है, उसे उतने ही यज्ञ करने का फल मिलता है और मरने पर वह लोक मिलता है, जो संन्यासियों को प्राप्त होता है।

नित्य वेदाध्ययन करने से, सब पर दयाभाव रखने से, गुरु आचार्य का सम्मान करने से, उपाध्याय का सत्कार करने से, करने वाले को मरने के बाद वे लोक मिलते हैं, जो संन्यासी को मिला करते हैं। नित्य गायत्री का जप करने वाले और श्रद्धा पूर्वक देवताओं का पूजन करने वाले को, गृहस्थाश्रमी को मिलने वाला स्थान प्राप्त होता है। "कार्यं वा साधयेयं, शरीरं वा पातयेयं" का निश्चय कर जो राजा रणक्षेत्र में अवतीर्ण होता है, उसे संन्यासियों के लोक मिलते हैं। जिस राजा का आजन्म व्यवहार प्राणि मात्र के साथ कपट और शठता रहित होता है,

वह राजा मरने के बाद उस लोक में जाता है, जिसमें संन्यासी जाया करते हैं। जो राजा वानप्रस्थों और वेदत्रयी जानने वाले विद्वानों को बहुत से पदार्थ देता है उसे वानप्रस्थों के लोक की प्राप्ति होती है। जिस राजा का बर्त्ताव हर एक के साथ दयामय और निष्ठुरताशून्य होता है, उस राजा को समस्त लोकों की प्राप्ति होती है। जो राजा बालकों और बूढ़ों पर, सदा दयाभाव रखता है, उस राजा को समस्त लोकों की प्राप्ति होती है। जो राजा अत्याचारपीड़ित एवं शरणागत दुःखी जनों की रक्षा करता है, उसे गृहस्थों के लोकों में स्थान मिलता है। जो राजा, स्थावर और जङ्गम प्राणियों की सर्वप्रकार से रक्षा करता है, उनकी योग्यतानुसार उनका सत्कार करता है, उसे गृहस्थों के लोकों की प्राप्ति होती है। अपने बड़े और छोटे भाइयों के पुत्रों कलत्रों का पालन करना और अपराध करने पर उन्हें दण्ड देना—गृहस्थ राजा का कर्त्तव्य ही नहीं बल्कि एक प्रकार का तप है। जो राजा आत्मज्ञानी और पूज्य महात्माओं का पालन करता है, उसको वही पुण्य फल मिलता है, जो उत्तम रीति से गृहस्थाश्रम का पालन करने वाले को मिलता है। राजा का गार्हस्थ्य धर्म यह है कि, वह वानप्रस्थों तथा अन्य आश्रमस्थ जनों को बुला कर, उनका भोजादि से सत्कार करे। जो पुरुष विधाता द्वारा निर्दिष्ट किये गये धर्मों का यथार्थरीत्या पालन करता है, उसे समस्त आश्रम धर्मों के पालन का पुण्यफल प्राप्त होता है। जो पुरुष उत्तमाचरण वाला है, उसे विद्वान् लोग अन्य समस्त आश्रमों में रहने वाला मानते हैं। किसी भी आश्रम में क्यों न हो, उसे स्थान, कुल, और अवस्था का मान अवश्य रखना चाहिये। जो राजा देशधर्म और कुलधर्म का पालन करता है, उस राजा की गणना समस्त आश्रमों में होती है। जो राजा प्राणि मात्र का वैभव और उपहारों से सत्कार करता है, उसे समस्त आश्रमों के पालन का फल प्राप्त होता है। जो राजा महान् सङ्कट में पड़ कर भी स्वधर्म का पालन करता है उसे समस्त आश्रमों के धर्मों के पालन का फल मिलता

है। जिस राजा के राज्य में धर्माचरण करने वालों की रक्षा की जाती है, उस राजा को उन धर्माचरण-परायण पुरुषों के धर्माचरण के फल का कुछ अंश मिलता है। जो राजा उन लोगों की रक्षा नहीं करते, जो धर्म पर निर्भर हैं और धर्म-परायण हैं, उन राजाओं को, ऐसे लोगों के किये हुए पापों के फल का भागी बनना पड़ता है। धर्माचरणी राजाओं को सहायता देते हैं, उन्हें अन्य लोगों के पुण्यफल का कुछ अंश मिलता है। हम जिस गृहस्थाश्रम में रहते हैं, वह सब आश्रमों से पवित्र है और उत्तम है। जो मनुष्य समस्त प्राणियों को आत्मवत् मानता है, अभिमान और क्रोध को त्याग देता है, उसे इस लोक में और मरने के बाद परलोक में सुख प्राप्त होता है। धर्मरूपी समुद्र ही में राजधर्मरूपी नौका के रहने का स्थान है । बुद्धिरूपी डाँडों से वह नाव खेयी जाती है, धर्मशास्त्ररूपी रस्सी से वह बँधी है। दानरूपी पवन से वह बड़ी तेज़ी से चलती है। सत्य के बल से वह जल के ऊपर तैरती है। जो राजा ऐसी राजधर्मरूपी नौका पर सवार होता है. वह संसारसागर के पार हो जाता है। जिस राजा का मन सांसारिक पदार्थों में आसक्त नहीं होता, वह राजा अपनी बुद्धि पर स्थित माना जाता है और उसे शीघ्र ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। जो राजा प्रजा-पालन करता है और योगबल से अपनी वासनाओं को रोक लेता है, वही राजा आनन्द में रहता है और उसे पूर्ण पुण्यफल प्राप्त होता है।

हे राजन्! तुझे उचित है कि तू वेदाध्ययनपरायण और सत्कर्मी ब्राह्मणों की रक्षा में तथा समस्त लोगों के पालन में सदा प्रयत्नवान् रहे। जो पुण्यफल वन में वास करने से तथा आश्रम का पालन करने से प्राप्त होता है, उससे सौगुना अधिक पुण्य राजा को प्रजा की रक्षा करने से मिलता है। हे युधिष्ठिर! मैंने तुझे कितने ही राजधर्म बतलाये, अब तू उनके अनुसार व्यवहार कर। हे राजन्! यदि तू प्रजापालन में तत्पर रहेगा, तो तुझे चारों वर्णों और चारों आश्रमों के धर्मपालन का पुण्यफल प्राप्त होगा।

सरसठवाँ अध्याय

राजा बिना राज्य टिकाऊ नहीं होता

युधिष्ठिर ने कहा—हे भीष्म पितामह! आपने चारों वर्णों और चारों आश्रमों के धर्म बतलाये। अब आप मुझे राष्ट्र अर्थात् प्रजा के उत्तम कर्त्तव्य बतलावें।

भीष्म ने कहा—राष्ट्र का अथवा प्रजा का यह कर्त्तव्य है कि, वह एक योग्य राजा को राजसिंहासन पर अभिषिक्त करे। जिस राज्य में अत्याचार हुआ करते हैं, वह राज्य निर्बल हो जाता है। ऐसे राज्य में बसने वाली प्रजा को चोर डाँकू रुलाया करते हैं। अत्याचार-परायण राज्य में धर्म की दाल नहीं गलती। जिस राज्य में सुव्यवस्था का अभाव होता है, उस राज्य की प्रजा आपस ही में लड़ भिड़ कर नष्ट हो जाती है। ऐसे राजा-रहित राष्ट्र को धिक्कार है। वेद कहता है—राजा का अभिषेक देवराज इन्द्र के अभिषेक के बराबर है, अतः ऐश्वर्यकामी को राजा का पूजन इन्द्र के समान करना चाहिये। जिस राष्ट्र में अत्याचार होता हो, उस राष्ट्र में कल्याण-कामी को कदापि न रहना चाहिये। क्योंकि ऐसे राष्ट्र में दिये हुए बलि को अग्निदेव, देवताओं तक नहीं पहुँचाते। यदि किसी अत्याचार-पूरित राष्ट्र पर कोई राजा आक्रमण करे तो उस राष्ट्र के अधिवासियों को उस आक्रमणकारी राजा का स्वागत करना चाहिये। क्योंकि अराजकता से बढ़ कर कोई भी पाप नहीं है। यदि आक्रमणकारी राजा न्यायी हुआ, तो उस राष्ट्र के लोगों का कल्याण होता है और यदि राजा क्रोधी, कामी अथवा लम्पट हुआ तो वह उस राष्ट्र की सारी प्रजा का सर्वस्व नष्ट कर डालता है। जो गौ चुपचाप दूध नहीं दुहने देती, उसे बड़े कष्ट झेलने पड़ते हैं और जो दूध देने में दुःख नहीं देती, उसे लोग बड़े आराम से रखते हैं और उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते। जो काठ बिना तपाये ही नव जाता है, उसे कोई आदमी अन्य उपाय से नहीं झुकाता। इस उदाहरण

को अपने स्थान में रख, पुरुष को अपने से बलवान् पुरुष से नवते रहना चाहिये। जो बलवान् से नवता है, समझना चाहिये कि, वह इन्द्र ही से नवता है। ऐश्वर्यकामी जनों का कर्त्तव्य है कि, वे राष्ट्र को बिना राजा के एक क्षण के लिये भी न रहने दें। क्योंकि जिस राष्ट्र में राजा नहीं है, उस राष्ट्र के लोग धन और स्त्री का उपभोग कर ही नहीं सकते। जिस राष्ट्र में अराजकता है, उस देश में पापी जन दूसरों का धन छीन कर हर्षित होते हैं; परन्तु जब अन्यजन उनसे भी उनका धन छीनते हैं, तब उन्हें भी राजा की आवश्यकता का अनुभव होने लगता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि, पापी भी अराजकता में सुखी नहीं रह सकते। क्योंकि अराजक राष्ट्र में दो मनुष्य मिल कर अकेले मनुष्य का और बहुत मनुष्य मिल कर उन दो मनुष्यों का सर्वस्व अपहृत कर लेते हैं। जो लोग दास नहीं होते वे दास बनाये जाते हैं, लोग बरजोरी स्त्रियों को ले जाते हैं। इन्हीं सब कारणों से देवताओं ने प्रजा-पालक राजा की सृष्टि की। यदि इस संसार में दण्डधारी राजा न होता, तो बलवान लोग निर्बलों को वैसे ही निगल जाते, जैसे बड़े बड़े मत्स्य छोटी मछलियों को निगल जाते हैं। सुनते हैं पूर्वकाल में एक बार ऐसा हो भी चुका है। राजारहित प्रजा आपस में लड़ कर, नष्ट हो चुकी है। उस समय प्रजा जनों ने एकत्र हो आपस में यह ठहराव किया था कि समस्त वर्णों के प्रजा जनों में विश्वास उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि, हम उन लोगों का सदा के लिये बहिष्कार कर दें, जो कटुभाषी हैं, जो उग्रता से काम लेने वाले हैं, जो पर-स्त्री-गामी हैं और जो पर-द्रव्यापहारी हैं। इस प्रकार कुछ दिनों तक काम चलता रहा; किन्तु पीछे फिर जब दुर्व्यवस्था फैली, तब प्रजाजन ने ब्रह्मा जी के निकट गमन किया और विनयपूर्वक निवेदन किया कि, भगवन्! राजा के अभाव में हमारा सर्वनाश हो रहा है। अतः आप हमें राजा दें। हम सब उसका सम्मान करेंगे और वह हम सब का पालन करेगा। तब ब्रह्मा ने मनु को राजा बनाना चाहा;

किन्तु मनु ने राजा बनना अस्वीकार करते हुए कहा—मैं पाप से बहुत डरता हूँ। क्योंकि राजकाज अति कठिन व्यापार है। फिर मिथ्याचरणी प्रजाजनों पर राज्य करना तो अत्यन्त कठिन काम है।

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! इस पर प्रजाजनों ने मनु जी से कहा—हे महाराज! आप बिलकुल न डरें। पाप तो पाप करने वाले ही को लगेगा। राजकोष की वृद्धि के लिये हम लोग इस प्रकार आपको राज-कर दिया करेंगे। यथा पचास पशु मिलने पर एक पशु, प्राप्त सुवर्ण में से पचासवाँ भाग, प्राप्त धान्य का दसवाँ भाग, विवाहने योग्य कन्या होने पर, उनमें जो लक्षणों वाली रूपवती कन्या होगी, वह कर स्वरूप हम लोग आपको देंगे। हम लोगों में वाहन चढ़ने योग्य और शस्त्र धारण करने योग्य पुरुष आपके पीछे पीछे वैसे ही चला करेंगे, जैसे देवगण इन्द्र के पीछे चला करते हैं। हम लोग आपके सहायक होंगे। अतः आपको कोई न हरा सकेगा। आप एक बलवान् एवं प्रतापी राजा होंगे। आप हम लोगों की रक्षा वैसे ही करना, जैसे कुबेर जी यक्षों और राक्षसों की रक्षा किया करते हैं। प्रजा के किये हुए धर्मानुष्ठान का चतुर्थांश पुण्यफल आपको मिलेगा। आप स्वयं भी बेखटके धर्मानुष्ठान कर सकेंगे। अतः आप हमारा हर प्रकार से वैसे ही पालन करो, जैसे इन्द्र, देवगण का पालन करते हैं। आप तप्त सूर्य की तरह विजययात्रा कीजिये और शत्रुओं के गर्व को खर्व कर सदा विजयी हूजिये।

यह सुन, महाप्रतापी मनु बड़े बड़े कुलीन प्रजाजनों तथा एक विशाल सैन्य दल को साथ ले नगर के बाहिर निकले। इन्द्र का रोब जैसे देवताओं पर छाया हुआ है, वैसे ही मनु का आतङ्क प्रजाजनों पर छा गया। उनके आतङ्क से समस्त दुष्ट जन भयभीत हो गये और दुष्टता त्याग वे धर्मकर्म करने लगे। वृष्टि करने वाले मेघ की तरह राजा मनु भूमण्डल पर चारों ओर घूम फिर कर, पापियों का संहार करने लगे। उन्होंने थोड़े ही दिनों में ऐसी सुव्यवस्था की कि, सब लोग अपने अपने

धर्मकर्मों में लग गये। अतः जो लोग वैभव वृद्धि की कामना रखते हों उन्हें प्रजा पर अनुग्रह करने वाला कोई राजा अवश्य बना लेना चाहिये। प्रजाजनों को अपने राजा के प्रति नित्य प्रणाम कर वैसे ही सम्मान प्रदर्शित करना चाहिये, जैसे शिष्य गुरु के प्रति अथवा देवता देवराज इन्द्र के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं। इस संसार का यह नियम है कि, अपने आदमियों के सम्मान करने पर, अन्य लोग भी सम्मान करने लगते हैं: किन्तु जब अपने ही लोग अपमान करते हैं, तब अन्य लोग भी अपमान करने लगते हैं। जब एक राजा दूसरे राजा को हराता है, तब हारे हुए राजा के प्रजाजनों को बड़ा कष्ट मिलता है। अतः राजा के गौरववृद्धि के लिये प्रजाजनों को उचित है कि, वे अपने राजा को, वाहन, वस्त्र, गहने, विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, पेय पदार्थ, भवन, शय्या तथा अन्य समस्त प्रकार के सामान भेंट करते रहें।

हे युधिष्ठिर! इस प्रकार प्रजा से सहायता प्राप्त राजा दुराधर्ष हो जाता है। राजा जब प्रजा से बातचीत करे तब उसे हँसमुख हो अतिमधुर बातचीत करनी चाहिये। राजा को उचित है कि, उपकार करने वालों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता रहे। अपने भक्तों पर पूर्ण स्नेह रखे, लोगों को उनकी योग्यतानुसार कुछ न कुछ देता रहे। स्वयं अपनी इन्द्रियों को वश में रखे। यदि कोई अपनी ओर ध्यान दे तो उसके प्रति मृदुता और मधुरता के साथ स्नेहमयी दृष्टि से देखे।

अड़सठवाँ अध्याय

देवरूप राजा

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! ब्राह्मणों के भी अधिपति राजा को लोग क्यों देवरूप कहा करते हैं? इसका कारण आप मुझे बतलावें।

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज ! यही प्रश्न राजा वसुमना ने बृहस्पति से एक बार पूछा था। यह वृत्तान्त इस प्रकार है। कोसलदेश के राजाओं में वसुमना नामक एक राजा हो गया है। वह महाबुद्धिमान और परम विवेकी था। एक दिन बृहस्पति जी उसके दरबार में गये। उन्हें आते देख, वसुमना ने कृतप्रज्ञ महर्षि बृहस्पति को अभ्युत्थान दे, उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। साथ ही यथाविधि उनकी परिक्रमा कर और उन्हें प्रणाम कर राजा वसुमना ने उनसे प्रश्न किये। राजा वसुमना सर्वलोक-हितैषी थे। अतः उन्होंने प्रजा के हित से प्रेरित हो, धर्मात्मा बृहस्पति से पूछा कि, राजा को राज्य किस प्रकार करना चाहिये ? प्राणियों की वृद्धि करने के क्या साधन हैं ? प्राणियों का ह्रास कैसे होता है ? किस देव का पूजन करने से लोगों को अविनश्वर सुख की प्राप्ति होती है।

जब अपार बलवान् राजा वसुमना ने महाबुद्धिमान् बृहस्पति से ये प्रश्न किये, तब उन्होंने उत्तर देते हुए बतलाया कि, प्रजाजनों को अपने राजा का सम्मान किस प्रकार करना चाहिये।

बृहस्पति जी ने कहा—हे राजन् ! समस्त लोगों का धर्म और शान्ति राजा के ऊपर निर्भर है। जब प्रजाजन मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं, और लोभ में फँस जाते हैं, तब राजा दण्ड द्वारा शिक्षा दे, मर्यादा तोड़ने वाले लोगों को शुद्ध कर, शान्ति स्थापित करता है। उस समय उसका राजारूप जगत् में प्रकट होता है। यदि प्रजाजनों का रक्षक राजा न हो तो इस संसार में बड़ी दुर्व्यवस्था फैल जाय। जैसे सूर्य अथवा चन्द्र के उदय न होने से अँधेरा छा जाता है और एक दूसरे को नहीं देख सकता, जैसे थोड़े जल वाले तालाब में रहने वाली मछलियाँ तथा बहेलियों एवं हिंसक पशुओं के भय से शून्य वन में रहने वाले पक्षी, स्वेच्छाचारी हो जाते हैं, और आपस में लड़ाभिड़ा करते हैं तथा बलवान लोग निर्बल को दबा लेते हैं, और जिसका फल यह होता है कि, लोग लड़ कर नष्ट हो जाते हैं,

वैसे ही राजा के अभाव में प्रजा जन, ग्वाले रहित ढोरों की तरह पापरूपी अन्धकार मय गड्ढे में गिर पड़ते हैं और आपस ही में मार काट कर नष्ट हो जाते हैं। यदि राजा, प्रजा जनों की रक्षा न करे तो बलवान् प्रजा जन, निर्बल प्रजा जनों का घर, स्त्री, धन आदि पदार्थों को लूट लेते हैं और माल असबाब न देने वाले लोगों को वे जान से मार डालते हैं। यदि प्रजा-पालक राजा न हो, तो कोई भी मनुष्य यह न कह सके कि, अमुक वस्तु मेरी है। साथ ही स्त्री, पुत्र, धन तथा घर का अन्य साज सामान नष्ट हो जाँय। यदि रक्षक राजा न हो तो मनुष्यों के वाहन, वस्त्र, अलंकार और विविध प्रकार के रत्नों को पापी लूट लें। यदि प्रजारक्षक राजा न हो तो धर्माचरण-परायण लोग नित्य ही अस्त्र शस्त्रों के लक्ष्य बनें और अधर्म की वृद्धि हो। यदि प्रजापालक राजा न हो तो लोग अपने माता, पिता, आचार्य, अतिथि, गुरु तथा अन्य वृद्ध जनों को या तो दुःख दें अथवा उन्हें जान ही से मार डालें। यदि प्रजापालक राजा न हो तो धनी लोग रोज़ मारे जाँय और जेल की यंत्रणाएँ सहें। कोई भी मनुष्य किसी का यह दावा न माने कि, अमुक वस्तु मेरी है। यदि राजा न हो तो लोग बेमौत के मरें और चोर तथा डाकू प्रजा को अपने अधीन कर लें। प्रजाजनों को घोर नरकयातनाएँ सहनी पड़ें। यदि राजा न हो तो विवाह का प्रतिबंध उठ जाय, खेती बारी नष्ट हो जाय, व्यापार वाणिज्य न चले, न्याय और धर्म नष्ट हो जाँय। वेद को कोई न पूँछे, बड़ी बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञ यागादि बंद हो जाँय। लोग अविवाहित रहें, समाज में उच्छृङ्खलता फैल जाय। यदि राजा न हो तो साँड़ गौओं को ग्याभन न करें। दही न मथा जाय और ग्वाला नष्ट हो जाय। यदि प्रजापालक राजा न हो तो यह सारा संसार त्रस्त हो जाय और मनुष्य उद्विग्न रहा करे, चारों ओर हाय हाय मच जाय, लोगों के होश हवास दुरुस्त न रहें और यह सारा जगत् एक क्षण में विनष्ट हो जाय। यदि प्रजा-पालक राजा न हो तो लोग निर्भीक हो यथाविधि बहु दक्षिणा वाले

सांवत्सरिक यज्ञ न किया करें; विद्यास्नात और तपस्वी ब्राह्मणों में वेदाध्ययन बंद हो जाय। यदि राजा न हो तो ब्रह्महत्यारे की हत्या करने वाला मनुष्य प्रशंसा का पात्र न समझा जाय और ब्रह्महत्यारा आनन्द से जगत् में विहार करे। यदि प्रजापालक राजा न हो तो उठाईगीरे देखते देखते लोगों के हाथों से चीज़ें उठा ले जाया करें, धर्म-मर्यादा भङ्ग हो जाय और सब लोग भयभीत हो भाग जाँय।

यदि प्रजापालक राजा न हो तो, चारों ओर अंधेर मच जाय। देश में अकाल पड़ने लगे। राजा का आतङ्क हुए विना लोग घर के दरवाज़े खुले छोड़ बेखटके पैर पसार नहीं सो सकते। यदि प्रजारक्षक एवं धर्मात्मा राजा न हो तो कोई पुरुष किसी की निन्दा को न सुने। फिर मार सहने का तो प्रश्न ही दूसरा है।

जब प्रजारक्षक राजा होता है, तब ही आभूषणों से सुसज्जित स्त्रियाँ विना रक्षक के अकेली ही बेखटके मार्गों पर आ जा सकती हैं। प्रजारक्षक राजा के होने ही से एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हानि नहीं करता और आपस में एक दूसरे की सहायता करते हैं तथा धर्माचरण-परायण होते हैं। यदि प्रजारक्षक राजा हो तो अधिकारी लोग विविध प्रकार के यज्ञानुष्ठान किया करते हैं और मन लगा कर विद्याध्ययन करते हैं। इस संसार की रक्षा, खेती बारी, वाणिज्य व्यवसाय तथा वेदोक्त कर्म-कलाप पर निर्भर है और इन सब की रक्षा राजा के ऊपर निर्भर है। जब राजा उत्तम रीति एवं भुजबल से प्रजा का पालन करता है तभी प्रजाजन सुखी रह सकते हैं। राजा के अभाव में प्राणियों का जीवित रहना कठिन है। राजा ही की विद्यमानता में प्राणधारी जीवित रहते हैं। अतः ऐसे प्रजारक्षक राजा का सम्मान कौन न करेगा? जो राजा का प्रिय पात्र एवं हितैषी होता है और समस्त लोगों में उसकी ओर से आतङ्क स्थिर रखता है, वह उभय लोकों को अपने अधीन कर लेता है। जो मनुष्य मन से भी राजा का अनिष्ट चाहता है, वह इस लोक में कभी

सुखी नहीं रह सकता और मरने के बाद नरकगामी होता है। राजा को सामान्य मनुष्य समझ कभी उसका तिरस्कार न करे, क्योंकि राजा में देवांश है। राजा समय समय पर अग्नि, सूर्य, मृत्यु, कुबेर, और यम का रूप धारण करता है। जब वह गुंडों को झाँसापट्टी दे कर ठगता है और पापियों को निज उग्र तेज से उत्तप्त करता है, तब वह अग्निरूप धारण करता है। जब राजा नेत्ररूपी दूतों द्वारा प्रजा के कर्मों का निरीक्षण करता है और प्रजा का कल्याण करना चाहता है, तब वह सूर्यरूप धारण करता है। जब राजा क्रोध में भर सैकड़ों मनुष्यों को उनके पुत्र पौत्र और मंत्रदाताओं सहित नष्ट कर डालता है तब वह यमराजरूप धारण करता है। जब वह राजा और राज्य के हितैषी लोगों को धन से पुरस्कृत करता है और जो लोग उसका सामना करते हैं, उनके धन रत्नादि हर लेता है, तब वह कुबेर रूप धारण करता है। कार्य करने की शक्ति से सम्पन्न, सद्गुण प्राप्त करने की कामना रखने वाले, ईर्ष्या शून्य एवं चतुर जन को, राजा के सम्बन्ध में निन्दा की कोई भी बात न फैलानी चाहिये। ऐसा पुरुष भले ही स्वयं राजपुत्र, राजा का भाई, राजा का मित्र अथवा अपर राजा ही क्यों न हो। पवन की सहायता से अग्नि पदार्थों को भस्म तो करता है फिर भी कुछ छोड़ देता है; परन्तु राजा का कोपानल कुछ भी नहीं छोड़ता। राजा के सामान से प्रजा जनों को वैसे ही दूर रहना चाहिये जैसे लोग मृत्यु से दूर रहते हैं। फंदे के छूते ही (जैसे मृग तुरन्त मर जाता है, वैसे ही राजा की वस्तु छूते ही) मनुष्य मारा जाता है। इसीसे विद्वान् पुरुष को निज धन की तरह राजधन की रक्षा करनी चाहिये। राजधन चुराने वाले लोग भयानक और असीम नरक में गिरते हैं। * राजा, † भोज, ‡ विराट, § सम्राट्, ‖ क्षत्रिय, ¶ भूपति,

---

* राजा—प्रजा का रञ्जन करने वाला। † भोज—सुख दिलाने वाला। ‡ विराट्—श्रीमान्। § सम्राट्—बादशाह। ‖ क्षत्रिय—दुःख से रक्षा करने वाला। ¶ भूपति—पृथिवी का पति।

* नृप, आदि शब्दों से जिस व्यक्ति विशेष की स्तुति की जाती, उस राजा के प्रति सम्मान क्यों प्रदर्शित न किया जायगा ? अतः उन्नतिकामी जितात्मा, जितेन्द्रिय, मेधावी, स्मृतिमान्, चतुर को सदा राजा का पक्ष ग्रहण करना चाहिये। कृतज्ञ, धीमान, नीतिमान और राजनैतिक विचार करने वाले मंत्री का राजा को सदा सत्कार करना चाहिये। अपने ऊपर दृढ़ भक्ति रखने वाले, धीमान्, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय, शूरवीर, उत्तम कर्म करने वाले और अवसर पड़ने पर साहस प्रदर्शित करने वाले अद्वितीय वीर पुरुष का भी सम्मान करना चाहिये। बुद्धि जैसे मनुष्य को चतुर बनाती है, वैसे ही राजा मनुष्य को विनयी बनाता है। राजा जिसका तिरस्कार करता है, उसे सुख मिलता ही नहीं; किन्तु राजा के शरण में जाने वाला मनुष्य सुखी रहता है। प्रजा का महान् हृदय राजा है। वही प्रजा का आश्रयस्थल है। वही प्रजा की प्रतिष्ठा का कारण है और वही प्रजा के लिये उत्तमोत्तम सुख का हेतु है। जो मनुष्य राजा का आश्रय ग्रहण करता है, वह भली भाँति इस लोक तथा परलोक का विजय करते हैं। राजा भी दम, सत्यवादिता और स्नेह से पृथिवी का पालन करके, महायज्ञों द्वारा यजन करके महा यशस्वी होता है और मरने के पीछे सनातन स्थान पाता है।

अङ्गिरानन्दन बृहस्पति ने इस प्रकार कोसल देश के वीर राजा वसुमना के प्रश्न का उत्तर दिया। तदनन्तर वसुमना प्रयत्न पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

उनहत्तरवाँ अध्याय

अधिकारियों की नियुक्ति तथा शत्रु से राष्ट्ररक्षा का उपाय

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे भीष्म पितामह ! राजा के अन्य मुख्य कर्त्तव्य क्या हैं ? उसे राष्ट्र-रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ? शत्रु को किस प्रकार

* नृप—मनुष्यों का पालन करने वाला।

परास्त करना चाहिये ? दूत किस प्रकार नियुक्त किये जाँय ? किन उपायों से राजा को अपने लिये चारों वर्णों की प्रजा का, अपनी रानियों का और अपने पुत्रों का विश्वासपात्र बनना चाहिये ?

भीष्म जी ने उत्तर देते हुए कहा—हे राजन् ! अब तुम सावधान होकर राजा के भिन्न भिन्न कर्त्तव्य सुनो। राजा अथवा उसके प्रतिनिधि के आरम्भिक कर्त्तव्यों को मैं कहता हूँ । सुनो। सर्वप्रथम राजा को अपने आत्मा के ऊपर विजय प्राप्त करनी चाहिये, तदनन्तर वह शत्रुओं को जीते। जिस राजा ने आत्मा को नहीं जीता है, वह शत्रुओं को नहीं जीत सकता। पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में कर लेना ही आत्म-विजय है। जो राजा इन्द्रिय-जित् है, वही शत्रुओं को भी जीत सकता है। राजा को राष्ट्ररक्षा के लिये अपनी सेना को दुर्गों में, सीमाप्रान्तों पर, बड़े बड़े नगरों में, उपवनों और वनों में रखना उचित है। राजा को उचित है कि, वह आवश्यकतानुसार पुरों, नगरों और अन्तःपुर की रक्षा के लिये भी सेना रखे।

राजा दूत के पद पर ऐसे लोगों को नियुक्त करे जिनकी सच्चाई की परीक्षा की जा चुकी हो, जो देखने में अंधे, बहरे और मूर्ख जैसे जान पड़ें। काम आ पड़ने पर जो भूख, प्यास और परिश्रम से घबड़ाय नहीं। राजा मंत्रियों, मित्रों और पुत्रों के ऊपर भी गुप्तचर नियुक्त कर उनके आन्तरिक अभिप्राय को सदा जानता रहे। राजा को उचित है कि नगरों, प्रान्तों और सामन्त राजाओं के अभिप्राय जानते रहने के लिए भी गुप्तचर नियुक्त करे। ये गुप्तचर ऐसे हों कि आपस में भी वे एक दूसरे को न पहचान पावें। बाज़ारों में, लोगों के घूमने फिरने और सैर सपाटे के स्थान पर, लोगों की भीड़ में, भिक्षुकों की जमात में, बग़ीचों में, उद्यानों में, पण्डितों की सभाओं में, प्रान्तों में, चौराहों पर, राजसभा में और जहाँ कहीं लोगों का जमाव होता हो वहाँ, गुप्तदूतों को नियत कर शत्रुओं के गुप्तचरों का हाल लेते रहना चाहिये। जो विचक्षण-बुद्धि सम्पन्न राजा शत्रु के दूतों को पहले ही से जान जाता है, उसी राजा का

कल्याण होता है। यदि राजा देखे कि, वह शत्रु का सामना नहीं कर सकता, तो उसे उचित है कि वह मंत्रियों के परामर्शानुसार बलवान शत्रु राजा से सन्धि कर ले; किन्तु अपनी निर्बलता शत्रु पर प्रकट न होने दे। यदि किसी प्रकार का भी लाभ होता देख पड़े तो चतुर राजा तुरन्त शत्रु के साथ सन्धि-स्थापन कर ले। इसके अतिरिक्त चतुर राजा के यह भी उचित है कि, वह उन राजाओं के साथ भी सन्धि कर ले, जो अपने राज्य के हितैषी हों तथा जो गुणवान, महोत्साही, धर्मज्ञ, और सज्जन हों। राज्य पर अथवा अपने ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति आने पर, राजा तुरन्त उन अपराधियों के जो दयावश छोड़ दिये गये हों और जिनके बारे में जनता साक्षी दे—तुरन्त पकड़वा कर मरवा डाले। यह इसलिये कि जिससे अन्य लोगों का हैांसला न बढ़ने पावे। राजा उन लोगों के साथ मेलजोल न बढ़ावे, जो न तो उपकार कर सकें और न अपकार ही और जो अपना भी उद्धार करने की शक्ति न रखता हो। जिस राजा के अपने बल पर पूर्ण विश्वास हो, वह अवश्य शत्रु पर आक्रमण करे; किन्तु आक्रमण करने के पूर्व उसे अपनी राजधानी की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर देना चाहिये। तत्पश्चात् वह उत्साहित हो और धैर्य धारण कर, अपने अधीन एक बड़ी सेना लेकर अपने से निर्बल, मित्ररहित अथवा दूसरे के साथ युद्ध में फँसे हुए राजा पर, सूचना दिये बिना ही, आक्रमण करे। निर्बल राजा के उचित है कि, वह अपनी अपेक्षा बलवत्तर राजा के सदा अधीन न रहै। बलवत्तर राजा को हानि पहुँचाने का अवसर सदा खोजता रहै। साथ ही अपने राज्य की भी सम्हाल रखे। शस्त्रों से, आग लगाकर तथा कूप, तालाब आदि के जल के विष से विषैला कर, बलवत्तर राजा की प्रजा के सतावे और अपने गुप्तचरों द्वारा, शत्रु राजा के मंत्रियों, विश्वस्त मुसाहिबों में झगड़ा करवा दे। जो बुद्धिमान राजा राज्य करना चाहे, उसे सदा युद्ध में प्रवृत्त न होना चाहिये। बृहस्पति के बतलाये हुए धनोपार्जन के तीन उपायों से काम ले। धनोपार्जन के तीन उपाय ये

हैं—सान्त्वना, प्रदान और भेद। समझदार राजा को चाहिये कि वह जितना धनोपार्जन कर सकता हो, उतने ही अर्थ से सन्तुष्ट रहे। प्रजारक्षा के लिये राजा को प्रजाओं से कर वसूल करना चाहिये और अनाज की पैदावार का छठवाँ भाग लेना चाहिये। नगरवासियों की रक्षा के लिये, उद्धत और मत्त जनों से कम या अधिक दण्ड रूप धन राजा अवश्य ले। ऐसा न करने से ऐसे लोग प्रजा को सताते हैं। राजा को निज पुत्रवत् अपनी प्रजा के साथ वात्सल्यतापूर्ण व्यवहार करना चाहिये; किन्तु किसी बखेड़े का निपटारा करते समय ऐसा भाव राजा न रखे। वादी-प्रतिवादियों के झगड़े निपटाने के लिये राजा ऐसे विद्वान् लोगों को नियुक्त करे जो चतुर और व्यवहारकुशल हों। क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र का अस्तित्व न्याय की पवित्रता ही पर अवलम्बित है। खानों पर, उन स्थानों पर जहाँ लवण उत्पन्न होता हो, नदियों के घाटों पर तथा गजशालाओं पर राजा ऐसे मंत्रियों को रखे जो पूर्णरीत्या विश्वास-पात्र हों और जो राजा का हित चाहने वाले हों। जो राजा सदा न्यायपथ पर आरूढ़ रहता है वही धर्मात्मा है क्योंकि न्याय करना राजा का परम कर्त्तव्य बतलाया गया है। राजा को साङ्गोपाङ्ग वेद का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। राजा को बुद्धिमान होने के अतिरिक्त तपस्वी, दानशील और यज्ञ-परायण होने की भी आवश्यकता है। राजा में ये गुण स्थायी होने चाहिये। जो राजा अपने व्यवहार को लोप कर डालता है, उसे न तो सुख मिलता है और न यश। जब कोई बलवत्तर राजा किसी निर्बल राजा को सतावे, तब उस बुद्धिमान् निर्बल राजा को उचित है कि, वह झट किसी सुदृढ़ दुर्ग का आश्रय ग्रहण करे। फिर यथावसर मित्रों से परामर्श करे कि, सन्धि, भेद, या युद्ध में से किस उपाय से काम लिया जाय। यदि परामर्श करने पर शत्रु के साथ युद्ध करने ही का निश्चय हो तो वनवासी अहीरों को मय उनके ढोरों के प्रसिद्ध मार्गों पर बसा दे और आवश्यकतानुसार ग्रामों को उठा कर कसबों में बसा दे। जब सङ्कट का समय आवे; तब धनीपुरुषों और मुख्य मुख्य

सैनिक अधिकारियों को गुप्त और सुरक्षित स्थानों में टिका कर, उन्हें हर प्रकार से धैर्य धारण करावे। राज्य की समस्त अन्नराशि अपने अधिकार में कर ले। यदि देखे कि वह ऐसा नहीं कर सकता, तो आग लगवा कर अन्न को भस्म करवा दे। शत्रु के हाथ में अन्नराशि न जाने दे। यदि आग लगाने का अवसर न मिले तो शत्रुपक्ष के लोगों में परस्पर कलह उत्पन्न करवा, खेतों में खड़े अन्न को विनष्ट करवा डाले। यदि इसमें भी सफलता प्राप्त न हो तो अपने पक्ष के सैनिकों से वह अन्न नष्ट करवा डाले। नदियों के पुलों को तुड़वा दे, तालाब आदि का जल निकलवा दे अथवा जल में विष घुलवा कर जल को पीने योग्य न रहने दे। यदि किसी मित्र राजा की रक्षा का दायित्व अपने ऊपर आ गया हो तो अपने राज्य की रक्षा के लिये आगे पीछे का विचार कर, मित्र का साथ न दे और अपने उस शत्रु से मेल कर ले, जो प्रस्तुत शत्रु को नष्ट करने की शक्ति रखता हो। ऐसे शत्रु से सहायता लेकर, दूसरे शत्रु को अपने राज्य से निकाल देना चाहिये। जिस दुर्ग में शत्रु राजा रहता हो उस दुर्ग को चारों ओर से तुड़वा देना चाहिये। देवालय के आस पास के वृक्षों को छोड़ कर, अन्य समस्त छोटे बड़े पेड़ उखड़वा दे या कटवा डाले; किन्तु चैत्य वृक्षों का एक पत्ता भी न तुड़वावे। राजधानी के चारों ओर परकोटे की दीवाल बनवावे। परकोटे की दीवाल पर बुर्ज बनवावे जिनमें सैनिक आवश्यकतानुसार बैठ सकें और खड़े हो सकें। दुर्ग के चारों ओर खाईं खुदवा कर उसे जल से पूर्ण कर दे। खाईं के किनारों पर कटीले वृक्ष लगवा दे और खाईं में मगर मच्छ भर दे। परकोटों की दीवाल में ऐसे झरोखे और द्वार बनवा दे, जिनसे नगर में पवन आता जाता रहे और सङ्कट के समय उनमें हो कर नगर के बाहिर निकल जा सके। उन झरोखे और खिड़कियों की रक्षा के लिये भी राजा पहरे का प्रबन्ध कर दे। इन स्थानों पर बड़ी बड़ी तोपें तथा अन्य यंत्रों का संग्रह कर रखे। क़िले के भीतर ईंधन का अच्छा संग्रह कर के रखे। जल के लिये या तो क़िले में कुएं खुदवा दे अथवा जो कुएँ हों, उनकी सफाई करवा

डाले। छप्परों पर मिट्टी लिपवा दे। यदि गर्मी की फ़सल हो तो खेतों से तृणादि हटवा दे, जिससे आग लगने का भय न रहे। युद्ध के दिनों में रात के समय भोजन बनाने की लोगों को आज्ञा दे। अग्निहोत्र को छोड़ दिन में कहीं भी आग जलाने की परवानगी न देनी चाहिये। लुहार की भट्टी में और अस्पताल में बड़ी सावधानी से आग रखनी चाहिये। जो लोग घर में सदा आग रखते हों उन्हें अग्नि को ढक कर रखना चाहिये। जिससे आग लगने का भय न रहे। ऐसे अवसरों पर राजा नगर में ढिंढोरा पिटवा दे कि, यदि कोई मनुष्य दिन में आग जलावेगा अथवा सुलगती हुई आग रखेगा, तो उसे कठोर दण्ड दिया जायगा। जब युद्ध छिड़ा हो तब राजा को उचित है कि वह नगरों से भिखमंगों, ग्वालियों, हिजड़ों, उन्मत्तों और गवैयों को निकाल दे। क्योंकि इन लोगों का ऐसे समय में नगरों में रहना प्रायः बड़ी बड़ी विपत्तियों का कारण होता है। चौकों में, तीर्थों में, सभाओं में, धर्मशालाओं में, राजा लोगों का अभिप्राय जानने के लिये निपुण गुप्तचर रखे। राजा नगर की सड़कें चौड़ी करवा दे। उपयुक्त स्थानों पर प्याऊ बैठा दे और जहाँ ज़रूरत समझे वहाँ बाज़ार लगवा दे। धनागार, आयुधभाण्डार, सिपाहियों की बारकें, घुड़सालें, गजशालाएं, सैनिक शिविर, परिखाएं, राजभवन के उद्यान, इस ढंग से बनवावे कि शत्रु आसानी से न देख पावे। जो राजा शत्रुसैन्य से घिर जाय उसे घायल सिपाहियों की चिकित्सा के लिये, तेल, चरबी, मधु, घी, तथा अन्य दवाइयों का संग्रह कर रखना चाहिये। कोयले, कुशा, मूँज, ढाक, बाण, लेखक, नक्शे बनाने वाले, घास, लकड़ी और विष में बुझे बाणों का भी संग्रह करना चाहिये। विविध आयुधों का जैसे शक्ति, ऋष्टि, प्रास, कवच आदि युद्धोपयोगी उपस्कर भी जमा करे। सब प्रकार की दवाइयों, फलों, मूलों का तथा * चार प्रकार के वैद्यों को भी तैयार रखे। नट, नचैया, पहलवान, मायावी, ऐन्द्रजालिक

* चार प्रकार के चिकित्सक ये हैं १ विष दूर करने वाले, २ शल्य निकालने वाले, ३ रोग दूर करने वाले और ४ कृत्या आदि दूर करने वाले।

लोगों को भी राजा अपने यहाँ रखे, क्योंकि इनसे नगर की शोभा है और ये लोग नागरिकों के मनोरञ्जन की सामग्री हैं। यदि किसी राजा को अपने नौकरों, मंत्रियों, नागरिकों अथवा पड़ोसी राजा से खटका हो तो समयोचित उपायों द्वारा उन्हें अपने वश में कर ले। यदि अपना कोई कार्य सिद्ध होता देखे तो राजा उस कार्य में सहायता देने वालों को पुरस्कार दे कर और उत्साह बढ़ाने वाले वचन कह कर, उनका सत्कार करे।

हे राजन्! शास्त्र कहता है कि राजा अपने शत्रु को ताड़ना आदि से खिन्न कर, या शत्रु का संहार कर, उऋण होता है। राजा को उचित है कि वह निम्न सात वस्तुओं की सावधानता पूर्वक रक्षा करे। १ अपनी २ मंत्री की, ३ ख़जाने की, ४ सेना की, ५ मित्र की ६ राष्ट्र की और ७ नगरों की। इन्हीं सात वस्तुओं से राज्य बनता है। जो राजा छः गुण, तीन वर्ग, तीन परम वर्ग को जानता है—वही इस पृथिवी पर राज्य करता है। छः गुण ये हैं—१ सन्धि, २ सन्धि करने के उपरान्त राज्यशासन, ३ शत्रु पर आक्रमण ४ शत्रु से विग्रह, ५ सैन्य संग्रह और ६ किसी बलवत्तर राज्य की सहायता ले, या दुर्ग में रह कर शत्रु को भयभीत करने के लिये शत्रु पर चढ़ाई करना। तीन वर्ग ये हैं—क्षय, स्थान, और वृद्धि, धर्म, अर्थ तथा काम-ये परम त्रिवर्ग कहलाते हैं। इनका कालानुसार राजा सेवन करे। इस विषय में अङ्गिरानन्दन बृहस्पति ने दो श्लोक भी कहे हैं। वे ये हैं—जो राजा अपनी प्रजा का भली भाँति पालन करता है, उस राजा को परलोक में सुख मिलता है। जो राजा भली भाँति प्रजा पालन करता है, उसे न तो तप करने की और न यज्ञ करने ही की आवश्यकता है। वह राजा सब धर्मों को जानने वाला है।

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया—हे पितामह! दण्डनीति और राजा में कौन कार्य करता और किस को सिद्धि प्राप्त होती है?

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! दण्डनीति से प्रजा और राजा का जिस प्रकार भाग्योदय होता है, उसका मैं वर्णन करता हूँ। सुन। दण्डनीति से

राजा चारों वर्णों की प्रजा को अपने अपने धर्मों में लगाये रखता है। राजा जब योग्यरीति से दण्डनीति का प्रयोग करता है, तब वह अपनी प्रजा को अधर्म की ओर जाने से रोकता है। जब दण्डनीति के भय से प्रजाजन अपने अपने वर्णोचित कर्मों के करने में प्रवृत्त रहती है; तब मर्यादा अक्षुण्ण बनी रहती है सब का कल्याण होता है। प्रजा निर्भय होती है, तब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपनी भलाई के लिये शास्त्रानुसार प्रयत्न करते हैं, और इसमें ही मनुष्यों को सुख मिलता है। राजा के फेरफार में काल ही कारण है अथवा राजा ? यह विषय ऐसा है कि इसके सम्बन्ध में भी तुम्हें संशय न रखना चाहिये। असल में काल का कारण राजा ही है। राजा जब भली भाँति और कठोरता से दण्डनीति को काम में लाता है, तब सत्ययुग प्रवृत्त होता है। सत्ययुग में किसी भी स्थान पर अधर्माचरण नहीं होता है। प्रजाजनों का मन पाप की ओर नहीं जाता। प्रजा जैसा चाहती है, वैसे ही उसका योग क्षेम अवश्य हुआ करता है। वैदिक कर्मों का सर्वत्र प्रचार हो जाता है। समस्त ऋतुएं रोगरहित और सुखप्रद हो जाती हैं। मनुष्यों के स्वर, शरीर का वर्ण और मन प्रसन्न हो जाते हैं। व्याधि नाम मात्र को नहीं रह जाती। मनुष्य अल्प आयु वाले नहीं होते। स्त्रियाँ विधवा नहीं होतीं। बिना जोते बोये ही खेतों में अनाज उत्पन्न होता है। छालों, पत्तों, फलों और मूलों में यथेष्ट शक्ति रहा करती है। ढूँढ़ने पर भी कहीं अधर्म नहीं रहता। हे राजन् ! सत्ययुग के ये ही धर्म हैं। जब राजा दण्डनीति का व्यवहार तीन अंशों से करता है और उसका चतुर्थांश त्याग देता है, तब त्रेतायुग प्रवर्तित होता है। इस युग में पाप का चतुर्थांश धर्म के तीन अंशों का अनुसरण करता है। इस युग में जोतने बोने पर अन्नादि पैदा होते हैं। जब राजा दण्डनीति का आधा भाग काम में लाता है, तब द्वापरयुग की प्रवृत्ति होती है। इस युग में पाप के दो अंश होते हैं और वे दोनों धर्म के दो अंशों का अनुसरण करते हैं। इस युग में भी जोतने बोने से अन्न उत्पन्न होता है; किन्तु भली भाँति नहीं होता। जब राजा दण्ड नीति को बिलकुल त्याग

देता है और प्रजा पर अन्याय करता तथा प्रजा को तंग करता है, तब कलियुग का आरम्भ होता है। कलियुग में पाप बढ़ता है धर्म की चर्चा कहीं भी नहीं होती। समस्त वर्णों के लोगों की आस्था धर्म से हट जाती है। शूद्र भीख माँग कर अपना निर्वाह करते हैं। प्रजा की सब प्रकार से अवनति होती है। वर्णसङ्करी प्रजा की वृद्धि होती है। वेदोक्त धर्म कर्म का लोप हो जाता है। ऋतुएँ सुखदायिनी नहीं होतीं। सब लोग रोग ग्रस्त रहा करते हैं। लोगों का स्वरभङ्ग हो जाता है। उनके शरीरों का रंग फीका पड़ जाता है। मन उदास रहता है, नयी नयी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। लोगों की असामयिक मृत्यु होने लगती है। स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं और जगह जगह क्रूरस्वभाव के लोगों की संख्या अत्यधिक हो जाती है। वर्षा यथासमय नहीं होती। इससे धान्य भी भली भाँति नहीं पकता। जब राजा सावधान हो दण्डनीति से भली भाँति प्रजा रक्षण नहीं करता है तब सब नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार राजा ही सत्ययुग, द्वापरयुग और त्रेतायुग का प्रवर्त्तक है। राजा ही कलियुग की प्रवृत्ति का कारणभूत है। जो राजा सत्ययुग को प्रवृत्त करता है, वह चिरकाल स्वर्ग में वास करता है। जो त्रेतायुग प्रवृत्त करता है वह अल्प समय और जो द्वापरयुग प्रवृत्त करता है वह धर्म के प्रमाणानुसार स्वर्ग में वास करता है। कलियुग को प्रवृत्त करने वाले राजा को बड़ा पाप लगता है और मरने पर उसे नरकगामी होना पड़ता है। दुष्ट कार्य करने वाला राजा चिरकालपर्यन्त नरक यातनाएं भोगा करता है। साथ ही प्रजा के पाप से डूब कर, वह अपनी बदनामी करता और पाप फल भोगता है। इसीलिये क्षत्रिय को सदा दण्डनीति का प्रयोग कर अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करना चाहिये और प्राप्त वस्तु की रक्षा करनी चाहिये। मनुष्यों की व्यवस्थापिका दण्डनीति का यदि भली भाँति उपयोग किया जाय तो माता पिता जैसे बालक की रक्षा करते हैं वैसे ही वह प्रजा की रक्षा करती है। दण्डनीति का यथार्थ ज्ञान सम्पादन करना

राजा का परम धर्म है। क्योंकि समस्त प्राणी दण्डनीति के आधार पर अवलम्बित हैं। हे युधिष्ठिर! तुम नीतिवान होकर, प्रजापालन करो, क्योंकि ऐसा करने से तुम्हें दुर्जेय स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

सत्तरवाँ अध्याय

राजा के कर्त्तव्याकर्त्तव्य

युधिष्ठिर ने कहा—हे सदाचारज्ञ पितामह! अब आप कृपया यह बतलावें कि, राजा कौन से गुणों को धारण करने से इस लोक में और मरने के पीछे परलोक में सहज में सुखप्रद पदार्थों को पा सकता है?

भीष्म जी ने उत्तर दिया—जो गुणवान् राजा है, उसका कल्याण धर्माचरण से होता है। वह धर्म छत्तीस प्रकार का है। मैं कहता हूँ, सुनो। धर्माचरण-परायण राजा को राग द्वेष शून्य होना चाहिये। वह धर्म पर पूर्ण श्रद्धालु हो और परलोक सुधारने के लिये उसे दयालु होना चाहिये। राजा को उचित है कि वह क्रूरता को त्याग कर धन सम्पादन करे। धन और अर्थ का नाश करके इन्द्रियों को तृप्त करे। विनय पूर्वक प्रिय भाषण करे। डींग हाँके बिना वीरता दिखलावे। उदार हो, किन्तु कुपात्र को दान न दे। प्रगल्भता रखे, किन्तु वह दयायुक्त हो। दुष्टों के साथ मेल जोल न करे। भाई बन्दों के साथ लड़े झगड़े नहीं। अराजकों को दौत्य कर्म न सौंपे। अपना तो काम करे किन्तु किसी को सतावे नहीं। दुष्टों को अपने मन की बात न बतलावे। दूसरों के सामने अपनी प्रशंसा न करे। सत्पुरुषों का धन कभी न छीने। नीच पुरुषों को कभी मुँह न लगावे। बिना छान बीन किये किसी को दण्ड न दे। राजकाज के गुप्त भेद किसी को न बतलावे। धन दे तो, पर लोभी को नहीं। लोगों पर विश्वास माने पर जिसने कभी भी अपकार किया हो, उस पर कभी विश्वास न करे। किसी से डाह न करे। स्त्रियों की सदा रक्षा करे। शुद्ध रहे। निष्ठुर न

बने। स्त्रियों का अति सेवन न करे। अनहित करने वाली मधुर वस्तु भी न खावे। अभिमान छोड़ गुरुदेव की सेवा करे। छल प्रपञ्च त्याग कर गुरुजनों का पूजन करे। दम्भ त्याग कर, देवपूजन करे। धनोपार्जन करते समय निन्द्य साधनों से काम न ले। मान्य पुरुषों की सेवा भक्ति पूर्वक करे। कार्यपटु होने के साथ ही साथ समय-सूचकता रखे। धनादि देकर अपने जनों को राज़ी रखे। केवल ज़बानी जमा ख़र्च कर उन्हें बिदा न करे। जिसे एक वार अङ्गीकार कर लिया हो उसका कभी त्याग न करे। बिना जाने किसी को न मारे। शत्रुओं का संहार कर, पश्चाताप न करे। क्रोध का भाव प्रदर्शित तो करे; किन्तु जहाँ क्रोध करने की आवश्यकता न हो वहाँ क्रोध न करे। व्यवहार में मृदुता अवश्य रहे; किन्तु अपराधियों के साथ मृदु व्यवहार न करे।

हे युधिष्ठिर! यदि तुझे अपनी भलाई अपेक्षित है तो राज्य करते समय तू इस प्रकार का व्यवहार कर, क्योंकि जो राजा इसके प्रतिकूल चलता है, उसे विपन्न होना पड़ता है। इस प्रकार आचरण-परायण पुरुष इस लोक में समस्त सुखों को भोग कर, मरने के बाद वह स्वर्ग में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पाण्डवाग्रणी धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह के इन वचनों को सुन कर, उन्हें प्रणाम किया और भीष्मादि से रक्षित बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह का पूजन कर, उनके आदेशानुसार ही राज्य की व्यवस्था की।

इकहत्तरवाँ अध्याय

प्रजापालन

युधिष्ठिर ने पूछा—हे भीष्म पितामह अब आप मुझे यह बतलावें कि मैं क्यों कर प्रजापालन करते समय चिन्तित न होऊँ और मामले मुकदमे निबटाते समय किस प्रकार भ्रम में न पड़ूँ।

भीष्म जी बोले—हे राजन्! यदि कोई धर्मों को विस्तृत वर्णन करने बैठे तो वह उस वर्णन का ओर छोर नहीं पा सकता। अतः मैं संक्षेप में तुझे सनातनधर्म का वर्णन सुनाता हूँ। सुन। जब धर्मनिष्ठ, शास्त्रवेत्ता, वेदज्ञ और व्रतों पर आस्था रखने वाले ब्राह्मण तेरे निकट आवें; तब उन्हें प्रत्युत्थान दे, उनके प्रति तुझे सम्मान प्रदर्शित करना चाहिये। उनके दोनों चरणों का स्पर्श कर उन्हें प्रणाम करना चाहिये। यज्ञादि धर्मानुष्ठान करते समय अपने पुरोहितों को पास रखना चाहिये। उनकी समाप्ति होने पर ब्राह्मणों से ऐसे आशीर्वाद लेने चाहिये जो अर्थसिद्धि करने वाले और विजयप्रद हों। तुम जो काम करो, उसे सरलता, धैर्य और बुद्धि पुरस्सर करो। काम क्रोध त्याग कर तुझे व्यावहारिक कार्य करना चाहिये। जो राजा व्यावहारिक कार्य करते समय क्रोध को नहीं त्यागता, वह राजा मूर्ख है। ऐसे राजा धर्म और अर्थ दोनों ही से वञ्चित रहते हैं। राजकाज में लोभी एवं मूर्ख पुरुषों को कभी नियुक्त न करे; प्रत्युत जो लोभी न हो और बुद्धिमान हो, उन्हींको समस्त राजकीय कार्यों को सौंप दे। कार्य के रूप से अनभिज्ञ जनों को यदि राजकीय कार्य सौंप दिये जाँय, तो वे काम क्रोध के वशवर्ती हो प्रजाजनों को सतावे और दुःखी करते हैं। राजा अपना धनागार भरने के लिये अन्न की उपज का छठवाँ अंश ले। अपराधियों को शास्त्रोक्त दण्ड दे। व्यापारियों की रक्षा के लिये रक्षक नियुक्त कर उनसे उगाहे कर से अपना धनागार पूर्ण करे। राजा को शास्त्रोक्त नीति के अनुसार और न्याय पूर्वक प्रजा जनों से कर उगाहना

चाहिये, जिससे राज्य की सुव्यवस्था बनी रहे। प्रजाजनों की योग क्षेम की व्यवस्था बड़ी सावधानी से करनी चाहिये। प्रजारक्षक उदार, न्याय-परायण, सदाधर्माचारी, और राग द्वेष शून्य राजा के प्रति प्रजाजनों का अनुराग बढ़ जाता है।

हे युधिष्ठिर! अन्याय पूर्वक धनोपार्जन की कभी इच्छा मत करना। क्योंकि जो राजा शास्त्रपरायण नहीं है, उसका धर्म और धन टिकाऊ नहीं होते। जो राजा केवल धनोपार्जन की चिन्ता ही में सदा फँसा रहता है, उसे न तो धर्म फल मिलता है और न धन ही प्राप्त होता है। अन्याय पूर्वक उगाहा हुआ कर सत्कर्मों में व्यय न हो, बुरे कामों ही में खर्च होता है। धनलोलुप राजा, निज मूर्खता वश, शास्त्रविरुद्ध कर उगाह कर प्रजाजनों को तंग करता है और अपने ऐसे आचरण से अपना नाश स्वयं कर डालता है। जो पुरुष दूध के लोभ से गौ के थन काट डालता है, उसे दूध की एक बूंद भी नहीं मिलती। इसी तरह जो राजा प्रजा पर अत्याचार करता है, उसके राज्य की वृद्धि नहीं होती। जो मनुष्य गौ का पालन करता है, उसे जैसे सदा दूध मिला करता है, वैसे ही जो राजा, प्रजापालन करता है उसको निश्चय ही धन मिलता है।

हे युधिष्ठिर! जो राजा न्याय और नीति से अपने राष्ट्र की रक्षा करता है और योग्यता से उसका उपभोग करता है वह राजा अपने धन भाण्डार की अतुलित वृद्धि करता है। जैसे सन्तुष्ट हुई माता, अपने और पराये बच्चों को नित्य दूध पिलाती है, वैसे ही जो राजा पृथिवी का भली भाँति पालन करता है, उसे पृथिवी मुँहमाँगा धान्य और धन (सुवर्णादि) दे देती है। हे राजन्! तू तो वृक्षों की रक्षा करने वाले माली का अनुकरण कर। कोपलों के पीछे वृक्षों का नाश करने वाला पुरुष तू मत बन। यदि मेरे बतलाये ढंग से तू राज्य करेगा, तो तेरा राज्य चिरस्थायी होगा। यदि कभी किसी शत्रु पर चढ़ाई करने में तेरा सञ्चित धन निबट जाय तो तुझे उचित है कि ब्रह्मस्व (ब्राह्मणों का धन) छोड़ कर, अन्य वर्णों के प्रजाजनों को समझा बुझा कर,

उनसे धन लें। चाहे कैसे कैसे घोर सङ्कट में तू क्यों न पड़े। किन्तु ब्राह्मणों के धन पर अपनी नियत मत डिगाना। तुझे उचित है कि तू अपनी शक्ति के अनुसार और यथाविधि ब्राह्मणों को धनदान दे। उन्हें धैर्य बँधा तुझे उनकी रक्षा करनी चाहिये। यदि ऐसा किया तो तुझे दुर्जेय स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इस प्रकार के धर्माचरण से तू प्रजा का पालन कर। ऐसा करने से तू यमयातना से मुक्त हो जावेगा और तेरी बड़ी नामवरी होगी।

हे युधिष्ठिर! तू न्यायपूर्वक प्रजा का पालन कर। ऐसा करने से तुझे कभी चिन्तित और शोकान्वित न होना पड़ेगा। राजा का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह प्राणिमात्र की रक्षा करे और उन पर दया रखे। कुशल धर्मज्ञ-जन ऐसे ही राजा को परम धर्मात्मा मानते हैं। जो राजा एक बार भी प्रजा का भय दूर नहीं करता उसे एक हजार वर्षों तक नरकयातना भोगनी पड़ती है। साथ ही प्रजा के साथ एक दिन भी न्यायपूर्वक व्यवहार करने से राजा को दस सहस्र वर्षों तक स्वर्ग सुख भोगने को मिलते हैं। जो लोक गृहस्थ, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारी को मिलते हैं, वे ही लोक न्यायपूर्वक प्रजापालन करने वाले राजा को प्राप्त होते हैं। हे कुन्तीनन्दन! अतः तू मेरे कथनानुसार न्यायपूर्वक व्यवहार कर। ऐसा करने से तुझे पुण्य होगा और अन्याय के लिये तुझे चिन्तित भी न होना पड़ेगा। साथ ही मरने के बाद स्वर्ग में तुझे बहुत धन मिलेगा। जो राजा राज्यभ्रष्ट हो जाता है, वह इन धर्माचरणों को नहीं कर पाता; किन्तु जो राजा, अधिकारारूढ़ होता है, वही इन कर्मों के अनुसार कार्य कर पुण्य का फल सुख प्राप्त करता है। तूने अपने बुद्धिबल से राज्य प्राप्त किया है। अतः तू न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा कर और सोमयाग करके इन्द्र को तृप्त कर तथा राजभोगों का उपभोग कर, अपने अनुरागियों को सन्तुष्ट कर।

बहत्तरवाँ अध्याय

अभयदानी राजा

भीष्म ने कहा—हे राजन्! जो ब्राह्मण सज्जनों के साथ हेलमेल रखता है और दुर्जनों से दूर रहता हो—उसे राजा अपना पुरोहित बनावे। अब मैं तुझे इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला वह पुरातन इतिहास सुनाता हूँ जिसमें इलापुत्र पुरूरवा और मित्रावासु वायु का संवाद वर्णन किया गया है।

पुरूरवा ने पूँछा—हे पवनदेव! ब्राह्मणादि चारों वर्णों की उत्पत्ति कहाँ से हुई है और सब वर्णों में ब्राह्मण वर्ण सर्वश्रेष्ठ क्यों माना गया है।

पवनदेव ने उत्तर दिया—हे श्रेष्ठ राजन्! ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, ब्रह्म की भुजाओं से क्षत्रिय, ब्रह्म की जंघाओं से वैश्य और ब्रह्म के पैरों से शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई है। जन्म ही से ब्राह्मण समस्त जीवधारियों का प्रभु बन कर उत्पन्न होता है। उसका जन्म धर्म के भाण्डार की रक्षा करने ही को होता है। पृथिवी का पालन करने में अपराधियों को दण्ड देने और प्राणि-मात्र की रक्षा करने के लिये क्षत्रिय वर्ण की सृष्टि की गयी है। अपर दण्ड की तरह क्षत्रिय जाति की उत्पत्ति की गयी है। वैश्य धन और धान्य से तीनों वर्णों का पोषण करने के लिये जन्मा है। इसी प्रकार शूद्र का जन्म तीनों वर्णों की सेवा करने के लिये हुआ है। यह ब्रह्मदेव का विधान है।

पुरूरवा ने पूँछा—हे पवनदेव! धर्मतः यह पृथिवी ब्राह्मण की मानी जाय या क्षत्रिय की?

पवनदेव बोले—राजन्! प्रथम उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण समस्त वर्णों में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है। अतएव इस पृथिवी के यावत् पदार्थों पर ब्राह्मण का प्रभुत्व है। यह धर्मकुशल पुरुषों का मत है। ब्राह्मण अपनी ही वस्तु और अपने ही वस्त्र का उपभोग करता है और अपने ही धन का दान करता है। ब्राह्मण समस्त वर्णों का गुरुस्थानीय होने के कारण सर्वज्येष्ठ

और सर्वश्रेष्ठ हैं। पति न होने पर जैसे स्त्री देवर को अपना लेती है, वैसे ही यदि ब्राह्मण इस पृथिवी का पालन न करे तो क्षत्रिय को पृथिवीपति बनना चाहिये। यह नीति अनादि काल से प्रचलित है। इसमें फेरफार आपत्काल में होता है।

हे युधिष्ठिर! यदि तुझे धर्म सम्पादन कर, स्वर्ग का परम स्थान प्राप्त करना है तो तू जीती हुई भूमि को ऐसे ब्राह्मण को दे डाल, जो शास्त्रवेत्ता, सदाचारी, धर्मज्ञ, तपस्वी, स्वधर्माचरण से सन्तुष्ट और धन की तृष्णा से रहित हो। कुलीन ब्राह्मण की पहचान यह है कि वह बुद्धिमान और विनयी होता है। ऐसा पूर्ण बुद्धिमान ब्राह्मण विविधि प्रकार के उपदेश दे कर, राजा को सन्मार्ग पर ले जाता है। वह राजा को ऐसा उपदेश देता है जिससे राजा का अभ्युदय हो। वह राजा को राजधर्म के पालन का उपाय बतलाता है। जो राजा राजधर्म का पालन कर राज्य करता है, वह बुद्धिमान् क्षत्रिय राजा प्रजा द्वारा सम्मानित होता है और उसका यश इस संसार में चिरस्थायी हो जाता है। ऐसे राजा के धर्मकृत्यों का अंशभागी राजपुरोहित होता है। जिस देश की समस्त प्रजा राजाश्रय में रह स्वधर्म-परायण और सदाचार-सम्पन्न हो, राजा द्वारा सुरक्षित रहती है वह प्रजा निडर हो कहीं भी जो कुछ धर्मकार्य करती है, उस धर्मकार्य के फल का चतुर्थांश राजा को मिलता है। देवगणों, मनुष्यों, पितरों, गन्धर्वों, सर्पों और राक्षसों की आजीविका यज्ञ पर ही निर्भर है; किन्तु जिस देश में कोई राजा नहीं है, वहाँ यज्ञानुष्ठान नहीं हो सकते। यज्ञात्मक धर्म राजा के ऊपर निर्भर है। मनुष्यों को शब्द, रूप, रस और गन्ध में वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है; जैसा आनन्द गर्मी के मारे किसी मनुष्य को वृक्ष की शीतल छाया में बैठने से। शीतल जल और शीतल वायु का सेवन करने से अथवा शीत काल में आग तापने से, वस्त्र ओढ़ने से या सूर्य के ताप में बैठने से मिलता है। यद्यपि ये समस्त सुख उपलब्ध भी हों तथापि यदि राजा न हो तो उस राजशून्य देश की प्रजा सुखी नहीं रहती। अतएव प्रजा को अभयदान

देने वाले राजा को बड़ा पुण्य होता है। त्रिलोकी में अभयदान की टक्कर का अन्य कोई दान नहीं है। राजा ही इन्द्र है। राजा ही यम है। राजा ही धर्म है। राजा भिन्न भिन्न देवताओं के रूपों को धारण करता है। राजा ही समस्त संसार की रक्षा करता हुआ इस संसार को धारण किये हुए है। इसी से वह सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

तिहत्तरवाँ अध्याय

ब्राह्मण और क्षत्रिय में श्रेष्ठ कौन है?

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! जब कोई राजा राजसिंहासन पर बैठे, तब उसे अपने मन में धर्म और अर्थ की गति को अति गहन, समझ अविलम्ब किसी (श्रेष्ठ) ब्राह्मण को अपना पुरोहित बना लेना चाहिये। जिस राजा का पुरोहित धर्मात्मा और विद्वान् है और जिस प्रजा का राजा विद्वान् एवं बहुश्रुत है उस राजा का तथा उस प्रजा का हर प्रकार से अभ्युदय होता है। जब राजा और राजपुरोहित दोनों ही धर्म पर आस्थावान् होते हैं, तपःपरायण होते हैं, परस्पर अनुरागवान् होते हैं और दोनों का मन एक सा होता है, तब उनके द्वारा उनकी प्रजा, समस्त देवगण और पितृगण सन्तुष्ट और तृप्त रहते हैं। प्रजाजन जिस राजा अथवा ब्राह्मण को मान देती है, वह निश्चय ही सुखी होता है। जब राजा, पुरोहित का और पुरोहित राजा का अपमान करते हैं, तब उस राजा की प्रजा नष्ट हो जाती है। क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय, इतर वर्णों के पूर्वपुरुष माने गये हैं।

हे युधिष्ठिर! इससे सम्बन्ध रखने वाला संवादात्मक पुरुरवा और कश्यप का एक प्राचीन इतिहास है। उसे तुम सुनो।

पुरुरवा ने कश्यप से पूँछा—हे कश्यप! जब कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय को त्याग दे और वह क्षत्रिय उस ब्राह्मण को त्याग दे और दोनों का बल

विमुख हो जावे, तब प्रजाजन इन दोनों में किसे श्रेष्ठ समझें ? इतर वर्ण किस की आज्ञा का पालन करें ।

कश्यप ने कहा—ब्राह्मण और क्षत्रिय में विरोध होने पर उस क्षत्रिय और उसके राज्य ही का नाश होता है जिस राज्य में प्रबन्ध अच्छा नहीं होता, वहाँ डाकू प्रजा को सताते हैं और ऐसे राजा को सत्पुरुष म्लेच्छ समझने लगते हैं। क्षत्रिय जब ब्राह्मण जाति का बहिष्कार करके अपना धर्म नष्ट कर डालता है तब यह होता है कि न तो बैलों की संख्या बढ़ती है, न पुत्रों की वृद्धि होती है, न घरों में रई चलती है, न यज्ञानुष्ठान किये जाते हैं और न वेदाध्ययन ही हुआ करता है। लोगों के पास धन की कमी हो जाती है, इससे प्रजा राजद्रोही बन जाती है। प्रजाजन जब वेदाभ्यास करना त्याग देते हैं, तब यज्ञानुष्ठान बंद हो जाते हैं, ब्राह्मण परित्यक्त क्षत्रिय के सन्तान वर्णसङ्कर होते हैं। ऐसे क्षत्रिय की दशा चोरों जैसी हो जाती है, इससे जान पड़ता है कि, ब्राह्मण की उन्नति क्षत्रिय पर और क्षत्रिय की उन्नति ब्राह्मण के ऊपर निर्भर है। अतः भय उपस्थित होने पर ये दोनों वर्ण परस्पर सहायक बन जाते हैं। ऐसा करने ही से दोनों का अभ्युदय होता है। जब इन दोनों जातियों का पुरातन सख्य भाव नष्ट हो जाता है, तब सारा जगत् दुःखसागर में निमग्न हो जाता है। जैसे समुद्र के पार जाने वाली छोटी नाव, अगाध सागर में डगमगाने लगती है और समुद्र पार नहीं जा सकती, वैसे ही ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों में परस्पर विरोध उत्पन्न होने पर, समस्त वर्णों के जन विचलित हो जाते हैं और उनका नाश हो जाता है।

यदि ब्राह्मण रूपी धन की सदा रक्षा की जाय, तो वे सुवर्ण और मधु की वृद्धि करते हैं। यदि उनकी रक्षा न की जाय, तो वे दुःख देने और नरक-गामी बनाते हैं। राजा रहित राज्य में रहने वाले ब्राह्मण जब अधीत शाखा का त्याग कर देते हैं और वेद से रहित होते हैं, तब उस देश में समय पर जलवृष्टि नहीं होती। नित्य ही नये नये रोग, दुष्काल आदि दुःसह दुःख-

दायिनी विपत्तियाँ खड़ी रहती हैं। जब स्त्रीघातक और ब्रह्महत्यारे पापी जनों की सभा में प्रशंसा होने लगती है और अपराधी जन निडर हो राजा के सामने खड़े रहते हैं, तब समझ ले कि, क्षत्रिय जाति पर बड़ी भारी विपत्ति पड़ने वाली है। जिस राज्य में पापी जन पापकर्म करने लगते हैं, तब हे पुरूरवा! उस राज्य में रुद्र आते हैं। पापियों के पाप ही रुद्र को आह्वान करते हैं और फल यह होता है कि, रुद्रदेव अच्छे बुरे—सब प्रकार के लोगों का संहार करने लगते हैं।

ऐल ने पूँछा—हे कश्यप! रुद्र की उत्पत्ति कहाँ से होती है? रुद्रदेव कैसे हैं? प्रत्यक्ष में तो प्राणी ही प्राणियों का संहार करते हैं, फिर प्राणियों का संहार करने वाले रुद्रदेव आते कहाँ से हैं? मेरे इन प्रश्नों का आप उत्तर दें।

कश्यप बोले—मनुष्य के अन्तःकरण में रहने वाला आत्मा ही रुद्र है, क्रुद्ध हुआ रुद्र अपने और पराये शरीरों का नाश करता है। निर्मल आकाश में समुत्थित तूफ़ान जैसे मेघों को तितर बितर कर देता है, बादल गर्जने लगते हैं, बिजली कड़कने लगती है, बड़े ज़ोर की बारिश होने लगती है, वैसे ही आत्मारूपी रुद्र, आत्मा में उत्पन्न हुए क्रोध, काम और दाह भी हिंसक का काम करते हैं। काम और द्वेष तो मनुष्यों में सदैव देखने में आते हैं। उनसे मनुष्य अर्थात् जीव मुग्ध हो जाता है और अन्त में उसका स्थूल शरीर मर जाता है। जैसे एक मकान में आग लगने से आग सारे मकान को या सारे ग्राम को भस्म कर डालती है, वैसे ही रुद्रदेव. सब का स्पर्श करते हैं। फल यह होता है कि, पापी हो या पुण्यात्मा—दोनों ही की बुद्धि मोहित हो जाती है।

पुरूरवा ने पूँछा—यदि रुद्रदेव पापी और पुण्यात्मा दोनों की बुद्धियों को मोहित करते हैं, तब मनुष्य पाप ही पाप न कर के पुण्य ही पुण्य क्यों करे?

कश्यप ने उत्तर दिया—पापियों के संसर्ग से पुण्यात्माओं को भी दुःख भोगना पड़ता है, इस लिये पापियों का साथ कभी न करे। क्योंकि पापियों का साथ छोड़ने वाले को दुःखी होना नहीं पड़ता। जिस प्रकार सूखी लकड़ियों के साथ गीली लकड़ियाँ भी जल जाती हैं; किन्तु यदि गीली लकड़ियाँ अलग जलायी जाँय तो वे नहीं जलतीं, उसी प्रकार पापियों से पृथक रहने वाले पुण्यजनों का अनिष्ट नहीं होता। अतएव पुण्यात्माओं को उचित है कि वे पापियों से कुछ भी सम्बन्ध न रखे।

पुरूरवा ने कहा—यह पृथिवी तो पापियों और पुण्यात्माओं—सभी को धारण करती है। सूर्य, पापियों और पुण्यात्माओं—दोनों को ताप देता है, वायु पापियों और पुण्यात्माओं दोनों को स्पर्श करता है। जल पापियों और पुण्यात्माओं—दोनों को पवित्र करता है।

कश्यप ने कहा—हे राजकुमार! तत्वतः आपका कथन यथार्थ है; किन्तु इस लोक तथा परलोक की दृष्टि से आत्मा रुद्र रूप ही है। इसीसे परलोक में पापियों और पुण्यात्माओं में बड़ी भारी विभिन्नता होती है। पुण्यात्मा को *मधुमान अग्नि की तरह प्रकाशमान और अमृतनाभि रूपी पुण्य लोक प्राप्त होते हैं। पुण्यात्मा जन, मरने के बाद उन लोकों में मौज करता है। क्योंकि उन लोकों में मृत्युभय नहीं है, बुढ़ापे की चिन्ता नहीं है। अतः वहाँ कोई दुःख भी नहीं है। जो पापी होते हैं, उन्हें अन्धकार-मय नरक लोकों में वास करना पड़ता है। उन नरकों में सदैव अन्धकार छाया रहता है, वे नरक दुःख और शोक के आगार हैं। पापियों को इन नरकों में जा अपने पापों के लिये शोक करना पड़ता है और चिरकाल तक इन नरकों में उसे अपमान सहन करने पड़ते हैं। जब ब्राह्मण और क्षत्रिय में कलह होता है, तब प्रजाजनों को असह्य कष्ट भोगना पड़ता है। इसीसे राजा को उचित है कि, वह विविध-विद्या-विशारद एवं व्यवहारकुशल पुरोहित को सदा अपने यहाँ रखे। प्रथम किसी सद्गुणी ब्राह्मण को अपना

* मधुमान = वह अग्नि जिसमें घी की आहुतियाँ दी जाती हैं।

पुरोहित बना, पीछे राजा को राजसिंहासन पर बैठना चाहिये। क्योंकि शास्त्रानुसार सब ब्राह्मणों में ब्राह्मण वर्ण सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ब्रह्मवेत्ताओं का मत है कि, ब्रह्म से सर्वप्रथम ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति हुई। इसी लिये ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते हैं और वे समस्त पदार्थों को सब से पहले भोगने के अधिकारी हैं तथा क्षत्रियादि इतर वर्णों के वे पूज्य हैं। इसी लिये राजा को उचित है कि, वह समस्त पदार्थ सर्वप्रथम ब्राह्मणों ही को निवेदन करे। क्योंकि क्षात्र तेज की वृद्धि ब्रह्मतेज ही से होती है और क्षात्र तेज से ब्रह्मतेज बढ़ता है। इसीसे राजा को सदा ब्राह्मणों का सम्मान करना चाहिये।

चौहत्तरवाँ अध्याय

पुरोहित-महिमा

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर! कहा जाता है कि, देश की भलाई राजा के ऊपर और राजा की भलाई पुरोहित के ऊपर निर्भर है। जब देश पर अनावृष्टि आदि का अदृश्य सङ्कट आ पड़ता है, तब ब्राह्मण ही उस सङ्कट को दूर करते हैं और जब शत्रु की चढ़ाई आदि का दृश्य भय उपस्थित होता है, तब राजा निज भुजबल के उस दृश्य सङ्कट को दूर करता है और उसकी प्रजा सुखी होती है। इस प्रसङ्ग में राजा मुचुकुन्द और कुबेर का एक संवादात्मक पुरातन इतिहास कहा जाता है।

कहते हैं राजा मुचुकुन्द जब सारे भूमण्डल को जीत कर अपने अधीन कर चुके, तब उन्होंने अपने भुजबल की थाह लेने के लिये कुबेर की अलकापुरी पर चढ़ाई की। कुबेर ने योगबल से तत्क्षण राक्षस उत्पन्न किये और उन राक्षसों ने राजा मुचुकुन्द की सेना का नाश करना आरम्भ किया। यह देख राजा मुचुकुन्द ने अपने वेदपाठी पुरोहित की निन्दा की। उस समय श्रेष्ठ धर्मज्ञ वसिष्ठ ने उग्र तपस्या कर के, कुबेर

के उत्पन्न किये हुए राक्षसों को नष्ट कर डाला और मुचुकुन्द के अनुसरित मार्ग का अनुसरण किया। जब कुबेर ने देखा कि, उनकी सेना नष्ट हुई जा रही है, तब वे राजा मुचुकुन्द के निकट जा कर कहने लगे।

कुबेर बोले—हे राजन्! तुम्हारी तरह बलवान् अनेक राजा हो गये हैं। वे भी अपने पुरोहित की पूर्ण सहायता पाये हुए थे; किन्तु तुम्हारी तरह उनमें से किसी ने मेरे ऊपर चढ़ाई नहीं की थी। तुम्हारे पूर्ववर्त्ती समस्त राजा लोग अस्त्र-विद्या-निपुण और बड़े बलवान् भी थे। मुझ सुख दुःख के स्वामी के निकट आ कर, वे राजा लोग मेरी सेवा किया करते थे। सो यदि तुझे अपने बाहुबल का अभिमान है तो तू अपना बाहुबल दिखला। ब्राह्मण-बल का सहारा तू क्यों लेता है?

यह सुन राजा मुचुकुन्द का क्रोध भड़क गया, और धनेश्वर कुबेर से कहा—ब्राह्मण और क्षत्रिय की उत्पत्ति ब्रह्म के (एक) ही शरीर से हुई है। दोनों का मूल एक ही है। अतः यदि उन दोनों का बल बिलग बिलग कर दिया जाय, तो ऐसा होने पर जगत् की रक्षा नहीं हो सकती। तपबल और मन्त्रबल के ब्राह्मण सदा आश्रयस्थल हैं और शस्त्रबल एवं भुजबल का केन्द्र सदा से क्षत्रिय रहे हैं। क्षत्रिय और ब्राह्मण का सम्मिलित बल ही प्रजा की रक्षा करता है सो मैं भी यही कर रहा हूँ। हे अलकाधीश! तुम मेरे ऊपर व्यर्थ कटाक्ष क्यों करते हो?

इसके उत्तर में कुबेर ने राजा मुचुकुन्द और उनके पुरोहित से कहा—बिना परमात्मा के आदेश के मैं किसी को राज्य नहीं दे सकता और न किसी का राज्य छीन ही सकता हूँ। अतः यह विचार कर तुम अखिल भूमण्डल पर राज्य करो।

यह सुन राजा मुचुकुन्द ने कहा—हे कुबेर! तेरे दिये हुए राज्य को भोगने की मेरी इच्छा नहीं है।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! राजा मुचुकुन्द के इस वचन को सुन, और उसे क्षात्रधर्म पर आरूढ़ देख, कुबेर को बड़ा विस्मय हुआ!

राजा मुचुकुन्द क्षात्रधर्म-परायण थे। वे निज भुजबल से प्राप्त धरामण्डल के राज्य का शासन करने लगे। इस प्रकार जो धर्मज्ञ राजा योग्य ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाता है और उसके परामर्शानुसार राजकाज करता है, वह राजा उस भूखण्ड को भी जीत लेता है, जो कभी नहीं जीता गया। साथ ही उस राजा की बड़ाई भी होती है। ब्राह्मण को उचित है कि, वह अपने धर्म पर सदा आरूढ़ रहे। इसी प्रकार क्षत्रिय को हथियार सदा अपने पास रखना चाहिये। ऐसा होने पर इस धरामण्डल की यावत् वस्तुएं ब्राह्मणों और क्षत्रियों की हो जाती हैं।

पचहत्तरवाँ अध्याय

राजा को राज्य का त्यागी बनना उचित नहीं

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! अब आप मुझे वे उपाय बतलावें जिनके द्वारा राजा प्रजा की वृद्धि कर सके और वह पवित्र लोकों को पावे।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! राजा यज्ञशील और दानी हो, उपवास तथा तप करने में तत्पर रहे और प्रजापालन में उनका अनुराग होना चाहिये। राजा को उचित है कि, वह समस्त प्रजा का धर्म से पालन करे और अपने भवन पर धर्मात्मा पुरुषों के पधारने पर, राजा को उठ कर तथा उन्हें धनादि भेंट कर, उनका अच्छी तरह सत्कार करना चाहिये। जो राजा स्वयं धर्म का सम्मान करता है, उसके प्रजा जन भी धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। क्योंकि राजा जैसा आचरण करता है उसकी प्रजा भी वैसा ही आचरण करती है। राजा को उचित है कि, वह शत्रुओं पर मृत्युदेव की तरह सदा अपना दण्ड उठाये रहे। सर्वत्र चोरों का नाश करे। किसी कामना के वश में हो राजा को किसी का अपराध क्षमा न करना चाहिये; किन्तु न्याय करने के बाद जैसा ठीक जान पड़े, वैसा करे। राजा द्वारा भली भाँति रक्षित प्रजा का मन धर्माचरण

की ओर झुकता है और प्रजा जो धर्म कर्म करती है उसका चतुर्थांश फल राजा को मिलता है। राजधर्म से पालित प्रजा जो अध्ययन करती, जो दान देती, जो हवन करती और जो यजन करती है, उसका चतुर्थांश पुण्य राजा पाता है। इसी प्रकार प्रबन्ध की दुर्व्यवस्था से प्रजा जो पाप करती है, उस पाप का चतुर्थांश राजा को भी भोगना पड़ता है। बहुत से लोगों का यह भी कहना है कि, प्रजा के असत्य भाषण और क्रूर कर्मों का पूरा पूरा पाप-फल राजा ही को भोगना पड़ता है। राजा को ऐसे पापों से जिस प्रकार छुटकारा मिल सकता है, अब मैं तुमसे वही कहता हूँ। सुन। चोर जो माल चुरावे, राजा को उचित है कि, चोरों से वह माल छीन कर मालधनी को लौटा दे। यदि चोर का पता न लगे, तो राजा अपने खजाने से दे और यदि राजा के पास पर्याप्त धन न हो, तो दूसरे से लेकर दे। सब वर्णों के लोगों का कर्त्तव्य है कि, वे ब्राह्मण के धन की, ब्राह्मण के शरीर की और ब्राह्मण के जीवन की समान भाव से रक्षा करें। जो ऐसा न करे या ब्राह्मण का अपमान या ब्राह्मण का अनिष्ट करे उसे राजा को देश निकाले का दण्ड देना चाहिये। ब्राह्मण के धन की रक्षा से सब के धन की रक्षा होती है। ब्राह्मणों के अनुग्रह से राजा कृतकृत्य होता है।

मेघ जैसे प्राणीमात्र की रक्षा करते हैं, वृक्ष जैसे पक्षियों के रक्षक हैं, वैसे ही सब कामनाएँ पूर्ण करने वाला राजा प्रजा का रक्षक है। जो राजा कामी, क्रूर और महालोभी होता है, वह प्रजा का पालन करने योग्य नहीं है।

युधिष्ठिर बोले—मैं राज्य-सुख-कामी नहीं हूँ। मुझे तो क्षण भर के लिये भी राज्य करना अच्छा नहीं जान पड़ता। मैं तो क्षत्रिय का धर्म समझ, राज्य करना स्वीकार करता हूँ; किन्तु मुझे तो जान पड़ता है कि राज्य करने से धर्म नहीं होता और जिस कार्य के करने से धर्म नहीं होता, वह कार्य करना मैं अच्छा नहीं समझता। अतः राज्य से मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं। अतः मैं धर्माचरण करने की कामना से वन में जाऊँगा।

राजदण्ड को त्याग, पवित्र वनों में जा, जितेन्द्रिय हो कर, मैं मूल तथा फलों को खाऊँगा और मौनावलम्बी बन, धर्माचरण करूँगा।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! यह मैं जानता हूँ कि, तू दूसरों को दुःखी नहीं देख सकता और दूसरों के दुःखों को दूर करने वाला है; किन्तु इसमें एक कसर है। वह यह कि ऐसा मनुष्य राज्य करने योग्य नहीं है। तू कोमल प्रकृति का मनुष्य है, अतिश्रेष्ठ है, अति धर्मनिष्ठ है और शौर्यरहित है। साथ ही तू बड़ा दयालु एवं सद्गुणसम्पन्न है। इसीसे लोग तुझे असमर्थ समझते हैं। यह सब होने पर भी तुझे उचित है कि, तू अपने पिता और पितामह के चरित्र की ओर दृष्टिपात करे। तू जैसा वर्त्ताव करना चाहता है, वह राजा की मान मर्यादा के विरुद्ध है। तू विकलता-जन्य दयालुता को लिये हुए इस जगत में मत बैठा रह। यदि ऐसा किया तो तुझे वह पुण्यफल न मिलेगा जो प्रजापालन करने से राजा को प्राप्त होता है। तेरी जैसी समझ और बुद्धि हो रही है, वैसी समझ और बुद्धि के लिये तेरे जन्म के समय न तो तेरे पिता पाण्डु ने और न तेरी माता कुन्ती ने ही याचना की थी। तेरे पिता तो चाहते थे कि तू शूर, बली और सत्यभाषी हो। कुन्ती भी चाहती थी कि, तुझमें महत्व और उदारता आवे। पिता अपने पुत्र से यह आशा रखता है कि, पुत्र नित्य स्वाहाकार से देवताओं को और स्वधाकार से पितृगण को तृप्त करेगा। दान देना, वेदाध्ययन करना, यज्ञ करना और प्रजा का पालन करना—चाहे पुण्यप्रद कार्य हो अथवा पापप्रद—तू इन्हीं कर्मों को करने के लिये जन्मा है। अतः तुझे तदनुसार ही वर्त्ताव करना चाहिये।

हे कुन्तीनन्दन! यदि किसी राजा को राज्य भार उठाने में कष्ट ही सहने पड़ें तो भी उसकी कीर्ति तो स्थायी हो जाती है। मनुष्य तो मनुष्य, शिक्षित अश्व भी बोझ को पीठ पर लाद कर चलता है और बोझ को गिरने नहीं देता। चाहे गृहस्थ हो, चाहे ब्रह्मचारी; चाहे धर्मनिष्ठ हो चाहे राजा; पूर्णरीत्या धर्माचरण कोई नहीं कर सकता। क्योंकि देखा जाय

तो धर्माचरण में भी सूक्ष्म अधर्म हो जाता है। फिर तुच्छातितुच्छ कार्य से भी लोगों का बड़ा हित होता है। ऐसे काम को न करने की अपेक्षा, उसका करना ही श्रेष्ठ है। क्योंकि जो लोग उस कर्म को करने के अधिकारी हैं, वे यदि उसे न करें तो, उन्हें पाप का भागी बनना पड़ता है। जिस राजा के मंत्री कुलीन और धर्मज्ञ होते हैं, उसी राजा के योगक्षेम ठीक ठीक निर्वाहित होते हैं। धर्मनिष्ठ राजा का कर्त्तव्य है कि, वह राज्य पाने के बाद, किसी को दान से, किसी को मधुर एवं वाणी द्वारा सम्मान से, किसी को दण्ड प्रयोग से, अपने वश में कर ले। जो कुलीन और विद्वान् ब्राह्मण दरिद्रतावश कष्ट में हों, वे यदि राजा का आश्रय ग्रहण करें, तो उनका सर्वंकष्ट दूर हो जाता है। ऐसे लोगों का कष्ट दूर करने की अपेक्षा और कौन धर्म श्रेष्ठ हो सकता है?

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे बाबा! स्वर्गप्राप्ति के उत्तम साधन कौन कौन से हैं? स्वर्गप्राप्ति में जो सुख और ऐश्वर्य मिलता है, वह कैसा होता है? यदि ये बातें आपको मालूम हों तो मुझे आप बतलावें।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! स्वर्गप्राप्ति का वह मनुष्य निश्चय ही अधिकारी है, जिसका एक क्षण का भी आश्रय, भयत्रस्त मनुष्य को भय से मुक्त कर देता है। मेरा यह कथन तुम सत्य मानना।

हे धर्मराज! तेरा जन्म कुरुकुल में हुआ है। अतः तू श्रेष्ठ राजा बन कर, अपना चित्त प्रसन्न रख कर, स्वर्गप्राप्ति के लिये यज्ञ कर। सत्पुरुषों की रक्षा कर और दुष्टों का नाश कर। जैसे प्राणिमात्र अपनी आजीविका के लिये मेघों पर निर्भर रहते हैं, जैसे पक्षी स्वादिष्ट फलों वाले वृक्षों से अपना जीवन निर्वाह करते हैं, वैसे ही हे तात! मैं चाहता हूँ कि, तेरे नातेदार और सत्पुरुष तुझसे अपना जीवन निर्वाह करें। जो राजा श्रेष्ठ, शूर, योद्धा, दयालु, इन्द्रियजित् सब पर दयालु और न्यायवान् होता है, उसी राजा के आश्रय में रहना लोग पसन्द करते हैं।

छिहत्तरवाँ अध्याय

विप्र-लक्षण

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे भीष्म पितामह ! कितने ही ब्राह्मण तो निज-वर्णोचित धर्मकार्य किया करते हैं और कितने ही ब्राह्मण ब्राह्मणेतर वर्णों के धर्मकर्म किया करते हैं। आप बतलावें—इन दोनों में क्या भेद है ?

भीष्म जी बोले—वे ब्राह्मण, ब्रह्मा के समान कहलाते हैं, जो पढ़े लिखे हैं, जो उत्तम कर्म करते हैं और जा सब पर समान दृष्टि रखते हैं। वे ब्राह्मण, देवता के समान हैं, जो वेदत्रयी का अध्ययन करते हैं और अपने वर्णोचित कर्त्तव्य का पालन करते हैं। हे राजन् ! वे ब्राह्मण शूद्र के समान हैं, जो निज वर्णोचित कर्म नहीं करते, जो आलसी हैं और जो ब्राह्मणों में अधम हैं। जो ब्राह्मण वेद न पढ़े हों और अग्नि में हवन न करते हों—उन सब से राजा को कर और बेगार लेनी चाहिये। पाँच प्रकार के ब्राह्मण ब्रह्मचाण्डाल कहलाते हैं। प्रथम वे जो नौकरी करें, दूसरे वे जो वेतन ले कर पुजारी का काम करें, तीसरे वे जो ज्योतिषी का पेशा करें, चौथे वे जो समस्त ग्रामवासियों को यज्ञ कराते हों और पाँचवें वे जो * महापथिक हैं। (लंबी यात्रा करने वाले) अर्थात् जहाज पर सवार हो समुद्र की यात्रा करने वाले है अथवा मार्ग का कर लेने वाले हैं। हे राजन् ! वे ब्राह्मण क्षत्रिय के समान हैं, जो ऋत्विज, पुरोहित, मंत्री, राजदूत और समाचार-दाता हैं। उन ब्राह्मणों को वैश्य जानना चाहिये, जो घुड़सवार, गजसवार, रथी और पैदल सिपाही का काम करते हैं।

---

* मूल श्लोक यह है—

आह्वायका देवलका नक्षत्रग्रामयाजकाः

एते ब्राह्मणचाण्डाला महापथिकपञ्चमाः।

नीलकण्ठ ने महापथिकः का अर्थ लिखा है "समुद्रे नौयानेन गच्छन् यद्वा महापथि शुल्कग्राहकः।

यदि राजा के धनागार में धन की कमी हो जाय तो राजा इन ब्राह्मणों से कर ले सकता है। राजा केवल देव समान और ब्रह्म समान ब्राह्मणों से कर न ले। वेद कहता है कि ब्राह्मण के धन को छोड़, राजा शेष तीनों वर्णों के धन का मालिक है; किन्तु जो ब्राह्मण अपने वर्णोचित धर्म कर्म नहीं करता, और अन्य किसी वर्ण के कर्म करता है, उस ब्राह्मण का धन राजा ले सकता है। जो ब्राह्मण निज वर्ण के कर्मों के विपरीत कर्म करता हो, उन्हें राजा कभी क्षमा न करें; किन्तु प्रजा में कर्म की उच्छृङ्खलता न फैलने पावे और प्रजाजन धर्मशील बने रहें इस विचार से ऐसे विप्रों को वह दण्ड दे। हे राजन्! जिस राजा के देश में ब्राह्मण चोर होते हैं तो इसके लिये विद्वान् लोग उस राजा ही को दोषी ठहराते हैं। यदि वेदवेत्ता ब्राह्मण आजीविका के अभाव में चोरी करने को विवश हो तो ऐसे ब्राह्मण का पोषण राजा न करे। यह मत वेदवेत्ताओं का है। हे परन्तप! राजा द्वारा आजीविका का प्रबन्ध किये जाने पर भी यदि कोई ब्राह्मण चोरी करना न छोड़े, तो राजा उसे सकुटुम्ब देश निकाले का दण्ड दे।

सतत्तरवाँ अध्याय

कैकयराज और राक्षस का कथोपकथन

युधिष्ठिर ने पूछा—हे भीष्म पितामह! राजा किस धन का स्वामी हो और वह किस प्रकार अपनी आजीविका चलावे? आप मुझे अब यही बतलावें।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! वेद कहता है कि, ब्राह्मण को छोड़, राजा अन्य समस्त वर्णों के लोगों के धन का स्वामी है; किन्तु जो ब्राह्मण अधर्मी है, उसका धन भी राजा ही का धन है। निज धर्म को त्याग अधर्माचारी ब्राह्मणों की कभी उपेक्षा न करे; प्रत्युत राजा उन्हें दण्ड दे।

सत्पुरुषों का कहना है कि राजाओं की यह प्राचीन पद्धति है। हे राजन! जिस राजा के राज्य में ब्राह्मण चोरी करने लगते हैं, शास्त्रवेत्ता जन उस राजा ही को अपराधी और पापी समझते हैं। अतः सब राजर्षि ब्राह्मणों का यथावत पालन इस भय से करते थे कि, वे कहीं उन राजाओं को शाप न दे बैठें। हे राजेन्द्र! एक बार एक राक्षस केकयराज को पकड़ कर ले गया था और वहाँ उसके साथ केकयराज की जो बातचीत हुई थी, उसे इतिहासवेत्ता इस प्रकार कहा करते हैं। केकयराज वन में रह कर उत्तमोत्तम व्रतों का अनुष्ठान करता था तथा वेदाध्ययन करता था। उस समय एक राक्षस ने आ कर केकयराज को पकड़ लिया। उस समय राजा ने उस राक्षस से कहा था—मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई पापाचारी नहीं है, कोई शराबी नहीं है और न कोई ऐसा ही ब्राह्मण है जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो। तिस पर भी तूने मुझे कैसे पकड़ लिया? मेरे राज्य में कोई द्विज विद्याहीन मूर्ख नहीं है, न कोई व्रतपालन न करने वाला ही है और न सोम न पीने वाला ही कोई ब्राह्मण है, तब भी तूने मुझे पकड़ा है; सो क्यों? मेरे राज्य के लोग बिना दक्षिणा का यज्ञ नहीं करते, व्रतधारण किये बिना वेदाध्ययन नहीं करते, तब तू मुझे क्यों कर पकड़ सका? मेरे राज्य में तो समस्त ब्राह्मण स्वयं वेदाध्यायी हैं और दूसरों को वेद पढ़ाते हैं, यज्ञ करते हैं यज्ञ कराते हैं, दान देते हैं और दान लेते भी हैं। इन छः कर्मों में सब संलग्न रहते हैं। मैं तो मृदुस्वभाव, सत्यभाषी और निज धर्मकर्म में निरत ब्राह्मणों का सम्मान करता हूँ। प्रथम उन्हें देकर पीछे मैं उपभोग के पदार्थ अपने काम में लाता हूँ, तिस पर भी तू मुझे क्यों कर पकड़ सका? मेरे राज्य में बसने वाले क्षत्रिय किसी के आगे हाथ नहीं पसारते; प्रत्युत दूसरे मँगतों को देते हैं, वे धर्म का यथार्थ रूप समझते हैं। दूसरों को वेद नहीं पढ़ाते; किन्तु स्वयं पढ़ते हैं। वे दूसरों को यज्ञ न करा कर स्वयं यज्ञ करते हैं। वे ब्राह्मणों की रक्षा करते हैं, रणक्षेत्र में जा पीछे पैर नहीं रखते। अपने वर्णोचित कर्तव्य पालन में सदा लगे रहते हैं। तब फिर तूने मुझे क्यों पकड़ा? मेरे राज्य के

वैश्य, खेतीबारी, गोरक्षा और व्यापार कर के, सम्मान के साथ अपना जीवन निर्वाह करते हैं, वे मदमाते नहीं हैं, वे क्रियावान् हैं, सत्यवादी एवं सदाचारी हैं। वे जो वस्तु खाते-पीते हैं, उसे सब को बराबर बराबर हिस्सा बाँट कर खाते पीते हैं। वे इन्द्रियों को दमन करने वाले हैं, वे पवित्रता से रहने वाले हैं और सब का उपकार करने वाले सब के सुहृद हैं। वे लोग अपने वर्णोचित कर्त्तव्यपालन में निरत रहते हैं। तिस पर भी तूने मुझे क्यों पकड़ा?

हे राक्षस! मेरे राज्य के शूद्र तीनों वर्णों की सेवा किया करते हैं और सेवावृत्ति से अपना निर्वाह करते हैं। इस पर भी तूने मुझे क्यों कर पकड़ लिया? मैं कृपणों, अनाथों, वृद्धों, दुर्बलों, रोगियों और अनाथा स्त्रियों को देने के बाद, मैं भोग्य पदार्थों का स्वयं उपभोग करता हूँ, तो भी तूने मुझे पकड़ लिया? मैंने कुलधर्म और देशधर्म को कभी उल्लङ्घन नहीं किया, तो भी तूने मुझे क्यों कर पकड़ लिया? मैं अपने राज्य में बसने वाले तपस्वियों का पालन करता हूँ और उनका सम्मान करता हूँ, उनको सत्कारपूर्वक उन्हें उनका अंश दे दिया करता हूँ। तब फिर तूने मुझे क्यों कर पकड़ा?

बिना बाँट हिस्सा किये मैं किसी वस्तु को अपने काम में नहीं लाता, परस्त्रीगमन मैं नहीं करता और न स्वतंत्र हो क्रीड़ा करता हूँ। फिर भी तूने मुझे पकड़ लिया सो क्यों? मेरे राज्य में ब्रह्मचारी को छोड़ और कोई भिक्षा नहीं माँगता। इसी प्रकार ऋत्विज को छोड़ अन्य कोई हवन नहीं करा सकता। तिस पर भी तूने मुझे क्यों कर पकड़ लिया? मैं सदा विद्वानों, वृद्धों और तपस्वियों का आदर सत्कार किया करता हूँ। जब सब लोग सोते हैं तब मैं ही अकेला जागा करता हूँ; तिस पर भी तूने मुझे पकड़ लिया—सो क्यों? मेरे पुरोहित आत्मज्ञानी, तपस्वी, सब धर्मकर्म करने वाले बड़े बुद्धिमान और उनकी सारे राज्य में धाक है। मैं विद्या के बदले में धन दे कर पढ़ता हूँ; सत्यभाषण और विप्रसेवा के प्रभाव से मैं सुखप्रद लोकों को प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं गुरुसेवी हूँ, अतः मैं राक्षस से

नहीं डरता। मेरे राज्य में एक भी विधवा नहीं है। मेरे राज्य में कोई भी ब्राह्मण नीच कपटी अथवा चोर नहीं है। मेरे राज्य का कोई ब्राह्मण अयोग्यों को यज्ञ करवा कर पाप का भागी नहीं बनता; अतः मुझे राक्षस का कुछ भी डर नहीं है। धर्म के पीछे युद्ध करते करते मेरे शरीर में दो अंगुल भी ऐसा स्थान नहीं रह गया जिसमें शस्त्र का घाव न हो। मैं सदा धर्म के पीछे लड़ता रहा हूँ। तिस पर भी तू मुझे क्यों पकड़ सका। मेरे राज्य में बसने वाले लोग सदा गौ ब्राह्मण और यज्ञों द्वारा अपने कल्याण की आशा किया करते हैं। तिस पर भी तूने मुझे क्यों कर पकड़ा?

राक्षस ने कहा – हे राजन्! जब तुझे धर्म का इतना आग्रह है, तब तू अपने घर में सुख से रह और मैं अपने घरको जाता हूँ। हे राजन्! जो राजा गौ, ब्राह्मण और प्रजा की रक्षा करता है, उसे राक्षसों का और अग्नि का भय नहीं होता। वे राजा स्वर्ग को जाते हैं, जिनके यहाँ ब्राह्मणों का प्राधान्य होता है और जिनकी प्रजा अतिथि-प्रिय होती है।

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! अतः तुम ब्राह्मणों की रक्षा करो। ऐसा करने से ब्राह्मण भी तुम्हारी रक्षा करेंगे। वे भली भाँति रक्षा करने वाले राजाओं को आशीर्वाद देते हैं। राजा ब्राह्मणों को आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये, असन्मार्गगामी द्विजों पर विशेष नियंत्रण रखे और उपभोग्य पदार्थों का विभाग कर, उन्हें दे कर पीछे स्वयं उपभोग करे। जो राजा इस प्रकार अपनी नगरवासिनी और ग्रामवासिनी प्रजा के साथ व्यवहार करता है वह इस लोक के समस्त सुखों को भोग कर, मरने के बाद स्वर्गलोक में जाता है।

अठहत्तरवाँ अध्याय

ब्राह्मण के आपद्धर्म

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! आपत्तिकाल में ब्राह्मण अपनी आजीविका का निर्वाह न हो तो आपके कथनानुसार उसे आजीविका के लिये क्षात्रवृत्ति का अवलम्बन करना चाहिये। यदि क्षात्रवृत्ति से ब्राह्मण का काम चले तो वैश्यवृत्ति से अपना काम चलावे या नहीं ? आप मुझे यह बतलावें।

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण का यदि क्षात्रवृत्ति से काम न चले तो वह वैश्यवृत्ति से काम चला सकता है। वह खेती कर तथा गो-रक्षा द्वारा अपने शरीर का पोषण करे।

युधिष्ठिर ने पूँछा—वैश्यवृत्ति अवलम्बी विप्र कौन कौन से व्यापार कर सकता है, जिससे वह स्वर्गभ्रष्ट न हो ?

भीष्म जी बोले— हे राजन् ! चाहे कैसा घोर आपत्ति काल आवे, पर ब्राह्मण कभी निम्न लिखित व्यापार न करे—मदिरा बेचना, निमक, तिल, शहद, माँस और पक्वान की बिक्री करना; घोड़े, गौ, बकरा, भैंस, बैल आदि पशु को मोल ले कर बेचना। इन चीज़ों का व्यापार करने से ब्राह्मण नरकगामी होता है। ब्राह्मण को बकरा बेचने से अग्निदेव के बेचने का, भेड़ा बेचने से वरुणदेव के बेचने का, अश्व बेचने से सूर्यदेव के बेचने का, पक्वान बेचने से पृथिवी बेचने का और गौ को बेचने से यज्ञफल तथा सोमरस बेचने का पाप लगता है। अतएव ब्राह्मण को ये पदार्थ बेच कर कभी अपनी आजीविका नहीं चलानी चाहिये। सत्पुरुषों के मतानुसार व्यवसाय के लिये पक्वान के बदले कच्चा माल खरीदना ठीक नहीं, किन्तु खाने के लिये ब्राह्मण पक्वान के बदले कच्चा अन्न ले सकता है। जो मनुष्य यह कह कर कच्चा अन्न देता है कि लो इसे राँधो, हम भी रंधा हुआ अन्न खायेंगे तो उस मनुष्य को कच्चा अन्न देने का पाप नहीं लगता।

हे राजन् ! इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें पुरातन चलन बताता हूँ, सुनो। इच्छानुसार (जबरन नहीं) वस्तुओं का विनिमय, अधर्म कार्य नहीं माना जाता। जबरन किया हुआ वस्तुओं का विनिमय पापजनक है। क्योंकि प्राचीन काल के ऋषियों तथा अन्य पुरुषों का काम विनिमय ही से चलता था।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे तात ! यदि समस्त प्रजाजन अपने अपने कर्मों को त्याग और हथियार ले राजा के सामने आवें (अर्थात् प्रजा विद्रोह करे) तो राजा तो विवश हो जाय। ऐसी परिस्थिति में प्रजापालक राजा प्रजापालन क्योंकर कर सकता है ? भगवन् ! मेरे इस प्रश्न का उत्तर सविस्तर दीजिये।

भीष्म ने कहा—ऐसे समय समस्त वर्ण किसी एक विप्र को प्रधान मान कर, अपना काम चलावे—अर्थात् दान दें, तप करें, यज्ञ करें और राजद्रोह न करें तथा संयतेन्द्रिय रह कर ऐसे काम करें, जिनसे उनका कल्याण हो। इनमें जो वेदबल से सम्पन्न विप्र हों, वे समवेत हो राजा का बल वैसे ही बढ़ावें जैसे देवता एकत्र हो इन्द्र का बल बढ़ाते हैं। यदि राजा क्षीण हो जाय तो वह किसी विप्र का आश्रय ग्रहण करे। यह विद्वानों का कथन है। राजा को ब्राह्मण के बल का आश्रय ले कर, अपना अभ्युदय करना चाहिये।

राजा यदि विजय पा कर अपने राज्य में शान्ति स्थापित करने का अभिलाषी हो, तो उसे कोई ऐसा उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिये, जिससे भिन्न भिन्न वर्णों के प्रजाजन अपने अपने वर्णोचित कर्त्तव्य पालन में निरत हो जाँय। जब प्रजा की मर्यादा नष्ट हो जाय और डाँकू लोग वर्णसङ्करता फैलाने लगें; तब समस्त प्रजाजन वर्णसङ्करता की बाढ़ रोकने के लिये शस्त्र उठावें और दुष्टों का संहार करें। ऐसा करने से ऐसा करने वालों को पाप नहीं लगता।

युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन् ! और जब क्षत्रिय ही ब्राह्मणों के साथ

शत्रुता बाँध ले, तब उन ब्राह्मणों की तथा वेद की रक्षा कौन करे? उस समय ब्राह्मणों को क्या करना चाहिये और वे किसका सहारा लें?

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! उस समय ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है कि, वे ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन-पूर्वक अनुष्ठानादि से, शस्त्रबल से, शारीरिक बल से, छलबल से या खुलंखुल्ला—जैसे बने वैसे क्षत्रियों को शिक्षा अर्थात् दण्ड दें। यदि क्षत्रिय ही स्वयं ब्राह्मणों को सताने लगें, तो ब्राह्मण स्वयं उन क्षत्रियों को दण्ड दें। क्योंकि क्षत्रिय की उत्पत्ति ब्राह्मणों ही से हुई है। अतः क्षत्रिय को काबू में लाने का अधिकार ब्राह्मण ही को है। जल से अग्नि, विप्र से क्षत्रिय और पत्थर से लोहे की उत्पत्ति हुई है। अग्नि, क्षत्रिय और लोहा बलपूर्वक किसी से नहीं दबते, किन्तु जब ये अपने मूलकारण (अर्थात् उत्पादक) से भिड़ते हैं, तब ये शान्त हो जाते हैं। जब लोहा, अग्नि, पत्थर से टकराता है, जब अग्नि का काम जल से पड़ता है या क्षत्रिय जब विप्र से द्वेष करता है, तब ये तीनों नष्ट हो जाते हैं। अतएव हे युधिष्ठिर! क्षत्रियों का बल और तेज यद्यपि रोका नहीं जा सकता, तथापि उसका बल और तेज ब्राह्मण के सामने शान्त हो जाता है। जब विप्रों का पराक्रम शिथिल पड़ जाता है—क्षत्रिय निर्बल हो जाते हैं और समस्त वर्ण ब्राह्मणों से द्वेष करने लगते हैं, उस समय जो लोग ब्राह्मण की, धर्म की, अपनी रक्षा के लिये निज प्राणों को जोखों में डालते हैं, उन उदारमना एवं उग्र रूपधारी पुरुषों की कीर्त्ति जगत्-व्यापिनी हो जाती है। उन्हें उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण-रक्षा के लिये सब वर्ण वाले हथियार उठा सकते हैं। यज्ञभाग करने वाले, वेदाध्यायी, तपस्यानिरत, निराहार व्रतधारी, अग्नि में प्रवेश करने वाले लोगों को जो लोक मिलते हैं, उनसे भी बढ़ कर उत्तमलोक ब्राह्मण रक्षा करते हुए प्राण गँवाने वालों को मिलते हैं। जो ब्राह्मण, अन्य तीनों वर्णों की रक्षा के लिये हथियार उठाता है, उसे दोष नहीं लगता। लोगों का यह भी कहना है कि, रणक्षेत्र में शरीरत्याग से बढ़

कर अन्य कोई धर्मकार्य है ही नहीं। जो लोग ब्राह्मण के शत्रुओं के सामने, ब्राह्मण की रक्षा के लिये रण में जूझ मरते हैं, उन पुरुषों को मेरा प्रणाम है। उन्हें जो लोक मिलते हैं, वे लोक मुझे मिलें।

मनु ने कहा है जो लोग ब्राह्मण के पीछे शरीर त्याग करते हैं, उन्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। दुष्ट पुरुषों से आमने सामने लड़ और शस्त्राघात से घायल हुए शूर भी पाप रहित हो वैसे ही पवित्र हो जाते हैं, जैसे अश्वमेध यज्ञ में अवभृथस्नान कर लोग पवित्र होते हैं। देश तथा काल के प्रभाव से धर्म अधर्म और अधर्म धर्म हो जाता है, यह देश और काल की महिमा है। देश और काल को ले कर दयालु जन अन्य लोगों की रक्षा करने के लिये क्रूर कर्म तक कर डालते हैं। इस पर भी उन्हें स्वर्गवास प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण तीन अवसरों पर शस्त्र उठाता है, उसे पाप नहीं लगता। वे तीन अवसर ये हैं—१ आत्मरक्षार्थ, २ लोगों को अधर्म मार्ग पर जाने से रोकने के लिये और ३ लुटेरों को दण्ड देने के लिये।

युधिष्ठिर ने कहा—जब डाकू सिर उठावे और वर्णसङ्करता फैलाने लगे तथा क्षत्रियों में जब उन्हें दबाने की शक्ति न रह जाय, तब प्रजा की रक्षा करने के लिये, निश्चय ही अन्य किसी बलवान की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु वह बलवान पुरुष चाहे ब्राह्मण हो, चाहे शूद्र। यदि वह दुष्ट दमन करने और धर्मपूर्वक शासन करने में समर्थ हो तो उसका वह कार्य ठीक माना जाना चाहिये या नहीं? मेरी सम्मति के अनुसार तो यदि क्षत्रिय (राजा) निर्बल हो जाय; तो अन्य लोगों को हथियार उठाने चाहिये।

भीष्म ने कहा—अपार सागर में पाररूप बन कर, और नौका रहित स्थान में नौकारूप बन कर, जो पार लगा दे, वह चाहे वैश्य हो अथवा शूद्र—वह सदा सन्मान करने योग्य है। जब निराश्रित लोगों को लुटेरे सताते हों, तब वे निराश्रित जिसका आश्रय ग्रहण कर सुखमय जीवन

चिता सके, उसकी वे लोग निज बन्धुवत् प्रेम के साथ प्रतिष्ठा करें। जो भयभीत को निर्भय करने वाला है, वह सदा सम्मान का पात्र है। जो बैल, बोझ न ढो सके वह किस काम का? जो गाय दूध नहीं देती वह किस काम की? इसी प्रकार जो राजा, प्रजा की रक्षा न कर सके वह किस काम का? जैसे काठ का हाथी, चमड़े का मृग, धनहीन मनुष्य, नपुंसक पुरुष, बनजर खेत, मूर्ख ब्राह्मण और जलहीन मेघ निरर्थक हैं, वैसे ही प्रजा की रक्षा न करने वाला राजा भी व्यर्थ है। जो क्षत्रिय दुष्टों को दण्ड देता हो और शिष्टों की रक्षा करता हो, वही राजा बनाया जाना चाहिये। क्योंकि ऐसा आदमी ही सारे जगत् का शासन कर सकता है।

उनासीवाँ अध्याय

ऋत्विज-लक्षण

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! हे वाग्विदांवर! हे राजेन्द्र! अब आप मुझे यह बतलावें कि, यज्ञ के ऋत्विज किस स्वभाव के होने चाहिये?

भीष्म जी ने कहा—शास्त्र कहता है कि, जो ऋत्विज, राजा की बढ़ती के लिये शान्ति पौष्टिक हर प्रकार के कार्य कराने वाले हों, वे ऋक्, यजु, सामवेदज्ञ तथा मीमांसादि शास्त्रों के जानकार होने चाहिये। उनके एक से विचार होने चाहिये और ऐसे होने चाहिये जो हरेक का समाधान कर सकें। आपस में मेल रखने वाले हों तथा सब को समान दृष्टि से देखने वाले हों। वे सत्यवादी, सरल स्वभाव, शान्त, दान्त और लज्जालु होने चाहिये। उनमें क्रूरता, द्रोह और अभिमान न हो। न वे ब्याज खोर हों। उनको तो बुद्धिमान्, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय, प्राणिमात्र के रक्षक, काम-क्रोध-विवर्जित, शास्त्राभ्यासी, शुद्धाचरणी, कुलीन होना चाहिये। क्योंकि जो ज्ञानी ऋत्विज होते हैं, वे ही ब्रह्मासन के योग्य गिने

जाते हैं। हे युधिष्ठिर ! ऐसे समस्त ऋत्विजों का समुचित सत्कार करना चाहिये।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे भीष्म जी ! वेद कहता है कि, यज्ञ में दक्षिणा दे, पर क्या दक्षिणा दे सो नहीं लिखा। शास्त्र में बारह सौ दक्षिणा दे यह तो लिखा है, पर धन का विभाग तो लिखा ही नहीं। साथ ही यह भी लिखा है कि, यदि आपत्काल में बारह सौ दक्षिणा न दे सके तो यज्ञकर्त्ता को अपना घर द्वार अर्थात् अपना सर्वस्व दक्षिणा में दे डालना चाहिये, और यदि धन पास न हो तो धनहीन दरिद्री को यज्ञ ही न करना चाहिये। अतः दक्षिणा की ऐसी पख तो बड़ी भयङ्कर है। क्योंकि शास्त्र ने यज्ञकर्त्ता की शक्ति का तो विचार ही नहीं किया। वेद कहता है, पुरुष को श्रद्धा समन्वित हो यज्ञ करना चाहिये, किन्तु मिथ्या आचार या यज्ञ में कर्त्ता की श्रद्धा कैसे बनी रह सकती है ?

भीष्म जी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! वेद वाक्यों का तिरस्कार करने वाला शठ या कपटी कभी बड़ाई नहीं पा सकता। अतः तुम्हारे मन में ऐसी बातें न उठनी चाहिये। दक्षिणा दान यज्ञ का एक अङ्ग माना गया है। क्योंकि दक्षिणा दान से वेदों की वृद्धि होती है। दक्षिणा हीन यज्ञ से यज्ञकर्त्ता यजमान का उद्धार ही नहीं होता। हे राजन् ! निर्धन यजमान का दिया हुआ एक पूर्णपात्र ही बारह सौ की दक्षिणा के समान माना जाता है। अतः हे तात ! तीनों वर्ण शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ करना चाहे तो कर सकते हैं। वेद का कथन है कि, सोम (लता) ब्राह्मणों का राजा है। यज्ञादि के लिये, तिस पर भी ब्राह्मण उसे बेचना चाहते हैं। सो यह यज्ञ करने ही के सामन है। यज्ञ में तीनों वस्तुएँ परमावश्यक हैं अर्थात् पुरुष, यज्ञ और सोम। यदि ये तीनों नियमानुकूल हों तो यज्ञ-फल अवश्य प्राप्त होता है। अर्थात् जो यज्ञ करने वाला पुरुष वित्त-शाठ्य * न कर यज्ञ करता है उसको सोमपान का और यज्ञ करने का

* वित्तशाठ्य—शक्ति से कम धन लगाना ; वित्त शाठ्य कहलाता है।

फल मिलता है। किन्तु यदि यज्ञकर्त्ता ने वित्तशाठ्य किया तो उसे इस लोक और परलोक में यज्ञ करने और सोमपान करने का पुण्यफल प्राप्त नहीं होगा। हमने सुना है कि, श्रुति कहती है कि, ब्राह्मण केवल शरीर निर्वाह के लिये वे यज्ञ करते हैं जो प्रणीताग्नि से हो सकते हैं, किन्तु ये सब यज्ञ हिंसात्मक होने के कारण, शुभ फल देने वाले नहीं हैं। वेद के मतानुसार यज्ञ की अपेक्षा तप श्रेष्ठतर है। हे युधिष्ठिर! अब मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि, तप क्या है? अहिंसा, सत्य बोलना, क्रूरता न करना दम और दया को धीर पुरुष तप कहते हैं, केवल शरीर को सुखा देना ही तप नहीं है। वेद वचन को अप्रमाण मानना शास्त्र की आज्ञा को उल्लङ्घन करना और सर्वत्र गड़बड़ी करना—ये ऐसे कार्य हैं जिनसे आत्मा की अधोगति होती है।

हे कुन्तीनन्दन! प्रति दिन दस बार हवन करने वाले जिन विधियों से काम करते हैं उन्हीं विधियों से आभ्यन्तरिक कर्म होना चाहिये। बाह्य हवन में जैसे स्रुवा है, आभ्यन्तरिक यज्ञकर्म में स्रुवा की जगह जीव है। घी की जगह अन्तःकरण है। बाह्य यज्ञ में जैसे प्रोक्षण के लिये कुशा है वैसे ही भीतर के यज्ञ में ज्ञान है। इस संसार में हर प्रकार की कुटिलता मनुष्य के मृत्यु का कारण है; किन्तु सरलता ब्रह्म से मिलाने वाली है। इतना समझ लेना ही पर्याप्त है। क्योंकि ज्ञान का मुख्य विषय इतना ही है और सब तो व्यर्थ है।

अस्सीवाँ अध्याय

शत्रु और मित्र की पहचान

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! जब मामूली काम भी एक मनुष्य बिना सहायक के नहीं कर सकता, तब राज्यशासन का बड़ा भारी काम

अकेले राजा से कैसे हो सकता है। आप बतावें कि राजा को अपना मंत्री कैसे स्वभाव के पुरुष को बनाना चाहिये, राजा किन लोगों पर विश्वास करे और कैसे लोगों पर न करे।

भीष्म जी बोले—हे राजन्! राजाओं के सहायक मित्र चार प्रकार के हुआ करते हैं। एक * सहार्थ, दूसरे † भजमान, तीसरे ‡ सहज और चौथे § कृत्रिम। पाँचवे प्रकार का एक और मित्र होता है। जो पुरुष मित्र धर्म के अनुसार वर्त्ताव करता है, वह पाँचवे प्रकार का मित्र कहलाता है। ऐसे मित्र पक्षपातरहित होते हैं। वे कपटचाल चल कर किसी भी पक्ष से धन नहीं लेते। वे धर्माचरण-परायण पुरुष धर्म ही के पक्षपाती होते हैं। धर्मशील राजा को जो बात अप्रिय लगती हो, वह उससे कहनी चाहिये। क्योंकि अवसर के अनुसार राजा को अपने विजय के लिये अच्छे बुरे सभी काम करने पड़ते हैं।

उपर्युक्त मित्रों में भजमान और सहज मित्र श्रेष्ठ हैं। सहार्थ और कृत्रिम मित्रों पर सदा सावधानता पूर्वक दृष्टि रखे। ‖ साधारणतः राजा चारों प्रकार के मित्रों से सावधान रहें। राजा अपने किसी दुष्ट मंत्री को दण्ड देना चाहे तो उक्त चारों प्रकार के मित्रों के सामने उसे दण्ड न दे—किन्तु एकान्त में दण्ड दे। राजा अपने मित्र की रक्षा सावधानतापूर्वक करे। क्योंकि असावधान का राजा लोग अपमान कर बैठते हैं। यहाँ तक कि, दुष्ट लोग शिष्ट बन जाते हैं, शत्रु मित्र हो जाता है और जो मित्र होता है, वह शत्रु बन जाता

---

* सहार्थ—किसी शत्रु पर मिल कर चढ़ाई करने वाले और जीतने पर जो सम्पत्ति हाथ लगे उसे बराबर आपस में बाँट लेने वाले। † भजमान = परम्परागत परस्पर मित्र। ‡ सहज = मौसी, बुआ आदि के पुत्र। § कृत्रिम = धनादि के लोभ से बने हुए मित्र। ‖सहार्थ मित्र का इस लिये विश्वास न करें कि यदि वह बलवान हुआ तो पीछे स्वयं ही समस्त सम्पत्ति का मालिक बन जाता है। सहायक निर्बल मित्र राजा को पीछे कुछ भी नहीं देता।

है। क्योंकि मनुष्य का मन सदा एक सा नहीं रहता। फिर जो मनुष्य अव्य-वस्थित चित्त वाला है, उसका विश्वास कोई नहीं करता, जो काम बड़े महत्व का हो, उसे राजा अपनी आँखों के सामने करवावे। क्योंकि ऐसे कर्मों में मंत्री आदि पर भरोसा करना, धर्म और अर्थ के नाश का कारण होता है। साथ ही राजा यह भी न करे कि वह किसी पर किसी काम के लिये कभी विश्वास ही न करे। क्योंकि ऐसे अविश्वासी पुरुष के लिये तो जीने की अपेक्षा मर जाना ही हितकर है।

किन्तु हर बात में दूसरों पर विश्वास करने से विश्वास करने वाले की असामयिक मृत्यु होती है। क्योंकि विश्वास-कर्त्ता का जीना मरना उस मनुष्य के हाथ है, जिस पर वह विश्वास करता है। अतः राजा सब को विश्वास करे भी और न भी करे। अर्थात् सब कामों में सब का विश्वास न करे। हे तात! यह राजनीति सनातन है।

राजा को चाहिये कि अपने उत्तराधिकारी पर सदा सन्देह की दृष्टि रखे। क्योंकि विद्वानों के मतानुसार राजा का उत्तराधिकारी उसका शत्रु माना गया है। जिसके खेत में हो कर दूसरे के खेत में पानी जाता हो, वहाँ उस खेत के स्वामी की इच्छा बिना निकटस्थ सरोवर के बाँध नहीं तोड़े जा सकते। किन्तु जलाशय के निकट वाले खेत का स्वामी जलाशय के बाँधों को जब चाहे तब तोड़ सकता है, तोड़ना चाहने लगता है। इसी प्रकार यदि सीमान्त प्रदेश का राजा चाहे तो अपने से बड़े पड़ोसी राजा की सीमा की रक्षा करे; किन्तु यदि बड़े राजा के साथ सीमान्त राज्य के राजा की अन-बन हो गयी तो वह शत्रु को बड़े राजा के राज्य में घुस जाने देता है। अतः सीमावर्ती पड़ोसी राजा से सदा सावधान रहना चाहिये। हे राजन्! जो मनुष्य तुम्हारी सदा वृद्धि चाहे, तुम्हारी बढ़ती देख प्रसन्न हो और अवनति देख उदास हो, उसे तुम अपना सर्वश्रेष्ठ मित्र समझो। जो पुरुष तुम्हारी बुराई को अपनी बुराई समझे उस पर निज पितावत् विश्वास करना चाहिये। साथ ही जब अपनी बढ़ती हो, तब अपने ऐसे मित्र की भी हर

प्रकार से बढ़ती करनी चाहिये। जो मनुष्य तुम्हें पाप कर्मों से बचाने और भय से रक्षा करने के लिये, सदैव सचेष्ट रहता हो, उस पुरुष को भी तुम अपना सर्वश्रेष्ठ मित्र समझो। जो पुरुष इसके विपरीत वर्त्ताव करे उसे तुम अपना घोर शत्रु मानो।

जो पुरुष तुम्हारे ऊपर आने वाले आपत्तिजनक भय से सदा भयभीत रहता हो और तुम्हारी बढ़ती देख उदास न होता हो, उसको तू निज आत्मावत् जान। जो मनुष्य उत्तम वर्ण और रूप वाला हो, जिसका स्वर अच्छा हो; जो सहनशील, ईर्ष्यारहित, प्रतिष्ठित और सद्कुलोद्भव हो, उसे तुम उपरोक्त सब मित्रों से बढ़ कर जानो। जो पुरुष बुद्धिमान, स्मृतिवान्, कार्यसाधन में पटु, दयालु और मान या अपमान से प्रसन्न अथवा रुष्ट न हो, वह चाहे तुम्हारा ऋत्विज हो, चाहे आचार्य हो या तुम्हारा अत्यन्त प्रशंसापात्र मित्र हो—अथवा तुम्हारा मंत्री हो, तो तुम उसका भली भाँति आदर सत्कार कर उसे अपने महल में रखना। ऐसे ही मनुष्य से तुम राजकीय मामलों में आर्थिक और धार्मिक विषयों में सदा सलाह लेते रहना और उसे सब बातें बतला कर, उसका ऐसा ही विश्वास रखना जैसे पिता अपने पुत्र का विश्वास करता है। एक काम पर एक ही पुरुष को रखना—दो तीन को नहीं। यदि एक काम के दो तीन अध्यक्ष बना दिये जाते हैं; तो उनमें सदैव मतभेद रहने से कार्य सुचारु रूप से नहीं होता। तुम अपना प्रधान सचिव उस पुरुष को बनाना, जो कीर्तिशाली, मर्यादित, शक्तिमान पुरुषों से मेल जोल रखने वाला, अनर्थ से दूर रहने वाला; कामना-भय-लोभ क्रोध के वशवर्त्ती हो धर्मत्याग न करने वाला, कार्यसिद्ध करने के उपायों से अभिज्ञ और चतुर हो तथा बकवादी न हो। तुम उस पुरुष को अपना अमात्य बनाना जो कुलीन, शीलवान्, सहिष्णु, वीर, सज्जन, विद्वान् और विवेकी हो। ऐसे पुरुष का तुम सत्कार करना और उसको पुरस्कार देना। ऐसा करने से ऐसे लोग तुम्हारे सदा सहायक बने रहेंगे और सब प्रकार से तुम्हारा काम करेंगे। ऐसे लोगों को राज्य की आमदनी और खर्च

के विभाग का काम सौंपने से तुम्हारी उन्नति होगी। ऐसे लोग आपस में डाह नहीं करते और जब आवश्यकता होती है, तब शुद्ध हृदय से आपस में सलाह कर काम करते हैं। हे युधिष्ठिर! तू अपने कुटुम्बियों से मौत की तरह सदा डरा करना। जैसे सामन्त राजागण अपने महाराज की बढ़ती नहीं देख सकते, वैसे ही कुटुम्बी भी अपनी उन्नति नहीं देख सकते। कुटुम्बी भले ही सरल, कोमल प्रकृति, उदारमना, लज्जालु और सत्यवादी ही क्यों न हों, वे निश्चय ही अपने उन्नतिशील कुटुम्बी का सर्वनाश करने को तैयार रहते हैं। जिसका कोई सगा सम्बन्धी नहीं है, वह भी सुखी नहीं रह सकता। क्योंकि कुटुम्बहीन पुरुष को अन्य लोग दबा लेते हैं। दूसरे लोग जब किसी को तंग करते हैं, तब उसके सम्बन्धी उसका पक्ष लेते हैं और अपने सम्बन्धी का अपमान कभी सहन नहीं करते। अपने सम्बन्धी का अपमान यदि कोई अपना मित्र ही क्यों न करे, तो भी वे अपने सम्बन्धी के उस अपमान को अपना ही अपमान समझते हैं। अतः जाति बिरादरी में गुण दोष दोनों ही हैं अर्थात् उनमें भलाई बुराई दोनों ही हैं। अन्य जाति वाला अन्य जाति वाले पर न तो अनुग्रह करता है और न नवता ही है। अतएव अपनी जाति बिरादरी वालों का सदा वचन और कर्म से सम्मान करे। उनका आदर सत्कार करे और उनके मन के अनुकूल बर्त्ताव कर उन्हें अपने अनुकूल बनाये रखे। बाहिरी बर्त्ताव से उन पर पूर्ण विश्वास प्रकट करे, किन्तु मन में उन पर कभी विश्वास न करे। भाई बंदों के गुण दोष की मीमाँसा नहीं हो सकती; किन्तु जो पुरुष सावधानता पूर्वक बर्त्ताव करता है, उसके शत्रु भी उस पर प्रसन्न रहते हैं और उसके मित्र बन जाते हैं। जो पुरुष अपने कुटुम्बियों, नातेदारों, मित्रों तथा वैरियों एवं तटस्थ लोगों के साथ सदा व्यवहार करता है, उसकी कीर्त्ति चिरकाल तक रहती है।

इक्यासीवाँ अध्याय

दलबन्दियों में वर्त्ताव करने का विधान

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! यदि कोई अपने कुटुम्बियों और नातेदारों को अपने वश में न कर सके और जिन्हें वह अपना मित्र बनाना चहता हो और वे ऐन समय पर वैरी बन जाँय; तो वह अपने मित्रों को क्यों कर अपने वश में करे?

भीष्म जी बोले—इस विषय में मैं तुम्हें श्रीकृष्ण और नारद जी का संवादात्मक एक पुरातन इतिहास सुनाता हूँ।

एक दिन श्रीकृष्ण ने कहा—हे नारद! जो अपना हितैषी—सुहृद नहीं है, उसे अपने राजकीय विचार कभी न बतावे। भले ही अपना हितैषी सुहृद हो, किन्तु यदि वह मूर्ख हो, तो वह भी गुप्त विचारों को जानने योग्य नहीं है। हे नारद! तुम मेरे सुहृद हो तो यथेष्ट बुद्धिमान हो, अतः हे स्वर्गगामी मैं तुमसे कुछ पूछता हूँ। मैं अपने कुटुम्बियों को तथा नातेदारों को यह आशा बंधा कर कि, मैं तुम्हें बड़ा ऐश्वर्यशाली बना दूँगा, कभी उन का दास नहीं बनाता। मुझे जो कुछ मिलता है, उसमें से आधा दूसरों को दे कर, शेष आधा मैं अपने काम में लाता हूँ। जैसे अग्नि की आवश्यकता होने पर अरणी को मथन कर अग्नि प्राप्त कर ली जाती है, वैसे ही नातेदारों के कटुवचनों से मैं अपने हृदय को मथता हूँ। हे नारद! नातेदारों के कटुवचन मेरे हृदय में दाह उत्पन्न किया करते हैं। बलदेव जी बलवान हैं, गद कोमल स्वभाव है और प्रद्युम्न को अपने सौन्दर्य का अभिमान है। यद्यपि ये मेरे सहायक हैं—तथापि मैं असहाय हूँ। इनके अतिरिक्त अन्धक और वृष्णि भी बड़े भाग्यशाली, बलवान, बड़े शूर और सदा उद्योग-रत रहने वाले हैं। ये सब जिसके विपक्षी हो जाँय, उसका सर्वनाश हुए बिना नहीं रहता और ये जिसका पक्ष ग्रहण कर लें, उसके कुल के लिये अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तक सुलभ हैं। आहुक और अक्रूर मुझे अपने पक्ष में कर

लेने के लिये सदा यत्नवान् रहते हैं। किन्तु इन दोनों में से एक भी पक्ष लेना नहीं चाहता। जिसके आहुक और अक्रूर मित्र बन जाँय, उसे दुःख-दायी शत्रु की आवश्यकता नहीं रहती। साथ ही जिसके विपक्षी ये दोनों बन जाँय, उसे कभी सुख भी नहीं मिल सकता। हे नारद! जैसे दो जुआरियों की एक जननी दोनों की जीत चाहती है, वैसे ही मुझे भी आहुक अक्रूर की विजय कामना करनी पड़ती है। अतः हे नारद! मुझे सदा दुःखी रहना पड़ता है। तुम मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिससे मेरा और कुटुम्बियों का कल्याण हो।

नारद ने कहा—हे वृष्णिवंशी कृष्ण! आपत्ति दो प्रकार की होती हैं; बाहिरी और भीतरी। ये आपत्तियाँ अपनी करतूतों से तथा अन्य लोगों की करतूतों से भी आती हैं। इस समय जो आपत्ति आपको तंग कर रही है, यह आपकी राज-कार्य-पद्धति का दोषमय परिणाम है। क्योंकि बलदेव जी और अन्य भोजवंशी अक्रूर के पक्ष में हो गये हैं। इसका कारण चाहे तो धन हो, चाहे मनचाञ्चल्य, चाहे कटुवचन हो—जो कुछ भी हो, तुमने निज उपार्जित ऐश्वर्य दूसरे को दे दिया। इससे जो तुम्हारे मित्र बन गये हैं, वे तो तुम्हारे साथ हैं ही। तिस पर भी तुमने अपने कार्यों ही से अपने ऊपर दुःख बुलाया है। जैसे वमन किया हुआ अन्न पुनः नहीं खाया जाता; वैसे ही तुम अब प्रदत्त ऐश्वर्य को नहीं लौटा सकते।

हे कृष्ण! यदि अब तुम बभ्रु और उग्रसेन का राज्य लौटाना चाहो, तो तुम्हारे कुटुम्ब में कलह हो जाय। अतः वह तो अब किसी प्रकार लौटाया नहीं जा सकता। यदि तुम बड़े यत्न से बड़ा कठोर काम कर के, उसे लौटाने का प्रयत्न भी करो, तो ऐसा करने से यादवों का बड़ा भारी संहार हो जायगा। साथ ही अपार धन व्यय भी होगा और संभव है सर्वनाश हो जाय। अतः अब तुम* परिमार्जन और †अनुमार्जन द्वारा

* परिमार्जन—शरम, तितिक्षा और मृदुता।

† अनुमार्जन—यथायोग्य सत्कारादि प्रीतिमय व्यवहार।

निर्लोह अस्त्र से सब की ज़बान बन्द कर दो। अर्थात् उन्हें चुप कर दो, जिससे आपस का झगड़ा न हो।

श्री कृष्ण ने कहा—हे मुने! यह तो आप बतलावें कि वह ऐसा कौन सा निर्लोह शस्त्र है, जो कोमल हो कर भी सब के हृदयों को विद्ध करने वाला है।

नारद ने कहा—शक्त्यानुसार प्रति दिन अन्न देना, सहिष्णु होना, विनम्र रहना, सत्कार करने योग्य लोगों का सत्कार करना—यही निर्लोह शस्त्र है। तुम मधुर वचनों से अपने बान्धवों के नीच कटु वचनों को, दुष्ट सङ्कल्पों को और कुटिल अभिप्रायों को शान्त कर दो। जो पुरुष संयतमना नहीं है और जो सहायकों से रहित है, वह हज़ार यत्न करने पर भी महात्मा नहीं बन सकता। वह कार्य के बड़े भारी बोझे को भी नहीं उठा सकता। तुम महात्मा हो, अतः उद्योग पूर्वक इस महान् भार को अपनी छाती पर उठा लो। अर्थात् राज्यभार अपने हाथ में ले लो। देखो, समतल भूमि में तो सभी बैल बोझ को खींच सकते हैं; किन्तु दुर्गम स्थानों में सिवाय सुदृढ़ एवं बलवान बैलों के दूसरे बैल काम नहीं दे सकते। आपस में झगड़ा होने से सारा समुदाय नष्ट हो जाता है। हे केशव! तुम अपने समुदाय में मुखिया हो, अतः ऐसा वर्त्ताव करो जिसमें यह समूह तुम्हारे ऊपर निर्भर रह कर कष्ट न उठावे। बुद्धि, क्षमा, इन्द्रियों का दमन और धन का दमन ये बातें विद्वानों को छोड़ और किसी में नहीं पायी जातीं। अतः हे कृष्ण! तुम ऐसा उद्योग करो, जिससे धन, यश, आयु तथा तुम्हारे पक्ष वालों और तुम्हारे बन्धु बान्धवों का नाश न हो, हे प्रभो! वैरी के ऊपर चढ़ाई करते समय छः प्रकार की नीति से वर्त्ताव करने पर भविष्यत् में वर्त्तमान समय में क्या फल मिलता है—यह बात आप जानते ही हैं। यादव, कुकुर, भोज, अन्धक, और वृष्णि जाति के समस्त राजे और सब लोगों की आपके ऊपर प्रीति है। हे माधव! ऋषि भी तुम्हारे विचारों से सहमत हैं। तुम सब प्राणियों

के गुरु हो, तुम्हें भूत, भविष्यत् का ज्ञान है और आपके आश्रय में रह कर ही यादवगण सुखपूर्वक समय व्यतीत करते हैं।

बयासीवाँ अध्याय

समुद्रों की रक्षा करना अनिवार्य है

भीष्मजी बोले—हे राजन्! राजाओं की राजनीति की यह प्रथम वृत्ति तुम्हें सुनायी, अब तुम दूसरी वृत्ति सुनो। अपने हितैषी की रक्षा करना राजा का प्रथम कर्त्तव्य है। यदि मंत्री राजकोप से धन उड़ाता हो और कोई राजकर्मचारी इसकी सूचना देने आवे तो ऐसे पुरुषों के साथ एकान्त स्थान में बातचीत करनी चाहिये। साथ ही उस पुरुष की उस मंत्री से रक्षा भी करनी चाहिये। क्योंकि राजकीय कोषागार से धन उड़ाने वाले मंत्री, चुगली करने वालों को मार डाला करते हैं। जो पुरुष राजा के धनभाण्डार की रक्षा करता है, उसे राजभाण्डार को लूटने वाले मिल कर मार डालते हैं। ऐसी दशा में उस राजभाण्डार-रक्षक की रक्षा का यदि उपाय न किया गया तो वह निश्चय ही मारा जाता है। इस बारे में कालक-वृक्षीय नामक एक ऋषि ने कोशलराज से, एक पुरातन इतिहास कहा था, उसे तुम सुनो। कहते हैं एक दिन कालिक-वृक्षीय नामक एक ऋषि कोशल देश के क्षेमदर्शी नामक राजा के राज्य में गये। मंत्री के आचरण की जाँच करने के लिये, एक पिंजड़े में एक काक बंद कर और उसे लिए हुए उन्होंने सारे कोशल राज्य में भ्रमण किया। वे भ्रमण करते हुए कहते थे, हे पुरुषों! तुम लोग इस कौए की विद्या सीखो, मेरा यह काक समस्त विद्याओं में पारङ्गत है और त्रिकालज्ञ है। यह कहते हुए वे ऋषि कोशल देश में घूम फिर कर बहुत से लोगों से मिले। उस समय राज्याधिकारी पुरुषों ने धन की अच्छी लूट खसोट मचा रखी थी। अतः उन

ऋषि को उन सब के पापकर्म अवगत हो गये। वे लोग किस प्रकार माल मारते थे—यह बात भी उन मुनि को अवगत हो गयी। तदनन्तर वे मुनि उस काक को लिये हुए राजा के निकट पहुँचे और उससे कहा—हे राजन्! मैं सर्वज्ञ हूँ—मैं सब हाल जानता हूँ। फिर बड़े ठाटबाट से वस्त्रालङ्कार से सुसज्जित राजमंत्री से, जो राजा के निकट बैठा था, कालक वृत्तीय मुनि ने कहा—मेरा काक मुझसे कहता है कि, तूने अमुक स्थान से इतना धन अपहरण किया है। तूने राजकोश से चोरी की है। यह बात अमुक अमुक पुरुषों को मालूम है। तू अब इसकी शीघ्र कैफ़ियत दे या अपना दोष मान ले। यह कह उन मुनि ने उन अन्य समस्त राजकर्मचारियों के भी नाम बतलाये, जो राजमंत्री के इस दुष्ट कर्म में सहायक थे। साथ ही यह भी कहा कि मेरा काक कभी मिथ्या बात नहीं कहता।

हे युधिष्ठिर! जब इस प्रकार उन मुनि ने उन कर्मचारियों पर दोष लगाया, तब उन सब लोगों ने एकमत हो कर, रात में जब मुनि सो रहे थे, तब अंधेरे में जा उस कौए का वध कर डाला। जब रात बीती और सवेरा हुआ, तब मुनि ने देखा कि, कौआ बाणों के प्रहारों से मरा पड़ा है। यह देख उन्होंने जा कर राजा से कहा—राजन्! मैं तुमसे अभयदान माँगता हूँ। क्योंकि तू सर्वशक्तिमान् है और सब के जान माल का रक्षक होने से सब का प्रभु है। मैं तुझे अपना मित्र मानता हूँ और तेरा भला चाहता हूँ। अतः यदि तू अनुमति दे तो मैं तेरे हित के लिये तुझसे कुछ कहूँ। मुझे इस समय बड़ा दुःख है, मैं अपनी इच्छा ही से तेरी सहायता करने को तेरे निकट आया हूँ। जैसे उत्तम सारथि अपने शिक्षित घोड़ों को अच्छे रास्ते पर ही चलाता है, वैसे ही श्रेष्ठ जन अपने मित्र को अच्छे मार्ग पर चलाता है। यदि ऐसा मनुष्य क्रोध में भर, बरजोरी कोई काम करवावे, तो वे लोग जो सदा अपना ऐश्वर्य चाहते हैं, उस हितैषी मनुष्य पर रोष नहीं करते।

कालक-वृक्षीय मुनि के इन वचनों को सुन कर, राजा क्षेमदर्शी ने कहा - मैं निश्चय ही आत्महित चाहता हूँ। अतः मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, आप मेरी भलाई के लिये जो कुछ कहेंगे मैं सब सुनूँगा और आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगा। हे ब्रह्मदेव ! आप जो कुछ कहना चाहते हो, सो सहर्ष कहें।

इस पर कालक-वृक्षीय मुनि ने कहा—मैंने यह जान लिया कि, तेरे अधिकारियों में कौन दोषी और कौन निर्दोषी है, किस की ओर से तुझे खटका है और किस की ओर से नहीं। अतः राजभक्ति से प्रेरित हो, मैं तुझे यह बतलाने आया हूँ; किन्तु मुझसे इसमें भूल हुई है। नीति के आचार्यों ने पहले ही से कह रखा है कि, अधिकारियों में यह दोष हुआ करते हैं। राजसेवकों का भाग्य पापमय है और निराधार है। पण्डितों का मत है कि जिन लोगों का राजा के साथ सहवास है, मानों उसकी सर्प के साथ प्रीति है। फिर राजा के जैसे मित्र होते हैं, वैसे ही उसके शत्रु भी होते हैं। राजा की सेवा जिनको करनी पड़ती है, राजा को उन सब का भय लगा रहता है। साथ ही वे भी प्रत्येक क्षण राजा से डरते रहते हैं। राजा के पासवान सर्वथा असावधान हो कर नहीं रह सकते। जो पुरुष राजा के पास रह कर प्रमाद करता है, उस पर राजा अप्रसन्न होता है। अतः वह प्रमादी, राजा के कोप में पड़ मारा जाता है। जैसे लोग प्रज्वलित आग के पास बड़ी सावधानी से रहते हैं, वैसे ही शिक्षितों को राजा के निकट बड़ी सावधानी से रहना पड़ता है। धन और प्राण का स्वामी राजा, जब क्रुद्ध होता है, तब वह विषैले साँप की तरह भयङ्कर हो जाता है। अतः मनुष्य को उचित है कि, वह जीवन की आशा को त्याग, प्रयत्नपूर्वक राजा की सेवा करे। राजा के निकट काम करने वालों को सदा अपनी वाणी को संयत रखना पड़ता है, वे उसके सामने बड़ी सावधानी से बैठते हैं। उन्हें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि, कहीं उनसे बोलने में उठने बैठने में, चलने फिरने में, अपना अभिप्राय जताने

में, अपने शरीर के अङ्गों के परिचालन में, कोई अपचार (बेअदबी) न बन आवे। राजा जब प्रसन्न होता है, तब देवता की तरह वह अपने उपासक के समस्त अभीष्ट पूर्ण कर देता है और जब वह क्रोध करता है, तब वह अग्नि की तरह जड़ मूल से भस्म कर डालता है।

हे राजन्! यमराज का कथन है कि, लोकव्यवहार में ऐसा नित्य ही हुआ करता है। मैं नीतिपूर्वक तेरी समृद्धि की वृद्धि आगे बराबर किया करूँगा। आपत्ति विपत्ति में मुझ सरीखा मंत्री तुझे अनेक प्रकार की, बुद्धि पुरस्सर सलाह दिया करेगा। हे राजन्! मेरा यह काक तेरी सेवा के पीछे ही मारा गया है। इसके लिये मैं तुझे दोषी ठहरा तेरी निन्दा नहीं करता; किन्तु जिन लोगों ने मेरे काक का वध किया है, वे मन से राज-भक्त नहीं हैं, अतः तेरे लिये यह जान लेना परमावश्यक है कि, तेरा हितैषी कौन है और अशुभचिन्तक कौन है? यह जान लेने के लिये तुझे दूसरे के ऊपर निर्भर न रह कर, निज बुद्धि ही से काम लेना चाहिये। तेरे घर में रहने वाले तेरे अधिकारी तेरा धन उड़ाया करते हैं। वे लोग प्रजा को सताते हैं। वे मेरे भी वैरी बन गये हैं। जो पुरुष मेरा वध कर, तेरा राज्य पा सकते हैं, उनकी ओर से यदि तू सतर्क रहा; तब तो ठीक है, नहीं तो तू मार डाला जायगा। उन लोगों ने तो बाण मार कर मुझे ही मार डालने का प्रयत्न किया था; किन्तु सौभाग्यवश उनका छोड़ा बाण मेरे तो न लगा, किन्तु उससे काक मारा गया। अतः उनके डर से मैं यह स्थान छोड़ अन्यत्र चला जाऊँगा।

हे राजन्! यद्यपि मेरे मन में कोई भी कामना नहीं है, तथापि दुष्टों ने मेरा काक मार डाला। मुझे यह सब बातें तप के प्रभाव से अवगत हो गयी हैं। जाति वाले और विजातीय दुर्बल और सबल—सब को ग्रसने वाले अधिकारी वर्गरूपी बहुत से मगर, मच्छ, नक्र एवं तिमिङ्गलों से पूर्ण तेरी राजारूपी नदी में, मेरे मूर्ख काक ने अपनी जान गँवा, मेरा उद्धार किया है। तेरी राज्यरूपी यह नदी हिमालय की गुफा के सदृश है।

हिमालय की कन्दरा में जैसे वृक्ष, पत्थर और कटीले झाड़ होते हैं, उसमें जैसे व्याघ्र सिंह रहा करते हैं, जैसे उसमें रहना महाकठिन है, वैसे ही तेरी इस राज्यरूपी नदी भी दुष्ट घूँसखोर अधिकारी वर्गरूपी झोंकों, कटीले वृक्षों, व्याघ्रों और सिंहों से परिपूर्ण है। अतएव तेरे राज्य में रहना महाकठिन काम है।

विद्वानों का कहना है कि प्रकाश के सहारे अन्धकार में मनुष्य चल सकता है और नाव द्वारा विशाल नदी के पार जा सकता है; किन्तु तेरी राज्यरूपी नदी के पार जाने का कोई उपाय ही नहीं है। तेरा राज्य निबिड़ अन्धकार पूर्ण वन के समान है। अतः जब तू ही इसका विश्वास नहीं कर सकता, तब फिर मैं तो विश्वास कर ही कैसे सकता हूँ। तेरे राज्य में भले और बुरे दोनों एक समान हैं। इस लिये यहाँ रहने में कुशल नहीं। तेरे राज्य में भले लोगों का मारा जाना सम्भव है। जो धर्म अधर्म का विचार नहीं करता, उसको तो कुछ डर नहीं है। नीति के मतानुसार पापियों को नष्ट कर डालना चाहिये और धर्मात्माओं की सर्वथा रक्षा होनी चाहिये; किन्तु तेरे राज्य में ऐसा होता नहीं। अतः यहाँ क्षण भर रहना भी उचित नहीं है। जो समझदार होगा वह तो यहाँ से तुरन्त ही भाग जायगा।

हे राजन्! सीता नाम्नी एक नदी है, जिसमें नौकाएं डूब जाती हैं। तेरी राजनीति रूपिणी नदी में मुझसा उपदेशक बिना डूबे नहीं बच सकता। तेरी राजनीति को मैं उसी नदी के उपमा वाली और सब का नाश करने वाली फाँसी के समान समझता हूँ। तू ऊपर से मधु की धारा के समान है। सुन्दर दीखते हुए किन्तु विष मिले भोजन की तरह है। तेरा स्वभाव दुष्ट पुरुषों जैसा है, भले लोगों जैसा नहीं है। तू विषैले सर्पों से पूर्ण कूप अथवा मधुर जल से पूर्ण नदी के समान है। तेरे राज्य की उपमा उस नदी के साथ दी जा सकती है, जो ऊँचे ऊँचे करारों के बीच बहती है, जिसमें किनारों पर सरपत और बेत की झाड़ियाँ होने से

उसके निकट पहुँचना कठिन है। घास के ढेर में लगा हुआ अग्नि विशाल वृक्ष का सहारा पा कर, फैल जाता है और उस वृक्ष को भी भस्म कर डालता है। तेरे मंत्री घास के ढेर के समान हैं। उनके ऊपर तू आतङ्क जमा और उनको सुधार। हे राजन्! तूने ही इनको मंत्रिपद पर बिठाया है और तू ही इनको पाल पोस रहा है; किन्तु ये तुझे वश में कर तेरा नाश कर डालेंगे। मैं तो इस उद्देश्य से यहाँ आया था कि, मैं यह जान लूँ कि, मुझे जिस राजा के राज्य में रहना पड़ता है उसकी परिस्थिति कैसी है। मैं यह अवश्य चाहता था कि, यह बात तेरे नौकरों को न मालूम पड़ने पावे। जैसे ससर्प गृह में लोग भयत्रस्त रहते हैं, जैसे किसी चोर की पत्नी का जार उस घर में डरता डरता जाता है, वैसे ही मुझे यहाँ रहते समय भयभीत रहना पड़ता है। तूने इन्द्रियों को अपने वश में किया है कि नहीं? तू काम क्रोध को जीत चुका है कि नहीं? तेरे नौकर चाकर तेरी आज्ञा का पालन करते हैं कि नहीं? सेवकों की तुझमें भक्ति है कि नहीं? तेरी प्रजा राजभक्त है कि नहीं? ये सब बातें जान लेने ही को मैं तेरे निकट आया था। हे राजन्! जैसे भूखे को भोजन देख प्रसन्नता होती है, वैसे ही तुझे देख कर मैं प्रसन्न हो रहा हूँ। किन्तु जैसे प्यास बुझ जाने पर उसे जल अच्छा नहीं लगता वैसे ही मुझे तेरे मंत्रियों के दुष्ट चरित्र मालूम हो जाने पर, अच्छा नहीं जान पड़ता। मैं तेरा हितैषी हूँ। यह जान कर वे मेरा अनिष्ट करना चाहते हैं। निस्सन्देह इसके सिवाय और कोई कारण नहीं है। मैं तो इनसे द्रोह नहीं करता; परन्तु ये लोग मुझे अपना द्रोही समझते हैं। दूषित दृष्टि के कारण ऐसा इनको जान पड़ता है। भग्नपृष्ठ सर्प से जैसे सदा भयभीत रहना पड़ता है, वैसे दुष्टमना शत्रु से भी सदा सावधान रहना पड़ता है।

राजा बोला—आप मेरे राजभवन में रहिये। मैं आपको सत्कारपूर्वक रखूँगा। हे ब्रह्मन्! जो अमात्य आपके यहाँ रहना न चाहेंगे, उनको मैं अपने महल में न रखूँगा। साथ ही अब इनके साथ कैसा बर्ताव किया जाय, यह

बात भी आपकी इच्छा के अधीन है । हे भगवन्! आप मुझे ऐसे ढंग में डालिये जिससे मैं राजदण्ड धारण कर, सत्कर्मों में प्रवृत्त होऊँ ।

मुनि ने कहा—अच्छा, तब अभी मंत्रियों पर काकवध का अपराध न लगाया जाय; किन्तु क्रमशः एक एक कर सब मंत्री अधिकारच्युत कर दिये जाँय। तत्पश्चात् काकवध के अपराध में प्रत्येक मंत्री को प्राणदण्ड दिया जाय। क्रमशः एक एक कर के मन्त्रियों का वध इस लिये करवाया जाय कि, जब एक अपराध में बहुत से लोग लिप्त होते हैं तब वे सब मिल कर कठोर से कठोर हृदय को कोमल करते हैं। हे राजन्! तेरा विचार कहीं लोग जान न लें, इसीसे मैंने तुझे यह सम्मति दी है। रहा मैं सो मैं तो ब्राह्मण हूँ। मेरा हृदय तो स्वभाव ही से कोमल और दयालु है। मैं तो यही चाहता हूँ कि, मेरी तरह सब का कल्याण हो। राजन्! अब तू मेरा परिचय सुन । मैं तेरा मित्र हूँ और मेरा नाम है, कालकवृक्षीय । हे राजन्! मैं सत्यप्रतिज्ञ और तेरे पिता का मान्य मित्र हूँ। जब मेरे मित्र तेरे पिता स्वर्गवासी हुए और जब तेरा राज्य सङ्कट में पड़ गया, तब मैं समस्त कामनाओं को त्याग कर, वन में तप करने चला गया था; किन्तु क्या करूँ, मित्र का पुत्र होने के कारण तेरे ऊपर मेरा स्नेह है । अतः तू कहीं अधिकारियों के जाल में न फँस जावे, अतः तुझे सावधान करने को मैं यहाँ आया हूँ। अब मैं तुझे जो उपदेश देता हूँ उसे सुन ।

हे राजन्! तुझे यह राज्य प्रारब्ध से मिला है। तू सुख दुःख दोनों ही भोग चुका है। तिस पर भी तू अपने मंत्रियों पर सोलहो आने राजकाज छोड़ कर, ऐसा असावधान क्यों रहता है?

यह सुन कोशलराज ने क्षत्रिय जाति के एक श्रेष्ठ पुरुष को अपना मंत्री बनाया और विप्रश्रेष्ठ कालकवृक्षीय को अपना पुरोहित बनाया। इस प्रकार राज्य की उत्तम व्यवस्था कर, कालकवृक्षीय मुनि ने राजा को अच्छे अच्छे यज्ञ करवाये। हे राजन्! कोशलराज ने मुनि के हितोपदेश के

अनुसार चल कर, समस्त पृथिवी अपने अधीन की और पुरोहित के कथनानुसार ही उसने बर्ताव किया।

तिरासीवाँ अध्याय

राजकर्मचारी

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे भीष्म जी! अब आप यह भी बतलावें कि, राजा के * सभासद, † सहायक, ‡ सुहृद, § परिच्छद और || अमात्य कौन लोग होने चाहिये?

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! तुम अपने सभासद अर्थात् व्यवहारज्ञ ऐसे लोगों को बनाना जो लज्जालु, जितेन्द्रिय, सत्यभाषी एवं सरल हों और प्रिय अप्रिय कह सकें। तुम उन लोगों को अपना सहायक अर्थात् समरसचिव बनाना जो सदा तुम्हारे पक्षपाती हों, बड़े वीर हों, द्विजवर्ण के हों, विद्वान् हों, अच्छे सन्तोषी हों और काम करने में परमोत्साही हों। जो कुलीन हो, जिसे तुम प्रसन्न रखते हो, जो सर्वथा तुम्हारा पक्षपाती बन अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर काम करने वाला हो और सुख दुःख, बीमारी या मृत्यु के समय भी तुम्हारा साथ दे, उसे तुम अपना सुहृद या दरबारी बनाना और उसका आदर सत्कार करना। क्योंकि जो ऐसा पुरुष होता है वह अपनी शक्ति को न छिपा कर उससे पूर्ण काम लेता है। तुम अपना सेनापति ऐसे पुरुष को बनाना जो अच्छे कुल का हो, तुम्हारे राज्य का रहने वाला हो या उत्पन्न हुआ हो। जो बुद्धिमान्, दर्शनीय, युद्धविद्याविशारद चतुर और तुममें भक्ति रखता हो अर्थात् जो राजभक्त हो। जो लोग नीच-कुलोत्पन्न, लोभी, क्रूर और निर्लज्ज

---

* सभासद व्यवहार जानने वाले, † सहायक—समर-सचिव, ‡ सुहृद-दरबारी, § परिच्छद,—सेनापति, ||अमात्य,--सलाहकार, परामर्शदाता।

होते हैं, वे तुम्हारा साथ तभी तक देंगे जब तक तुम उनकी मुट्ठी गर्म करते रहोगे। कुलवान्, शीलवान्, गुप्त अभिप्राय को समझ सकने वाले, दयालु, देश और काल के जानने वाले, अपने राजा के कामों को पूरा करने वाले, और हितैषी हों उन्हें तुम अपना अमात्य अर्थात् परामर्शदाता बनाना। जो लोग तुममें भक्तिमान् हों, और जिन्हें तुम अपना प्रिय समझते हो, उन्हें तुम उच्च पदों पर नियुक्त करना और पुरस्कार, खिल्लत तथा ताम्बूलादि से उनका समय समय पर सम्मान कर उनका सत्कार करना, जिससे वे तुमसे सदा प्रसन्न रहें। संकट के समय भी पूर्ववत् व्यवहार रखने वाले, विद्वान्, सदाचारी, उदात्त विचारों वाले और सत्यवादी पुरुष, तुम्हें विपत्ति काल में भी छोड़ कर न जायँगे; प्रत्युत सदा तुम्हारा साथ देंगे। नीच और धर्मध्वंसी या मर्यादा को नष्ट किये हुए लोगों से तुम सदा अपनी रक्षा करना। किसी विषय को लेकर जब दो पक्ष हो जाँय और जब यह प्रश्न उपस्थित हो कि, तुम कौन सा पक्ष ग्रहण करो, तब तुम बहुमत को छोड़ अल्पमत का पक्ष ग्रहण मत करना। जिस पक्ष में रणोत्साह हो, जो पक्ष कीर्तिकामी हो, उसी पक्ष पर तुम दृढ़ रहना। जो पुरुष धर्मा-धर्म का विवेकी है, वही सत्पुरुष है। ऐसा पुरुष शक्तिशाली पुरुषों का सम्मान करता है। ऐसे लोग उन लोगों के साथ स्पर्धा नहीं करते जो स्पर्धा करने के अयोग्य हैं। ऐसे लोग किसी कामना से, किसी के भय से, क्रोध से या किसी वस्तु के लालच से अपने धर्म को नहीं त्यागते।

हे धर्मराज! तुम ऐसे पुरुष को अपना सचिव बनाना जो निरभिमानी, सत्यवादी, क्षमावान्, अनाकुलमना और अपने पद की मर्यादा बनाये रखने वाला है तथा जिसकी हर प्रकार से प्रत्येक अवसर पर परीक्षा हो चुकी हो। हे कुन्तीनन्दन! जो सत्पुरुष होता है, वह प्रतिष्ठित, कुलीन, सहनशील, चतुर, जितेन्द्रिय, वीर, कृतज्ञ और सत्यवादी होता है। जो पुरुष बुद्धिमान होता है, उस पर उसके शत्रु भी प्रसन्न होते हैं और उसके मित्र बन जाते हैं। बुद्धिमान् राजा को स्थिरप्रज्ञ एवं ऐश्वर्यकामी राजा

को उचित है कि, वह जिस पुरुष को मंत्री के पद पर नियुक्त करे, उसके गुण दोषों की भली भाँति परीक्षा उसकी नियुक्ति के बाद करे। ऐश्वर्य-कामी एवं समसामयिक नरेशों में गौरव पाने के इच्छुक राजा को उचित है कि, वह ऐसे पुरुष को अपना मंत्री बनावे, जो उसका नातेदार हो, विश्वस्त हो, कुलीन हो, निज देशोत्पन्न हो, दूसरे के पक्ष में जाने की जिसकी सम्भावना न हो, जो व्यभिचारी न हो अथवा जिसकी प्रवृत्ति अन्य दुर्व्यसनों की ओर न हो, जिसकी भली भाँति जाँच की जा चुकी हो, अच्छे घराने में जन्मा हो, वेद और धर्मशास्त्र की मर्यादा रखने वाला हो, जिसके घराने में परम्परागत राजसेवा का काम होता चला आया हो और जो निरभिमानी हो। राजा अपने राज्य की देखभाल के लिये ऐसे पाँच जनों को नियुक्त करे जो विनयी, उत्तम स्वभाव वाले, तेजस्वी, धैर्यवान्, क्षमाशील, शौच-परायण, राजभक्त और स्थिरचित्त हों। राजा ऐसे लोगों के गुण दोषों की परीक्षा ले और यदि वे कपटशून्य और कार्यभार उठाने की शक्ति से सम्पन्न हों तो उन्हें उक्त पद पर नियत कर दे। राजा ऐसे पुरुषों को राज्य के समस्त प्रकार के कार्यों का भार सौंप अपना मंत्री बनावे, जो वाक्पटु, चतुर, शूर, कुलीन, निर्णय करने में कुशल, बलवान, सङ्केतज्ञ, दयालु, देश-काल-पात्र के ज्ञाता और राजभक्त हों।

हे राजन्! जो पुरुष तेजोहीन पुरुष को अपना मंत्री बनाता है, वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय कभी कर ही नहीं सकता। वह हरेक काम में सन्देह उठा कर खड़ा कर दिया करता है। जो मंत्री श्रेष्ठकुलोत्पन्न है और धर्म, अर्थ तथा काम को सिद्ध करने वाला है; किन्तु यदि वह मूर्ख है तो वह राजकीय भेद को सुरक्षित नहीं रख सकता। अतः ऐसा पुरुष मंत्री के पद पर नियुक्त करने के योग्य नहीं है। जो पुरुष भले ही बुद्धिमान हो; किन्तु कुलीन नहीं होता, वह कार्यपटु और सूक्ष्मदर्शी न होने के कारण छोटे छोटे कामों में वैसे ही घबड़ा जाता है, जैसे पथ-प्रदर्शक-रहित अन्धा पुरुष मार्ग चलने से घबड़ा जाता है। जो पुरुष बुद्धिमान, शास्त्रज्ञ,

उपायज्ञ हो। फिर भी चञ्चलमना होता है, वह अपने पद पर रह कर चिरकाल तक कोई काम नहीं कर सकता। जो आदमी मूर्ख और निष्ठुर होते हैं, उन्हें यदि कोई कार्य सौंपा जाय, तो वे उस कार्य के परिणाम को सोचे बिना ही कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। इसका फल यह होता है कि, ऐसे लोग कभी अपने उद्योग में सफल नहीं होते। जो पुरुष मंत्री के पद पर रह कर भी राजभक्त न हो, उसका विश्वास राजा कभी न करे। उस पुरुष के सामने राजा कभी अपने गुप्त विचार प्रकट न करे। यदि कहीं राजा ने ऐसे मंत्री पर विश्वास कर लिया तो वह अन्य अपने सहयोगी मंत्रियों की सहायता से उस राजा का वैसे ही नाश कर डालता है, जैसे पवन की सहायता से अग्नि वृक्ष के खोखर में घुस उस वृक्ष को जला कर भस्म कर डालता है। राजा जब क्रुद्ध होता है, तब वह मंत्री को पदच्युत कर देता है और क्रोध के वशवर्त्ती हो, उस मंत्री से वाच्य कुवाच्य भी कह डालता है; किन्तु कुछ ही देर बाद राजा पुनः उसके ऊपर प्रसन्न हो जाता है। राजा के ऐसे बर्त्तावों को वही सह सकता है, जिसकी राजा के प्रति सच्ची भक्ति होती है और जो अपमान को भूल जाता है। साथ ही कभी कभी मंत्रियों का क्रोध, वज्र की तरह महाभीषण होता है। अतः मंत्रियों से राजा को सदा सावधान रहना चाहिये; किन्तु जो मंत्री अपने प्रभु राजा का हितैषी है, वह अपने राजा के अच्छे बुरे सब प्रकार के बर्त्तावों को सह लेता है। राजा को उचित है कि, सुख दुःख के साथी ऐसे मंत्री से हर काम में सलाह ले। भले ही कोई मंत्री अपने राजा में भक्ति रखता हो, सर्वगुण-सम्पन्न हो और बुद्धिमान हो; किन्तु यदि वह कपटी है तो राजा ऐसे के साथ गुप्त विषयों पर कभी परामर्श न करे। जिसका शत्रु के साथ मेलजोल हो, जो नागरिकों का सम्मान करता हो, राजा उस पुरुष को सुहृद न समझे और उसे अपना गुप्त रहस्य भी न बतलावे। मूर्ख, बेईमान, घमंडी, शत्रुसेवी, वाचाल, सुहृद भाव से शून्य, क्रोधी और लोभी पुरुष भी राजा के गुप्त विचारों को सुनने का अधिकारी

नहीं है। भले ही बहुत पढ़ा हुआ, भक्तिमान्, सत्कार का पात्र और जो अपने ऐश्वर्य से कुछ लाभ उठाये हुए हो; किन्तु यदि वह नवागन्तुक है तो ऐसा पुरुष भी राजा के गुप्त विचारों को सुनने का पात्र नहीं है। जिसका पिता अधर्माचरण करने के लिये तिरस्कारपूर्वक बहिष्कृत कर दिया गया हो, यदि वह किसी उच्चपद पर सम्मानपूर्वक नियुक्त कर दिया गया हो, तो वह भी राजा के गुप्त विचारों को जानने का अधिकारी नहीं है। साधारण अपराध के लिये जिसका धन अपहृत कर, जो निर्धन बना दिया गया हो, वह पुरुष यदि पूर्ण राजभक्त भी हो और उसमें यदि अन्य अनेक सद्गुण भी हों, तो भी राजा ऐसे पुरुष को गुप्त परामर्श में सम्मिलित न करे। राजा को तो गुप्त परामर्श में उन लोगों ही से सहायता लेनी चाहिये जो बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ, पण्डित, अपने राज्य में उत्पन्न, पवित्राचरणी, और ईमानदार हो। जो व्यवहारज्ञान और शास्त्रज्ञान रखने वाला, अपनी तथा दूसरों की प्रकृति पहचानने वाला और जो राजा का आत्मा के समान हितैषी हो, उस पुरुष को गुप्त परामर्श में राजा सम्मिलित करे। सत्यवादी, शीलवान, गम्भीर, लज्जालु, कोमल स्वभाव और परम्परागत राजसेवा-परायण पुरुष को राजा गुप्त परामर्श में सम्मिलित करे। सन्तोषी, सम्मानित, सत्यवादी, चतुर, पापद्वेषी, राजदरबार की रीतिरस्म में चतुर, और समवय वीर पुरुष को राजा के गुप्त परामर्श में, सम्मिलित होना चाहिये। जो पुरुष समझा बुझा कर सब को अपने वश में ला सकता हो, उसको शासनाभिलाषी राजा गुप्त परामर्श में शरीक करे। जिस वीर योद्धा पर लोगों का सच्चा विश्वास हो, जो नीतिज्ञ और विद्वान् हो, वह राजा के गुप्त परामर्श में सम्मिलित किया जा सकता है। इन गुणों से सम्पन्न तथा राजा और प्रजा की प्रकृति को जानने वाले तथा प्रतिष्ठाकामी तीन पुरुषों को राजा मंत्री बनावे और उनका भली भाँति सम्मान करे। मंत्रियों को चाहिये कि, वे अपने राजा के, राजसभा के सभासदों के तथा शत्रुओं के छिद्रों को जानने का प्रयत्न करते रहें।

मंत्रियों का मंत्र ही राज्य की जड़ है। क्योंकि मंत्रियों का मंत्र ही तो राज्य की वृद्धि करता है।

राजा अपने छिद्रों को वैसे ही छिपाये रहे जैसे कछुवा अपने सब अङ्गों को छिपाये रखता है। जो मंत्री अपने राजा के विचारों को गुप्त रखते हों, उन्हें राजा विद्वान् समझे क्योंकि राजा के गुप्त विचार, राजा का कवच हैं और वीर पुरुष मंत्र के अङ्ग हैं। पण्डितों ने जासूसों को राज्य की जड़ और मंत्र को राज्य का बल माना है। जब राजा और मंत्री, मद, क्रोध, अभिमान, तथा ईर्ष्या को त्याग देते हैं और आजीविका के लिये एक दूसरे की सहायता की अपेक्षा रखते हैं, तब वे दोनों सुख पाते हैं। जिस मंत्री में पाँचों प्रकार के छल न हों, उसके साथ राजा हर प्रकार का परामर्श करे। तीनों मंत्रियों के विचारों को अलग अलग समझ ले, तदनन्तर स्वयं बुद्धिपुरस्सर विचार कर, अपना निश्चय करे। फिर तीनों मंत्रियों के तथा अपने निश्चय को राजा राजपुरोहित से कहे। राजपुरोहित को ब्राह्मण वर्ण का और त्रिवर्ग का ज्ञाता होना चाहिये। राजपुरोहित जो कुछ निश्चय करे और यदि उस निश्चय से राजा के तीनों मंत्री सहमत हों, तो राजा उस विचार को सावधानतापूर्वक कार्यरूप में परिणत करे। मंत्र के सच्चे स्वरूप को जानने वाले विद्वानों का कहना है कि, राजा सदैव इसी प्रकार राजकाज का निश्चय करे और ऐसे काम किया करे, जिससे उसकी प्रजा का हितसाधन हो और प्रजा राजभक्त बने। विचार करते समय, विचारस्थान पर, इधर उधर, ऊपर नीचे, अथवा आस पास— कहीं भी बौना, कुबड़ा, दुबला, लूला, अँधा, मूर्ख, स्त्री या हिजड़ा, न रहना चाहिये। राजभवन के सब से ऊपर वाले खण्ड में अथवा किसी ऐसे एकान्त स्थल पर, जहाँ काफी प्रकाश हो, जहाँ घास फूस, झाड़ झंकार कुछ भी न हो—वहाँ बैठ कर गुप्त विचार करे। विचार करने के समय, चिल्ला कर न बोले, अङ्गों को न मटकावे और यथोचित समयानुसार विचार करे।

चौरासीवाँ अध्याय

प्रियवचन बोलने का फल

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर ! इस बारे में इन्द्र और बृहस्पति का संवादात्मक एक पुरातन इतिहास है। मैं तुम्हें सुनाता हूँ। सुनो।

इन्द्र ने पूछा—हे बृहस्पति ! वह सर्वगुण-सम्पन्न कौन सा आचरण है, जिससे पुरुष समस्त प्राणियों का प्रिय बन, बड़ा यशस्वी हो जाय ?

बृहस्पति ने कहा—हे देवराज ! ये सब बातें निष्कपट प्रियवचन के अधीन हैं। जो पुरुष सदा प्रियवचन बोलता है, उसे समस्त प्राणियों में मान्य महान् यश प्राप्त होता है। हे इन्द्र ! सब लोगों को प्रसन्न करनेवाला एक मात्र प्रियवचन ही है। जो पुरुष सदा प्रियवचन बोलता है, वह सब प्राणियों का प्यारा हो जाता है। जो पुरुष प्रिय मधुर वचन न बोल कर सदा त्योरी बदले हुए चुपचाप रहता है, उसका सब लोग तिरस्कार करते हैं। जो पुरुष हरेक के साथ मुसक्या कर बातचीत करने लगता है, उससे सब प्रसन्न रहते हैं। किसी को कोई वस्तु दी जाय; किन्तु मधुर वचन कह कर न दी जाय, तो वह दान, दानग्रहीता को वैसे ही प्रसन्न नहीं करता, जैसे बिना निमक और मसाले का शाक खाने वाले को प्रसन्न नहीं करता। हे इन्द्र ! यदि मधुर वचन बोल कर कोई किसी से वस्तु ले ले तो भी उस वस्तु का मालिक वस्तु लेने वाले के वश ही में रहता है। शासनकामी राजा को सदा प्रियवचन बोलने चाहिये। जो राजा प्रियभाषी है, उस राजा की प्रजा उसके वश में हो जाती है और उसके सामने जाते हुए प्रजाजन घबड़ाते नहीं। पुण्यात्मा, मधुर और कोमल वाणी बोलने वाले आदमी की सब लोग भली भाँति सेवा करते हैं और उसके समान इस जगत् में कोई पुरुष नहीं माना जाता।

भीष्म जी पुनः बोले—हे युधिष्ठिर! जब देवगुरु बृहस्पति ने देवराज इन्द्र से ये वचन कहे, तब से इन्द्र ने सब से प्रियवचन बोलने का व्रत धारण किया। हे कुन्तीनन्दन! तुम भी इन्द्र की तरह प्रियभाषी बनने का व्रत धारण करो।

पचासीवाँ अध्याय

मन्त्रिमण्डल

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! राजा को प्रजापालन किस प्रकार करना चाहिये, जिससे वह लोगों का सच्चा भक्तिभाजन बने और उसकी नामवरी चारों ओर हो।

भीष्म ने उत्तर दिया—हे राजन्! जो राजा कपट त्याग, धर्मपूर्वक, पक्षपात शून्य हो प्रजापालन करता है वह पुण्य और कीर्ति पा कर, अपना यह लोक और परलोक बना लेता है।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे महाबुद्धिमान पितामह! राजा को कैसा व्यवहार करना चाहिये? आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर यथार्थ दें। आपने पहले मुझे श्रेष्ठ पुरुष के जो लक्षण बतलाये हैं, वे सब लक्षण एक मनुष्य में होना सम्भव नहीं।

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! तुम्हारा कहना ठीक है। इतने श्रेष्ठगुण किसी भी मनुष्य में नहीं होते। ऐसे गुणों से सम्पन्न कोई भी मनुष्य इस संसार में नहीं मिल सकता। फिर उत्तम स्वभाव तो सचमुच दुर्लभ है। बहुत खोजने पर भी ऐसा मनुष्य नहीं मिलता। अतः राजा कैसे पुरुषों को बनावे, यह बात मैं संक्षेप में कहता हूं। सुनो। वेदज्ञ, चतुर स्नातक और ईमानदार चार ब्राह्मण, बलिष्ठ, शस्त्र-विद्या-निपुण आठ क्षत्रिय, इक्कीस धनाढ्य वैश्य, ईमानदार और विनयी तीन शूद्र और * आठ गुणों से सम्पन्न

---

* आठ गुण—१ सेवा करने को सदा तत्पर, २ कही हुई बात को ध्यान से

पुराणज्ञ सूत जाति का एक—इस प्रकार के सैंतीस आदमियों का एक मंत्रिमण्डल बनावे। इस मण्डल के सदस्य चतुर, ईमानदार, पचास वर्ष की उम्र वाले अर्थात् अनुभवी, ईर्ष्याविर्जित, श्रुति स्मृति के ज्ञाता, विनयी, समदर्शी, किसी विषय पर भली भाँति वाद विवाद कर के निश्चय करने वाले लोगों की सम्मति अपनी सम्मति के अनुकूल बना लेने वाले, न्याय कार्य में कुशल, वादी प्रतिवादी से जिरह कर सत्य घटना जान लेने वाले, धन-लोभ-रहित, * सप्त भयङ्कर दुर्व्यसनों से वर्जित हों। ऐसे लोगों का राजा एक मंत्रिमण्डल बनावे। इस मण्डल में से भी आठ मंत्रियों को चुन कर उनके सहायता से गुप्त विषयों पर विचार करे। इस मंत्रिमण्डल का प्रधानाध्यक्ष स्वयं राजा हो। मंत्रिमण्डल में निर्णय कर लेने बाद उस निर्णय की घोषणा सर्वसाधारण में करवा दे, जिससे वे तदनुसार वर्त्ताव करें। धरोहर का धन या विवादग्रस्त धन को राजा, राजकीय धन मान कर पचा न जावे। ऐसा करने से न्याय कलङ्कित होता है और राजा तथा मंत्रियों को पाप का भागी बनना पड़ता है। जिस राजा के यहाँ न्याय नहीं होता, उसकी प्रजा उससे वैसे ही दूर भागती है, जैसे बाज से पक्षी। ऐसे राजा का राज्य वैसे ही डूब जाता है जैसे समुद्र में भग्न नौका। जो राजा न्यायपूर्वक प्रजापालन नहीं करता और प्रजा पर अत्याचार करता है, वह स्वयं भयभीत रहता है। वह मरने बाद स्वर्ग प्राप्त नहीं करता।

हे राजन्! राज्य की उन्नति का मूलमंत्र न्याय है। मंत्री अथवा राज-पुत्र अथवा अन्य राजकर्मचारी न्यायासन पर बैठ कर, अन्याय करते हैं,

---

सुनना। ३ उसे समझना, ४ उसे याद रखना, ५ कार्य के परिणाम पर तर्क वितर्क करना, ६ एक ढंग से कार्य न होने पर, उसे अन्य ढंग से करने का विचार कर सकने की योग्यता, ७ व्यवहार ज्ञान और ८ तत्वज्ञान।

* सप्त दुर्व्यसन ये हैं,—१ शिकार, २ द्यूत, ३ स्त्रीसङ्ग ४ मदिरापान, ५ प्रहार, ६ कठोर भाषण और ७ हर बात में दोषान्वेषण करना।

और प्रजा को सताते और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं, तो राजा सहित वे सब नरकगामी होते हैं। जब बलवान पदाधिकारी निर्बलों पर अत्याचार करते हैं, तब प्रजा दयनीय हो विलाप करने लगती है, ऐसे ही अनाथों का राजा नाथ कहलाता है। वादी प्रतिवादी में विवाद उपस्थित होने पर उस विवाद का निपटारा साक्षी के ऊपर निर्भर है; किन्तु यदि वादी प्रतिवादी में से एक पक्ष का भी साक्षी न मिले, तो न्याय करने वाले राजा को निज सूक्ष्म बुद्धि से काम लेना चाहिये। सच बात जान लेने बाद राजा को उचित है कि, अपराधी को उसके अपराध के अनुरूप दण्ड दे। यदि अपराधी धनाढ्य हो तो उसे अर्थदण्ड देना चाहिये और निर्धन की स्वतंत्रता अपहरण कर उसे बन्दीगृह में डाल देना चाहिये। दुष्ट मनुष्यों को बाँध कर पिटवावे और शिष्टों को पुरस्कारादि प्रदान कर, उनका सत्कार करे। जो पुरुष राजा का खून कर डाले अथवा वध करने की चेष्टा करे, जो आग लगा दे, जो चोरी करे, जो दोगली औलाद पैदा करे, उसे भिन्न भिन्न प्रकार के देहान्त दण्ड दे। जो राजा न्याय करता है, वह यदि किसी को प्राणान्त दण्ड दे तो भी उसे पाप नहीं लगता; किन्तु वह धर्मात्मा ही समझा जाता है; किन्तु जो राजा मनमानी कर अन्याय करता है, उसकी इस लोक में बदनामी होती है और मरने के बाद वह नरक में पड़ता है। राजा को उचित है कि, वह ऐसा न करे कि, अपराध तो कोई करे और उस अपराध का दण्ड दूसरा कोई पावे। राजा को तो अपराधी के अपराध का भली भाँति शास्त्रोक्त विधि से तथा युक्तियों से निश्चय कर के यदि वह अपराधी सिद्ध हो तो उसे दण्ड दे अथवा निर्दोष सिद्ध हो तो उसे छोड़ दे। कैसी भी आपत्ति का समय क्यों न हो, राजा को दूत का वध कदापि न करना चाहिये, क्योंकि दूत का वध करने वाला राजा नरकगामी होता है। क्षात्रधर्म पर आरूढ़ रहने वाला, जो राजा सत्यवादी दूत का वध करवाता है, उसके पितरों को भ्रूणहत्या का पाप लगता है। दूत में सात गुण होने चाहिये, अर्थात् वह कुलीन, बहुकुटुम्बी, वाचाल, चतुर, मधुरभाषी, सत्यवक्ता और

पूर्वापर प्रसङ्ग को याद रखने वाला होना चाहिये। जिन मंत्रियों के ऊपर सन्धि विग्रह कराने का भार हो, वे धर्मशास्त्र में निष्णात, बुद्धिमान, धीर, लज्जालु और गुप्त बातों को गुप्त रखने वाले होने चाहिये। जो मंत्री कुलीन, बलवान, और शुद्धाचरणी होता है, वह प्रशंसनीय समझा जाता है। सेनापति भी इन्हीं गुणों से भूषित होना चाहिये, मंत्री को व्यूह रचना, मंत्र और आयुधों का ज्ञाता, पराक्रमी, वर्षा, सर्दी, घाम तथा वायु के प्रकोप को सहने वाला और परछिद्रान्वेषी होना चाहिये। राजा को उचित है कि, अपनी ओर से तो दूसरों को विश्वास करा दे; किन्तु स्वयं किसी पर विश्वास न करे, यहाँ तक कि उसे अपने पुत्रों का भी विश्वास नहीं करना चाहिये। हे अनघ! यही नीति शास्त्र का निचोड़ है। राजा का परमगुण यही है कि, वह किसी के ऊपर भी विश्वास न करे।

छियासीवाँ अध्याय

राजधानी निर्माण

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! अब आप मुझे यह बतलावें कि राजा को कैसे नगर में रहना चाहिये? क्या वह बाप दादों की राजधानी में रहे अथवा नयी राजधानी बनावे?

भीष्म जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! राजा का कर्तव्य है कि, पुत्र कलत्र एवं भाई बन्धु सहित, जिस नगर में उसे रहना हो, उसकी रक्षा किस प्रकार करना उचित है—सब से प्रथम विचारे। राजधानी की रचना कैसी होनी चाहिये, राजधानी के रक्षक दुर्गादि किस रीति से बनवाने चाहिये—सो सुन। सुनने के पीछे मेरे कथनानुसार ही कार्य करना। प्रथम राजा को सब प्रकार की सम्पत्ति और सामग्री से भरे पूरे छः प्रकार के दुर्ग बनवाने के बाद, नगर बसाना चाहिये। छः प्रकार के दुर्गों के नाम ये हैं—

* धन्व दुर्ग † गिरि दुर्ग, ‡ मनुष्य दुर्ग § मृत्तिका दुर्ग, ‖ वन दुर्ग और ¶ मही दुर्ग। इनमें से किसी भी तरह का एक दुर्ग बना राजा अपने राजभक्त मंत्री तथा सेना सहित नगर में रहे। राजधानी के चारों ओर परकोटा और खाइँ होनी चाहिये। नगर में हाथी, घोड़े और रथ रखने चाहिये। शिल्पकलाविशारद पुरुषों, तथा धर्मात्मा कार्यकुशल पुरुषों को राजधानी में बसावे। साथ ही नगर में अन्नभाण्डार भी रखे। राजधानी में तेजस्वी पुरुष भी रहने चाहिये। नगर में बड़े बड़े चौराहे और बाज़ार भी बनवाने चाहिये। नगर में नीति के साथ सच्चा व्यवहार करना चाहिये। नगर में नीति के साथ सच्चा व्यवहार करने वाले व्यापारी भी होने चाहिये। नगर में शान्ति स्थापित कर, नागरिकों को निर्भय बनाना भी राजा का कर्त्तव्य है। नगर साफ़ सुथरा हो और रात में प्रकाश का समुचित प्रबन्ध हो। नगर में समय समय पर गीत वाद्य भी होता रहना चाहिये। उसमें बढ़िया बढ़िया भवन होने चाहिये। नगरनिवासियों में शूर वीर और धनाढ्य लोगों का रहना भी अनिवार्य है। नगर में वेदपाठी ब्राह्मण भी रहने चाहिये। नगर में देवताओं के उत्सव और मेले भी होते रहने चाहिये। यत्र तत्र देवपूजन भी होना चाहिये। राजा को अपनी राजधानी की नागरिक उन्नति करनी चाहिये। सैन्यसंग्रह रखना चाहिये, अपने हितैषियों की संख्या बढ़ानी चाहिये और लोकव्यवहार में निरत रहना चाहिये। राजधानी और राज्य भर से दुष्टों बदमाशों को छाँट-छाँट कर निकाल देना चाहिये। बर्तन भाँड़े के कोठारों, आयुध-शालाओं, अन्न के कोठारों और यंत्रशालाओं पर ऐसे लोगों को नियुक्त करना

---

* धन्व दुर्ग वह है जिसके चारों ओर निर्जल स्थान हो। † गिरिदुर्ग—पहाड़ी क़िला। ‡ मनुष्य दुर्ग—फ़ौजी छावनी। § मृत्तिका दुर्ग—मिट्टी के धुस्स का क़िला। ‖ वन दुर्ग—घने वृक्ष आदि से वन का क़िला। ¶ महीदुर्ग—ज़मीदोज़ क़िला।

चाहिये जो उनकी उन्नति करने में सदा सचेष्ट रहें। काठ, लोहा, धान की भूसी, कोयला, सींग, हड्डी, मज्जा, बाँस, तेल, घी, वसा, दवाइयाँ, सन, राल, धान्य, आयुध, बाण, चर्म, ताँत, बेत, मूँज और रामबाँस के रस्से रस्सियों को राजधानी में जमा करे। राजधानी में जल से लबालब भरे जलाशय और कूप बनवावे और दूध वाले वटादि वृक्ष लगवावे। राजा को उचित है कि राजधानी में वह आचार्य, ऋत्विज, पुरोहित, विशाल धनुर्धर, भवननिर्माता, ज्योतिषी, वैद्य आदि को आग्रह पूर्वक बसावे। शास्त्र-अर्थ-ज्ञ, बलवान और सब प्रकार के काम कर लेने वाले धार्मिक जनों का राजा सत्कार कर उन्हें अपने नगर में बसावे, राजा को उचित है कि समस्त वर्णों के लोगों को उनके वर्णोचित कर्मों में लगावे और जो अधर्मी पापी हों, उन्हें दण्ड दे। अपने राज्य में बसने वाले लोगों का—चाहे वे नगरनिवासी हों चाहे देहात के रहने वाले—सब का हाल चाल गुप्तचरों द्वारा राजा को जानते रहना चाहिये। राजा ऐसे कार्य करता है जिनसे प्रजा का हित साधन हो। राजा गुप्तचरों, मन्त्रियों, शासकों और भिन्न भिन्न पदार्थों के भाण्डारों की देखभाल स्वयं करे; क्योंकि इन्हींकी अच्छाई बुराई पर राज्य की उन्नति और अवनति निर्भर है। राजा नगरस्थ और मुफ़स्सिल-वासी, तटस्थ, शत्रु और मित्र लोगों का हाल चाल जानता रहे। गुप्तचरों द्वारा सब का हाल जान लेने बाद, राजा जैसा उचित समझे वैसा उन लोगों के साथ व्यवहार करे। राजा को उचित है कि, वह राजभक्तों का सत्कार करे और जो राजद्रोही हों, उन्हें दण्ड दे। नित्य यज्ञ याग करे, किसी को भी दुःख न दे कर, दान दे, प्रजा की रक्षा करे; किन्तु ऐसा कोई काम न करे, जिससे धर्म में बाधा पड़े। दीनों, अनाथों, वृद्धों और विधवा स्त्रियों का पोषण करना और उनकी आजीविका का प्रबन्ध करना राजा का कर्त्तव्य है। आश्रमवासी तपस्वियों का समय समय पर वस्त्र, पात्र और भोजन दे कर सत्कार करता रहै। राजा सावधानता-पूर्वक अपने राज्य में बसने वाले तपस्वियों को निज शरीर, निज कार्य और निज

राज्य सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त बतलाता रहे। तपस्वियों के सामने राजा विनम्र हो कर रहे। जो तपस्वी कुलीन, बहुज्ञ और त्यागी हों, उनको राजा शय्या, आसन और भोजन दे कर, उनकी सेवा करे। राजा को उचित है कि, घोर से घोर सङ्कट उपस्थित होने पर भी तपस्वियों पर पूर्ण विश्वास करे, क्योंकि चोर भी तपस्वियों का विश्वास करते हैं। राजा अपना भाण्डार तपस्वियों को सौंप, उनसे समय समय पर उपदेश लेता रहे; परन्तु बार बार धनादि भेंट कर, उनका सत्कार न करे। क्योंकि तपस्वियों के पास धनादि देख, चोर उन्हें मार डालते हैं। जो विश्वासपात्र तपस्वी हों, राजा उनमें से सर्वश्रेष्ठ चार तपस्वियों को अपना परामर्शदाता बना ले। इन चार में से एक तो अपने राज्य में रहने वाले तपस्वियों में से हो और एक शत्रु राज्य के तपस्वियों में से हो, एक वनवासी तपस्वियों में से हो और एक सामन्त राजाओं के राज्य में बसने वालों में से हो। अपने राज्यवासी तपस्वी की तरह ही अन्य तीनों तपस्वियों के साथ राजा को व्यवहार करना चाहिये। राजा इन तपस्वियों का सत्कार करे, उन्हें मान दे और उनका पोषण करे। आपत्तिकाल में जब राजा शरण में आता है, तब उत्तम आचरण वाले ये तपस्वी उस राजा को उसके इच्छानुसार आश्रय देते हैं।

हे युधिष्ठिर! तुमने जो प्रश्न किया था, उसका संक्षिप्त उत्तर यही है। इससे अब तुम जान गये होगे कि, राजा को कैसे नगर में रहना चाहिये।

सतासीवाँ अध्याय

राज्यव्यवस्था और वाणिज्य-व्यवसाय व्यवस्था

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! अब आप मुझे यह बतलावें कि, मुझे किस प्रकार अपने देश की रक्षा करनी चाहिये, जिससे सारा देश मेरे वश में हो जाय।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज ! अब मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। तुम सावधान हो कर और मन लगा कर सुनो।

प्रत्येक ग्राम का एक ग्रामाधिपति होना चाहिये। फिर दस ग्रामाधिपतियों के ऊपर और एक अधिपति हो। फिर ऐसे दो अधिपतियों के ऊपर, एक अधिपति नियुक्त करे। फिर ऐसे पाँच अधिपतियों के ऊपर एक और अधिपति नियुक्त करे। फिर ऐसे दस अधिपतियों के ऊपर, एक अधिपति नियुक्त करे।

ग्रामाधिपति का कर्त्तव्य है कि, वह उस ग्राम के रहने वालों के आचरणों और वारदातों की सूचना समय समय पर दसग्रामाधिपति को देता रहे। दस ग्रामों का अधिपति अपने अधीनस्थ दसों ग्रामों के मनुष्यों के आचरणों तथा अपराधों की सूचना बीस ग्रामों के अधिपति को दे और बीस ग्रामों के अधिपति, अधीनस्थ ग्रामों के अपराधियों की सूचना, शत ग्रामाधिपति को दे। शतग्रामाधिपति, सहस्र ग्रामाधिपति को सूचना दे। ग्रामाधिपति अपने अधीनस्थ गाँव की उपज की देखभाल करता रहे और अपने भाग में जो वस्तुएँ आवें, उनका उपभोग करे। फिर वह अपने भाग के अनुसार दस ग्रामाधिपति को उसके पोषण के लिये पदार्थ दे। दश ग्रामाधिपति अपने अधीनस्थ ग्रामों से जो कुछ ले, उसमें से विंश ग्रामाधिपति को यथाभाग दे। शतग्रामाधिपति को राजा उसके भरण पोषण के लिये एक ग्राम की आमदनी दे. उसका सत्कार करे। यह गाँव काफ़ी बड़ा हो, समृद्धशाली हो और आबादी भी अच्छी हो। शतग्रामाधिपति के भरण पोषण के लिये दिये हुए ग्राम का प्रबन्ध सहस्र ग्रामाधिपति के अधीन होना चाहिये।

[नोट—कदाचित् यह इस लिये कि, जिससे उन ग्रामवासियों के ऊपर धन के लिये अत्याचार न किये जाँय]

सहस्र ग्रामाधिपति का निर्वाह एक साधारण नगर (क़स्बे) की आय से होना चाहिये। वह उस क़स्बे में रहे और उस क़स्बे में धान्य और

सुवर्ण की आय से अपना निर्वाह करे। वह युद्ध सम्बन्धी कार्यों की तथा राज्य के भीतरी मामलों की देखभाल करे। इन सब के तत्वावधान के लिये एक नीतिज्ञ मंत्री हो, जो इन अधिकारियों के काम-काज का निरीक्षण करे और इन लोगों के परस्पर सम्बन्ध का नियंत्रण करे। प्रत्येक नगर में एक ऐसा अधिकारी होना चाहिये, जो उस नगर के राजकर्मचारियों के कामकाज की देखभाल करता रहे। यह अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर आतङ्क रख, उनकी देखभाल वैसे ही करे, जैसे नक्षत्रमण्डल में एक विशालग्रह उच्च स्थान पर रह कर नक्षत्रों की देख भाल करता है। वह गुप्तचरों द्वारा समस्त कर्मचारियों का हालचाल जानता रहे। जो अधिकारी प्रजा की रक्षा के लिये नियुक्त किये गये हों, यदि वे प्रजा की रक्षा न कर, प्रजा के भक्षक बन जावें और प्रजा को सतावें, उनका धन छीन लें, और खोटे कर्म करने लगें, तो राजा उनसे प्रजा की रक्षा का शीघ्र प्रबन्ध करे। राजा माल की बिचवाली और लिवाली (खरीद फरोख्त) के हिसाब किताब, सड़कों की दशा पर, अन्न वस्त्र की भलाई बुराई पर, व्यवसाय में होने वाले लाभ और हानि पर, निगाह रखे और व्यापारियों पर कर बाँधे। सुनार, लुहार आदि शिल्पियों को उत्साहित कर उनकी उन्नति करना राजा का कर्त्तव्य है। इन शिल्पियों की आमदनी और ख़र्च की पड़ताल कर और शिल्पकला की दशा देख, राजा शिल्पियों पर कर लगावे।

हे धर्मराज! राजा कर लगावे, कर बढ़ावे; किन्तु ऐसा कर न लगावे, जिससे प्रजा तबाह हो जाय। किसी वस्तु की लागत और मज़दूरी को काट कर, उससे जो नफ़ा हो, उसी पर राजा को कर लेना चाहिये। कोई भी शिल्पी या व्यापारी क्यों न हो, जब तक उसे कुछ लाभ नहीं होता, तब तक वह कोई काम नहीं करता। अतः राजा तथा व्यापारी या शिल्पी को समानरूप से लाभ हो—यह बात दृष्टि में रख कर, राजा को कर लगाना चाहिये। राजा कर लगाते समय तृष्णा में न फँसे, क्योंकि

तृष्णा में फँसा राजा अपने आधार स्वरूप खेती बारी, वाणिज्य व्यवसाय और शिल्प को चैापट कर डालता है। राजा को तृष्णा में न फँस, प्रजा का भक्तिभाजन बनना चाहिये।

जो राजा प्रजा पर करभार बढ़ा उसके धन को चूस लेता है, उस राजा को प्रजाजन घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। फिर जिस राजा से उसकी प्रजा घृणा करे, उस राजा का भला क्यों कर हो सकता है? जिस राजा से प्रजा अप्रसन्न रहती है, वह अपनी प्रजा से किसी प्रकार का लाभ नहीं उठा सकता। राजा को धीरे धीरे प्रजा से कर वैसे ही वसूल करना चाहिये जैसे बछड़ा गाय का दूध धीरे धीरे पीता है। जो बछड़ा यथेष्ट दूध पीता है, वह बड़ा होने पर यथेष्ट बलवान हो बड़े बड़े बोझ ढोता है; किन्तु यदि गौ का सब दूध दुह लिया जाय और बछड़े के लिये कुछ भी दूध न छोड़ा जाय, तो बछड़ा दुबला हो जाता है और वह भली भाँति अपना काम नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि राजा बड़े बड़े कर लगा कर प्रजा को निर्धन कर डाले, तो राजा प्रजा का सहयोग गँवा कर कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। जो राजा विवेक पूर्वक प्रजा की रक्षा करता है और उसमें से मिलने वाली आमदनी में से अपनी आजीविका चलाता है, उस राजा को अच्छा लाभ होता है। ऐसे राजा के ऊपर यदि कभी कोई सङ्कट आ पड़ता है, तो उसे प्रजा खूब धन देती है। उसका सुरक्षित किया हुआ राज्य उसके लिये भाण्डार रूप हो जाता है; किन्तु जिस देश और नगर के अधिवासी थोड़े धनी हों, उनको उनके माँगने पर राजा को धीरे धीरे धन की सहायता देनी चाहिये। जो राजा प्रजा की रक्षा जंगली लुटेरों डाकुओं से कर, प्रजा से इस रक्षा के बदले कर लेता है, उस राजा के साथ उसकी प्रजा सुख दुःख में सहानुभूति प्रदर्शित करती है। धन की आवश्यकता होने पर राजा अपनी प्रजा के सामने अपनी आवश्यकता प्रकट करे और बतलावे कि, चोरों और डाँकुओं को दण्ड देने के लिये उसे सेना नियत करने की आवश्यकता है, अतः इसके

लिये उन्हें धन चाहिये। इस प्रकार सूचना देने के बाद, राजा प्रधान प्रधान नगरों में लोगों को डरा धमका कर, उनसे कहे—तुम्हारे ऊपर आपत्ति आने वाली है। अन्य देश के राजा की चढ़ाई होने वाली है, जैसे बाँस में आने वाला फल तुरन्त नष्ट हो जाता है, वैसे ही वह आपत्ति भी नष्ट हो जाती है। बहुत से शत्रु और लुटेरे मिल कर, हमारे राज्य पर विपत्ति डालना चाहते हैं; किन्तु ऐसा करने से उनका अपना ही नाश होगा। यह भयानक आपत्ति आ पड़ी है, इस समय आपकी रक्षा करने के लिये मैं तुमसे धन माँगता हूँ। जब वह आने वाली विपत्ति दूर हो जायगी, तब मैं तुम्हारा धन तुम्हें लौटा दूँगा। यदि शत्रु लोग तुम्हारा धन लूट कर ले गये, तो फिर वह धन तुम्हें वापिस न मिलेगा। यदि तुम कहो कि यह धन तुमने अपने पुत्र कलत्र के लिये जमा किया है, इसे तुम्हें क्यों कर दे सकते हैं, तो हम कहेंगे कि, यदि रक्षा न की गयी, तो तुम्हारे स्त्री पुत्र आदि सब का नाश हो जायगा। अतः इस समय यदि तुम मुझे सहायता दोगे तो मैं अपनी शक्ति के अनुसार तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करूँगा। मेरा उदय होने पर मैं अपने आतङ्क से तुम्हें निज पुत्रवत् प्रसन्न करूँगा। तुम्हें इस समय वैसे ही यह व्ययभार उठाना चाहिये, जैसे बैल बोझ उठाता है। मनुष्य को हर समय धन से प्रेम न करना चाहिये। कालज्ञ राजा इस प्रकार मीठी मीठी बातें कह कर, प्रजा पर कर लगा अपने प्रतिनिधि किसी कर्म्मचारी को धन वसूल करने का कार्य सौंपे। नगर और क़िले का निर्म्माण करने के लिये, राज्य के नौकरों के भरण पोषण के लिये तथा शत्रु-भय को दूर करने के लिये और राज्य में सुख शान्ति बनाये रखने के लिये, राजा धन की आवश्यकता दिखला कर, व्यापारियों से कर ले। राजा व्यापारियों के साथ विचारहीन व्यवहार न करे। ऐसा करने से व्यापारी घबड़ा जाते हैं और उस राजा को छोड़ कर वन में भाग जाते हैं। अतः राजा व्यापारियों के साथ बहुत ही मृदु व्यवहार करे।

हे कुन्तीनन्दन! व्यापारियों को नित्य धीरज दे, उनकी रक्षा करे,

समय समय पर उनको पुरस्कृत करे। उनकी परिस्थिति को प्रत्येक क्षण निरीक्षण करता रहे। उनका पोषण करे और सोच विचार कर ऐसे काम करे, जिससे व्यापार की वृद्धि हो।

हे राजन्! व्यापारियों को नित्य उनकी मिहनत की उजरत दे जिससे वे देश की, व्यापार की तथा कृषि की वृद्धि करें। चतुर राजा दयालु और सावधान हो कर, व्यापारियों पर ऐसा कर लगावे, जिसे वे सह्य कर सकें। उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करे। राजा को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे व्यापारी सकुशल सर्वत्र आ जा सकें। इससे बढ़ कर और कोई काम नहीं है।

अट्ठासीवाँ अध्याय

कर लगाना और कर माफ़ करना

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! सामर्थ्यवान राजा को अपना धनागार किस प्रकार भरना चाहिये। आप मुझे अब धनागार भरने का उपाय बतावें।

भीष्म जी बोले—धर्मशील राजा को उचित है कि, वह प्रजाहित में तत्पर रहे और देश, काल तथा निज बुद्धि और बल के अनुसार प्रजापालन करे। वह अपने राज्य में ऐसे कार्यों को करवावे जिनसे अपनी और प्रजा की भलाई हो। जैसे मधुमक्खी शहद को और बछड़ा गौ के दूध को धीरे धीरे पीता है, वैसे ही राजा भी प्रजा से धीरे धीरे कर वसूल करे और ऐसा न करे, जिससे प्रजा का संहार हो जाय। राजा मृदु उपायों से प्रजा से वैसे ही कर ले, जैसे जोंक बिना पीड़ा पहुँचाये धीरे धीरे रक्त पी लेती है। जैसे शेरनी दाँतों से पकड़ अपने बच्चे को उठा लेती है और बच्चे के दाँत गड़ने नहीं पाते, वैसे ही प्रजा से राजा भी कर वसूल करे और प्रजा को सतावे

नहीं। जैसे पैने दाँतों वाला चूहा सुप्त मनुष्य के पैर का माँस धीरे से कुतर लेता है और सुप्त पुरुष मामूली पीड़ा से ज़रा सा पैर हिला देता है और उसके तीव्र वेदना नहीं होती और न वह चूहे को मार भगाता है, वैसे ही राजा भी धीरे धीरे प्रजा से कर वसूल करे, जिससे प्रजा दुःखी न हो तथा राजा का अपमान भी न करे। राजा आरम्भ में थोड़ा कर लगा कर, उसे धीरे धीरे बढ़ावे, जिससे प्रजा को कर की वृद्धि अखरे नहीं। लोग नये बछड़े को नाथ कर जैसे क्रमशः बोझ ढोने का अभ्यास डालते हैं, वैसे ही राजा भी क्रमशः कर रूपी फाँसी प्रजा के गले में डाले। यदि बछड़े पर एकदम बहुत सा बोझ लाद दिया जाय तो वह बछड़ा क़ाबू में न रह कर, उपद्रव मचाने लगता है और अन्त में मर जाता है और यदि क्रमशः बोझ रूपी पाश उसके गले में डाला जाय, तो वह क़ाबू में आ जाता है। इसी प्रकार प्रजा के साथ कर वसूल करते समय व्यवहार करे, ऐसा करने से प्रजावश में रहती है। यद्यपि समस्त प्रजा को अपने वश में कर लेना किसी भी राजा के मान की बात नहीं; तथापि चतुर राजा प्रजा के मुखियों को अपने क़ाबू में कर ले, तदनन्तर इतर-जनों को वश में करे। प्रथम ऐसे मनुष्यों को मिलाना चाहिये जो करभार को सहन कर सकते हों। राजा प्रजाजनों में उनके मुखियों के द्वारा भेदभाव उत्पन्न करवा दे। तदनन्तर राजा मध्यस्थ बन प्रजाजनों को समझा बुझा कर, शान्त कर दे और अपने को जो पाना है वह अनायास पा कर, सुखी हो। जो कर न दे सकते हों, उनसे कर न लेना चाहिये। राजा को बिना आवश्यकता पड़े प्रजाजनों पर कर न लगाना चाहिये और जब आवश्यकता हो, तब प्रजाजनों को धीरे धीरे समझा बुझा कर, समयानुसार, पुरातन पद्धति के अनुसार कर वसूल करना चाहिये।

हे धर्मराज! मैं तुझे जो उपाय बतलाता हूँ, वह राजनीति है। कपटाचार नहीं है। जो मनुष्य बिना उपाय के घोड़े को वश में कर लेना चाहता है। वह घोड़े को भड़का देता है। इसी प्रकार जो राजा बिना युक्ति के प्रजा

से कर लेना चाहता है, वह प्रजा को अपने ऊपर अप्रसन्न करता है। राजा को उचित है कि, वह शराब की दुकान रखने वालों, वेश्याओं (व्यभिचार परायणा वेश्याओं न कि गीत, नृत्यकला प्रवीण नर्तकियों), कुटनियों, नटों, जुआखाने रखने वालों तथा अन्य ऐसे दुर्व्यसनों का प्रचार करने वालों को जिनसे राज्य चौपट होता है—दण्ड दे और उन्हें अपने क़ाबू में अपने वश में रखे। ऐसे लोग जहाँ रहते हैं, उस देश या राज्य में बसने वाले शिष्टजनों को सताते हैं। भगवान मनु कर सम्बन्धी व्यवस्था इस प्रकार दे गये हैं। राजा सुसमय में ब्याजू रुपये या कर के रूप में धन वसूल न करे, आपत्ति काल को छोड़ कभी कोई किसी से धन की याचना न करे। क्योंकि यदि सब लोग याचना करने के आदी हो गये तो वे सब के सब नष्ट हो जाँयगे। श्रुति कहती है, यद्यपि प्रजा को वश में रखने का काम राजा का है; तथापि जो राजा अपना यह कर्त्तव्य पालन नहीं करता, उस राजा को प्रजा के किये पापों के चतुर्थांश का भागी बनना पड़ता है। अर्थात् राजा जैसे प्रजा के चतुर्थांश पुण्य का भागीदार है वैसे ही प्रजा के पाप के चतुर्थांश का भी वह भागीदार है। अतः राजा पापियों को दण्ड दे सदा उन्हें अपने वश में रखे। जैसे राजा पापियों पर अपना आतङ्क न रखने से प्रजा के पापों का आंशिक भागीदार होता है, वैसे ही प्रजा पर सुशासन करने वाला राजा, प्रजा के पुण्य में से कुछ अंश पाता है। शराब की भट्टियों का प्रसङ्ग ऐश्वर्य-विनाशक है। अतः राजा दुर्व्यसनों की वृद्धि करने वाले कार्यों को प्रश्रय न दे। जो मनुष्य दुर्व्यसनी है, उसके लिये कोई भी कार्य अकार्य नहीं है; किन्तु जो राजा स्वयं दुर्व्यसनी अथवा लम्पट होता है, वह स्वयं मद्य मांस खाता पीता है और परस्त्री परधन हरण करता है। साथ ही अपने इन दुष्ट कर्मों से प्रजाजनों को भी ऐसे दुष्ट कर्म करने के लिये उत्साहित करता है। जो लोग भीख माँगने का पेशा नहीं करते; किन्तु आपत्तिकाल में याचना करने को विवश होते हैं, उनको राजा दया या भय से नहीं; किन्तु अपना कर्त्तव्य समझ उन्हें अन्न आदि दे।

हे धर्मराज ! मैं तो यह चाहता हूँ कि, तुम्हारे राज्य में भिखारी और चोर कोई होवे ही नहीं। क्योंकि जहाँ ऐसे लोग होते हैं, वहाँ प्रजा का कल्याण नहीं होता, ऐसे लोग प्रजा का धन हरते हैं। जो लोग प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करते हैं और जो प्रजा की वृद्धि करते हैं, वे लोग ही तुम्हारे राज्य में रहें। प्रजाजनों का नाश करने वाले लोगों की संख्या तुम्हारे राज्य में न बढ़ने पावे। जो राजकर्मचारी नियत कर से अधिक कर प्रजा से वसूल करें उनको तुम दण्ड दो। करविभाग के कर्मचारियों की देखभाल के लिये अन्य कर्मचारी होने चाहिये, खेती, गोरक्षा, व्यापार आदि कार्यों में बहुत से लोग लगे रहने चाहिये। खेती, गोरक्षा और व्यापार करने वाले लोगों पर यदि कभी कोई विपत्ति आ पड़े तो इससे राजा की निन्दा होती है। भोजन, पान तथा वस्त्रों से राजा अपने राज्य के रईसों का सदा सत्कार करता रहे और उनसे यह अनुरोध करे कि, तुम मेरे ऊपर तथा प्रजाजनों के ऊपर कृपा बनाये रखना। धनी राज्य का एक विशेष अङ्ग माने गये हैं, क्योंकि वे ही प्रजाजनों के मुखिया होते हैं। वीर, धनी, बहुजनपालक, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी, और बुद्धिमान पुरुष इतर-जनों की रक्षा कर सकते हैं। अतः हे धर्मराज ! तुम सब लोगों पर स्नेह रखना और क्रोध-रहित हो उनके साथ सत्य, सरल और दयापूर्ण व्यवहार करना। तुम इस प्रकार धन तथा मित्रों को प्राप्त कर, पृथिवी पर सुशासन करना। प्रजा के साथ सत्य और सरल व्यवहार करना।

नवासीवाँ अध्याय

राजा की आचरणशुद्धि और प्रजारक्षण

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज ! तुम अपने राज्य में फलप्रद वृक्षों को मत कटवाना। क्योंकि बुद्धिमानों का कथन है कि, फल और मूल पवित्र

खाद्य पदार्थ हैं। ब्राह्मणों द्वारा खाते खाते जो बचे उसका उपयोग दूसरों को करने देना। ध्यान रखना कि ब्राह्मणों को पीड़ित कर अन्य लोग उनकी वस्तु उनसे न छीनने पावें। यदि कोई ब्राह्मण आजीविका की खोज में अन्य देश को जाने लगे, तो राजा (उसे न जाने दे और स्वयं) उसके लिये तथा उसके आश्रित परिवार के लिये आजीविका का प्रबन्ध कर दे। आजीविका बाँध देने पर भी यदि वह ब्राह्मण न रहे, तो राजा ब्राह्मणों की पंचायत में जा कर कहे—अमुक ब्राह्मण जब इस राज्य को त्याग कर जा रहे हैं, तब इस राज्य की प्रजा किसके आधार पर, निज मर्यादा बनाये रख सकेगी? राजा के यह कहने पर भी यदि वह ब्राह्मण न रहे और कुछ भी उत्तर न दे तो राजा उस ब्राह्मण को मनावे और कहे कि मेरी भूल को भूल जाइये और मुझे क्षमा कीजिये। ऐसा करना—हे कुन्तीनन्दन! राजा का सनातन धर्म है। राजा को उससे कहना चाहिये—हे ब्रह्मदेव! लोगों का कहना है कि, ब्राह्मण को उसके निर्वाह से अधिक धन न दे; किन्तु मैं यह बात मानने को तैयार नहीं हूँ। यह कह राजा उस ब्राह्मण की वृत्ति नियत करे और इस पर भी यदि वह न माने तो उसे बुला कर राजा राजसिक ऐश्वर्य भोगने को कह दे। सरांश यह कि, जैसे हो वैसे ब्राह्मण को राजा अपने राज्य से अन्यत्र न जाने दे और उसे अपने राज्य में रखे। कृषि, गोरक्षण और व्यापार—ये सांसारिक लोगों की आजीविका के साधन हैं। इनसे प्राणी सुखी रहते हैं। वेदाध्ययन में बाधा डालने वाले दस्यु हैं—प्रजा के शत्रु हैं। इन्हीं लोगों का नाश करने के लिये ब्रह्मा ने क्षत्रिय जाति की सृष्टि की है। जो राजा शत्रु को पराजित कर, प्रजा का रक्षण कर, यज्ञानुष्ठान कर और युद्ध में वीरतापूर्वक युद्ध कर, रक्षणीय जनों की रक्षा नहीं करता है, उस राजा से कोई लाभ नहीं। हे धर्मराज! राजा सब प्रजा जनों के हितार्थ सदा युद्ध करे और लोकरक्षार्थ शत्रुओं का हाल चाल लेने के लिये गुप्तचर नियुक्त करे। हे राजन्! तुम अपने अन्तरङ्ग लोगों से प्रजा की और प्रजा से अपने अन्तरङ्गों की रक्षा करना। अन्यों से

धन्वों की और अपने लोगों से अपने लोगों की सदा रक्षा कर, राजा प्रजा को सन्तुष्ट रखे।

हे राजन्! तुम्हें सब से अधिक तो अपनी रक्षा करनी चाहिये। तदनन्तर तुम्हें पृथिवी की रक्षा करनी चाहिये। पण्डितों का मत है कि, जब अपना शरीर रहता है, तभी ये सब अपने काम आते हैं। राजा को उचित है कि, वह प्रतिदिन मन ही मन विचारता रहे कि, मेरे छिद्र क्या हैं? मैं किस दुर्व्यसन में फँसता जाता हूँ? मेरी निर्बलताएँ कौन कौन सी हैं और उनके कारण क्या हैं? मुझसे आज कौन सी भूल बन पड़ी? कल मैंने जो काम किये थे, उनकी लोग प्रशंसा करते हैं या निन्दा? मेरे आचरणों के सम्बन्ध में प्रजा जनों का क्या मत है? लोग मेरे यश को अच्छा समझते हैं या बुरा? इन सब बातों की खोज ख़बर लेने के लिये राजा को गुप्तचर रखने चाहिये और प्रजा जनों के विचारों को जानते रहना चाहिये। धर्मज्ञ, धैर्यवान, संग्राम में पीठ न दिखाने वाले, काम धन्धा कर आजीविका चलाने वाले, राज्याश्रय में जीवन व्यतीत करने वाले, राजा के मंत्री और तटस्थ लोगों में जो तुम्हारी निन्दा करें और जो प्रशंसा करें, उन सब का तुम सत्कार ही करना।

हे धर्मराज! यह सम्भव नहीं है कि, एक बात सब को अच्छी ही लगे। क्योंकि लोगों में कोई अपना मित्र होता है कोई शत्रु होता है और कोई तटस्थ होता है।

युधिष्ठिर ने कहा—समान बाहुबल वाले और समान गुणी होने पर भी उनमें से एक व्यक्ति सब के ऊपर क्योंकर आधिपत्य जमा लेता है।

भीष्म जी ने कहा—जैसे क्रुद्ध विषैले सर्प दूसरे सर्पों को खा जाते हैं, वैसे ही पद पर प्राणी पदचर प्राणियों को खा जाते हैं। डाढ़ वाले बिना डाढ़ वालों को खा जाते हैं। अर्थात् इस नियमानुसार ही बलवान राजा निर्बलों के ऊपर आधिपत्य जमा लेता है। हे धर्मराज! राजा को प्रजा जनों से सतर्क रहना चाहिये। यदि राजा असावधान रहता है तो

प्रजा जन उस पर गिद्ध पक्षियों की तरह एक साथ टूट पड़ते हैं। सस्ता या महँगा माल ख़रीदने वाले बनजारे जो घूम फिर कर राज्य में व्यापार करते हैं वे कर भार से पीड़ा पा कर, घबड़ावे नहीं। तुम्हारे राज्य के किसानों पर भी इतना करभार न पड़े कि, वे राज्य छोड़ कर भाग जाँय। क्योंकि किसान ही राजा का करभार उठाते हैं और अन्य जनों का पालन पोषण करने वाले भी वे ही हैं। देव, पितर, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पक्षी और पशु भी उन्हींके उत्पन्न किये हुए अन्न से पलते हैं।

हे धर्मराज! राज्य की उन्नति और राजा की रक्षा के जो साधन हैं—वे मैंने संक्षेप से तुम्हें बतला दिये अब मैं उन्हें विस्तार पूर्वक कहता हूँ।

नब्बे का अध्याय

अधर्म की रोक न करने का कुफल

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ आङ्गिरस गोत्री उतथ्य ने युवनाश्वनन्दन मान्धाता पर अनुग्रह कर क्षात्रधर्म सम्बन्धी जो बातें कही थीं, वे सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

उतथ्य ने कहा था—मान्धाता! तू यह तो निश्चय ही जान ले कि, राजा का जन्म धर्माचरण के लिये ही होता है। वह सुख चैन से दिन बिताने के लिये जन्म नहीं लेता। क्योंकि राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की रक्षा करे जो राजा धर्माचरणपरायण होता है, वह देवत्व को अर्थात् स्वर्गप्राप्त करता है और जो अधर्मी होता है। वह नरकगामी होता है। क्योंकि समस्त प्राणी धर्म के आधार पर ही स्थित हैं और धर्म राजा के सहारे रहता है। जो राजा अपने सहारे रहने वाले धर्म की अच्छे प्रकार रक्षा करता है, वही पृथिवीपति होता है। अत्यन्त धर्मात्मा और धनाढ्य राजा धर्ममूर्ति कहलाता है; किन्तु जो राजा अधर्म को नहीं रोकता उसे देवता त्याग देते हैं और वह सारे संसार में अधर्मी कह लाने लगता

है: किन्तु जो राजा धर्म की रक्षा करता है उसके सब काम पूरे होते हैं, और उसकी देखादेखी अन्य समस्त लोग भी आत्मोन्नति के लिये धर्माचरण करने लगते हैं। जो अपने राज्य में अधर्म की बाढ़ नहीं रोकता, वह राजा धर्माचरण को नष्ट कर, संसार में अधर्म का प्रचार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रजा को विविध प्रकार की आधि व्याधि के भय से भीत रहना पड़ता है। पुराने लोगों का यह मत है।

हे राजन्! जिस देश में अधर्म की रोक थाम नहीं है, उस देश में रहने वाले महात्मा पुरुष यह नहीं कह सकते कि अमुक वस्तु मेरी है। यहाँ तक कि उसी राज्य की प्रजा की किसी बात की मर्यादा ही नहीं रह जाती। जब लोगों में पाप की वृद्धि होती है, तब स्त्री, पशु, खेत, घर द्वार का नाश होता है। देवयजन बंद हो जाता है और कोई पितृश्राद्ध भी नहीं करता। यदि राज्य में अधर्म की बाढ़ न रोकी जाय तो लोग अतिथियों का आतिथ्य नहीं करते और ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर द्विजाति वेदाध्ययन नहीं करते। यदि अधर्म की बाढ़ न रोकी जाय तो ब्राह्मण यज्ञ नहीं कर सकते, प्राणियों के प्राण सङ्कटापन्न हो जाते हैं। प्रजा में शान्ति नहीं रहती। जब राज्य में पाप की रोकथाम नहीं की जाती तब इस लोक और परलोक के हित के लिये ऋषिगण राजारूपी धर्ममूर्त्ति को यह सोच कर उत्पन्न करते हैं कि, वह धर्म की रक्षा और उसका प्रचार करेगा। जिस राजा द्वारा धर्म की रक्षा और प्रचार होता है वह राजर्षि कहलाता है; किन्तु जो राजा धर्महीन होता है उसे देवगण वृषल कहते हैं। "वृष" का अर्थ है धर्म और "अल" से अभिप्राय है कि नाश करने वाला। अतः धर्मनाशी राजा वृषल कहलाता है। इसीसे राजा को धर्म की रक्षा और धर्म का प्रचार करना चाहिये। क्योंकि धर्म की वृद्धि ही पर समस्त प्राणियों की वृद्धि निर्भर है। धर्म के नाश से सब का नाश हो जाता है। अतः राजा धर्म का नाश न होने दे; प्रत्युत धर्म की रक्षा करे।

धर्म शब्द के दो अर्थ हैं अर्थात् धर्म धन देने वाला है और प्राप्त धन की रक्षा करने वाला है। हे राजेन्द्र! धर्म जगत् में पापों का रोक है। ब्रह्मा ने प्राणियों की रक्षा के लिये ही धर्म को उत्पन्न किया है। प्रजा पर अनुग्रह करने के लिये राजा को अपने राज्य में धर्म का प्रचार करना चाहिये। धर्म को श्रेष्ठ कहने के यही कारण हैं। हे पुरुषोत्तम! मनुष्यों में जो मनुष्य प्रजापालन करता हुआ श्रेष्ठ कर्म करता है, वही राजा कहलाता है। अतः हे धर्मराज! तुम भी काम और क्रोध का त्याग कर, धर्म ही की रक्षा करो। क्योंकि धर्म राजाओं का परम कल्याणकारक है। धर्म सब से बढ़ कर है और सब से बढ़ कर उज्ज्वल है। इस धर्म के मूल ब्राह्मण हैं। अतः ब्राह्मण सर्वथा पूज्य हैं। हे मान्धाता! ईर्ष्या त्याग कर लोगों को ब्राह्मणों की समस्त कामनाएं पूर्ण करनी चाहिये। जो राजा ब्राह्मणों की कामनाएं पूरी नहीं करता, उसको विपत्ति में फँसना पड़ता है। उसके मित्रों की संख्या का ह्रास होता है और उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ती है। विरोचन-सुत बलि मूर्खतावश सदैव ब्राह्मणों से ईर्ष्या किया करता था। अतः राजलक्ष्मी उसे त्याग कर इन्द्र के पास चली गयी थी। यह देख बलि को पश्चात्ताप हुआ—परन्तु अब पश्चात्ताप करने से होना जाना ही क्या था? राजलक्ष्मी से वञ्चित होना ब्राह्मणों के साथ ईर्ष्या और अभिमान करने का फल समझना चाहिये। अतः तुझे सदैव सावधान रहना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि तुझे भी राजलक्ष्मी त्याग दे। श्रुति कहती है दर्प लक्ष्मी से उत्पन्न, अधर्म का पुत्र है। इस दर्प ने बहुत से देवताओं को नष्ट किया है। यह बात तू भली भाँति हृदयस्थ कर ले। जो पुरुष दर्प को जीतता है वही राजा होता है और जो दर्प से जीत लिया जाता है, उसे दास बनना पड़ता है।

हे मान्धाता! यदि तुझे यह अभिलाषा है कि तू चिरकाल तक राजसिंहासनासीन बना रहे तो अपने में तू दर्प और अधर्म को मत घुसने दे। तुझे उचित है कि तू मदमत्तों, प्रमत्तों, उन्मत्तों, अज्ञानियों

और याजकों से घनिष्ठता न बढ़ावे। जहाँ ये सब जमा हों, वहाँ तुझे अपना परिचय न देना चाहिये। तुझे निम्न लोगों से सदा सावधान रहना चाहिये, मेरे द्वारा दण्डप्राप्त मंत्री से, विशेष कर स्त्रियों से, पहाड़ों से, ऊबड़ खाबड़ स्थानों से, दुर्गों से, अश्वों, गजों और सर्पों से। हे मान्धाता! तू रात में भ्रमण करने को मत निकलना और कृपणता, अभिमान, दम्भ, और क्रोध का त्याग देना। अपरिचित स्त्रियों के साथ और कन्याओं के साथ, वन्ध्या स्त्रियों के साथ, वेश्याओं के साथ, परस्त्रियों के साथ वार्तालाप मत करना। जब राजा असावधान रहता है; तब कुलीन घरानों में पापी और राक्षस जन्मते हैं। प्रजा में वर्णसङ्करों की वृद्धि होती है। नपुंसक, हीनाङ्ग, मूक और मूढ़ बालक उत्पन्न होते हैं। अतः प्रजा के कल्याण के लिये राजा धर्ममार्ग पर चले। जो राजा क्षात्र धर्म में असावधान रहता है, उसे बड़ा पाप लगता है। देश में और प्रजा को वर्णसङ्कर कर देने वाले अधर्म होने लगते हैं। गरमियों में ठंड पड़ती है, शीतकाल में गर्मी पड़ती है, कभी तो अतिवृष्टि होती है अथवा अनावृष्टि होती है। प्रजा रोगों से पीड़ित होती है। आकाश में धूमकेतु आदि भयङ्कर नक्षत्र देख पड़ने लगते हैं। साथ ही राज्य का नाश करने वाले बड़े बड़े उत्पात होने लगते हैं। यदि राजा आत्मरक्षा के उपाय नहीं कर सकता और न प्रजा की रक्षा करता है तो प्रथम तो उसकी प्रजा नष्ट होती है और पीछे उसका नाश होता है। तब दो आदमी मिल कर अकेले आदमी को लूट लेते हैं और अनेक पुरुष दो आदमियों को लूटते हैं। कुमारियों को दुष्ट मनुष्य दूषित करते हैं। ये सब काम राजा की मूर्खता से होते हैं। राजा जब प्रमादी होता है और कर्म को नष्ट करने लगता है तब कोई भी मनुष्य यह कह सकता कि, यह धन या यह वस्तु मेरी है। इसमें राजा ही का सरासर दोष होता है।

इक्यानवे का अध्याय

धर्म की रक्षा करने वाले राजा की बड़ाई

उतथ्य ने कहा—जब मेघराज समयानुसार वर्षा करता है और राजा धर्माचारी होता है, तब देश की सम्पत्ति बढ़ कर प्रजा का सुख से पालन होता है। जिस प्रकार सफ़ेद वस्त्र के मैल को जो धोबी दूर करना नहीं जानता, वह चतुर नहीं समझा जाता; उसी प्रकार, द्विजातियों में अपने वर्णधर्म को त्यागने वाला पुरुष शूद्र माना जाता है और वह उस मूर्ख धोबी जैसा समझा जाता है। शूद्र वर्ण का धर्म द्विजों की सेवा करना है, वैश्य वर्ण का धर्म कृषि और गोरक्षा है। राजा का धर्म प्रजापालन है, ब्राह्मण का कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक वेदाध्ययन करना और सत्यभाषण है। धोबी जैसे मलिन वस्त्र स्वच्छ करना जानता है, वैसे ही जो राजा प्रजा के दोषों को दूर करना जानता है, वह पिता अथवा प्रजापति के पद के योग्य है।

भीष्म जी कहते हैं—हे भरतसत्तम! उतथ्य कहने लगे कि, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग राजा के आचरण पर अवलम्बित हैं। अतः युग का कारण राजा ही है। जब राजा प्रमादवश निज धर्म को त्याग बैठता है, तब चारों वेद, चारों वर्ण और चारों आश्रम लुप्त हो जाते हैं। जब राजा प्रमादवश निज धर्म का त्याग करता है, तब गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय ये तीनों अग्नियाँ, वेदत्रयी और दक्षिणा सहित यज्ञ लुप्त हो जाते हैं। प्राणियों को उत्पन्न करने वाला राजा है और प्राणियों का नाश करने वाला भी वही है। जब राजा धर्माचरण-परायण होता है, तब वह प्रजा को उत्पन्न करता है और जब वह अधर्मी होता है, तब वह प्रजा का संहार करता है। जब राजा प्रमादवश धर्मकर्म त्याग देता है, तब उसकी रानियाँ, पुत्र, बान्धव और स्नेही दुःखी होते हैं और सब लोग एकत्र हो कर शोक करते हैं। जब राज अधर्मी हो जाता है, तब

हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट, खच्चर, गधे आदि समस्त पशुओं का बल नष्ट हो जाता है। हे मान्धाता! दुर्बलों की रक्षा के लिये ही विधाता राजारूपी बलवान पुरुष की रचना करता है। निर्बलों का पालन करना साधारण काम नहीं है। समस्त प्राणी राजा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं, राजा जब अधर्म के मार्ग पर चलता है, तब राजा के सेवक और राजवंशी दुःखी रहने लगते हैं। दुर्बल मनुष्य, मुनि और ज़हरीले सर्प की दृष्टि को, मैं बड़ा भयङ्कर समझता हूँ। अतः तुम दुर्बल को कभी मत सताना। दुर्बल मनुष्य को तिरस्कृत समझ उसका अपमान मत करना। कहीं ऐसा न हो कि दुर्बल के नेत्र बन्धु बान्धवों सहित तुम्हें जला कर भस्म कर डालें, तुम इस बात का सदा ध्यान रखना। क्रोध में भर दुर्बल जिस जिस कुल को भस्म कर डालता है, उस कुल की बेल आगे नहीं चलती। दुर्बल जन के नेत्र, अपना तिरस्कार करने वाले को जड़ मूल से भस्म कर डालते हैं, अतः तुम किसी निर्बल को मत सताना। क्योंकि बल की अपेक्षा निर्बलता अधिक बलिष्ठ और श्रेष्ठ मानी गयी है। निर्बल जन बलवान को भस्म कर डालता है और उसका नाम निशान शेष नहीं रहने देता। अपमानित पुरुष को यदि उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं मिलता, तो दैवी दण्ड से राजा का नाश हो जाता है। हे तात! तुम किसी भी दुर्बल के साथ शत्रुता मत करना। उसका धन मत छीनना। ध्यान रखना कि आग जैसे लकड़ी को जला कर भस्म कर डालती है, वैसे ही दुर्बल जन की दृष्टि तुझे जला कर कहीं भस्म न कर डाले। जिस समय कोई निरपराधी दोषी ठहराया जाता है और उस समय उसके जो आँसू निकलते हैं, वे उस पुरुष को उसके पुत्रों और पशुओं सहित नष्ट कर डालते हैं, जिसने उसे झूठा दोष लगाया था। जैसे खेत में बीज बोते ही तुरन्त फल नहीं उगते, वैसे ही पाप करने पर तुरन्त फल नहीं मिलता। यदि पापकर्म करने वाले को उसके किसी पाप का फल न मिले तो उसके पुत्रों को अथवा पौत्रों को अथवा दौहित्रों

को मिलता है। यदि कोई दुर्बल को मारे और उस समय उसे बचाने वाला कोई न मिले, तो दैव की ओर से उसे दारुण दण्ड मिलता है। जिस देश की प्रजा ब्राह्मणों की तरह भिक्षा वृत्ति वाली हो जाती है, उस देश के राजा का क्षण क्षण में नाश होने लगता। जब किसी राजा के नौकर, प्रजा को सताते हैं; तब उनकी करनी से सारा राष्ट्र सङ्कट में फँस जाता है। जब राजकीय कर्मचारी हाहाकार करती हुई दयनीय प्रजा का धन अन्याय पूर्वक स्वार्थवश लूटने खसोटने लगते हैं, तब समझ लेना चाहिये कि राजा के ऊपर कोई बड़ी भारी विपत्ति पड़ने वाली है। आरम्भ में बीज अङ्कुरित होता है, पीछे वह धीरे धीरे बड़ा भारी वृक्ष बन जाता है। फिर बहुत से प्राणी उस वृक्ष का सहारा लेते हैं। यदि वह वृक्ष काट डाला जाय अथवा जला कर भस्म कर डाला जाय, तब उस वृक्ष के आश्रय में रहने वाले प्राणी आश्रयहीन हो जाते हैं। जिस देश के राजा की प्रजा धर्माचरण-परायण होती है, विधिपूर्वक संस्कार करती है और राजा की प्रशंसा करती है उस देश का राजा पुण्य का भागी होता है; किन्तु जहाँ की प्रजा धर्म का स्वरूप समझ कर, अधर्माचरण करती है। उस देश का राजा पाप का भागी होता है। जिस देश में प्रजाजन खुल्लंखुल्ला पाप कर्म करते हैं, उसी देश के राजा के राज्य में कलियुग का प्रादुर्भाव होता है; किन्तु जो राजा दुष्टों को दण्ड देता है उसी राजा के राज्य की बढ़ती होती है। जो राजा समझ बूझ कर न्यायविभाग और समरविभाग में उपयुक्त मंत्रियों को सम्मान पूर्वक नियुक्त करता है उस राजा के राज्य की वृद्धि होती है, और उस का राज्य चिरकाल तक बना रहता है। जो राजा अपने उन प्रजा जनों का जो उत्तम कर्म करते और मधुर वचन बोलते हैं, आदर करता है, वह पुण्यात्मा राजा पुण्य का भागी होता है। राजा को उचित है कि वह अपने आश्रित जनों को अपने वैभव का भोग करा पीछे स्वयं उसका उपभोग करे। राजा को अपने मंत्रियों का अपमान कदापि न करना चाहिये। साथ ही उसे बलवानों अभिमानियों को दबा कर अपने वश में रखना चाहिये। क्योंकि

राजा का यह धर्म है। राजा, मन, वाणी और शरीर से समस्त प्रजाजनों की रक्षा करे। यदि राजकुमार भी कोई अपराध करे, तो राजा उसे भी क्षमा न करे। क्योंकि राजा का धर्म ही यह है। जब राजा दुर्बल जनों का पालन पोषण करता है, तभी उसकी वृद्धि होती है और वह आश्रितों के दल-बल बढ़ाता है। अतः ऐसा करना राजा का धर्म है। राजाओं के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत है राष्ट्र की रक्षा, चोरों का नाश और युद्ध में विजय प्राप्ति। राजा का अत्यन्त कृपापात्र भी यदि वचसा अथवा कर्मणा अपराध करे, तो राजा उसके अपराध को क्षमा न करे, उसे दण्ड दे। यह राजा का कर्त्तव्य है। राजा का यह भी कर्त्तव्य है कि, जो लोग जलमार्ग अथवा थलमार्ग से व्यापार करते हों; उनका पुत्रवत् पालन करे और किसी की मान मर्यादा को नष्ट न करे। राजा का यह भी कर्त्तव्य है कि, वह श्रद्धापूर्वक देवपूजन करे, उत्तम दक्षिणा वाले यज्ञ करे और काम क्रोध को वश में रखे। राजा सङ्कटापन्न जनों के, अनाथों के तथा वृद्ध पुरुषों के आंसू पोंछे और उन्हें सुखी बनावे। राजा का यह भी कर्त्तव्य है कि वह मित्रों की वृद्धि और शत्रुओं का संहार करे। राजा का यह कर्त्तव्य है कि, श्रद्धापूर्वक वह सत्य का सेवन करे, आश्रितजनों को ज़मीन जायदाद दे, अतिथियों और भृत्यों का सदा यथोचित सत्कार करे। जो राजा साधुपुरुषों के ऊपर अनुग्रह करता है और दुष्टों को दण्ड देता है, उस राजा को इस लोक में और परलोक में सुख मिलता है।

हे मान्धाता! राजा पापियों के लिये यमरूप और पुण्यात्माओं के लिये ईश्वर रूप है। राजा अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखने से ऐश्वर्य पाता है। यदि वह इन्द्रियों को अपने वश में नहीं रखता, तो वह नरकगामी होता है। ऋत्विजों, पुरोहितों और आचार्यों का राजा को सत्कार करना चाहिये और उनका सम्मान कर राजा को अपने प्रति उनकी प्रीति को आकर्षित करना चाहिये। जैसे यम प्राणीमात्र पर समान भाव से शासन करते हैं, वैसे ही राजा को भी भेदभाव न रख कर, समान भाव

से शासन करना चाहिये। राजा को सहस्राक्ष की उपमा दी जाती है, अतः राजा जिसे धर्म ठहरावे प्रजा उसीको धर्म माने। हे राजन्! तुम सावधानता पूर्वक क्षमा, बुद्धि, धृति और मति की शिक्षाग्रहण करना। तुम प्राणीमात्र के बलाबल का ज्ञान सम्पादन करना। और सत्यासत्य के भेद को जानना। तुम सब से मेलजोल रखना। हर एक को कुछ न कुछ देना। हर एक जन से मधुर वचन बोलना और ऐसे ढंग से नागरिकों तथा पुरजनों की रक्षा करना जिससे सब लोग सुखी रहें। हे तात! जो राजा चतुर नहीं होता, वह प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। राजा के लिये अपने साम्राज्य को यथावत् चलाना बड़ा भारी भार है और बड़ा ही कठिन काम है। जो राजा दण्डनीति का जानकार, चतुर और वीर होता है, वही नीतिवान् राजा प्रजा की रक्षा कर सकता है। जो राजा दण्डनीति नहीं जानता वह नपुंसक और बुद्धिहीन है। अतः वह राजा साम्राज्य भार उठाने के लिये सर्वथा अयोग्य है। तुम कुलीन, सुन्दर, कार्यपटु, राजभक्त, अनुभवी और विश्वस्त मंत्रियों के साथ रह कर, समस्त प्रजाजनों और तपस्वियों के अन्तःकरण की परीक्षा करना। ऐसा करने से तू समस्त प्राणियों के कर्त्तव्यों का जानकार हो जायगा और तेरा अपने देश में और विदेश में धर्म नष्ट नहीं होगा। धर्म, अर्थ और काम में, धर्म श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि क्या इस लोक में और क्या परलोक में धर्मात्मा ही सुखी रहते हैं। जो राजा अपने जनों का सम्मान करता है, वे जन राजा के पीछे अपने पुत्र कलत्र का भी त्याग कर देते हैं। अपने पास उत्तम पुरुषों को रखने के लिये तू उनको पुरस्कृत करना, उनके साथ मधुर वचन बोलना। सावधान रहना और भीतर वाहिर पवित्र रहना। ये बातें राज्य का ऐश्वर्य बढ़ाने वाली हैं।

हे मान्धाता! तू मेरे कथनानुसार वर्त्ताव करने में कभी प्रमाद से काम मत लेना। राजा को उचित है कि, वह सावधानतापूर्वक अपने और शत्रु के छिद्रों को देखे; किन्तु वह इसका ध्यान रखे कि, शत्रु उसके छिद्रों को

न जानने पावें, प्रत्युत स्वयं वह शत्रुओं के छिद्र जानता रहे। इसी नीति के अनुसार इन्द्र, यम, वरुण और समस्त राजर्षि बर्त्ताव करते चले आते हैं। अतः तुझे भी इसी नीति के अनुसार बर्त्ताव करना चाहिये। क्योंकि राजर्षियों से सेवित मार्ग पर चल कर तू भी दिव्यलोक प्राप्त कर लेगा।

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! महाबली देवर्षि, पितर और गन्धर्व धर्माचारी राजा की इस लोक और परलोक में बड़ाई करते हैं। हे युधिष्ठिर! जब उतथ्य ने इस प्रकार राजा मान्धाता को उपदेश दिया, तब मान्धाता ने निडर हो तदनुसार ही बर्त्ताव किया। फल यह हुआ कि, अखिल भूमण्डल पर उसने एकछत्र राज्य किया। हे युधिष्ठिर! तुम भी राजा मान्धाता के सेवित मार्ग का अनुसरण कर पृथिवी का पालन करो। ऐसा करने से तुम्हें स्वर्ग प्राप्त होगा।

बानबे का अध्याय

वामदेव गीता

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे कुरुकुल-श्रेष्ठ! जो राजा धर्माचरण में अटल अचल रहने के इच्छुक हों, उन धर्मात्मा राजाओं को किस प्रकार बर्ताव करना चाहिये।

भीष्म जी ने कहा—इस प्रसङ्ग में बुद्धिमान् और धर्मतत्त्वज्ञ वामदेव महर्षि ने एक पुरातन इतिहास कहा था, जो इस प्रकार है। एक समय, ज्ञानवान्, धैर्यवान् और पवित्रमना वसुमना नामक एक राजा ने, तपस्वी वामदेव से कहा कि, आप मुझे ऐसा उपदेश दें, जिसके अनुसार बर्ताव कर, मैं निज धर्म से कभी विचलित न होऊँ।

यह सुन कर, सुवर्णवर्ण नहुषनन्दन राजा ययाति की तरह राजा वसुमना से, सुखासीन महातपस्वी महर्षि वामदेव जी ने कहा।

वामदेव जी बोले—हे राजन्! तुझे धर्माचरण ही करना चाहिये। क्योंकि धर्म से बढ़ कर कोई पदार्थ नहीं है। धर्माचरण-परायण राजा समस्त पृथिवी को जीत सकते हैं। जो राजा धन से धर्म को श्रेष्ठ मानता है और धर्मवृद्धि की चिन्ता किया करता है, वह तेजस्वी हो जाता है; किन्तु जो राजा धर्म का विचार नहीं रखता और पशुवत् रह, अधर्माचरण करता है; उसके धन और धर्म दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। जो राजा अपने दुष्ट एवं पापी मंत्री के कथनानुसार बर्ताव करता है, वह राजा परिवार सहित मार डालने योग्य है। वह थोड़े दिनों में नष्ट हो जाता है। जो राजा राज्य के कारोबार को नहीं चलाता, वह भले ही सम्राट ही क्यों न हो, निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो राजा धन के लालच से राज्य करता है और अपने मुख से अपनी बड़ाई करता है, वह यदि अखिल भूमण्डल का भी स्वामी हो, तो भी तुरन्त नष्ट हो जाता है; किन्तु जो राजा भलाई की बातों को मानता है, ईर्ष्या रहित, बुद्धिमान और जितेन्द्रिय होता है, उसकी उन्नति वैसे ही होती है जैसे नदियों के मिलने से सागर की। हे राजन्! यदि कोई राजा निरन्तर धर्माचरण-परायण हो एवं अर्थ और काम से सम्पन्न हो, तो भी उसे अपने को "पूर्ण" न समझना चाहिये। यह सारा संसार धर्म के ऊपर टिका हुआ है। जो राजा इस नीति पर चलता है, वह यश, लक्ष्मी, प्रजा और प्रजा की प्रीति प्राप्त करता है। जो राजा धर्म पर श्रद्धावान् होता है, और धर्म और अर्थ की प्राप्ति का विचार किया करता है और अपेक्षित वस्तु की प्राप्ति के लिये उद्योग करता है, वह राजा निश्चय ही गौरव प्राप्त करता है। जिस राजा में स्नेह नहीं होता और जो राजा कृपण होता है और प्रजा को सताता है एवं दुस्साहसी होता है, उसका बहुत जल्द नाश होता है। जो मूर्ख राजा अपराधी को नहीं पहचान सकता, वह राजा इस लोक में अकीर्ति पाता है और मरने पर नरकगामी होता है; किन्तु जो राजा मानाई लोगों का मान करता और मधुरभाषण के महत्व को समझता है, यदि उसके ऊपर कभी दुःख आ पड़े, तो लोग उसके दुःख को अपना दुःख सम-

करते हैं। जो राजा राजनीति की बातों में किसी को मान नहीं देता अर्थात् किसी को गुरु नहीं बनाता, न दूसरों से परामर्श लेता है और धर्माधर्म का विचार न कर, मौज उड़ाने के लिये धन प्राप्त करना चाहता है, वह राजा चिरकाल तक सुख नहीं भोग सकता; किन्तु जो राजा धर्म का मर्म जानने के लिये गुरु करता है, सब राजकाज स्वयं ही देखता भालता है और यावत् लाभों से धर्मलाभ को बढ़ कर मानता है, वह राजा चिरकाल तक सुखी बना रहता है।

तिरानवे का अध्याय

राजा के अधर्मी होने से प्रजा पर अधर्म का प्रभाव पड़ता है

वामदेव बोले—हे राजन्! जब महाबलवान् राजा, निर्बलों को सताता है; तब उसकी देखादेखी उसके वंशधर तथा अन्य लोग भी वैसा ही बर्ताव करने हैं। इसका फल यह होता है कि, उसका राज्य बहुत दिनों नहीं चलता और शीघ्र नष्ट हो जाता है। जो राजा धर्माचरण करता है, उसका आदर्श मान उस राजा का इतरजन अनुकरण करते हैं। जिस देश का राजा उद्दण्ड एवं उच्छृङ्खल होता है और दुस्साहस पूर्ण काम किया करता है और शास्त्रोक्त राजलक्षणों से रहित होता है, उस राजा का देश शीघ्र नष्ट हो जाता है। जो राजा जीते हुए और स्वतंत्र रीति से रहने वाले क्षत्रिय राजाओं के परम्परागत आचरणों पर नहीं चलता, वह क्षात्रधर्म से च्युत हो जाता है। जो राजा पहले उपकार करने वाले और पीछे शत्रुता करने वाले राजा को रण में परास्त कर द्वेषवश उसको तिरस्कृत करता है, वह क्षात्रधर्म से भ्रष्ट माना जाता है। राजा को अपना आतङ्क जमाये रखना चाहिये—सदा आनन्द में रहे और सङ्कट आने पर उसे दूर करने का प्रयत्न करे। जो राजा ऐसा बर्ताव करता है, वह सर्वप्रिय होता है और राजलक्ष्मी कभी उसका साथ नहीं छोड़ती।

हे राजन्! जिसका तूने बिगाड़ा हो, उसको तू बना। क्योंकि जो शत्रु होता है वह भी भलाई करने से कुछ ही काल बाद मित्र बन जाता है। शत्रु को वशीभूत करने के लिये उसके साथ कभी मिथ्या व्यवहार न करे, और बिना कहे उपकार करे। कामना, क्रोध या द्वेषवश कभी अन्याय न करे, कठोर उत्तर न दे, कटुवचन न बोले। राजा को प्रियवस्तु मिलने पर हर्षित न होना चाहिये और अप्रिय के लिये सन्ताप न करना चाहिये। उसे तो प्रजा की भलाई ही की सदा चिन्ता बनी रहनी चाहिये। जो राजा गुणानुसार अपने सेवकों का सदा उपकार किया करता है उस राजा के समस्त कार्य अनायास सिद्ध हो जाते हैं और वह राजलक्ष्मी से भ्रष्ट नहीं होता। जो सेवक उन बातों से दूर रहता है जो राजा को पसंद नहीं हैं, उस राजभक्त सेवक को राजा सदा सावधान हो कर, अपना प्यारा समझे। इन्द्रिय को वश में रखने वाले, अपने सर्वथा अनुगामी, शुद्ध अन्तःकरण वाले, शक्तिमान और प्रीतिमान् जन को राजा उच्च पदों पर नियुक्त करे। जो जन राजभक्त हो, राजकाज सावधानता पूर्वक करता हो, उसे राजा धन की व्यवस्था के कार्य पर नियुक्त करे। मूढ़, विषयी, लोभी, दुश्चरित्र, शठ, कपटी, हिंसक, दुष्टबुद्धि, अनुदार, मद्यपी, ज्वारी, लम्पट, शिकार के दुर्व्यसनी और वे लोग जिन्होंने बहुत से शास्त्र नहीं सुने—ऐसे लोगों को राजा उच्चपद पर नियुक्त न करे। जो राजा ऐसे जनों को उच्चपद पर नियुक्त करता है, उसकी राजलक्ष्मी नष्ट हो जाती है। वह राजा ही अपनी उन्नति करता तथा महती राज्यलक्ष्मी प्राप्त करता है, जो आत्मरक्षा और अपने सेवकों की रक्षा करता है। जो राजा, राजभक्त गुप्तचरों द्वारा अपने अधीनस्थ राजाओं के कामों की देखभाल किया करता, वह राजा सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अपने से बढ़ कर बलवान् राजा को हानि पहुँचाने के बाद, और यह सोच कर कि, वह तो मेरे राज्य से बहुत दूर रहता है—असावधान हो न बैठे। क्योंकि बलवान का अपकार कर असावधान रहने वाले राजा के ऊपर उसके शत्रु अवसर पा वैसे ही झपटते हैं जैसे लवा पर बाज़। जिस

राजा का राज्य भली भाँति सुरक्षित है, जो संयतमना है, जो अपने बला-
बल को भली भाँति जानता है, वह अपने से निर्बल राजाओं पर आक्रमण
करे; किन्तु अपने से सबल पर चढ़ाई न करे। क्षात्रधर्म में तत्पर रहने वाले,
राजा समर में पराक्रम प्रदर्शित कर, धर्मपूर्वक प्रजापालन रूपी निज धर्म
का पालन करे एवं शत्रु का संहार कर और पृथिवी को पावे। इस संसार
में समस्त वस्तु नाशवान् हैं, कोई भी वस्तु अविनाशी नहीं है। अतः राजा
स्वयं निजधर्म का पालन करता हुआ प्रजा से प्रजाधर्म का पालन करावे।
राज्य की उन्नति के पाँच साधन ये हैं—१ दुर्ग की रक्षा २ युद्ध सामग्री का
यथेष्ट प्रबन्ध, ३ न्याय सभा की व्यवस्था, ४ मंत्रियों के साथ राजनैतिक
विषयों पर परामर्श और ५ प्रजा को सुख में रखने का प्रबन्ध।

हे श्रेष्ठ नरेन्द्र! जो राजा इन पाँच साधनों की सुव्यवस्था रखता है
उसीका राजा होना सार्थक है और जो ऐसा करता है, वही अपने राज्य की
रक्षा भी कर सकता है; किन्तु जो राजा स्वयं इन कामों की देखभाल कर
न सके—उसे उचित है कि, वह इन कामों को अधिकारियों को सौंप दे।
ऐसा करने से राजा चिरकाल तक राज्य करता है। लोग राजा उसीको बनाते
हैं जो दानशील है, जो वैभव का भोग दूसरों को कराने के बाद स्वयं भोग
करने वाला है, मृदुस्वभाव है, पवित्रचरित्र वाला है और जो दुःख में प्रजा-
जनों का साथ त्यागने वाला नहीं है। जो मनुष्य अपने कल्याण की बात सुन
कर, उससे ज्ञान सम्पादन करता है और अपने विचारों का आग्रह नहीं
करता, उसीके लोग वशवर्ती होते हैं। जो राजा अपना भला चाहने वालों
की उन बातों को जो उसके विचार के विरुद्ध है—नहीं सुनता, अथवा
लापरवाही से सुनता है, जो जीते हुए और न जीते हुए पुरुषों के एवं बुद्धि-
मान जनों के व्यवहार का अनुकरण नहीं करता, वह क्षात्रधर्म से
भ्रष्ट हो जाता है। राजा को उचित है कि, वह राजदण्ड-प्राप्त मंत्री और
स्त्रियों से, पर्वतों से, ऊबड़ खाबड़ भूमि से, दुर्गों से, गजों से, घोड़ों से
और सर्पादि विषैले जीव जन्तुओं से अपनी सदा रक्षा करे। जो राजा

अपने मुख्य मंत्रियों को त्याग कर नीच लोगों के साथ हेलमेल बढ़ाता है, तब विपत्ति पड़ने पर उसके दुःख का ओर छोर नहीं रह जाता और न वह राजकाज ही उचित रीति से चला सकता है। जो राजा चञ्चलमना है, जो बात बात में क्रुद्ध होता और द्वेष करता है, जो अपने गुणवान् नाते रिश्तेदारों को नहीं चाहता और उनका सम्मान नहीं करता, वह मानों सदा मृत्यु के पड़ोस ही में वास करता है। यदि कोई गुणवान पुरुष उसे अच्छा न भी लगे, तो भी जो राजा उनको प्रसन्न कर. उन्हें अपने काबू में रखता है, उसका यश इस जगत में चिरकाल तक नहीं रहता। तुम प्रजा पर अकारण कर मत लगाना। यदि कोई अप्रिय घटना हो जाय तो उसके लिये विशेष सन्तप्त मत होना और प्रिय बात होने से अत्यन्त हर्षित मत होना, किन्तु अच्छे काम करने में संलग्न रहना। तुम सदा इस बात पर ध्यान रखना कि, कौन से माण्डलिक राजा तुमसे मित्रता रखते हैं और कौन से राजा तुमसे डर कर तुम्हारा सहारा पकड़ते हैं। इनमें मध्यस्थ राजाओं का भी सदा ध्यान रखना। राजा कितना ही बलवान क्यों न हो, उसे दुर्बल से दुर्बल शत्रु का भी वह कभी विश्वास न करे। क्योंकि वे भारुण्ड पक्षी के सदृश होते हैं और राजा को असावधान पा उस पर आक्रमण कर बैठते हैं। राजा को सर्वगुण-सम्पन्न एवं प्रियभाषी होना चाहिये; किन्तु पापी लोग तो ऐसे राजा से भी द्रोह करने लगते हैं। ऐसे मनुष्यों का भी कभी राजा विश्वास न करे। नहुष-नन्दन राजा ययाति ने राजकार्य के विषय में कहा है—जो राजा, राजकार्य करने में प्रवृत्त हो—उसे नीच शत्रुओं का संहार कर डालना चाहिये।

चौरानवे का अध्याय

युद्धनिन्दा

वामदेव जी बोले—राजा को उचित है कि, वह युद्ध किये बिना ही विजयी हो। हे राजन्! ज्ञानवान् पुरुषों ने युद्ध द्वारा प्राप्त विजय को उत्तम कर्म नहीं बतलाया। यदि निज राज्य की जड़ सुदृढ़ न हो तो राजा अप्राप्त वस्तु को पाने की कामना न करे। जिस राजा के राज्य की जड़ें कमज़ोर होती हैं, उस राजा को लड़ने से कुछ भी लाभ नहीं है; परन्तु जिस राजा का देश धन धान्य से पूर्ण और समृद्धशाली होता है, जिस पर प्रजा का अनुराग होता है, जिस राजा के बहुत से मंत्री होते हैं, वही राजा सुदृढ़ मूलवाला कहलाता है। जिस राजा की सेना सन्तुष्ट रहे, और धीर, वीर एवं शत्रुओं को भगाने में प्रवीण हो, उस सेना ही से राजा विजयी हो सकता है और पृथिवी को निज अधिकार युक्त कर सकता है। जिस राजा के नगरवासी और देशवासी लोग दयालु और धनधान्य से भरे पूरे होते हैं, उस राजा की जड़ सुदृढ़ कहलाती है। राजा को जब शत्रु का प्राबल्य अवगत हो, तब वह परराज्य और परधन लेने का विचार त्याग दे। उसी राजा के वैभव और राज्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है जो प्राणि मात्र पर दया रखता है, काम करने में चतुर होता है, और निज शरीर की रक्षा करने में सावधान रहता है। जो राजा सद्व्यवहार-परायण निज जनों से भी कपट व्यवहार करता है, वह कुल्हाड़ी से वन को काटने की तरह, स्वयं ही अपना नाश कर डालता है। जो राजा अपने शत्रुओं के नाश करने में दत्तचित्त नहीं रहता, उस राजा के शत्रु कभी नष्ट नहीं होते; किन्तु जो राजा क्रोध को जीत लेता है, उसका कोई भी शत्रु नहीं होता। सत्पुरुष जिस काम को बुरा कहते हों उस काम को बुद्धिमान राजा को कभी न करना चाहिये। जो राजा कर्त्तव्य कर्म को पूर्ण कर सुख भोगने का इच्छुक होता है, उसे न तो लोग धिक्कारते हैं और न वह सन्तप्त होता है। जो राजा ऐसा

आचरण करता है वह इस लोक तथा परलोक को जीत कर सदा विजयी होता है।

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज! जब वामदेव जी ने यह कहा, तब राजा वसुमना ने तदनुसार ही समस्त कार्य किये। यदि तुम भी ऐसा ही बर्त्ताव करोगे तो तुम भी निश्चय ही इस लोक और परलोक को जीत लोगे इसमें तुम ज़रा भी सन्देह मत करो।

पंचानवे का अध्याय

समर नीति

युधिष्ठिर ने पूंछा—हे पितामह! जो क्षत्रिय अपने शत्रु को जीतना चाहे उसे कैसा बर्त्ताव करना चाहता है; कृपया यह आप मुझे बतलावें।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! अन्य राजा की सहायता लेकर, अथवा सहायता लिये बिना ही शत्रु पर चढ़ाई करे और कहे कि, मैं तुम्हारा प्रभु हूँ और तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम या तो मुझे कर दो या मुझसे युद्ध करो। उस समय यदि आक्रान्त राजा की प्रजा आक्रमणकारी को अपना राजा मान ले, तो युद्ध बंद हो जाता है; किन्तु यदि उस देश की प्रजा क्षत्रिय जाति की न हो और किसी प्रकार का विरोध करने को उठ खड़ी हो तथा अपने कर्त्तव्य से विमुख हो, तो आक्रमणकारी राजा को उचित है कि, उन लोगों को जैसे बने वैसे अपने अधीन कर ले। आक्रान्त देश की क्षत्रिय प्रजा यदि शस्त्र-धारिणी न हो और अपनी रक्षा करना न जानती हो और शत्रु को बलवान समझ डर जाय तो क्षत्रिय प्रजा को शस्त्र धारण करना चाहिये।

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया—हे पितामह! एक क्षत्रिय राजा दूसरे क्षत्रिय राजा पर जब आक्रमण करे, तब आक्रान्त राजा को आक्रमणकारी राजा के साथ कैसे लड़ना चाहिये?

भीष्म जी ने कहा—क्षत्रिय योद्धा को उस योद्धा के साथ न लड़ना चाहिये जो कवचधारी न हो। एक योद्धा एक समय में एक ही योद्धा के साथ लड़े और कहे—तू मुझ पर बाण छोड़ और मैं तुझ पर बाण छोड़ता हूँ। यदि वह योद्धा कवच धारण कर लड़ने आवे तो उसके साथ कवच पहन कर युद्ध करे। यदि वह सेनासहित लड़ने आवे तो सेनासहित उससे लड़े। कपटी योद्धा के साथ कपट युद्ध करे और धर्मयुद्ध करने वाले के साथ धर्मयुद्ध करे। रथियों के साथ अश्वारोही योद्धाओं को युद्ध न करना चाहिये; किन्तु रथी के साथ रथी ही युद्ध करे। विपन्न शत्रु के साथ युद्ध न करे। भयभीत और विजित शत्रु के साथ युद्ध न करे। युद्ध में भयङ्कर विष में बुझे और कर्णी शरों से काम न ले। युद्ध में ऐसे शस्त्रों का व्यवहार दुष्टजन ही किया करते हैं। न्याय के साथ युद्ध करना चाहिये और प्रहार करने वाले शत्रु पर क्रोध न करना चाहिये। निर्बल, घायल, पुत्रहीन से न लड़े। जिसका हथियार टूट गया हो, जिसके धनुष की डोरी टूट गयी हो, जिसका वाहन मारा गया हो, उसके ऊपर कभी वार न करे। युद्ध में जो योद्धा घायल हो, उसे या तो राजा उसके घर पहुँचा दे, या उसे सेना-शिविर में भेज उसका इलाज करवावे। यदि युद्ध में धर्म-युद्ध करता हुआ कोई वीर ऐसा घायल हो कि, उसके बचने की आशा न रह जाय या उसके शरीर से रक्त बहता हो तो उसको वध न कर, उसे छोड़ दे।

स्वायम्भुव मनु का कथन है—क्षत्रियों को उचित है कि वे धर्मयुद्ध करें। सत्पुरुषों का यह सदा का कर्त्तव्य है कि वे इस प्रकार लड़ें कि, जिससे उनकी बदनामी न हो। उन्हें धर्मयुद्ध के नियमों के विरुद्ध कभी बर्त्ताव न करना चाहिये। धर्मयुद्ध करने का अधिकारी यदि कपट युद्ध कर विजय प्राप्त करता है तो वह पापी समझा जाता है और अपनी करतूतों से वह पापी अपना नाश स्वयं कर डालता है। अधर्म से विजय प्राप्त करना दुष्टों का काम है। उचित तो यह है कि, अधर्मयुद्ध करने वाले को भी धर्मयुद्ध से जीते। अधर्म युद्ध

कर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा तो लड़कर मरजाना ही उत्तम है। पापी को पाप करते ही उसी क्षण पाप का फल नहीं मिलता जैसे पृथिवी में बोया हुआ बीज काल पाकर धीरे धीरे अङ्कुरित हो पल्लवित होता है, वैसे ही पापकर्म धीरे धीरे जड़ पकड़ कर पापी को समूल और सपरिवार नष्ट कर डालता है पापी को जब पापकर्मों द्वारा धन प्राप्त होता है, तब वह बहुत प्रसन्न होता है; किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि, पापकर्मों से कमाया हुआ धन पापकर्मों ही में व्यय होता है। प्रथम तो पापी की ख़ूब उन्नति होती है और वह पापकर्मों में डूब जाता है। धर्म को वह कुछ भी नहीं समझता और जो धर्मकर्म करते हैं उनकी वह हँसी उड़ाता है। वह धर्म को त्याग देता है और इसका फल यह होता है कि, अन्त में उसका सर्वनाश हो जाता है। वह वरुण के पाश में बाँधा जाता है, तिस पर भी वह अपने को अजर अमर माना करता है। जैसे चमड़े की थैली हवा भरने से फूल जाती है, वैसे ही पापी भी पाप से फूल उठता है। वह पुण्यकर्म तो कभी करता ही नहीं। जैसे नदी तट के रूख जड़ सहित तट के साथ उखड़ कर नदी की धार में बह जाते हैं, वैसे ही पापी भी जड़ सहित अर्थात् सकुटुम्ब नष्ट हो जाता है।। पत्थर पर पटक कर छोड़े हुए घड़े की तरह उस नष्ट हुए उस पापी की लोग निन्दा करने लगते हैं। अतः राजा धर्माचरण कर विजय प्राप्त करे और धर्म से ही धनोपार्जन कर अपना धनागार पूर्ण करे।

छियानबे का अध्याय

समरविजयी राजा का विजित प्रजाजनों के प्रति कर्त्तव्य

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! अधर्मपूर्वक यदि अखिल भूमण्डल का साम्राज्य ही क्यों न प्राप्त होता हो; किन्तु अधर्म पूर्वक कभी पृथिवी को न जीते। क्योंकि अधर्म से जीता हुआ राज्य कभी सुखप्रद नहीं होता। अधर्म पूर्वक प्राप्त विजय का सदा खटका बना रहता है और साथ ही ऐसे विजयी को

स्वर्ग प्राप्त नहीं होता। ऐसे विजय से उस विजयी राजा और उसके उस राज्य का नाश हो जाता है। जिस योद्धा का कवच युद्ध में टूट गया हो अथवा जिसने हथियार रख दिया हो अथवा हाथ जोड़े खड़ा हो, उसे बन्दी भले ही बना ले, पर जान से न मारे। विजित आक्रान्त राजा के साथ विजयी राजा युद्ध न करे; किन्तु एक वर्ष तक उसे अपने राजभवन में वंदी बना कर रखे और ऐसा उद्योग करे कि, वह यह कह दे कि, "मैं आपका दास हूँ"। यत्न करने पर भी यदि वह यह न कहे, तो विजयी राजा के राज-भवन में एक वर्ष तक वंदी रहने के कारण विजित राजा का नया जन्म माना जाता है और वह विजयी राजा का पुत्र कहलाने लगता है। अतः विजयी राजा का कर्त्तव्य है कि, वह विजित राजा को मुक्त कर दे। इसी प्रकार विजित राजा की कन्या को एक वर्ष तक अपने यहाँ रख कर, विजयी राजा उससे पूछे कि, तू मेरे साथ विवाह करना चाहती है या अन्य के साथ? इसके उत्तर में यदि वह दूसरे के साथ विवाह करने का निज अभिप्राय प्रकट करे तो उसे भी अपने यहाँ से विदा कर दे। इसी प्रकार विजित राज्य के दासों दासियों तथा धन सम्पत्ति को विजयी राजा एक वर्ष तक अपने घर में रखे। तदनन्तर उन्हें उनके स्वामियों को लौटा दे। चोरों से लिया हुआ धन राजा को अपने घर में न रखना चाहिये; किन्तु उसे व्यय कर डालना चाहिये। यदि गौ आदि पशु वह छीन कर लाया हो तो उन्हें वह ब्राह्मणों को दे डाले। ब्राह्मण उन गौओं का दूध पीवे। यदि वह बैल लाया हो तो उन्हें खेती के काम में लगावे अथवा उनसे बोझ ढुलवावे। वध्य पुरुष यदि चोर न हों तो उन्हें छोड़ दे और उनका धन उन्हें लौटा दे। राजा को राजा ही के साथ लड़ना चाहिये क्योंकि यही धर्म है। जो राजा न हो, उसे राजा के ऊपर कदापि प्रहार न करना चाहिये। जब दोनों ओर की सेनाएं भिड़ गयी हों और कोई ब्राह्मण आ कर बीच में खड़ा हो कर दोनों का बीच बिचाव कराना चाहे, तो उभय पक्ष के योद्धाओं को युद्ध बंद कर देना चाहिये। यदि इस पर भी किसी पक्ष का योद्धा युद्ध करता है, तो वह

केवल सनातन धर्म की मर्यादा ही को उल्लङ्घन नहीं करता, प्रत्युत वह अधर्म माना जाता है। जो क्षत्रियधर्म का नाश करता है और मर्यादा तोड़ता है वह क्षत्रिय नहीं गिना जाता है और क्षत्रियों की सभा में नहीं बिठलाया जाता। विजय की कामना रखने वाले राजा को उचित है कि, वह सनातन धर्म की मर्यादा को न तोड़े। धर्मयुद्ध से प्राप्त विजय से बढ़ कर अन्य लाभ नहीं है। आक्रमणकारी राजा शत्रु के देश को विजय करने के पीछे उन लोगों को जो आवेश में भर गये हों, तुरन्त मधुर वचनों से तथा उन्हें पुरस्कृत कर, अपने वश में कर ले। विजयी राजा के लिये यह एक उत्तम नीति है। यदि इस नीति के विरुद्ध वर्ताव किया गया तो वे लोग देश छोड़ चल देते हैं और विजयी राजा के शत्रु से जा मिलते हैं और विजयी राजा पर सङ्कट पड़ने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। विजयी राजा से पीड़ित विजित देश की प्रजा पीड़ित होने पर, यही चाहती है कि विजयी राजा दुःख पावे। वह उस नवागत राजा से नाराज़ रहती है और उस पर विपत्ति पड़ते ही वह उसके शत्रु से मिल उसको नष्ट कर डालती है।

वे शत्रु को कपटाचार द्वारा न तो सतावें और न उस पर ऐसा वार करें कि जिससे वह मर जाय। प्राण हरने वाले प्रहार से वैरी राजा को मार डालना अच्छा है; किन्तु उसके साथ कपट व्यवहार न करे। क्योंकि ऐसा करने से बड़ा भारी पाप लगता है। धर्मयुद्ध में किया हुआ प्रहार कीर्ति को बढ़ाने वाला है।

[नोट—कणिक की राजा धृतराष्ट्र को उपदिष्ट नीति और इस आर्ष नीति में कौड़ी मोहर का अन्तर है। हमारे प्राचीन आर्यावर्त्तवासियों को कपटाचार किसी भी रूप में और किसी भी दशा में अच्छा नहीं लगता था। न मालूम कणिक ने कहाँ शिक्षा पायी थी जो उसने आर्य आदर्श के सर्वथा विपरीत नीति का उपदेश धृतराष्ट्र को दिया था। हमारी धारणा तो यह है कि, कणिक ब्राह्मण न था; वल्कि वह ब्राह्मण का बनावटी रूप धरने वाला कोई म्लेच्छ था।]

जो राजा स्वर सेना, धन और पृथिवी से सन्तुष्ट रहता है, वह अपने पवित्र जीवन को अच्छा समझता है। जिस राजा का देश आबाद हो, समृद्धशाली हो और जिसकी प्रजा राजभक्त हो और जिसके मंत्रि तथा अन्य सेवकवृन्द सन्तुष्ट रहते हों, उस राजा की जड़ सुदृढ़ समझनी चाहिये। जो नृप ऋत्विजों, पुरोहितों, आचार्यों तथा शास्त्रज्ञ उत्तम पुरुषों का सत्कार और सम्मान करता है, वही राजा लोकवेत्ता या व्यवहारकुशल माना जाता है। इन्द्र को ऐसे ही व्यवहार से स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई थी। अन्य राजा लोग भी इसी व्यवहार से स्वर्ग पाना चाहते हैं। राजा प्रतर्दन ने महासमर कर, धन, धान्य और औषधियाँ पायी थीं; किन्तु उसने भूमि पर अपना अधिकार नहीं जमाया था। वह केवल भूमि की उपज ले लिया करता था। राजा दिवोदास ने शत्रु को जीत लेने के बाद, अग्निहोत्र के शेष घृत और भोज्य पदार्थों को छीना था। अतः उसकी लोगों ने बड़ी निन्दा की थी। उसने विजय प्राप्त कर जो कीर्ति पायी थी, वह उसके इस कर्म से नष्ट हो गयी थी। नाभाग नामक राजा ने वेदवेत्ता ब्राह्मणों के और तपस्वियों के धन के सिवाय, शत्रु का जीता हुआ धन और राज्य यज्ञ की दक्षिणा में ब्राह्मणों को दे डाला था। प्राचीन कालीन राजाओं के किये हुए ये बर्ताव हैं। उनके यह बर्ताव मुझे बहुत अच्छे जान पड़ते हैं। जिस राजा को अपनी भलाई करनी हो उसे दम्भ और कपट के सहारे विजय प्राप्त करने की कामना न करनी चाहिये; किन्तु सच्चे न्यायानुमोदित उपायों से वह विजय प्राप्त करने की अभिलाषा करे।

सत्तानवे का अध्याय

क्षात्र-धर्म

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे नरेन्द्र! क्षात्रधर्म से बढ़ कर पाप-वृद्धि-कारक अन्य कोई भी धर्म नहीं है। क्योंकि जब राजा युद्धयात्रा करता है और युद्ध

करता है, तब वह बहुत से मनुष्यों का संहार करता है। अतः हे भरत-सत्तम! आप बतलावें कि वे कौन से उत्तम कर्म हैं, जिनके अनुष्ठान से राजा को स्वर्ग प्राप्त होता है?

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज! मनुष्यहत्या के पाप से छूटने के लिये राजा को पापी मनुष्यों को दण्ड देना चाहिये, सत्पुरुषों को आश्रय देना चाहिये, यज्ञानुष्ठान करने चाहिये और दान देने चाहिये। यह सत्य है कि विजयाभिलाषी राजा प्रथम लोगों को दुःख देता है; किन्तु विजय प्राप्त कर वह प्रजाजनों को सुख भी तो देता है। राजा लोग यज्ञ और तप कर पाप से मुक्त होते हैं और प्राणियों पर अनुग्रह करने से उनके पुण्य की वृद्धि होती है। जैसे खेतिहर खेत की लुनाई कर, घास तथा निर्बल पौधों को निकाल कर खेत को साफ कर डालता है और इससे खेत की हानि नहीं होती, प्रत्युत खेत की उपज बढ़ जाती है; वैसे ही राजा लोग मारने योग्य शत्रुओं को विविध प्रकार से मार कर, जो सत् पुरुष बच जाते हैं, उनकी यथेष्ट वृद्धि करते हैं। इसीसे उनके उस पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है। जो धन की लूट से जनसंहार से और दुःखों से, लोगों की प्राणरक्षा करता है, इससे राजा धन, जीवन और अन्न देने वाला माना जाता है। इस प्रकार वह सब प्रकार के यज्ञों से यजन करके राजा लोगों को अभयरूपी दक्षिणा देता है। इसीसे वह इस जगत् में सर्वसुख भोग कर, मरने बाद स्वर्ग में जाता है। जो राजा, ब्राह्मणों के पीछे युद्ध करने को जाता है वह अपने शरीर को यज्ञस्तम्भ मान, अपार दक्षिणा वाला यज्ञ करता है अर्थात् उसे ब्राह्मण की रक्षा करने से अपार दक्षिणा वाले यज्ञ करने का पुण्यफल प्राप्त होता है। जो राजा समर में भयभीत न होकर और निर्भय हो तरकस से तीर निकाल शत्रु पर प्रहार करता है, देवगण उसीको इस भूतल पर सर्वोत्तम मनुष्य मानते हैं। समर में वह राजा शत्रुओं पर जितने शस्त्रों का प्रहार करता है, उतने ही सकल मनोरथ पूर्ण करने वाले अक्षय्य लोकों की उसे प्राप्ति होती है। लड़ते समय

राजा के शरीर से जो रुधिर की धार बहती है वही रक्त की धार और शरीर की पीड़ा उस राजा के समस्त पापों को नष्ट कर डालती है। समर में सन्तप्त हो राजा को जो पीड़ा होती है, वही मानों उस राजा का तप है। यह धर्मवेत्ताओं का मत है। जैसे लोग वर्षा का जल (खेती आदि कामों के लिये) चाहते हैं, वैसे ही धर्मनिष्ठ धर्मभीरु जन वीरपुरुषों से आत्मरक्षा की आशा रख, समर में उनके पीछे रहते हैं। जो वीर अभय प्रार्थी को युद्ध के भय से बचा कर युद्ध में अपने पीछे रखते और स्वयं युद्ध की सारी झोंक अपने ऊपर लेते हैं, उन्हें बड़ा पुण्य होता है। भयभीत जन उनके द्वारा सुरक्षित हो वीरों की शूरता की सराहना करते हैं, उन्हें प्रणाम करते हैं। अतः उनका वह कर्म (वीरत्व प्रदर्शन) उनके अनुरूप और न्यायानुमोदित कहलाता है। देखने में तो सभी मनुष्य एक से जान पड़ते हैं; किन्तु उनके कामों में बड़ा अन्तर होता है। जब समर-भूमि में सेनाएं आपस में भिड़ जाती हैं और मारकाट होने लगती है तब कितने ही वीर तो शत्रुसैन्य के सामने जा डटते हैं और कितने ही भाग जाते हैं; किन्तु जो वीर होते हैं, वे शत्रु सैन्य के सामने से कभी नहीं हटते। ऐसा कर वे स्वर्ग का द्वार अपने लिये खोल लेते हैं। जो रणभीरु योद्धा समरक्षेत्र से भाग जाते हैं, वे अपने सहायकों को विपत्ति में पटक देते हैं। जो योद्धा घायल हुए बिना ही अपने सहायकों को समरभूमि में छोड़ घरों को भाग जाते हैं, उन अधम जनों को जातिच्युत कर देना चाहिये। ऐसे लोगों पर इन्द्रादि देवता अप्रसन्न होते हैं और उन पर तरह तरह के सङ्कट डालते हैं। जो क्षत्रिय हो कर अपनी जान बचाने के लिये अपने साथियों का साथ छोड़ देते हैं, उन्हें लाठियों और ढेलों से मार डालना उचित है अथवा सरपत से लपेट उन्हें अग्नि में जला देना चाहिये। ऐसे क्षत्रिय योद्धाओं को पशु की तरह मार डाले। खाँ खाँ कर थूकता और हगता मूतता और करुणोत्पादक रुदन करता जो क्षत्रिय खटिया पर मरता है, वह बड़ा भारी पापी है। जो क्षत्रिय विना घाव खाये मरता है,

प्राचीन इतिहासज्ञ उसकी प्रशंसा नहीं करते। हे तात! क्षत्रियों का घर में मर जाना अच्छा नहीं समझा जाता। उनका तो रणक्षेत्र में मारा जाना ही श्रेष्ठ माना गया है। क्षत्रिय का खटिया पर पड़ कर मरना महाअधर्म और महानिन्द्य माना जाता है। जो क्षत्रिय रोगी हो खटिया पर पड़ा पड़ा यह चिल्लाता है कि, हाय यह बड़ा कष्ट है, मैं बड़ा पापी हूँ, वह क्षत्रिय नहीं है। जिस क्षत्रिय का खटिया पर पड़े हुए मुख मलिन हो जाय, जिसके शरीर और वस्त्रों से बदबू निकले, जो रो रो कर अपने घर वालों को शोकातुर कर डाले, वह क्षत्रिय क्षत्रिय नहीं है, वह महानीच है। जो वीर और गर्वीला क्षत्रिय होता है वह या तो आरोग्य शरीर की कामना करता है, अथवा वारंवार वीरोचित मृत्यु की कामना करता है; किन्तु वह खटिया पर कराहता हुआ घर के भीतर नहीं मरता। जो सच्चा क्षत्रिय सन्तान है, वह अपने नातेदारों के साथ, समर भूमि में रह कर और वैरियों का नाश कर, पैने शस्त्रों से घायल हो कर ही मरना चाहता है। जो मनुष्य काम और क्रोध के वशवर्त्ती हो अच्छी तरह रण में शत्रु से भिड़ता है और शत्रु उसके अङ्गों प्रत्यङ्गों को शस्त्र से काटते हैं तिस पर भी वह शत्रु की परवाह नहीं करता, उसकी लोग प्रशंसा करते हैं और मरने पर वह पुण्यात्माजन स्वर्ग को जाता है। जो वीर क्षत्रिय होता है वह शत्रु को रण में अपनी पीठ नहीं दिखाता। वह प्राणों की तिल बराबर भी परवाह् नहीं करता। वह तो जैसे हो, वैसे समर-भूमि में सब के आगे डटा रहता है और यदि लड़ाई में मारा जाता है, तो स्वर्ग को जाता है। जो क्षत्रिय युद्ध में शत्रुओं द्वारा घेरा जा कर और घायल होने पर भी ज़रा भी नहीं डरता या उदास नहीं होता, वही अक्षय्य लोक प्राप्त करता है।

अट्ठानवे का अध्याय

राजा अम्बरीष और इन्द्र का संवाद

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह! यह बतलाइये कि, जो वीर योद्धा समरक्षेत्र में पीछे पैर न रख, लड़ते लड़ते, मारे जाते हैं, वे किस लोक में जाते हैं।

भीष्म जी ने उत्तर दिया—हे धर्मराज! इस प्रसङ्ग में राजा अम्बरीष और इन्द्र का संवादात्मक एक प्राचीन उपाख्यान है, वह इस प्रकार है। नाभागनन्दन राजा अम्बरीष, जब अति दुर्लभ इन्द्रलोक में पहुँचा, तब उसने देखा कि, उसका सेनापति इन्द्र के साथ है। उसका सेनापति सब प्रकार से तेजस्वी था और देवरूप धारण किये एक उत्तम विमान में विराजमान था और उत्तरोत्तर ऊपर को चढ़ता चला जाता था। उदारमना अम्बरीष अपने सेनापति सुदेव को अपने से ऊपर गमन करते और उसकी समृद्धि को देख कर, बड़ा विस्मित हुआ और इन्द्र से पूँछा।

अम्बरीष ने पूँछा—हे देवराज! मैंने शास्त्रोक्त विधि से आसमुद्रान्त भूमण्डल पर राज्य किया है। पुण्यसञ्चय करने की इच्छा से शास्त्रोक्त विधान से चारों वर्णों के प्रजाजनों को धर्ममार्ग पर चलाया है। मैंने ब्रह्मचर्य के समस्त कठिन नियमों का पालन किया है। आचारवान् हो मैंने गुरुसेवा की है। राजधर्मानुसार मैंने वेद और नीति शास्त्र का अध्ययन किया है। अन्न जल से अतिथियों का आतिथ्य और स्वधा से पितरों की सेवा की है। स्वाध्याय से ऋषियों को तृप्त किया है और अच्छे अच्छे यज्ञ कर देवताओं को सन्तुष्ट किया है। मैं शास्त्रोक्त विधि से क्षात्रधर्म का पालन करता हूँ। मैंने समरभूमि में आगे बढ़ शत्रुसैन्य को परास्त किया है और बहुत से युद्धों में विजय प्राप्त किया है।

हे देवराज! यह सुदेव पहले मेरा सेनापति था और यह एक शान्त-स्वभाव योद्धा था। सो यह मुझसे भी ऊपर क्यों कर चला गया। उसने

यज्ञ कर न तो देवयजन किया और न शास्त्रोक्त विधि से ब्राह्मणों को तृप्त किया ; तथापि यह मुझसे आगे कैसे बढ़ गया ?

इन्द्र ने उत्तर दिया—हे तात ! सुदेव ने रणयज्ञ नामक बड़ा भारी यज्ञ किया है। उस यज्ञ का फल क्षत्रिय को छोड़ अन्य किसी को नहीं मिल सकता। रणयज्ञ से दीक्षित जो योद्धा कवच धारण कर, सेना के आगे आगे चलता है वही रणयज्ञ करने का अधिकारी होता है। यह शास्त्र का निश्चय है।

अम्बरीष ने पूँछा—हे इन्द्र ! रणयज्ञ में हवि क्या है ? घी क्या होना चाहिये ? उसमें दक्षिणा क्या देनी पड़ती है ? यज्ञ कराने वाले ऋत्विज कौन होते हैं ? आप मुझे ये सब बातें बतलावें।

इन्द्र बोले—रणयज्ञ में हाथी तो ऋत्विज रूप हैं, घोड़े अध्वर्यु हैं, शत्रुमाँस हवि और शत्रु का रक्त घृत कहलाता है। शृगाल, गिद्ध, काकोल तथा अन्य माँसभक्षी पक्षी रणयज्ञ के सदस्य हैं। वे यज्ञशेष घृत को पान करते हैं और हवि खाते हैं। चमचमाते और पैनाये हुए प्रास, तोमर, खड्ग, शक्ति और फरसा यज्ञकर्त्ता के स्रुवा हैं। धनुष के वेग पर निर्भर रहने वाला, बहुत तीक्ष्ण, शत्रुशरीर को काटने वाला और वेगवान बाण, रण-यज्ञ-कर्त्ता का बड़ा स्रुवा है। व्याघ्रचर्म के म्यान में रखी हाथीदाँत की मूठवाली तथा हाथी की सूँड़ को काटने वाली तलवार रणयज्ञ में रेखा करने वाला खड्गाकार लकड़ी का स्फिक् माना गया है। धधकता हुआ सा, अत्यन्त तीक्ष्ण और दृढ़ लोहे का बना हुआ प्रास, शक्ति, ऋष्टि और फरसों से बहुसंख्यक शत्रुओं पर किया गया प्रहार यज्ञीय द्रव्य है। लड़ाई में शरीरों से बड़े वेग से निकलने वाला रुधिर, रणयज्ञ की सकल कामनाओं को पूर्ण करने वाली और समृद्धि देने वाली पूर्णाहुति है। समरभूमि में काटो, मारो का जो चीत्कार होता है, वही रणयज्ञ के मण्डप का सामगान है। शत्रुसैन्य का अग्रभाग ही हविर्धान (हविरखने की जगह) है। गज, अश्व और कवचधारी योद्धाओं का समूह, रणयज्ञ में

श्येनचित् नामक यज्ञ कहलाता है। जब हज़ारों सैनिक मारे जाते हैं और उनमें जो रुण्ड या कबन्ध समरभूमि में खड़ा रहता है वह रणयज्ञ का खैर काष्ठ का यज्ञस्तम्भ है। अङ्कुश प्रहार से चिंघारते हुए गजों का चिंघारना इड़ा मंत्र है। हाथों की हथेलियों का शब्द वषट्कार है। दुन्दभियों के शब्द त्रिसामा उद्गाता है। ये ही सब रणयज्ञ की सामग्री हैं।

जब किसी ब्राह्मण की धन सम्पत्ति कोई छीन कर ले जाने लगे और तब जो वीर पुरुष अपने प्रिय शरीर को रण में होमता है और अपने आत्मा को यूप बनाता है, उसके लिये यह विपुल दक्षिणा वाला यज्ञ कहलाता है। जो वीर अपने स्वामी के लिये समरक्षेत्र में पराक्रम प्रदर्शित करता है और भयभीत हो पीछे पग नहीं रखता, वह मेरे जैसे लोकों में स्थान पाता है। कृष्णचर्म के म्यान में रखी तलवारों से तथा लोहदण्ड के समान विशाल भुजाओं से जिसके रणयज्ञ की वेदी आच्छादित है, उसे मेरे जैसे लोक प्राप्त होते हैं। जो विजय प्राप्त करते समय किसी भी पुरुष की सहायता की अपेक्षा नहीं करता और शत्रुसैन्य में घुस कर लड़ता है, वह मेरे ही लोक में स्थान पाता है। जिस नदी में दुन्दुभि कच्छप है, माँस और रुधिर कीचड़ है, तलवारें और ढालें घन्नाई हैं, वीर पुरुषों के कटे हुए सिरों के केश सिवार और तृणवत् है। गज, अश्व और भग्नरथों के ढेर पुल हैं, पताकाएं और ध्वजाएं वेतवृक्ष हैं, गजों के शरीरखण्ड मगर मच्छ जैसे जान पड़ते हैं और वीरों के शरीरों से बहने वाले रक्त से वह नदी परिपूर्ण है। इस भयानक नदी के पार जाना लोगों के लिये बड़ी कठिन बात है, किन्तु यही नदी वीरों को स्वर्ग में पहुचाने वाली है और उनके लिये कल्याणप्रदायिनी है। इस नदी में खड्ग और ऋष्टि नौका स्थानीय हैं। गिद्ध, कङ्क और बला जाति के काक इस नदी के डोंगे हैं। सो इस नदी के पार जाना बड़े साहसी पुरुषों का काम है। कायर जन तो इस नदी को देखते ही मारे डर के काँप उठते हैं। इस मोक्षप्रद रणयज्ञ में वीर पुरुष ही अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करते हैं। जिस वीर की रणयज्ञ रूपी वेदी

शत्रुओं के कटे हुए सिरों, अश्वों की गरदनों और गजों के मस्तकों से रुक जाती है, वह वीर मेरे लोक में निवास करता है। पण्डितों का कहना है कि, जो रणक्षेत्र के मुहाने को अपनी प्यारी का रंगमहल समझता है, अथवा जो रणक्षेत्र के मुहाने को हवि रखने का पात्र समझता है और अपनी बाँई ओर खड़े वीरों को रणयज्ञ का सभासद और दहिनी ओर खड़े हुए योद्धाओं को अग्नीध्र ऋत्विज मानता है तथा शत्रु की सेना को निज पत्नी मानता है वह रण-यज्ञ-कर्त्ता वीर पुरुष उस दिव्य धाम को पाता है जहाँ सुख ही सुख है। व्यूहबद्ध हो खड़ी हुई सेनाओं के बीच का खाली स्थान रण-यज्ञ-कर्त्ता यजमान की यज्ञवेदी है। ऋक, यजु और साम उसके अग्नि हैं। उस यज्ञवेदी पर इन तीनों वेदों का गान करता हुआ जो वीर पुरुष नित्य रणयज्ञ किया करता है, वह इन्द्रलोक में जाता है : किन्तु जो योद्धा डर कर समरभूमि से भाग जाता है, वह शत्रु द्वारा मारा जाता है और अपमानित हो निश्चय ही नरकगामी होता है। किन्तु जो वीर, माँस, रक्त, केश और अस्थियों से भरी रणयज्ञ की वेदी को प्रज्वलित करता है, वह परम गति पाता है। जो पुरुष शत्रुपक्ष के सेनापति को मार डालता है और उसके वाहन पर सवार हो जाता है, वह विष्णु के समान पराक्रमी और बृह-स्पति के समान बुद्धिमान माना जाता है। जो सेना के मुखिया अथवा उसके पुत्र अथवा उसके किसी प्रसिद्ध नायक को जीता पकड़ लेता है उसको इस जगत में वाहवाही होती है और मरने बाद वह मेरे जैसे लोक में निवास करता है। यदि ऐसा वीर रण में मारा जाय तो उसके लिये शोक न करना चाहिये। क्योंकि जो वीर युद्ध में मारा जाता है उसका स्वर्ग में बड़ा आदर सम्मान होता है। अतः उसके लिये शोक करना व्यर्थ है। ऐसे के निमित्त अन्नदान और जलदान करने की भी आवश्यकता नहीं है, न ऐसे का सूतक लगता है और न ऐसे के मारे जाने पर शुद्धि के लिये स्नान करने ही की आवश्यकता है।

हे राजन्! अब मैं तुझे उन लोकों का ब्योरा सुनाता हूँ, जो वीरों को

मारे जाने पर मिलते हैं। रण में मारे गये वीरों को देख, एक नहीं हज़ारों सुन्दरी अप्सराएँ उन्हें अपना पति बनाने को उसकी ओर दौड़ती हैं। जो वीर रण में मारा जाता है, समझना चाहिये उसने ही यथार्थ तप किया है, पुण्योपार्जन किया है। यही पक्का सनातन धर्म तथा चारों आश्रमों के धर्मों का पालन करने वाला है। जो वीर हो उसे युद्ध में बूढ़ों और बालकों पर हथियार न उठाना चाहिये। वीर को उचित है कि, वह स्त्री को तथा भगोड़ सैनिक को भी न मारे। जो सैनिक मुख में तृण दबा कर कहे कि मैं आपका दास हूँ—वीर पुरुष उस पर भी हाथ न उठावे। हे राजन्! मैं तो जम्भासुर, वृत्रासुर, बल, पाक, शतमाय, विरोचन, नमुचि, आदि अनेक माया जानने वाले दानव, दिति और दनु के समस्त पुत्रों को तथा प्रह्लाद को युद्ध में मार कर, देवराज इन्द्र के पद पर आसीन हो सका हूँ।

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर! इन्द्र की इन बातों को सुन अम्बरीष की शङ्का का समाधान हो गया और उन्होंने मान लिया कि, रण में प्राण विसर्जन करने वाले वीर पुरुषों को उत्तम गति होती है।

निन्यानवे का अध्याय

राजा जनक का सेनानायकों को उपदेश

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! इस प्रसङ्ग में राजा प्रतर्दन तथा मिथिला के राजा जनक के पूर्वकालीन एक युद्ध का प्राचीन उपाख्यान जो उदाहरण स्वरूप कहा जाता है, वह यों है।

एक बार मिथिलाधिपति राजा जनक ने युद्धयज्ञ करना आरम्भ किया। उस युद्ध में उन्होंने योद्धाओं को जिन वचनों से उत्साहित किया था—अब तुम उन्हें सुनो। उन्होंने नरक और स्वर्ग की चर्चा चला योद्धाओं से कहा था—हे वीरो! देखो, गन्धर्व-कन्याओं से परिपूर्ण समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले अविनश्वर एवं प्रकाश से पूर्ण लोकों को तुम देखो।

जो वीर समर में निर्भय हो युद्ध करते हैं, वे इन लोकों में जो सामने देख पड़ते हैं, जाते हैं। इन लोकों की दूसरी ओर जो लोक देख पड़ते हैं वे नरक लोक हैं। जो योद्धा रण छोड़ भाग जाते हैं, वे इन नरकों में जाते हैं और उनकी सदा निन्दा हुआ करती है। हे वीरो! तुम प्राणत्याग का निश्चय कर शत्रुओं को परास्त कर दो। ऐसा न करना कि, तुम्हें अप्रतिष्ठाकारक नरक में गिरना पड़े। जो वीर होते हैं वे रण में अपने शरीर को त्याग, सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग में जाते हैं। हे परपुरञ्जय राजन्! मिथिलाधिपति राजा जनक ने इस प्रकार के वचन कह योद्धाओं को लड़ने के लिये प्रोत्साहित किया था। इसका फल यह हुआ था कि, योद्धा जी खोल कर लड़े और शत्रुओं को हराया और राजा जनक को प्रसन्न किया। अतः आत्मवान क्षत्रिय को सदा रण-क्षेत्र में आगे बढ़ कर युद्ध करना चाहिये। गजसैन्य के बीच रथियों को और रथ-सैन्य के बीच अश्वारोही सैन्य दल को खड़ा करे। जो राजा इस प्रकार सैन्यव्यूह बनाता है, वह वैरियों को सदैव परास्त करता है। अतः हे युधि-ष्ठिर! तुम भी ऐसी ही व्यूहरचना किया करो। क्रोधी स्वभाव के बड़े बड़े योद्धा शत्रुसैन्य को वैसे ही क्षुब्ध कर डालते हैं जैसे मगर मच्छ समुद्र के जल को। क्योंकि उनकी इच्छा तो सदा स्वर्ग में जाने ही की होती है। भली भाँति लड़ने वाले बड़े बड़े योद्धा यदि लड़ते लड़ते घबड़ा उठें, तो उन्हें प्रसन्न करे; विजित भूखण्ड की रक्षा करे; किन्तु शत्रु की भागती हुई सेना का बहुत दूर तक पीछा न करना चाहिये। हे राजन्! जो अपने जीवन से निराश हो बैठे हों, यदि वे पुनः चढ़ाई करें, तो उनका वह धावा दुस्सह हुआ करता है। जो वीर होते हैं, वे पलायमान सिपाहियों का वध करना अनुचित समझते हैं। इसीसे वे ऐसों का पीछा नहीं करते। अचर प्राणी चर प्राणियों के भक्ष्य गिने जाते हैं। दंष्ट्रारहित प्राणी दंष्ट्रा वाले प्राणियों के भक्ष्य माने जाते हैं, प्यासे का भक्ष्य जल माना जाता है और वीरों के भक्ष्य कापुरुष कहलाते हैं। कापुरुषों के हाथ, पैर, पीठ और पेट शूरों जैसे ही हुआ करते हैं, तो भी वे भयभीत होने के कारण हारते हैं। इसीसे

घबड़ाये हुए भीरु सैनिक बार बार हाथ जोड़े सिर झुकाये वीरों के शरण में आ उनके सामने आ खड़े होते हैं। इस प्रकार सब लोग सदा पुत्र की तरह वीर जनों के भुजबल का सहारा ले, जीवन यापन करते हैं। अतः शूर पुरुष का सब प्रकार से सदैव सम्मान करना चाहिये। त्रिलोकी में शूरता से बढ़ कर उत्तम अन्य कोई पदार्थ नहीं है। वीर पुरुष सब का रक्षक होने से, यह सम्पूर्ण जगत उसीके सहारे ठहरा हुआ है।

सौ का अध्याय

शत्रु पर आक्रमण करने के नियम

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! अब आप मुझे यह बतलावें कि, विजयाभिलाषी राजा शत्रु पर किस प्रकार आक्रमण करे, जिससे धर्म का तो उल्लङ्घन न हो और विजय उसके हाथ लगे?

भीष्म ने उत्तर दिया—बहुत लोग कहते हैं, सत्य से धर्म टिक रहा है। बहुत लोग कहते हैं, धर्म हेतुवाद पर अवलम्बित है। बहुत लोग कहते हैं, धर्म का मूल सदाचार है, और कितने ही कहते हैं, धर्म का अवलम्ब साधन और युक्तियाँ हैं। हे धर्मराज! मैं तुझे वे उपाय और युक्तियाँ बतलाता हूँ, जिनसे विजय प्राप्त होता है। यदि इस संसार में कभी चोर लोग धर्म मर्यादा और अर्थ की मर्यादा का नाश करने वाले हो जाँय, तो मैं उनका नाश करने के लिये तुम्हें वेदोक्त उपाय बतलाता हूँ। उन उपायों से यदि तुमने काम लिया, तो तुम्हारा मनोरथ निश्चय ही सिद्ध होगा। सुनो। इस संसार में दो प्रकार की नीतियाँ हैं। एक सरल और दूसरी वक्र। जहाँ तक हो वक्र नीति से काम न ले; किन्तु यदि अपने ऊपर आपत्ति ही आ पड़े, तो वक्र से भी काम लिया जा सकता है, जिससे आयी हुई विपत्ति टल जाय। राजा अपने वैरी राजा में और

उसके मंत्री में, सेना में, सामन्तों में अथवा प्रजाजनों में कलह उत्पन्न कर अपने वैरी का नाश कर डाले।

हे राजन्! हाथियों की रक्षा के लिये, गौ, बैल और अजगर सर्प के चर्म का कवच बनवावे। राजा को उचित है कि, वह बहुत सी लोहे की कीलें, कवच, चमर, पैने शस्त्र, पीत, रक्त वर्ण कवच, विविध वर्ण की पताकाएं तथा झंडे, ऋष्टि, तोमर, खड्ग, तेज़ फरसे, भाले तथा ढालें बनवा कर सदा तैयार रखे। शस्त्रों को भली भाँति बनवा उन्हें सावधानी से रखे, जिससे उनमें जंग आदि न लगने पावे और योद्धाओं के मनों में युद्ध की आवश्यकता को भली भाँति अङ्कित कर दे। फिर चैत्र अथवा मार्गशीर्ष (अगहन) मास में सेना को सब प्रकार से तैयार करने के बाद, शत्रु पर आक्रमण करे। ऐसा करने वाला प्रशंसा का पात्र माना जाता है। हे राजन्! उस समय खेतों में अन्न पक जाता है, पानी का भी कष्ट नहीं रहता। उस समय न तो बहुत शीत पड़ता है और न बहुत गर्मी ही। इसी समय सेना को लेकर, शत्रु के ऊपर आक्रमण करे। शत्रु पर आक्रमण करना उस समय बड़ा लाभदायक होता है, जब शत्रु किसी प्रकार के सङ्कट में फँसा हुआ हो। आक्रमणकारी के लिये ये दोनों योग उत्तम हैं। राजा ऐसे मार्ग से आक्रमण करने जाय, जिस मार्ग से जाने पर जल, घास की सुविधा हो और सड़क भी ऊँची नीची न हो कर चौरस हो। ऐसा मार्ग वनचर दूतों से पूँछ कर निश्चय कर ले। जैसे मृगों की टोलियाँ वन में आसानी से घूमा करती हैं, वैसे सेना वन में नहीं घूम सकती। अतः आक्रमणकारी राजाओं को अपनी सेना ऐसे मार्ग से ले जानी चाहिये, जिस पर घास और जल की सुविधा हो। सेना के अगले भाग में वीर पुरुषों की एक टोली रखे। इस टुकड़ी में जो सैनिक हों वे धीर वीर, दृढ़ और कुलीन होने चाहिये। राजा दुर्ग, ऐसा बनवावे, जिसके परकोटे की दीवालें दृढ़ हों और उसके चारों ओर जलपूर्ण परिखा (खाई) होनी चाहिये। ऐसे क़िले से बचाव अच्छा होता है। ऐसे क़िले के भीतर रह कर

राजा, यदि शत्रु पर आक्रमण करे तो बड़ी सफलता होती है। रणनिपुण वीरों को मैदान की अपेक्षा वन के पास सैन्यशिविर स्थापित करना उत्तम है। यदि सैन्यशिविर हो भी मैदान में; पर वह मैदान वन के निकट होना चाहिये। पैदल सेना सुरक्षित स्थान पर रखनी चाहिये, ज्यों ही शत्रु आवे, त्यों ही उस पर आक्रमण करे। भय और कष्ट दूर करने का यही उपाय है। सप्तर्षियों को पीठ पीछे रख, और पर्वत की तरह अटल अचल खड़े होकर, लड़ना आरम्भ करे। ऐसा करने से राजा दुर्जेय शत्रु को भी जीत लेता है। शत्रु से लड़ने वाली सेना को इस प्रकार खड़ा करे, जिससे वायु सूर्य और शुक्र का तारा पीठ पीछे रहे। शरीरों में वायु लगता रहे, सूर्य का प्रकाश पर्याप्त रहे। विजय के लिये हवा धूप से श्रेष्ठ मानी गयी है। जिस भूमि में कीचड़ कांदा, जल, कंकड़ और कांटे न हों, उस भूमि पर घुड़सवारों का युद्ध होना चाहिये। रथियों के युद्ध के लिये समतल भूमि होनी चाहिये। उस भूमि में जगह जगह गढ़े न होने चाहिये, जिस जगह छोटे बड़े वृक्ष हों और जहाँ पानी बहुत सा भरा हो, वह जगह गज-सेना के युद्ध के लिये अच्छी मानी जाती है। जो पृथिवी बहुत ऊँची नीची होती है और बड़े बड़े वृक्षों से पूर्ण हो, तथा जहाँ बाँस और बेत लगे हों, वह या पहाड़ अथवा उपवन पैदलों की लड़ाई के लिये उपयुक्त माना जाता है।

हे राजन्! जिस सेना में पैदल सैनिकों की संख्या अधिक होती है, वह सेना बड़ी बलवान मानी जाती है। जिस सेना में रथों और अश्वारोहियों की संख्या अधिक होती है वह सेना वर्षाकाल को छोड़ अन्य ऋतुओं में लड़ने योग्य नहीं मानी जाती; किन्तु जिस सेना में पैदल सिपाही और गजारोही योद्धा बहुत होते हैं, वह सेना वर्षाकाल में युद्ध करने योग्य मानी जाती है। इन सब बातों पर भली भाँति विचार कर, जो राजा देश और काल को ध्यान में रख, शुभ मुहूर्त में शत्रु पर आक्रमण करता है, उसका सदा विजय होता है। युद्ध छिड़ जाने पर

सुप्त, प्यासे, परिश्रान्त और युद्धक्षेत्र से भागे हुए योद्धाओं को न मारना चाहिये। जो योद्धा रण से विरत हो, मोक्षमार्ग की ओर अपना मन लगा चुके हों (यथा द्रोण और भूरिश्रवा) जो लड़ने के लिये तैयार न हो पाये हों, जो जल पी रहे हों या भोजन कर रहों, विक्षिप्त हो गये हों, क्षुब्ध हो गये हों, घबड़ा गये हों, घायल हों, या घायल होने के कारण लड़ने योग्य न रह गये हों, विश्वास कर शरण में आये हों, यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करते हों, सुरङ्ग बनाना जानते हों, सैन्यशिविर में आते जाते हों, जो राजा या मंत्री के पुश्तैनी द्वारपाल हों, जो मामूली नौकर चाकर हों, और जो मज़दूरों के मेट हों, उनको लड़ाई छिड़ने पर न मारे। उन सैनिकों को जो शत्रुसैन्य को भगा देते हों और अपने तितर बितर सेना को जोड़ बटोर कर और धीरज धरा, लड़ने को तैयार कर लेते हों, उन सैनिकों को राजा अपने सामने खिलावे पिलावे और अपने सामने उन्हें वेतन दिलावे। जो दस सिपाहियों के ऊपर हों, वे आवश्यकता होने पर सौ सिपाहियों की टुकड़ी के सरदार बनाये जा सकते हैं और सौ सिपाहियों के फुर्तीले और वीर सरदार हज़ार सिपाहियों का नायक बनाया जा सकता है। राजा अपने प्रधान सेनानायकों और सरदारों को जमा कर, उनसे कहे, आप यह प्रतिज्ञा करें कि, हम सब विजय के लिये एकत्र हो युद्ध करेंगे और युद्ध छोड़ कर न भागेंगे। इस सेना में जो डरपोंक हों, और युद्ध आरम्भ कर बड़े बड़े भटों को शत्रु द्वारा मरवा डालें, वे डरपोंक सैनिक अभी यहाँ से पीछे लौट जाँय। जो योद्धा अन्त समय तक लड़ने को प्रतिज्ञा करे, उन्हें साथ ले, राजा अपने शत्रुओं पर आक्रमण करे। ऐसे योद्धा लड़ने के समय अपनी सेना के सैनिकों में भगदड़ नहीं डालते और अपनी सेना को बचाते हुए, शत्रु पक्ष का नाश कर डालते हैं।

राजा को उचित है कि, वह अपने पक्ष के सैनिकों को यह समझावे कि, जो सैनिक लड़ाई से भाग जाता है, वह शत्रु के हाथ से मारा जाता है, उसकी आर्थिक हानि होती है और लोग उसकी निन्दा करते हैं। उसे

लोगों से कटुवचन सुनने पड़ते हैं, जिन्हें सुन दुःख होता है। वह सिपाही बड़ा निर्लज्ज और भीरु कहलाता है जो शत्रुओं से घेरे जाने पर हथियार रख देता है। तुम लोगों को उचित है कि, तुम चाहो कि शत्रु का धन नष्ट हो, उनकी बदनामी हो। युद्ध छोड़ जो भागे, उन्हें तुम नाम मात्र का मनुष्य समझो। ऐसे लोग केवल शरीर को पुष्ट करना जानते हैं। ऐसों को इस लोक में सुख और परलोक में कीर्ति प्राप्त नहीं होती। पलायन करती हुई सेना के पीछे पड़ी हुई विजयाभिलाषी शत्रु की सेना भाटों चारणों से यशगान सुनती सोत्साह आगे बढ़ती है। वैरी द्वारा जिसका यश नष्ट हो जाता है, उसके दुःख को मैं मरण कष्ट से भी अधिक समझता हूँ। विजय ही समस्त सुखों, और पुण्यों का मूल है। डरपोकों के लिये रण मृत्यु है, किन्तु जो वीर पुरुष होते हैं, वे ही रण में शत्रु के सामने जाते हैं। लड़ने वालों को तो यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि, हम रण में शरीर त्याग कर, स्वर्ग सिधारेंगे। निर्भय पुरुष को जान को हथेली पर रख कर, विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये अथवा मर कर स्वर्ग जाने के लिये तैयार रहना चाहिये। निडर वीर लोग आपस में शपथ खा और जान की कुछ भी परवाह न कर शत्रुसैन्य में घुसते हैं। शत्रुसैन्य पर आक्रमण करते समय सब के आगे ढाल-तलवार-धारी सैनिकों को, उनके पीछे रथियों को और सेना के मध्यभाग में योद्धाओं को रखे। जिनका सारा जीवन समरविभाग में सैनिक के पद पर रह कर बीता हो उन अनुभवी वीरों को आक्रमणकारी राजा सब के आगे रखे और उनके पीछे जो पैदल सिपाही रहें उनकी रक्षा करे। जो दृढ़काय और साहसी योद्धा हों, वे आगे चलें और अन्य सैनिक उनके पीछे। डरपोंकों को हर प्रकार से हिम्मत बँधा उन्हें उत्साहित करे। सेना की विशालता दिखलाने के लिये ऐसे लोगों को सेना के आस पास रखे। यदि सैनिकों की संख्या कम हो तो वे सैनिक एकत्र हो शत्रु से लड़ें और यथा-समय सेनानायक उन सैनिकों को व्यूहबद्ध कर, अपनी सेना का विस्तार

करे। यदि थोड़े सैनिकों को बहुसंख्यक शत्रुपक्षीय सैनिकों से लड़ना हो, तो अल्प संख्यक सैनिक हाथ उठा कर चिल्लाते हुए कहें कि, शत्रुसैन्य में भगड़ पड़ गयी। शत्रु को मारो, देखो वे भागने न पावें। वह देखो हमारे मित्र की सेना आ पहुँची। अब क्या भय है। जी खोल कर और निर्भय हो लड़ो। ऐसे ऐसे भयङ्कर शब्द कह—बलवान योद्धा निर्भय हो, शत्रु का नाश करे। जो सब के आगे हों, वे सिंह की तरह गर्जें, क्रकच और गोश्रृङ्गों को बजावें और आगे चलने वाले बाजे वालों से मृदङ्ग ढोल आदि मारू बाजे बजवावें।

एक सौ एक का अध्याय

योद्धाओं की पहचानें

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! अब आप मुझे यह बतलावें कि, समरविभाग में कैसे लोग भर्ती किये जाँय? वे किस स्वभाव और कैसे आचार वाले होने चाहिये। उनका रूप रंग कैसा होना चाहिये? उनके कवच और अस्त्र शस्त्र कैसे हों?

भीष्म जी बोले—वीर पुरुष वे ही शस्त्र रखते हैं, जिनके चलाने की उनमें शक्ति और अभ्यास होता है। उनके वाहन वे ही होते हैं, जिन पर चढ़ने का उनको अभ्यास होता है। गान्धार सौवीर और सिन्धु देशों के सिपाही दँतीले प्रासों से लड़ते हैं। वे बड़े साहसी और बलवान होते हैं। उनकी सेना शत्रु पर घेरा डालने के लिये बड़ी उपयोगी होती है। उशीनर देशवासी सिपाही सब प्रकार के शस्त्र चलाने में पटु होते हैं और बड़े बलवान होते हैं पूर्वदेश के सिपाही गज-युद्ध में निपुण होते हैं और लड़ते समय कपट से काम लेते हैं। यवन, काम्बोज और मथुरामण्डल के आस पास रहने वाले सिपाही भल्ल युद्ध में बड़े निपुण होते हैं।

दक्षिणप्रान्त के सिपाही तलवार से लड़ने में बड़े बहादुर होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देशों में भी बड़े बड़े बलवान सिपाही होते हैं। उनके विषय में भी सुनो। जिन सिपाहियों की जिह्वा, नेत्र तथा चाल सिंह जैसी होती है अथवा जिनके नेत्र कबूतरों के नेत्रों की तरह अथवा कुलिङ्ग की तरह हों, वे सब शूर और शत्रुओं का नाश करने वाले होते हैं। जिनका कण्ठस्वर मृग जैसा, नेत्र मेंढ़े अथवा बैल जैसे होते हैं, वे बड़े वेगवान माने जाते हैं। जिसका कण्ठस्वर घुंघुरुओं जैसा होता है, वे शीघ्र आवेश में भर जाने वाले निर्दयी और क्रोधी होते हैं। जिनका कण्ठस्वर मेघगर्जन जैसा होता है, जिनका चेहरा सदा क्रुद्ध मनुष्य जैसा होता है जो ऊँट की तरह लँवे होते हैं, जिनकी नाक की नोंक और जिह्वा तिरछी होती है—वे दूर तक दौड़ने वाले और शत्रुसैन्य पर बहुत दूर से प्रहार करने वाले होते हैं। जिनका शरीर बिलाव की तरह टेढ़ा और केश तथा चर्म पतला होता है, वे चञ्चल प्रकृति के तथा झपट कर चलने वाले होते हैं। वे ऐसे बली होते हैं कि, रण में इन्हें कोई हरा नहीं सकता। कितने ही गोह जैसी बंद सी आँखों वाले, मृदुस्वभाव अश्व जैसी चाल और बोल वाले होते हैं, ये हर प्रकार के शत्रु के साथ लड़ सकते हैं। दृढ़ एवं सुन्दर काय वाले, विशाल वक्षःस्थल से सम्पन्न सिपाही, शत्रु के नगाड़ों की आवाज़ सुनते ही कुपित हो जाते हैं और लड़ते समय हर्षित हो जाते हैं। जिनके नेत्र गहरे, बाहिर को निकले हुए और पीतवर्ण होते हैं, जिनकी आँखें न्योले जैसी और भृकुटी सुन्दर होती हैं, वे सब बड़े शूर वीर होते हैं और लड़ाई के मैदान में बिना शरीर त्यागे नहीं हटते। जो भेंड़ी आँखों एवं प्रशस्त ललाट वाले, भारी ओठों वाले, भुजाओं में वज्र और अँगुली के पोरों में चक्र के चिन्ह वाले होते हैं, जिनका शरीर छरछरा होता है, और शरीर की नाड़ियाँ और नसें देख पड़ती हैं, वे लड़ाई छिड़ते ही बैरी की सेना में घुस जाते हैं। वे गज की तरह मदमत्त होते हैं और लड़ाई में कभी हारते नहीं। जिन सिपाहियों के केशों के अग्रभाग

सुनहले और बाल घुँघराले, होते हैं, जिनका मुख और हाथ माँसल होते हैं और जिनकी पसलियाँ माँस से ढकी हुई होती हैं, जिनके खंभ ऊँचे और ठोड़ी चौड़ी होती है, जिन्हें देखते ही डर लगने लगता है, जिनकी पिंडलियाँ भारी होती हैं, जो श्रीकृष्ण के सुग्रीव नामक घोड़े अथवा गरुड़ के समान फुर्तीले अथवा वेगवान होते हैं, जिनका माथा गोल और चेहरा जंगली बिलाव की तरह चौड़ा होता है, जिनका कण्ठस्वर तीव्र होता है और जो डाँट डपट कर बोलते हैं, वे धावा मार कर शत्रुसैन्य में घुस जाते हैं। सीमान्त-प्रदेश-वासी भील, किरात, आदि जातियों के सिपाही बड़े अधर्मी और घमण्डी होते हैं। उनका व्यवहार बड़ा भयङ्कर होता है और उनकी शक्ल भी बड़ी भयानक होती है। ये लोग रण में अपनी जान को हथेली पर रख कर, लड़ते हैं और पीछे पैर रखना जानते ही नहीं। इन लोगों की सेना को सब के आगे रखना चाहिये। क्योंकि युद्ध में ये सिपाही वैरी की सेना को नाश करते हैं और स्वयं भी शत्रु द्वारा मारे जाते हैं। इनमें न तो विवेक होता है और न विनय ही। ये दुराचारी होते हैं। मधुर वचन कहना यह अपना अपमान समझते हैं। यदि इनसे दब कर वार्तालाप किया जाय, तो ये लोग राजा के सामने भी बड़े बड़े उपद्रव कर डालते हैं।

एक सौ दो का अध्याय

विजयीसैन्य के लक्षण

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! समरविजयी सैन्य के लक्षण अब आप बतलावें।

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज! समरविजयी-सैन्य के समस्त लक्षण मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो। जब देवताओं के कुपित होने के कारण मनुष्यों

के सिर पर काल खेलने लगता है, तब ज्ञानवान् भविष्यवेत्ता पुरुष दिव्य दृष्टि द्वारा भावी को जान लेते हैं और भावी अनिष्ट की शान्ति के लिये जप होम आदि प्रायश्चित्त स्वरूप करते हैं और माङ्गलिक कर्म कर के आने वाले अनिष्ट को टाल देते हैं। जिस सेना के योद्धा और गज अश्वादि वाहन उत्साह से भरे हुए होते हैं, वह सेना निश्चय ही जीतती है। ऐसी सेना के पृष्ठभाग में अनुकूल पवन चलता है, आकाश में इन्द्रधनुष निकलता है, मेघों की छाया हो जाती है, और बीच बीच में सूर्य किरणें भी दिखलायी पड़ा करती हैं। ऐसी सेना को शृगाल, काक और गिद्ध पक्षी शुभ शकुनों द्वारा भावी शुभ की सूचना देते हैं। ऐसी सेना निश्चय ही विजय लाभ करती है। ऐसी विजयी सेना के स्वामी के अग्निहोत्र का अग्नि प्रसन्न कान्ति वाला, बड़ी बड़ी लपटों वाला, दक्षिणावर्ती लपटों से युक्त एवं धूम रहित होता है। अग्नि में हवन की हुई वस्तुओं का पवित्र सुगन्ध निकलता है। विद्वान कहते हैं कि, ये विजय का लक्षण है। जिस सेना में भेरियों और शङ्खों की गम्भीर ध्वनि हो और सिपाही अपने सेनानायक का कहना मानते हैं, वह सेना निश्चय ही विजय लाभ करती है। यह विद्वानों का कथन है। जिस समय कोई सेना लड़ाई के लिये प्रस्थान करे या प्रस्थान करने की तैयारी करे, उस समय यदि उस सेना की बाईं ओर से अथवा पीछे के भाग से मृग अथवा अन्य कोई चौपाया पशु निकल जावे तो उस सेना का विजय निश्चय ही होता है। यदि मृग और चौपाये, युद्ध करते समय सेना की दहिनी ओर से निकल जाँय, तो इसे उस सेना के पराजय का लक्षण समझना चाहिये। यदि हंस, क्रौंच, सत-पत्र और पपैया शुभ बोल बोलें और बलवान भट हर्षित हो जाँय, तो विद्वानों के मतानुसार यह भावी विजय का लक्षण है। जिस पक्ष की सेना के सैनिकों के मुखों की कान्ति जगर मगर देख पड़े, जिसकी सेना में ध्वजा, पताकाएँ; शस्त्र, यंत्र कवच आदि शोभायमान देख पड़ें और जिस सेना की ओर आँख उठा कर देखा भी न जाय, वह सेना शत्रुओं का

पराजय करती है। जिस सेना के सिपाही अपने सरदार की सेवा के लिये आतुर हों, जिस सेना के सैनिक अभिमानशून्य और आपस में हेलमेल रखते हों, जिस सेना के सैनिकों का अच्छा आचरण हो, वह सेना निश्चय ही आगे विजय प्राप्त करती है। जिस सेना के सैनिकों के मुखों से शुभ वचन निकलें और बाजों की कर्ण-मधुर ध्वनि सुन पड़े, मनोनुकूल सुगन्धि फैल जाय, जिस सेना के सैनिकों में परस्पर प्रेम हो और सैनिक धैर्यवान् तथा उपकारी हों, वह सेना अवश्य ही जीतती है। रणयात्रा के समय, यदि बाईं ओर काक बोले तो इसे शुभ शकुन समझना चाहिये। यदि शत्रुसैन्य में प्रवेश करते समय सैनिकों की दहिनी ओर काक बोले तो यह अच्छा शकुन माना जाता है। यदि काक उनके पीठ पीछे बोले तो यह शकुन कार्य-सिद्धि का सूचक है। यदि काक आगे बोले तो यह कार्यनाश की सूचना है।

हे धर्मराज! धावा बोलने के पूर्व ही तुम अपनी चतुरंगिणी सेना को तैयार रखना। प्रथम शत्रु के साथ साम नीति वर्तना, यदि इस पर भी शत्रु न माने तो युद्ध आरम्भ करना। युद्ध के सहारे प्राप्त विजय अधम मानी जाती है। युद्ध में विजय अनायास अथवा दैवेच्छा से प्राप्त होता है। यह मत विद्वानों का है। जब किसी विशाल सेना में भगदड़ पड़ती है, तब उस सेना के सैनिकों को रोकना वैसे ही कठिन हो जाता है, जैसे नदी के प्रबल प्रवाह के वेग को अथवा त्रस्त मृगों की बड़ी टोली को। बली सिपाहियों की सेना मृगों की टोली जैसी होती है। क्योंकि जैसे मृगों के झुंड से यदि दो चार मृग भागें, तो अन्य मृग भी कारण जाने बिना ही केवल देखादेखी भाग खड़े होते हैं; वैसे ही विशाल वाहिनी से ज्यों ही कुछ सिपाही भागे कि, उन्हें भागते देख, अन्य सिपाही भी भाग खड़े होते हैं। अतः वीर सिपाहियों से बना सैन्यदल भी रुरु मृगों के विशाल समूह के समान होता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि, पचास ही दृढ़ सङ्कल्प कर के और एक दूसरे के अभिप्राय को समझने वाले शूर वीर सिपाही, हर्ष

में भर और प्राणों को हथेली पर रख, जब लड़ने लगते हैं; तब वे ही शत्रु-सैन्य के सिपाहियों का संहार कर डालते हैं। इतना ही नहीं—किन्तु सत्कुलोत्पन्न एवं सम्मानित पाँच, छः अथवा सात शूर वीर जब "कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयं" की प्रतिज्ञा कर, वैरी पर पिल पड़ते हैं, तब भले ही शत्रु सैनिकों की संख्या अत्यधिक हो, तो भी उन्हें हार खानी पड़ती है। अतः जब तक साम से, दाम से अथवा भेद से सन्धि हो सके, तब तक युद्ध न करे। पहले वैरियों में आपस में भेद डालने का उद्योग करे। वैरी के सैनिक सरदारों को तथा सहायकों को इनाम का प्रलोभन दे, अपने वश में करे। यदि इससे भी काम न चले, तो फिर युद्ध करे। प्रज्वलित वज्र से गिरती हुई बिजली को देख लोग पूँछते हैं। हरे! हरे! यह किस पर गिरेगी? यह कहाँ जा कर गिरेगी? जैसे उस बिजली को देख लोग भयभीत हो जाते हैं, वैसे ही भीरु सैनिक शत्रुसैन्य को देख भयभीत हो जाते हैं। शत्रुसैन्य की चढ़ाई का संवाद सुन जिन योद्धाओं के शरीर शिथिल पड़ जाते हैं वे युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकते, सेना की चढ़ाई होने से स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त देश विपत्ति में फँस जाता है और अस्त्र-प्रहार से प्रजाजनों को पीड़ित होना पड़ता है। अतः आक्रमण करने के पूर्व आक्रमणकारी राजा को शत्रु राजा के साथ बारंबार सन्धि करने के लिये कहला भेजे। जब शत्रु राजा की प्रजा दुःखित होती है, तभी उसका राजा काबू में आता है। आक्रमणकारी राजा को, शत्रु राजा तथा उसके सहायकों में भेद डलवाने के लिये गुप्तचर भेजने चाहिये। यदि शत्रु राजा अपने से बलवान् हो, तो उसके साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। यह सर्वोत्तम उपाय है। यदि बलवान् शत्रु राजा के साथ सन्धि न की जाय तो, आक्रमणकारी राजा भली भाँति सताया नहीं जा सकता। शत्रु के साथ इस प्रकार युद्ध करे कि, वह चारों ओर से सङ्कट में फँस जाय। जो लोग सज्जन होते हैं, वे अपने शत्रु को क्षमा कर देते हैं; किन्तु जो लोग दुर्जन होते हैं, वे कभी शत्रु को क्षमा नहीं करते।

हे राजन्! क्षमा कब करनी चाहिये और कब क्रोध करना चाहिये—अब मैं यही तुम्हें सुनाता हूँ। सुनो। जो शत्रु को हराने बाद उसे क्षमा करता है, उस राजा की कीर्ति चारों ओर फैल जाती है। यदि वह राजा कभी कोई महाअपचार भी कर बैठे तो भी शत्रु उस पर विश्वास कर, उस से कुछ नहीं कहते; किन्तु शम्बरासुर का मत यह है कि, यदि बाँस की लकड़ी आग में तपाये विना सीधी की जाय तो वह कालान्तर में पुनः टेढ़ी हो जाती है। इसी प्रकार शत्रु को भी सन्तप्त किये बिना उसे यदि क्षमा कर दिया, तो वह अवसर पा घात किये बिना नहीं रहता। अतः शत्रु को खूब सता चुकने बाद क्षमा करे, यह नीति होने पर भी वेदादि सच्छास्त्रों के ज्ञाता आचार्य इस नीति को अच्छा नहीं समझते और श्रेष्ठ राजा का इसे कर्त्तव्य नहीं मानते। उनका कहना तो यह है कि, श्रेष्ठ राजा अपने वैरी पर क्रोध किये विना ही अथवा तंग किये बिना ही—उसे अपने वश में कर ले।

हे धर्मराज! उग्र स्वभाव वाले राजा की सब लोग निन्दा करते हैं। यदि राजा मृदु स्वभाव का हुआ तो सब उसकी अवहेलना करते हैं। अतः राजा को समय समय पर उग्रता और कोमलता धारण करनी चाहिये। शत्रु पर प्रहार करने के पूर्व और प्रहार करते समय भी प्रियवचन कहे। प्रहार कर चुकने बाद बनावटी शोक प्रदर्शित कर, उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करे। शत्रु से कहे—अरे! मेरे सैनिकों ने युद्ध में तुम्हारे इतने अधिक सिपाहियों का नाश कर डाला। मुझे तो यह बात बहुत बुरी मालुम पड़ती है। क्या करूँ, मैंने तो अपने सेनापतियों को कितनी ही बार मना किया; पर वे न मानें। मैं तो यह चाहता हूँ कि, जो लोग युद्ध में मेरे पक्षवालों के हाथ से मारे गये हैं, वे पुनः जीवित हो जाँय। क्योंकि ये लोग अभी मरने योग्य न थे। वे तो बड़े उत्कृष्ट वीर थे। इन्होंने युद्ध में कभी पीछे पग नहीं रखा, भला ऐसे शूर सिपाही आज कल क्या कहीं मिल सकते हैं? जिन लोगों ने ऐसे शूरों का नाश किया है, सचमुच उन लोगों

ने मेरा बड़ा अपकार किया है। चतुर राजा इसी प्रकार के वचन हतशेष शत्रुओं के सामने कहे ? किन्तु शत्रुओं के पीठ पीछे अपने वीर एवं शत्रुहन्ता सैनिकों का सत्कार करे। शत्रु के हाथ से घायल हुए सैनिकों के आगे नेत्रों में आँसू भर कर, राजा ऐसे वचन कहे जिससे उनको धीरज बँधे। बड़े प्रेम से शत्रुराजा का हाथ पकड़, उसके साथ मधुरालाप करे और उसको शान्त करे। जो राजा इस प्रकार आगा पीछा विचार कर, शत्रु के साथ व्यवहार करता है, उससे सब लोग प्रेम करने लगते हैं और वह निर्भय हो राज्य करता है। लोग उस पर विश्वास करते हैं और उससे अपना काम काढ़ लेते हैं। अतः जो राजा इस धराधाम पर राज्य करना चाहे, उसे सब का अपने ऊपर विश्वास उत्पन्न कर लेना चाहिये और उसे निष्कपटभाव से सब लोगों की रक्षा करनी चाहिये।

एक सौ तीन का अध्याय

शत्रु राजा के साथ व्यवहार रखने का विधान

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे भीष्म पितामह ! आप अब यह बतलावें कि, कोमल स्वभाव राजा के साथ, उग्रस्वभाव राजा के साथ, बहुसहायक सम्पन्न राजा के साथ तथा विशाल वाहिनी सम्पन्न महाबली राजा के साथ कैसा बर्त्ताव करना चाहिये ?

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज ! इस प्रसङ्ग में मैं तुम्हें देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र का संवादात्मक एक पुरातन उपाख्यान सुनाता हूँ।

एक बार शत्रु-संहार-कारी देवराज इन्द्र देवगुरु बृहस्पति के निकट गये और हाथ जोड़ कर उनसे पूँछा—हे गुरुदेव ! मुझे बैरियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये ? आप मुझे ऐसा भी कोई उपाय बतलावें

जिससे मैं बिना रक्त बहाये ही वैरियों को अपने वश में कर लूँ। साधारणतः शत्रु पर विजय प्राप्त करने का उपाय तो युद्ध ही है; किन्तु वह कौन सा उपाय है जिससे प्रतापिनी देदीप्यमान राज्यलक्ष्मी मुझे कभी न त्यागे?

यह सुन धर्म-अर्थ-काम के मर्म के जानने वाले प्रतिभाशाली एवं राजनीति के पूर्णज्ञाता देवराज बृहस्पति जी कहने लगे—हे इन्द्र! अपकारी बैरी को युद्ध द्वारा अपने काबू में लाने की चेष्टा कभी न करे। असहनशील बनना अथवा क्षमा न करना, लड़कखेल है। जिसे यह अभीष्ट हो कि, उसका बैरी मारा जाय, उसे क्रोध, भय और हर्ष के वश में स्वयं कभी न होना चाहिये। निर्बल अथवा थोड़ी सेना वाला राजा, विश्वस्त जन की तरह अपने शत्रु की सेवा करे; किन्तु उसे स्वयं उसका तिल बराबर भी विश्वास न करना चाहिये। उसे तो अपने शत्रु से सदा मधुर वचन ही बोलने चाहिये। वह कभी भूल कर भी कोई काम ऐसा न करे, जो विजयी राजा को बुरा लगे। शुष्क वैर करना उचित नहीं। बहुत बक बक कर अपना गला न दुखावे। चिड़ियों को पकड़ कर उनसे अपनी आजीविका चलाने वाला चिड़ीमार, जैसे चिड़ियों की बोलियाँ बोल, पक्षियों को पकड़ता है, वैसे ही विजित राजा भी विजयी शत्रु को अपने काबू में कर ले। पीछे उसका नाश कर डाले। बैरियों को सदैव पराजित करने से दुष्टात्मा शत्रु कभी सुख की नींद नहीं सोता; किन्तु जिस प्रकार, असावधानता किया हुआ अग्नि एकदम फैल जाता है, वैसे ही दुष्ट शत्रु भी अवसर हाथ आते ही—प्रबल पड़ जाता है। मामूली जीत के लिये, राजा को लड़ना न चाहिये। बल्कि उसे तो वैरी को शान्त कर, उसका हाथ अपने हाथ से थाम, अपना काम उससे निकाल लेना चाहिये। यदि किसी शत्रु राजा ने तिरस्कार पूर्वक अपनी सत्ता का अपमान किया हो, तो भी हताश न होना चाहिये। उसे तो अपना मन मज़बूत कर, और अपने मंत्रियों अथवा परामर्शदाता महात्मा पुरुषों से परामर्श ले, जब

वैरी असावधान जान पड़े, तभी उस पर प्रहार करना चाहिये और अपने विश्वस्त जनों द्वारा शत्रुसैन्य में भेद डलवा देना चाहिये। राजा अपने शत्रु के आदि, मध्य और अन्तिम परिणाम को विचार ले। वैर को मन में छिपाये रहे और सेना का परिमाण जान कर सैनिकों में फूट पैदा करवा दे। अथवा विपाक्त ओषधियों के उपचार से शत्रुसैन्य को दूषित कर दे। राजा शत्रु के साथ कभी मित्रता करने की इच्छा न करे। वैरी का नाश करने के लिये चिर काल तक अवसर की प्रतीक्षा करे और शत्रु पर जब पूर्णरीत्या विश्वास जमा ले, तब अवसर हाथ आते ही और शत्रु को जनाये विना ही उस पर वार करे और उसका नाश कर डाले। राजा शत्रुसैन्य के बहुत से सैनिकों को न मारे, किन्तु अपने विजय की पञ्चायत के लिये तदनुरूप व्यवहार अवश्य करे। शत्रु की इतनी हानि कभी न करे कि, मरण पर्यन्त उसके मन में खटका करे। शत्रु को न तो वाणी रूप काँटे से और न वाण ही से घायल करे; किन्तु जब अवसर हाथ लगे, तब उस समय न चूक कर शत्रु पर प्रहार करे। हे देवेन्द्र! जिस राजा को अपने वैरी का नाश करना हो, वह ऐसा ही करे। समय की प्रतीक्षा में बैठा हुआ पुरुष, यदि हाथ आये हुए अवसर पर चूक जाय तो कार्य पूर्ण करने के अभिलाषी पुरुष को फिर अवसर कठिनता से हाथ लगता है। समझदार लोगों से सलाह ले कर राजा को उचित है कि, वह शत्रुबल को तोड़ दे। यदि उपयुक्त समय हाथ न आया हो तो अपना काम न साधे। अनुकूल समय प्राप्त हुए बिना, निज कार्य सिद्धि के लिये, शत्रु को न दबावे और समय प्राप्त होने पर, वैरी को नष्ट भ्रष्ट करने से चूके भी नहीं। काम, क्रोध एवं अहङ्कार को त्याग कर, राजा को बड़ी सावधानी के साथ शत्रु के छिद्र को खोजते रहना चाहिये। हे इन्द्र! राजा का नाश करने वाली बातें ये हैं—राजा का मृदु स्वभाव, दण्ड देने में क्रूरता, आलस्य, प्रमाद और शत्रु द्वारा राजा के अनजान में रचा हुआ षडयंत्र। अतः जो राजा काम, क्रोध, मोह और लोभ को त्याग कर, शत्रु द्वारा रचे गये षडयंत्रों को तोड़ने का उद्योग

करता है, वही राजा अपने शत्रु का नाश करता है। यदि कोई गुप्त कार्य एक मंत्री द्वारा होते देखे तो उस कार्य के सम्बन्ध में एक ही मंत्री से परामर्श कर, उस कार्य को उसी एकमात्र मंत्री से करवावे। क्योंकि यदि किसी गुप्त विषय के सम्बन्ध में अनेक मंत्रियों के साथ परामर्श किया जाय तो या तो वे गुप्त भेद को खोल देते हैं, अथवा अपनी ज़िम्मेदारी एक दूसरे पर छोड़ देते हैं। हाँ, यदि एक से अधिक के साथ किसी विषय पर विचार करने की आवश्यकता जान पड़े तो राजा किसी विषय पर विचार बहुत से मंत्रियों के साथ कर सकता है। यदि शत्रुसैन्य दूर होने के कारण न देख पड़े, तो आथर्वण विधि से उस पर पुरोहित द्वारा ब्रह्मदण्ड-अभिचार का प्रयोग करवावे। यदि शत्रुसैन्य समीप हो तो चतुरङ्गिणी सेना द्वारा शत्रु पर आक्रमण करे। राजा सर्वप्रथम शत्रुसैन्य में फूट डालने का प्रयत्न करे, अथवा सन्धि की बातचीत करे अथवा जैसा मौक़ा देखे, वैसा करे। यदि शत्रु को बलवान देखे तो समय देख उसके सामने नव जाय और सावधान रहे। जब वैरी को बेख़बर पावे तभी उसके नाश करने का उपाय सोचे। अनुनय विनय कर, दे ले कर, मीठे वचन कह कर, बलवान वैरी के वश में हो जाय; किन्तु ऐसा कोई काम न करे, जिससे वैरी के मन में अपनी ओर से सन्देह उत्पन्न हो जाय। निर्बल राजा को सावधान रह कर, ऐसे कार्यों से दूर रहना चाहिये। विजयी राजा को विजित शत्रुओं की बातों पर कभी विश्वास न करना चाहिये। क्योंकि अपमानित शत्रु सदा जागृत रहता है। हे देवराज! चपल लोगों की सहायता से जो ऐश्वर्य प्राप्त होता है—उसका कोई ठिकाना नहीं। चपल पुरुषों को अपने पास रखना भी जोखों से ख़ाली नहीं है। अतः ऐसे लोगों को अपने पास न रख कर चित्त को स्थिर कर राजा को मित्र शत्रु के सम्बन्ध में विवेचना करनी चाहिये। जो राजा मृदु स्वभाव का होता है, प्रजा उसका अपमान करती है और उग्र स्वभाव के राजा से प्रजा घबड़ाती है। अतः तुम्हें न तो अत्यन्त मृदु और न अत्यन्त उग्र ही होना चाहिये। जैसे जल-

प्रवाह के वेग का दबाव तट को ढहा देता है, वैसे ही जो राजा असावधान रहता है और भूल किया करता है, उसका राज्य नष्ट हो जाता है। बुद्धिमान राजा को उचित है कि, वह बहुत से शत्रुओं का नाश एक साथ न करे। उसे तो शत्रुओं के साथ सन्धि कर लेने ही का उद्योग करना चाहिये। शत्रुपक्ष के वीरों को पुरस्कारादि दे अपनी ओर मिला लेना चाहिये अथवा उन सब में परस्पर फूट पैदा कर दे। हे इन्द्र! इस प्रकार एक एक कर सब युक्तियों से काम ले। यदि वैरी की हतशेष सेना थोड़ी हो तो विजयी राजा को उचित है कि, वह उस सेना के साथ शान्ति पूर्वक जाय। क्योंकि यदि विजयी राजा में संहार करने की शक्ति भी हो तो भी शत्रु की हतशेष सेना का नाश न करे। जब अपने पास पूरी चतुरङ्गिणी सेना हो, पैदल सिपाही बहुत हों और तोप आदि युद्धोपयोगी यंत्र भी बहुत हों और सैनिकों का अपनी ओर अनुराग भी पर्याप्त हो, तब राजा को उचित है कि, वह मैदान में जा शत्रुसेना के साथ लड़े। यदि वैरी बली हो तो उसके आगे जा कर, उसे समझाना उचित नहीं है; किन्तु उसे दण्ड देने के लिये चुपके चुपके यत्न करे। ऐसे के साथ यदि नम्रता पूर्वक वर्त्ताव किया जाय तो भी ठीक नहीं और यदि लगातार आक्रमण किया जाय तो वह भी ठीक नहीं। विजयी राजा को उचित है कि, विजित राजा के अधीनस्थ देश के अन्न संग्रह को बरबाद न करे और न जलाशयादि के जल में विष घुलवा कर पीने का जल दूषित करे। ऐसे अवसरों पर तो राजा को अपने शत्रुओं के साथ विविध प्रकार के कपट व्यवहार कर के उन्हें आपस में भिड़ा दे। राजा विश्वस्त चरों को भेज कर शत्रुओं का हाल जानता रहे। राजा को अपने शत्रु के पीछे पड़ जाना चाहिये। वह नगरों के दुर्गों को जीत कर, उनके समस्त वैभव अपने अधीन कर ले।

हे देवराज! शास्त्रोक्त विधि से विजित प्रदेश में सुव्यवस्था का विधान करना चाहिये। राजा प्रथम तो गुप्तचरों को चुपचाप धन दे, फिर उन्हें किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड न दे कर, प्रकट रूप से उनका धन ज़ब्त कर

ले और इस बात की घोषणा सारे देश में करवा दे कि, अमुक गुप्तचर बड़ा दुष्ट है, अतः उन्हें उनके निन्द्य कर्मों का दण्ड दिया गया है। यह बात सर्वसाधारण को जना देने के बाद राजा अपने गुप्तचर शत्रुदेश में भेजे। इसके अतिरिक्त राजा को उचित है कि, वह अपने शत्रुओं पर ऐसे पण्डितों से कृत्या का प्रयोग करवावे जो भली भाँति शास्त्राध्ययन किये हों, सब बातों की जानकारी रखते हों, शास्त्र की विधि जानते हों, सुशिक्षित हों, भाष्य पढ़े हों और कथा कहने में निपुण हों।

इन्द्र ने पूछा—हे ब्रह्मन्! बतलाइये दुष्टों की पहचान क्या है और उन्हें क्योंकर पहचाने?

बृहस्पति जी ने कहा—दुष्ट जन वह है जो पीठ पीछे लोगों की निन्दा करता हो, सद्गुणों का द्वेषी हो और जहाँ किसी की प्रशंसा होती हो वहाँ मुँह लटकाये चुपचाप बैठा रहे; किन्तु चुपचाप बैठने वाले सभी लोगों को दुष्ट न समझ ले। जो दुष्ट जन होता है, वह तो ऐसे अवसरों पर, लंबी साँसे लेता है और ओठ काटता और मुड़ी हिलाता है। वह नित्य मिलता है, तो भी जब अपनी गोष्ठी में बैठता है, तब मनमानी बकबक करता है। पहले तो कोई भी काम हो उसे करना स्वीकार करता है; किन्तु यदि उस पर देखरेख न रखी जाय तो वह उस काम को नहीं करता। बल्कि उस काम को पूरा करने के लिये बिना देखरेख रखे वह हाथ भी नहीं हिलाता। दुष्ट सब की आँख बचा कर भोजन करता है। यदि उसके लिये सब के सामने लाकर भोजन रखा जाय तो वह कह उठता है कि, आज भोजन ठीक नहीं बना, या आज मैं अच्छी तरह भोजन नहीं कर पाया, वह बैठने, सोने और गमन करते समय ऐसे ही भाव दिखाता है।

मित्र का लक्षण यह है कि, वह मित्र के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होता है। जो शत्रु होता है वह इसके विपरीत वर्ताव करता है। हे देवराज! मैंने ये सब बातें तुमसे शास्त्रकथित कही हैं। इन

सब को तुम अपने मन में सावधानी से रख लेना। जो लोग दुष्ट होते हैं, उनका स्वभाव छिपाने पर भी नहीं छिपता। ये दुष्ट के लक्षण शास्त्रसम्मत हैं।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! शत्रुसंहारनिरत इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति के कथन को मनस्थ कर और अवसर पा, शत्रु पर विजय प्राप्त कर, उनको अपने अधीन किया था।

एक सौ चार का अध्याय

सब पदार्थ नश्वर हैं

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! यदि कोई धर्मात्मा राजा कभी निर्धन हो जाय, मंत्री उसे सताते हों, उसके धनागार में न तो धन हो और न शत्रु का सामना करने के लिये उसके पास पर्याप्त सेना ही हो, तो उस राजा को सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये?

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज! तुम्हारे इस प्रश्न के उत्तर में, मैं तुम्हें क्षेमदर्शी का एक उपाख्यान सुनाता हूँ। सुनो। सुनते आते हैं कि, पूर्वकाल में जब क्षेमदर्शी के पास धन नहीं रहा; तब वह कालकवृक्षीय के निकट गया और उन्हें अपने ऊपर कृपालु देख, उनसे उसने यह प्रश्न किया। हे ब्रह्मन्! यदि बार बार उद्योग करने पर भी मुझ जैसे मनुष्य को राज्य न मिले, तो उसे क्या करना चाहिये? आत्मघात, दैन्य, चोरी, पराश्रित हो रहना और क्षुद्र आचरण किये बिना यदि राज्यप्राप्ति का कोई उपाय हो तो आप मुझे बतलावें। मानसिक अथवा अन्य प्रकार की व्याधि से आक्रान्त पुरुष को आप जैसे धर्मज्ञ और कृतज्ञ पुरुषों के शरण में जाना चाहिये। ऐसे राजा को कामनाओं की ओर से उदासीन वृत्ति धारण करनी चाहिये, समयानुसार व्यवहार कर, वह हर्ष और शोक त्याग दे, बुद्धिमत्ता से धनोपार्जन करे और सुख भोगे। जिन लोगों का

सुख, धन के ऊपर निर्भर है, उनके लिये मैं शोक करता हूँ। मेरा तो बहुत सा धन स्वप्न में प्राप्त धन की तरह नष्ट हो चुका है। जो पुरुष विपुल सम्पत्ति त्याग देते हैं, वे बड़ा कठिन काम करते हैं; किन्तु मैं तो अप्राप्त सम्पत्ति के लोभ को भी नहीं त्याग सकता। हे ब्राह्मण! इस समय मैं ऐसी दशा में हूँ, इस समय मैं दीन, आतुर और लक्ष्मी-रहित हूँ। यदि सुख का कोई अन्य साधन हो तो आप मुझे बतलावें।

जब कोशल देश के राजकुमार ने उन मुनि से पूँछा, तब उन परम तेजस्वी कालकवृक्षीय मुनि ने कहा—हे राजकुमार! तुम समझदार हो, अतः तुम्हें सब से पहले यह जान लेना चाहिये कि, यह और वह, मैं और तुम, जो कुछ देखते हो, या जिसे तुम अपना समझते हो, सो सब नाशवान हैं। हे कुमार! सब पदार्थों को मिथ्या अथवा नाशवान मान कर बड़े बड़े बुद्धिमान बड़ी बड़ी विपत्तियों में फँस जाने पर भी दुःखी नहीं होते। जो पहले था और जो आगे होने वाला है, वह कुछ भी नहीं है। इस प्रकार जानने योग्य जिस वस्तु को सब जानते हैं, तुम भी जान लोगे, तो इससे तुम्हारा उद्धार हो जायगा। तेरे पूर्वजों ने जो कुछ छोड़ा है और जो कुछ उन लोगों की वस्तु हैं, उनमें से एक भी वस्तु तेरी नहीं हैं। जो राजा यह बात समझ लेता है उसे किसी प्रकार का खेद नहीं होता। जो वस्तु चली गयी वह फिर नहीं आ सकती और जो वस्तु थी ही नहीं वह आ ही क्यों सकती है। शोक में ऐसी शक्ति नहीं है कि, वह अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा दे। अतः किसी को शोक न करना चाहिये। हे राजकुमार! बतला, आज तेरा पिता कहाँ है। तेरे पितामह आज कहाँ हैं? आज न तो तू उनको देख पाता है और न वे तुझे देख पाते हैं, अतः तू अपनी नश्वरता को जानता हुआ भी उनके लिये दुःखी क्यों होता है। तू अपनी बुद्धि जगा आत्मानुसन्धान कर, तब तुझे जान पड़ेगा कि, तू भी सदा यहाँ न रहेगा। क्या मैं, क्या तू और क्या तेरे स्नेही अथवा तेरे

बैरी निश्चय ही एक न एक दिन यहाँ से कूच करेंगे। इनमें से कोई भी एक दिन यहाँ न देख पड़ेगा। जिन लोगों की आज बीस तीस वर्ष की उम्र है, वे सब अगले सौ वर्ष पूर्ण होने के पूर्व ही मर जाँयगे। जो पुरुष विशाल राज्य और विपुल धनराशि का त्याग नहीं कर सकता उसे, यह मान कर कि, मेरा कुछ भी नहीं है, उस राज्य और धन सम्पत्ति की ममता को अपने मन से निकाल डालना चाहिये और अपना कल्याण करना चाहिये। आगे मेरे हाथ आने वाली वस्तु मेरी न होगी और जो वस्तु मेरे पास किसी समय थी वह भी मेरी न थी ; मनुष्य का भाग्य बलवान है। जो लोग ऐसा समझते हैं, वे पण्डित कहलाते हैं। उन्हें ही ऋषि, मुनि, ममतारहित और सत्पुरुष समझते हैं। बुद्धि और पुरुषार्थ में तुझ जैसे अथवा तुझसे भी चढ़े बढ़े लोग, जब निर्धन हो जाते हैं, तब वे भी अपना जीवन तैर कर डालते हैं। वे राज्य नहीं करते। इस पर भी वे तेरी तरह शोकातुर नहीं होते। अतः तुझे भी शोकातुर न होना चाहिये। क्योंकि क्या तू उनसे बुद्धि और पुरुषार्थ में हेटा है ?

राजकुमार बोला—मेरी समझ में तो मुझे वह सारा राजपाट अनायास ही मिल गया था। उसे बलवान काल ने मुझसे छीन लिया है। हे तपोधन ! जलप्रवाह के समान उस महाकाल ने मेरा सर्वस्व अपहृत कर लिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि, मुझे धर्मादाय की आमदनी से अपना निर्वाह करना पड़ता है।

मुनि ने कहा—राजकुमार ! यदि यथार्थ वस्तु का विचार कर लिया जाय तो भूत और भविष्यत्काल के लिये शोक करने की आवश्यकता ही न पड़े। जो पदार्थ प्राप्त हों उन्हींकी प्राप्ति के लिये तू मन चला और जो अप्राप्त हैं, उन पर मन मत चला। प्राप्त पदार्थों का तो उपभोग कर किन्तु अप्राप्त पदार्थ के लिये, शोक मत कर ; प्राप्त पदार्थों से मौज कर और यदि धन न मिले तो भी अपने मन को क्षुब्ध मत कर। जब पूर्व-जन्मकृत कर्मभोग से मनुष्यों को भोग नहीं मिलते, तब उसकी बुद्धि बिगड़ जाती

है और वह नित्य ही दैव को कोसा करता है। फिर जब कुछ धन मिलता है, तब उसे उतने से सन्तोष नहीं होता। वह उत्तरोत्तर अधिकाधिक धन पाने की कामना किया करता है। वह नीचप्रकृति के लोगों को धनी देख, उनका सम्मान करता है और इसीसे उसे वारंवार दुःख भी भोगना पड़ता है। हे राजन्! लोग ईर्षा और अभिमान से भरे हुए तथा पुरुषत्व का अभिमान रखने वाले होते हैं। राजकुमार! कहीं तू तो वैसा नहीं है?

यद्यपि तेरे पास धन नहीं है; तथापि तू दूसरों के पास धन देख कुढ़ता तो नहीं। मत्सरता-शून्य पुरुष शत्रु की राज्यलक्ष्मी को भोगते हैं; किन्तु जो लोग दूसरों से द्वेष करते हैं, वे लोग अपनी राज्यलक्ष्मी स्वयं त्याग देते हैं। धर्मात्मा योगी और धैर्यवान् पुरुष स्वयं ही धन को और पुत्र, पौत्रों को त्याग देते हैं। कितने ही साधारण जन, वारंवार उद्योग कर और विविध साधनों द्वारा निज उपार्जित नवीन पदार्थों को परम दुर्लभ मान कर भी, नाशवान होने के कारण उनको त्याग देते हैं। अतः हे राजकुमार! तुम समझदार हो कर भी दीन बन शोक क्यों करते हो? पराधीन बनाने वाले दुःखदायी उन वस्तुओं के लिये, जिनकी अभिलाषा प्राप्ति के लिये न करनी चाहिये, तुम क्यों अभिलाषा करते हो? मैं तो तुम्हें यही उपदेश दूँगा कि, तुम समस्त कामनाओं का त्याग करो। कितने ही मनुष्य धन पाने का उद्योग करते हुए प्राप्त धन को नष्ट कर डालते हैं और कितने ही धन ही को अनन्त सुख का कारण मान, उसकी प्राप्ति के लिये उसके पीछे पड़े रहते हैं। किसी पुरुष को धन ही अच्छा लगता है। अतः वह धन को छोड़ अन्य किसी वस्तु को कल्याणप्रद नहीं समझता। इसका फल यह होता है कि, वे इन लाभों से वञ्चित हो जाते हैं, जो जीवन को सार्थक बनाने वाले हैं। यदि किसी का महापरिश्रम से प्राप्त धन नष्ट हो जाता है, तो फिर उसकी हिम्मत टूट जाती है। कितने ही धर्मनिष्ठ और सत्कुलोद्भव पुरुष सद्गुणों से सम्पन्न हो कर भी परलोक-सुख-प्राप्ति की कामना से सांसारिक विषयों से

उदासीन हो जाते हैं और कितने ही लोग धन के पीछे अपनी जान दे देते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में धनहीन जीवन गर्हित है। जो इस नाशवान् जीवन के मोह में फँस, आर्थिक दृष्टि को मुख्य मान बैठते हैं, उनकी कृपणता और मूर्खता को तुम देखो। जहाँ धन के नाश का काल सन्निकट आ पहुँचा हो, वहाँ कौन मूर्ख जन धन प्राप्ति की ओर अपना मन लगावेगा? जहाँ मरण अनिवार्य है, वहाँ जीवन की ममता में कौन फँसेगा? राजन्! कभी तो मनुष्य को धन त्यागना पड़ता है और कभी धन ही मनुष्य को त्याग देता है। कभी न कभी एक दूसरे को अवश्य ही त्यागता है। जो यह बात जानता है, वह धन के लिये दुःखी क्यों होगा। इस संसार में ऐसे बहुत लोग हैं, जिनके नातेदार मरते हैं और उनके पास धन भी नहीं रहता। इसी दृष्टि से हे राजकुमार! तू भी अपनी वर्त्तमान शोच्य परिस्थिति का अवलोकन कर। मनुष्य के पूर्वकृत कर्मों ही से उन पर विपत्ति आती है। तू अपने मन को तथा इन्द्रियों को अपने वश में रख और वाणी को चुप रख। क्योंकि जिस मनुष्य के अहितकारी मन, जिह्वा और इन्द्रियों के निर्बल पड़ जाने के कारण वह नीच कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है और वह इन्द्रियजन्य विषयों का दास बन जाता है। इस संसार में देश और काल की सत्ता पर निर्भर रहने वाले भूत और भविष्यत्काल के पदार्थों को कोई नहीं जान सकता। यह बात तो तुझे मालूम ही है। क्योंकि तू ज्ञानवान और पराक्रमी है। अतः तुझ जैसे पुरुष को तो शोकातुर न होना चाहिये। तुझ जैसा अल्प लाभ की कामना रखने वाला, चपलता शून्य, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, आत्मतत्त्वज्ञ और ब्रह्मचारी पुरुष भी क्या शोकातुर होने योग्य है? तुझ जैसे पुरुष को यह शोभा नहीं देता कि, तू उन लोगों की तरह आजीविका करे जो कपटी, कापालिक, निष्ठुर, पापी, दुष्ट और नीच हैं। तू तो अपनी जिह्वा और मन को अपने वश में रख, एवं प्राणि मात्र पर दयाभाव रख, फलों मूलों से अपना निर्वाह कर के, वन में जा एकाकी विचर। क्योंकि पण्डित का यह कर्म हलकी लकड़ी के समान

एकाकी वन में क्रीड़ा करने वाले दन्ती हाथी की तरह है। चतुर मनुष्य वही है जो वन में एकाकी रहता है और वन में मिलने वाले पदार्थों ही से अपना निर्वाह कर लिया करता है। जैसे एक बड़ा जलाशय चघोंले जाने पर अपने आप ही कुछ समय बाद निर्मल हो जाता है, वैसे ही क्षुब्धचित्त महापुरुष, भी अपने आप शान्त हो जाता है। मैंने देखा है कि, ऐसे पुरुष ही सुख में जीवन बिताते हैं।

हे राजकुमार! अब तुझे राज्यलक्ष्मी नहीं मिल सकती। क्योंकि तेरे पास न तो कोई परामर्शदाता मंत्री ही है और न तेरा भाग्य ही तेरा साथ देता है। अतः अब तू विचार कर देख ले कि तेरी भलाई किस में है।

एक सौ पाँच का अध्याय

प्रबल शत्रु को वशीभूत करना

कालक वृत्तीय मुनि ने कहा—हे क्षेमदर्शी! यदि तुझे विश्वास हो कि, तुझमें कुछ पुरुषार्थ है, तो मैं राज्य पाने की राजनीति तुझे बतलाता हूँ। यदि तू मेरी बतलायी राजनीति से काम लेगा; तो तेरी उन्नति-कामना पूर्ण होगी। सुन, अब तुझे राजनीति बतलाता हूँ। यदि तू पुरुषार्थ करेगा तो तुझे बहुत सा धन मिलेगा। अतः हे राजन्! यदि तुझे मेरा कथन अच्छा जान पड़ा हो तो बतला। तब मैं तुझसे कहूँ।

राजकुमार ने कहा—हे ब्रह्मन्! आप मुझे राजनीति का उपदेश दें। मुझमें पुरुषार्थ और वीरत्व यथेष्ट हैं। भगवान् करें आपका और मेरा आज का समागम लाभदायक हो।

'कालक-वृत्तीय ने कहा—हे राजकुमार! तू दम्भ, काम, क्रोध, हर्ष और भय को त्याग और दोनों हाथ जोड़ प्रणाम पूर्वक शत्रु की भी सेवा कर। तू जनक की सेवा कर और प्रतिदिन शुभकर्म किया कर। यदि तू दृढ़ता पूर्वक उसके साथ रहा तो तू उसका दहिना हाथ हो जायगा। क्योंकि विदेह-

राज सत्यप्रतिज्ञ है। वह निश्चय ही तुझे धन देगा और अन्य समस्त जन भी तेरा सम्मान करेंगे। इसका फल यह होगा कि, तुझे उत्साही, व्यसनों से रहित और ईमानदार सहायक मिल जायँगे। जो राजा राजनीति के अनुसार चलता है, अपने मन को और अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखता है, उसका अभ्युदय होता है और उससे अन्य लोग प्रसन्न रहते हैं। धीमान् एवं श्रीमान् राजा विदेह तेरा सत्कार करेगा और काल पा कर तू उसका दक्षिण हस्त हो जायगा। उस समय सब लोग तेरी प्रतिष्ठा करेंगे, तब तू अपने मित्रों की सहायता से चतुर मंत्रियों के साथ परामर्श करना। तदनन्तर अपने शत्रुओं को भीतर ही भीतर आपस में लड़ाना। तू अपने वैरियों को वैसे ही नाश करना, जैसे एक बेल का फल दूसरे बेल के फल से तोड़ डाला जाता है। तू अपने शत्रुओं को दुर्लभ उत्तम वस्तुओं का—यथा स्त्रियां, उढ़ोना बिछौना, वाहन, बैठकी, बढ़िया राजभवन, दुर्लभ पशु, पक्षी, भिन्न भिन्न प्रकार के रस, सुगन्ध द्रव्य और फल का व्यसनी बना देना। जिससे वे इन वस्तुओं के व्यसन में पड़ स्वयं ही नष्ट हो जाँय। यदि कोई राजा ऐसा कर सकता हो और बिना युद्ध ही के शत्रु को वश में करना हो तो ऐसे सदाचारप्रिय को अपना अभिप्राय शत्रु को न जनाना चाहिये।

हे राजकुमार! तू बुद्धिमानों में श्रेष्ठ है। तू शत्रु के देश में जा कर विहार कर और * कुत्ते, † मृग तथा ‡ कौए की तरह आचरण कर। वैरी की सेवा कर, तू अपने शत्रुओं को महाकठिन बड़े बड़े कामों के करने में लगा दे और नदी की तरह दुस्तर बलवानों से उनकी शत्रुता करवा दे। वैरियों द्वारा बड़े बड़े बाग लगवा और बहुमूल्य सेजें बैठकी खरिदवा कर वैरियों का धनागार खाली करवा दे। दान की महिमा सुना, वैरियों से ब्राह्मणों को धन दिलवा। ऐसा करने से ब्राह्मण तेरे कृतज्ञ होंगे और तेरे

---

* कुत्ते की तरह जागता रह। † मृग की तरह चौकन्ना रह कर ‡ काक की तरह शत्रु के इशारों से उसके मनोगत भावों को जान।

शत्रुओं को वे भेड़िया की तरह खा डालेंगे। जो धर्मात्मा होता है वह निश्चय ही परमगति पाता है। धर्मात्मा को स्वर्ग में भी वही स्थान मिलता है जो बड़े बड़े पुण्य कर्म करने वालों को मिला करता है।

हे राजकुमार! जब वैरी का धनागार—शुभ अथवा अशुभ कर्मों के अनुष्ठान से रीता हो जाता है, तब उसे झक मार कर अपने शत्रु का वशवर्त्ती होना पड़ता है। क्या स्वर्ग और क्या विजय सब का मूल धनागार है। अतः बुद्धिमान राजा प्रथम अपने वैरी का धनागार रीता करे। क्योंकि धन ही से तो वैरी सुख चैन से दिन बिताता है। तू कभी अपने वैरी को उद्योग करने की सलाह मत देना, किन्तु ऐसे उपदेश देना; जिससे वह भाग्य पर निर्भर रह निकम्मा हो जाय। केवल भाग्य पर निर्भर रह उद्योग न करने वाला पुरुष थोड़े ही दिनों में निर्धन हो जाता है। अतः तू अपने शत्रु को विश्वजित नामक यज्ञ करने की सलाह दे। जिससे उसका सञ्चित सम्पूर्ण धन खर्च हो जाय, तब तेरा मनोरथ सिद्ध होगा। तदनन्तर तू राज्य के राज्याधिकारियों और स्वयं राजा के सामने कष्टों से पीड़ित महाजनों की चर्चा छेड़ना। साथ ही किसी मोक्षधर्मज्ञ पवित्राचरणी आचार्य की चर्चा चलाना। वह आचार्य जब राजा के बुलाने पर उसके निकट जायगा, तब राजा का मन वैराग्य की ओर झुका देगा। इससे तेरा वैरी राज्य को छोड़ मोक्षप्राप्ति के लिये वन में चला जायगा। उस समय तू शत्रुओं का नाश करने वाली अचूक दवाइयों तथा बनावटी विषों के प्रयोग से, वैरी के हाथी, घोड़े और सिपाहियों को नष्ट कर डालना। इन चालबाज़ियों तथा अन्य कपटपूर्ण व्यवहारों से बुद्धिमान जन, अपने शत्रु राजा के राज्य और प्रजा को चौपट कर सकता है।

एक सौ छः का अध्याय

धर्म सर्वविजयी है

राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैं कपटचाल और धोखेबाज़ी से जीवित रहना नहीं चाहता। मैं नहीं चाहता कि, मैं पाप कर्मों के सहारे विपुल सम्पत्ति का स्वामी बनूँ। यदि मैं कपट एवं दम्भपूर्ण बर्त्ताव करने लगूँ, तो लोगों को मेरे ऊपर सन्देह हो जायगा और इसका फल मेरे लिये हितकर न होगा। यह विचार कर ही मैं कपट और दम्भ को पहले ही से त्यागे बैठा हूँ। मैं इस संसार में क्रूर बन कर जीवित रहना नहीं चाहता। अतः मुझसे धोखेधड़ी के काम नहीं हो सकते। साथ ही आपको भी उचित नहीं कि, आप मुझे छल, कपट का उपदेश दें।

मुनि बोले—हे राजकुमार ! शाबाश ! सचमुच तू अपने को जैसा बतलाता है, ठीक तू वैसा ही है। तेरा स्वभाव धर्मात्माओं जैसा है और बुद्धि भी ज्ञानियों और अनुभवी पुरुषों जैसी है। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे तुझमें और राजा विदेह में ऐसी प्रगाढ़ मैत्री हो जायगी कि, वह फिर कभी न टूटेगी। तू कुलीन है और तेरे मन में दया दाक्षिण्य है। तू बड़ा अनुभवी और राजकाज में पटु है। तुझ जैसे चतुर जन को तो प्रत्येक राजा स्वयं अपना मंत्री बना लेगा। यद्यपि इस समय तू राज्यभ्रष्ट हो रहा है। और इस समय तू बड़ी विपत्ति में फँस गया है, तथापि तू अधर्म में प्रवृत्त न हो कर धर्माचरण में रत रहना चाहता है। अतः जब सत्यप्रतिज्ञ राजा विदेह मेरे पास आवेगा, तब मैं उसे जो आज्ञा दूँगा, उसका वह अवश्य ही पालन करेगा।

तदनन्तर उन मुनि ने राजा जनक को बुला कर, उनसे कहा—यह राजकुमार राजघराने में उत्पन्न हुआ है, मैं इसके मानसिक भावों को जानता हूँ। इसका मन दर्पण अथवा शरद् पूर्णिमा के चन्द्र की तरह निर्मल है। मैं इसकी भली भाँति परीक्षा ले चुका हूँ। यह कपटी नहीं है। अतः तुम

इसके साथ सन्धि कर लो और इस पर उसी तरह विश्वास करो, जिस तरह तुम मेरे ऊपर करते हो। जिस राजा के पास मंत्री चतुर नहीं होता, वह तीन दिन भी राजकाज नहीं चला सकता। राजा को उचित है कि, वह शूर और बुद्धिमान पुरुष को अपना मंत्री बनावे। हे राजन्! बुद्धि और शौर्य से यह लोक बनता है और परलोक सुधरता है। तू ज़रा ध्यान दे कर विचार कि, वही जन राज्य चला सकता है जिसमें बुद्धि और शौर्य होते हैं। जो धर्मात्मा राजा हैं, उनके लिये तो इस संसार में बुद्धिमान और ईमानदार मंत्री ही परमगति है। मैं जानता हूँ यह राजकुमार ईमानदार है और सन्मार्गगामी है। यह धर्मात्मा है। अतः तू इसे अपने घर पर रख, इसका उचित सम्मान कर। यह तेरे समस्त शत्रुओं को वश में कर लेगा।

फिर यदि यह अपने पुश्तैनी राज्य को हस्तगत करने के लिये तुझसे लड़ बैठे तो यह तो क्षत्रिय का कर्त्तव्य ही है; किन्तु ऐसा समय आने पर तू भी तो विजय प्राप्त करना चाहेगा। अतः तू इसके साथ युद्ध करना; किन्तु मेरी आज्ञा से तू युद्ध किये विना ही अपने हितार्थ, इसको वश में कर ले। तू अनुचित लोभ की ओर से अपने मन को फेर कर, धर्म में मन लगा। क्योंकि तुझसे मनुष्य को कामना और द्रोह के कारण धर्म को न त्यागना चाहिये। हे तात! न तो कोई नित्य जीतता ही है और न कोई नित्य हारा ही करता है। अतः शत्रुओं के साथ मेलजोल बढ़ा, उनके भोजनादि का प्रबन्ध कर, उन्हें सुख से रख। जो लोग, अपनी हार और जीत दोनों पर ध्यान रख, शत्रुसंहार कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उन्हें सदा सशङ्कित रहना पड़ता है।

जब उन मुनि ने इस प्रकार विदेहराज राजा जनक को समझाया, तब राजा ने उन मुनि का यथोचित पूजन एवं सत्कार कर और उनका कहना मान, उनसे कहा—हे ब्रह्मन्! आप महाबुद्धिमान् तथा बड़े अनुभवी हैं। हम दोनों के हित के लिये आप जो कुछ कह रहे हैं, सो सब ठीक है।

मैं आपके कथनानुसार ही बर्त्ताव करूँगा। क्योंकि आपका कथन परम कल्याणकारी है। कम से कम मुझे तो आपके वचन में ज़रा भी सन्देह नहीं है।

तदनन्तर राजा जनक ने कोशल देश के राजकुमार को बुला कर उससे कहा—मैंने तो धर्म और नीति से जगत को जीता है; किन्तु तूने मुझे अपने सद्गुणों से विजय किया है। अतः अब तू अपना स्वयं तिरस्कार न कर, एक विजयी वीर की तरह मेरे साथ व्यवहार कर। मैं तेरी बुद्धि तथा तेरे पराक्रम की उपेक्षा करना नहीं चाहता। मैं जीता हूँ, यह मान कर भी मैं तेरा अपमान नहीं करता; किन्तु मेरा कथन तो यह है कि, तू एक विजयी वीर जैसा मेरे साथ व्यवहार कर। हे राजकुमार! मैं तेरा यथेष्ट सम्मान करता हूँ। अतः अब तू अपने घर जा।

राजा जनक के इन वचनों को सुन, उन दोनों ने एक दूसरे पर विश्वास करना आरम्भ किया और उन मुनि का पूजन कर, राजा जनक अपने घर गये। तदनन्तर राजा जनक ने तुरन्त उस राजकुमार को अपने भवन में बुला लिया। वहाँ प्रथम कोशल देश के राजकुमार ने राजा जनक के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया, फिर विदेह ने राजकुमार को अर्घ्य, पाद्य दे मधुपर्क से उसका पूजन किया। अन्त में राजा जनक ने अपनी राजकुमारी का विवाह उस राजकुमार के साथ कर दिया और विविध प्रकार के बहुत से रत्न उसे भेंट किये।

फलतः जीत और हार किसी की भी बपौती नहीं है। अतः राजाओं का परम धर्म है कि, वे आपस में मिल जुल कर रहें।

एक सौ सात का अध्याय

सामन्त प्रकरण

राजा युधिष्ठिर ने पूँछा—हे शत्रुतापन ! आपने मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के धर्म, उनका व्यवहार, उनके जीविका के साधन, और उनके फल बतलाये। आपने मुझे राजधर्म, धनागार पूर्ण करने के उपाय, जय और विजय के रूप, मंत्रियों के आचरण, उनके साथ व्यवहार करने की रीति, प्रजा की वृद्धि के साधन, सैन्य विभाग और सैनिकों के साथ राजा का व्यवहार, दुष्टों की पहचान और सत्पुरुषों के लक्षण भी बतलाये। आपने मुझ समान, हीन और उत्तम पुरुषों की पहचान, उन्नति-कामी राजा को, मध्यम श्रेणी के लोगों को प्रसन्न करने के लिये जो जो करना चाहिये, वह भी बतलाया। साथ ही यह भी बतलाया कि, राजा को निर्बल जनों की रक्षा कैसे करनी चाहिये। उनकी आजीविका का राजा को क्या प्रबन्ध करना चाहिये। आपने मुझे यह भी बतलाया है कि, विजयी राजा को विजित राजा के प्रजा जनों के साथ कैसा वर्त्ताव करना चाहिये। भगवन् ! अब मुझे आप वीर पुरुषों के वर्त्ताव का वर्णन सुनावें। मैं जानना चाहता हूँ कि, सामन्तों तथा राज्य के श्रीमानों की वृद्धि किन उपायों से की जाय, सामन्तों में परस्पर मेल किस उपाय से बना रखा जाय। शत्रुसमूह को जीतने का अचूक उपाय क्या है? अपने प्रति स्नेह रखने वाले पुरुषों का राजा सम्पादन कैसे करे?

भगवन् ! यह मैं जानता हूँ कि, घर की फूट से बड़े बड़े धनी धूल में मिल जाते हैं। फिर जो रहस्य बहुत से लोग जान चुके हैं, उसे गुप्त रखना, मेरी समझ में बड़ा कठिन काम है। अतएव हे शत्रुतापन ! आप मुझे ये सब विषय बतलावें। आप मुझे बतलावें कि, वे कौन से साधन हैं, जिनसे सामन्तों में परस्पर मनमुटाव न हो।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! जब राजा और उसके समृद्धिशाली सामन्तों में दलबंदी हो जाती है, तब लालच वश दोनों पक्ष एक दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। उस समय राजा प्रजा को करभार से दबाता है तब ये लोग राजा पर अप्रसन्न हो कुपित होते हैं। फल यह होता है कि, एक दूसरे को नष्ट करने को उद्यत होते हैं। तब दोनों का धनव्यय होते होते दोनों नष्ट हो जाते हैं। दूत, मंत्र, शारीरिक बल, आदान, साम, भेद, व्यय, व्यय और भय द्वारा परस्पर निर्बल कर अपने पक्ष की खींचतान करते हैं, तब सामन्त आपस में मिल जाते हैं और करभार के कारण खिन्न हो, ये सब राजा से फट, उसके शत्रु से जा मिलते हैं। इस बीच में यदि सामन्तों में फूट पड़ गयी, तब तो वे स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं और आपसी फूट के कारण शत्रु उन्हें शीघ्र पराजित कर देता है। अतः सामन्तों को उचित है कि, वे लोग आपस में मिल जुल कर रहें। जब सामन्त मिल जुल कर रहते हैं, तब वे संयुक्त बल तथा पुरुषार्थ से, अपने विचारे हुए कार्यों को पूरा कर डालते हैं। मिल कर रहने वाले सामन्तों के साथ बाहर वाले भी मैत्री कर लेते हैं। जो एक मत होकर रहते हैं, उनकी प्रशंसा ज्ञानवृद्ध जन भी करते हैं। आपस में मेल रखने वाले सामन्त एक दूसरे का काम कर डाला करते हैं। इसलिये वे सब सदा सुखी रहते हैं। वे उदाहरण स्थापित करने को, शास्त्रोक्त धर्म को स्थापित करते हैं और शास्त्रोक्त व्यवहार करने से उनकी उन्नति होती है। वे पुत्रों और छोटे भाइयों को नियम में रख, उन्हें विनयी बनाते हैं। जब वे विनयी हो जाते हैं, तब वे उन्हें कर्त्तव्य-परायण बनाते हैं। जिन्हें ज्ञानवान् होने का गर्व है उनके साथ प्रीति रखने से सामन्तों की उन्नति होती है। जो सामन्त दूतों (वकीलों) को बड़े राजा के दरबार में नियुक्त कर, राजदरबार के विचारों की जानकारी प्राप्त करते रहते हैं, जो सामन्त अपने धनागार की वृद्धि करने में संलग्न रहते हैं, उन सामन्तों की सब प्रकार से उन्नति होती है।

हे राजन् ! बुद्धिमान्, वीर, उत्साही और कार्यपटु एवं पुरुषार्थी जनों को जो सामन्त सदा सम्मान करते हैं, उन सामन्तों की श्रीवृद्धि होती है। जो धनाढ्य, वीर, शस्त्र-विद्या-निपुण, शास्त्र-निष्णात, विज्ञानी और कलाकुशल होते हैं वे महाविपत्ति ग्रस्त होने के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ जनों का विपत्ति से उद्धार कर देते हैं।

हे भरतसत्तम ! क्रोध, भेदभाव, दण्ड, कर्षण, क़ैद और प्राणदण्ड का भय सामन्तों को राजा के अधीन रखने वाले हैं। अतः राजा को उचित है कि, वह सामन्तों के सरदार को सत्कार आदि से मिलाये रखे। क्योंकि बहुत कुछ लोकव्यवहार सामन्तों के ही अधीन है। राजा, राजकाज के समस्त गुप्त विषयों पर सामन्तों के साथ परामर्श न करे, क्योंकि सभी सामन्त सब गुप्त विचारों के सुनने योग्य नहीं होते। अतः राजा सामन्तों के मुखिया को ही गुप्त विचारों में शरीक करे। सामन्तों तथा राज्य के अन्य धनी मानियों के हित का जो कार्य हो, उसे केवल उच्च श्रेणी के सामन्तों के मुखिया ही से मिल कर करे; किन्तु यदि उनमें आपस में फूट हो अथवा उनका कोई सरदार ही न हो तो वे अपना अपना काम अलग अलग करें। यदि सामन्त आपस में लड़ कर, एक दूसरे से अलग हो गये हों तो और अपनी शक्त्यनुसार अलग अलग काम करते हों तो समझना चाहिये कि, उनका नाश अति निकट है और अनर्थ होने वाला है। ऐसे समय जो समझदार और व्यवहार-चतुर हों, वे अविलंब कलह को शान्त कर दें। यदि किसी परिवार में झगड़ा उत्पन्न हो जाय और उस झगड़े को यदि उस परिवार के वृद्धजन दूर न करें, तो समझना चाहिये कि, वे वृद्ध अपने परिवार के नाशक स्वयं ही हैं। ऐसी परिस्थिति में बाहरी भय निस्सार माना जाता है। अतः भीतरी भय से रक्षा करनी चाहिये। घर का भय जड़ को काटता है। क्रोध, मोह, अथवा लोभवश एक परिवार के लोग यदि आपस में बोलचाल बंद कर दें, तो समझना चाहिये कि, उस परिवार का पराभव होने वाला है। जो सामन्त एक जाति और एक

ही कुल के होते हैं, उनमें शत्रु उद्योग, बुद्धि, धन, भेदभाव या सौन्दर्य के लोभ से फूट नहीं फैला सकता। अतः राजा को उचित है कि, वह अपने राज्य के सामन्तों अथवा रईसों को मेलजोल से रखे। क्योंकि वे लोग राज्य के प्रधान रक्षक होते हैं।

एक सौ आठ का अध्याय

मातृ-पितृ-गुरु-पूजन माहात्म्य

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह ! धर्म का मार्ग विस्तृत है और उसकी शाखाएँ भी बहुत हैं। अतः आप बतलावें कि, समस्त धर्मों में आप कौन सा धर्म विशेष रूप से आचरणीय मानते हैं? किस धर्म के आचरण को आप श्रेष्ठ समझते हैं। मुझे कौन से धर्म का आचरण कर इस लोक में पुण्य उपार्जन करना चाहिये।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज ! मैं तो माता, पिता और गुरु की पूजा को परमधर्म मानता हूँ। जो मनुष्य मातृ-पितृ-गुरु पूजन में रत रहता है, उसको इस लोक में महद् यश और परलोक में अच्छा पद प्राप्त होता है। माता पिता और गुरु चाहे धर्मानुकूल अथवा धर्म-विरुद्ध किसी काम को करने की आज्ञा दें, उसे अवश्य करना चाहिये और जिस काम का वे निषेध करें, उसे कदापि न करे। क्योंकि उनका वचन ही धर्म है। माता पिता और गुरु ही तीनों लोक हैं, तीनों आश्रम हैं। ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नि हैं। पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीय अग्नि हैं। हे धर्मराज ! यदि तुमने सावधानता पूर्वक इन तीनों की सेवा की तो तुम तीनों लोकों को जीत लोगे। नियमानुसार पिता की सेवा करने से यह लोक, मातृ-सेवा से परलोक और गुरु-सेवा से ब्रह्मलोक प्राप्त होते हैं। अतः हे युधिष्ठिर ! तुम इन तीनों के प्रति अच्छा वर्त्ताव करना। ऐसा

करने से तुम्हें यश, कल्याण और बड़ा पुण्य मिलेगा। इनकी किसी भी आज्ञा को मत टालना, इनको बिना भोजन कराये स्वयं भोजन मत करना, कोई भी पदार्थ इनको अर्पण किये बिना अपने काम में मत लाना। इन्हें किसी प्रकार का भी दोष मत लगाना, विनम्रतापूर्वक नित्य इनकी सेवा करना। इससे बढ़ कर उत्तम पुण्य कार्य दूसरा नहीं है, ऐसा करने से तुम्हें पुण्य, कीर्ति और उत्तमलोक की प्राप्ति होगी। जो लोग इन तीनों का सम्मान नहीं करते हैं, उनके समस्त धर्म कर्म निष्फल होते हैं। जो मनुष्य इन तीनों पूज्यों का अपमान करता है, उसका यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं और उभयलोकों में उसे सुख नहीं मिलता।

हे धर्मराज! मुझसे तो आज तक जो कुछ शुभ कर्म बन पड़ा, वह सब मैंने गुरुदेवादि को अर्पण किया। ऐसा करने से मेरा पुण्य शतगुणा वा सहस्र गुणा अधिक हो गया। उन्हींकी सेवा के प्रताप से त्रिलोक मेरी निगाह के सामने रहते हैं। दश वेदवेत्ता ब्राह्मणों की अपेक्षा एक आचार्य श्रेष्ठतर है और एक उपाध्याय दस आचार्यों की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। अगरा जनक—पिता दस उपाध्यायों से उत्तम है और माता, पिता की अपेक्षा दसगुनी अधिक है अथवा वह सारी पृथिवी से भी श्रेष्ठ है। माता पिता के समान श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है; परन्तु मैं तो माता पिता की अपेक्षा गुरु को श्रेष्ठतर मानता हूँ। क्योंकि माता पिता तो केवल जन्मदाता हैं, वे तो केवल इस नश्वर शरीर की रचना के कारण मात्र हैं; किन्तु वेद पढ़ाने वाला गुरु, दिव्य, अजर और अमर शरीर का देने वाला है।

यदि माता पिता अपना अपकार करें तो भी उन पर हाथ न उठाना चाहिये। अपराध करने पर भी माता पिता को दण्ड न देने से पुत्र दोष का भागी नहीं होता। अपराधी माता, पिता अथवा गुरु का वध न करने वाले पुत्र एवं शिष्य को राजा भी अपराधी नहीं ठहरा सकता। जो पुत्र अपने पापी माता पिता का पोषण करता है, वह महर्षियों और देवताओं का कृपाभाजन माना जाता है। जो गुरु भलीभाँति प्रबन्ध न कर वेदाध्ययन कराने की कृपा

करता है। शिष्य को उचित है कि उस गुरु को ही अपना माता पिता जाने। इसे अपने ऊपर गुरु का उपकार मान कर, कोई कार्य ऐसा न करे जिससे गुरु के ऊपर किसी प्रकार की आपत्ति आवे। जो शिष्य गुरु-गृह-वास करते समय मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु की सेवा नहीं करता, उसे गर्भहत्या का पाप लगता है। इस लोक में उससे बढ़ कर पापी और कोई नहीं समझा जाता। गुरु अपने शिष्य पर सदा स्नेह रखता है। गुरु जैसे शिष्य को वेदाध्ययन करा उस पर अमित सत्कार करता है, वैसे ही शिष्य को भी गुरु की सेवा कर, उनका सत्कार करना चाहिये। अतः सनातन-धर्मावलम्बियों को तो गुरुदेव का पूजन अवश्य ही करना चाहिये। शिष्य को उचित है कि आग्रह पूर्वक गुरु को वैभवों का उपभोग करावे और गुरु की सैवा करे। जिस पुत्र ने अपने पिता को प्रसन्न किया, उसने मानों प्रजापति को प्रसन्न कर लिया। जो अपनी जननी को प्रसन्न रखता है, उसने मानों अखिल पृथिवी का पूजन कर लिया। जिसने उपाध्याय को प्रसन्न कर लिया उसने मानों ब्रह्म की आराधना कर ली। इस लिये माता पिता से गुरु अधिकतर पूज्य माना जाता है। गुरुपूजन करने से ऋषि, देवता और पिता प्रसन्न होते हैं, अतएव गुरुदेव परम पूज्य हैं। शिष्य को कोई भी ऐसा काम न करना चाहिये, जिससे गुरुदेव का तिरस्कार हो। क्योंकि गुरु तो माता पिता से भी बढ़ कर हैं। न तो माता, पिता और गुरु का किसी प्रकार भी तिरस्कार करे और न उनके किये कर्मों में दोषारोपण करे। गुरुओं के प्रति किये गये सत्कार को महर्षि और देवता अङ्गीकार करते हैं। जो मनसा अथवा कर्मणा अपने गुरु अपने पिता अथवा अपनी माता के साथ द्वेष करता है, उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है और उसके समान पातकी अन्य कोई नहीं माना जाता। जो पेटजाया पुत्र, माता पिता के द्वारा पालापोसा जा कर बड़ा हुआ हो, वह यदि अपने उन माता पिता का (वृद्धावस्था में) पालन पोषण न करे; तो उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है और इस लोक में उसके समान पातकी और कोई नहीं माना जाता। हमने आज तक नहीं सुना कि, मित्रद्रोही,

कृतघ्नी, स्त्री-घातक और गुरुघातक का किसी शास्त्र में कोई प्रायश्चित्त लिखा है।

हे धर्मराज! इस लोक में मनुष्य का जो कर्त्तव्य है, वह सब मैंने तुझे विस्तार से बतला दिया। मैंने तुझे यह सर्व-धर्म-सम्मत उपदेश दिया है और यह परम-कल्याण-कारी होने के कारण, इससे श्रेष्ठतर अन्य धर्म है ही नहीं।

एक सौ नौ का अध्याय

सत्यासत्य मीमांसा

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया—हे पितामह! मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि, जो मनुष्य धर्ममार्ग पर स्थित रहना चाहे, उसे कैसा वर्त्ताव करना चाहिये? अतः आप मुझे यह भी बतलावें। हे भगवन्! इस संसार को सत्य और असत्य ने आच्छादित कर रखा है, धर्मनिष्ठ पुरुष को इन दोनों में से किस को काम में लाना चाहिये। आप मुझे समझा दें कि, सत्य और असत्य क्या है? सनातन धर्म के अनुकूल इनमें से सत्य क्या है और असत्य क्या है? मनुष्य को किस समय सत्य और किस समय असत्य बोलना चाहिये?

भीष्म जी ने उत्तर दिया—धर्मानुकूल तो सत्य बोलना ही ठीक है। क्योंकि सत्य से बढ़ कर कोई पदार्थ ही नहीं है। अब मैं तुझे वह विषय बतलाता हूँ, जिसे मनुष्य इस जगत् में जान नहीं सकता। जहाँ पर असत्य सत्य के समान हो और सत्य असत्य के समान; वहाँ सत्य न बोलना चाहिये; प्रत्युत वहाँ असत्य बोलना ही उचित है और जिस स्थल पर सत्य भाषण सत्य माना जाय, वहाँ सत्य बोले; परन्तु असत्य न बोले। जो अज्ञानी धर्मरहित पुरुष सत्य बोलता है, वह मार डालने योग्य माना गया है।

अतः जो बोलने के पूर्व सत्यासत्य की मीमांसा कर लेता है, वही धर्मवेत्ता माना जाता है। यद्यपि मनुष्य स्वभावतः अनार्य, कृतघ्नी और महानिष्ठुर होता है; तथापि जिस प्रकार बलाक व्याध ने एक अन्धे पक्षी को मार कर, पुण्य प्राप्त किया था * उसी प्रकार उसे भी बड़ा पुण्य होता है।

सचमुच यह बड़ी विचित्र बात है कि, धर्माचरणेच्छु भी मूर्खजन, धर्मप्राप्ति की कामना रखता हुआ भी पाप का भागी होता है। † एक उल्लू ने गङ्गा जी के तट पर सर्प के अंडों को नष्ट कर, बड़ा पुण्य कार्य किया था ‡।

हे धर्मराज! तेरा प्रश्न बड़ा उलझन का है, इसका उत्तर देना कठिन काम है। जब इस प्रश्न का विवेचन ही जटिल है, तब प्रश्न का उत्तर दिया ही क्योंकर जा सकता है। ब्रह्मा जी ने प्राणियों के कल्याण के लिये ही धर्म का कथन किया है। निश्चय ही धर्म वही है, जिससे धर्मकर्त्ता का अभ्युदय हो। जो अधोगति से लोगों को बचाता है, वही धर्म है। विद्वानों का यही मत है। धर्म ही समस्त प्रजा को धारण किये हुए है। जिसमें यह धारणा शक्ति है, वही धर्म है। प्राणिहिंसा रोकने के लिये ही धर्म का प्रवचन किया गया है। हिंसाशून्य कर्म का नाम धर्म है। यह शास्त्र का सिद्धान्त है।

कोई कोई कहते हैं, वेद में जो कुछ कहा गया है वह सब धर्म है;

---

* यह कथा कर्णपर्व में है।

† इसका रहस्य जानने के लिये कर्णपर्व का ६८ वाँ अध्याय पढ़ना चाहिये।

‡ कहते हैं कोई उल्लू उड़ा चला जाता था कि, उसे जलसर्प के एक सहस्र अंडे देख पड़े। उसने उन सब को अपनी चोंच से फोड़ डाला। इस कर्म के पुण्य प्रताप से उस उल्लू को स्वर्ग प्राप्ति हुई। यदि वह उन अंडों को नष्ट न करता तो वह सर्प वंश बढ़कर न जाने कितने लोगों को काटता।

कोई कोई कहते हैं कि, यह बात नहीं है। * किन्तु मैं तो ऐसा मानने वालों को बुरा नहीं समझता। क्योंकि वेद में यह नहीं कहा गया कि, धर्मकामियों को श्येनयाग अवश्य करना ही चाहिये। यदि कोई चोर प्रश्न करे कि, अमुक धनी पुरुष कहाँ है और यदि इस प्रश्न का उत्तर न देने से उस धनी पुरुष के जानमाल की रक्षा हो सकती हो, तो चोरों के ऐसे प्रश्न का कुछ भी उत्तर न देना ही धर्म है; किन्तु यदि उत्तर न देने से चोरों के मन में सन्देह उत्पन्न होता हो तो सत्य बात न कह कर, ऐसे स्थल पर असत्य बोलना ही धर्म है। क्योंकि ऐसे स्थल पर असत्य बोलने ही में भलाई है। यह शास्त्र का सिद्धान्त है। यदि शपथ खाने ही से पापियों के हाथ से छुटकारा होता देखे, तो मिथ्या शपथ खाने से भी पाप नहीं लगता। जहाँ तक बन आवे, वहाँ तक पापी को धन न दे, क्योंकि पापी को दिया हुआ धन, धनदाता के लिये भी दुःखदायी होता है, पावनादार, देनदार से ऋण वसूल करने के लिये देनदार को शारीरिक कष्ट † दे सकता है। ऐसी दशा में लेनदार के गवाह लेनदार के दावे के समर्थन में यदि अदालत के सामने सत्य बात नहीं कहते तो वे अवश्य असत्यवादी ठहरते हैं। यदि किसी की जान जाती हो, विवाह का अवसर हो, तो ऐसे अवसरों पर यदि झूठ बोलना ही पड़े तो असत्य बोलने से पाप नहीं लगता। यदि कोई मनुष्य, किसी काम को करने की प्रतिज्ञा कर के भी उस प्रतिज्ञा को भङ्ग कर दे, तो धर्मज्ञ राजा को उचित है कि, वह उस मनुष्य को दण्ड दे, उस कुमार्गगामी को शिक्षा दे।

जो शठजन, धर्म को त्याग कर, शठतापूर्वक पेट भरना चाहता है, वह मानों सदा के लिये मानवी धर्म से भ्रष्ट हो कर, आसुरी धर्म का अवलम्बन

---

* वेद में श्येन याग भी तो वर्णित है, जिसके अनुष्ठान से हिंसा करनी पड़ती है, अतः यह वेदोक्त कर्म होने पर भी हिंसायुक्त होने के कारण अधर्म है।

† लेनदार ऋण का धन वसूल न होने पर देनदार को अपना दास बना सकता है। प्राचीनकाल में ऐसा हुआ करता था।

करता है। ऐसे पापात्मा शठ को हर प्रकार से दण्ड दे कर उसे शिक्षा दे। यदि सब पापी यह निश्चय कर लें कि, धन से कल्याण होता है और धर्म कल्याण का साधन नहीं है तो वे जो कुछ करते हैं वह जनता के लिये असह्य होता है। धर्मात्मा जनों को उचित है कि, वे ऐसे लोगों से खान पान का सम्बन्ध न रखें और उन्हें प्रेत समान मानें। जो धर्म के लिये कष्ट सहने को तैयार न हो, जो दीन दरिद्रों को आवश्यक धन न दे कर स्वयं उस समस्त धन का उपभोग करते हों, जो अपनी बुरी करनियों से पतित हो गये हों और जो देवलोक और मर्त्यलोक में पातकी ठहर चुके हों और जिन्होंने यज्ञ याग करना त्याग दिया हो, ऐसे लोगों के पास जब धन नहीं रहता, तब वे बड़े बड़े कष्ट भोगते हैं—यहाँ तक कि, उन्हें अपना जीवन भार स्वरूप जान पड़ता है और इसीसे वे आत्मघात कर बैठते हैं। मनुष्यसमाज में ऐसे पुरुष बिरले ही हैं जो पापियों के मुख पर उन्हें पापी कहने का साहस रखते हों और उनसे पूँछ सकते हों कि, क्या यही तुम्हारा धर्म है? ख़बरदार अब पापकर्म मत करना। यथार्थ में पापियों को धर्म पर आस्था ही नहीं रहती और ऐसे पापियों का नाश करने से पाप भी नहीं लगता, क्योंकि वे तो निज कर्मों ही से मरे हुए होते हैं। उन्हें मारना मानों मरे को मारना है। जो जन ऐसे हीनमति जनों का संहार करने का सङ्कल्प करता है, उसे पुण्य होता है। कपट-व्यवहार-परायण लोगों को काक और गिद्ध पक्षियों के समान माने। क्योंकि मरने बाद उन्हें काक अथवा गिद्ध की योनि ही में जन्म लेना पड़ता है।

हे धर्मराज! जो जन अपने साथ जैसा व्यवहार करे, उस जन के साथ वैसा ही व्यवहार स्वयं भी करे। ऐसा करना धर्मकार्य माना जाता है। कपटी के साथ कपट और सदाचारी के साथ सदाचारयुक्त व्यवहार करना ही उचित है।

एक सौ दस का अध्याय

दुःख से निस्तार कौन पाते हैं ?

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह ! अब आप मुझे यह बतलावें कि, जब मनुष्य विविध प्रकार के दुःखों से पीड़ित हो, तब उसे उन दुस्तर दुःखों से छूटने के लिये क्या करना चाहिये ?

भीष्म जी ने कहा— जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के लोग, वर्णोचित और आश्रमोचित नियमों का पालन करते हुए शास्त्रोक्त कर्म किया करते हैं, वे दुःखों से छूट जाते हैं। वे लोग दुःखों से छुटकारा पा जाते हैं, जो दम्भी नहीं हैं, जिनकी वृत्ति शुद्ध है और जो जितेन्द्रिय हैं। जो अपनी निन्दा करने वाले की भी निन्दा नहीं करते, जो मार खाने पर भी मारने वाले को नहीं मारते, जो लोगों को देते तो हैं, पर लेते नहीं; वे लोग दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जो लोग अतिथि को अपने यहाँ टिकाते हैं, जो कभी किसी के साथ ईर्ष्या नहीं करते और नित्य स्वाध्याय में लगे रहते हैं, वे दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जो लोग माता पिता का कहना मानना अपना धर्म समझते हैं और जो सदाचारी हैं, वे दुःखों से छूट जाते हैं। जो दिन में नहीं सोते वे दुःखों से छूट जाते हैं। जो लोग मनसा, वाचा, कर्मणा किसी तरह का पाप नहीं करते; जो प्राणियों को दण्ड न दे कर, अभय करते हैं, वे कठिन दुःखों से पार होते हैं। जो रजोगुणी राजा लोग लोभवश कर नहीं लेते और अपने राष्ट्र की रक्षा करते हैं, वे दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जो लोग परस्त्रीगामी नहीं हैं और हर ऋतुकाल में अपनी पत्नी के साथ समागम करते हैं और जो निर्दिष्ट काल में अग्निहोत्र करते हैं; वे दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जो वीर मरण के भय को त्याग कर, रण में धर्मयुद्ध से जीतना चाहते हैं, वे बड़े बड़े दुःखों से छुट जाते हैं। जो जान जाने का अवसर आने पर भी कभी मिथ्याभाषण नहीं करते और

जो लोगों में प्रामाणिक माने जाते हैं, वे बड़े बड़े दुःखों के पार हो जाते हैं। जो दम्भहीन कार्य करते हैं, जो सत्य एवं मधुर वचन बोला करते हैं, जिनका धन सद्दे कामों में व्यय हुआ करता है, वे लोग बड़े बड़े कष्टों के पार हो जाते हैं। जो ब्राह्मण अनध्याय के दिन वेदाध्ययन बंद रखते हैं, जो तप में निष्ठावान् हो, तप में रत रहते हैं, वे बड़े बड़े दुःखों से छूट जाते हैं। जो बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर तप में मन लगाते हैं, जो विद्यास्नात, वेदस्नात और व्रतस्नात होते हैं, वे बड़े बड़े दुःखों से छूट जाते हैं। जिनमें रजोगुण और तमोगुण दब गये हैं, जो सतोगुणी महात्मा हैं, वे दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जिनसे न तो किसी प्राणी को भयभीत होना पड़ता है, और न जो स्वयं किसी प्राणी से भयभीत होते हैं, तथा जो समस्त जीवों को आत्मवत् मानते हैं, वे दुस्तर दुःखों से पार हो जाते हैं। जो सत्पुरुष दूसरों का धन देख डाह नहीं करते और विषयवासना से दूर रहते हैं, वे दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जो समस्त देवताओं को प्रणाम करने वाले हैं, सब धर्मों की बातें (शान्तिपूर्वक) सुन लिया करते हैं, जो निज धर्म पर श्रद्धा रखते हैं और जिनका शान्त स्वभाव है, वे पुरुष दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जो स्वयं तो मान की इच्छा नहीं रखते; किन्तु दूसरों का सम्मान किया करते हैं और मान्य जनों को मान्य मान उन्हें प्रणाम किया करते हैं; वे दुस्तर दुःखों से छूट जाते हैं। जो सन्तानप्राप्ति की कामना से, श्राद्धोपयुक्त तिथियों में श्राद्ध शुद्धान्तःकरण से किया करते हैं, वे विपत्तियों से छूट जाते हैं। जो अपना क्रोध दबा लेते हैं और दूसरे के क्रोध को शान्त कर देते हैं और किसी जीव पर कभी क्रोध नहीं करते, वे दुस्तर दुःखों से छूट जाते हैं। जो आज भी मद्य माँस तथा अन्य मादक द्रव्यों को नहीं खाते पीते, वे दुस्तर दुःखों से उबर जाते हैं। जो प्राणधारण के लिये भोजन, सन्तानोत्पत्ति के लिये मैथुन करते हैं और कभी झूठ नहीं बोलते, वे बड़ी बड़ी विपत्तियों से छूट जाते हैं। जो लोग सृष्टिकर्त्ता, पालन-

कर्त्ता, प्रलयकर्त्ता सर्वेश्वर नारायण की भक्ति करते हैं, वे दुस्तर दुःखों के पार हो जाते हैं। जो श्रीकृष्ण जी कमलनेत्र, पीतपटधारी, महाबाहु, भक्तों के स्नेही, बन्धु, मित्र तथा नातेदार हैं, जो अचिन्त्य गोविन्द पुरुषोत्तम नारायण रूप हैं, वे निज इच्छानुसार कोषवत् (म्यान की तरह) सारे संसार को आच्छादित किये हुए हैं। यह श्रीकृष्ण और जिष्णु तुम्हारे प्यारे हैं और सदा तुम्हारे हितसाधन में निरत रहते हैं। इन्हें कोई हरा नहीं सकता अथवा यह किसी के दाँव पेंच में आने वाले नहीं हैं। इस संसार में जो भक्तजन पातक-विनाशी श्रीनारायण के सहारे रहते हैं, वे निश्चय ही समस्त क्लेशों से छूट जाते हैं।

जो मनुष्य दुस्तर दुःखों से छुड़ाने वाले महाभारत के इस अध्याय का पारायण किया करते हैं और इसे दूसरों को सुनाते हैं, वे समस्त दुःखों से छूट जाते हैं। हे अनघ! मैंने तो तुम्हें करने योग्य कर्मों का आशय मात्र सुनाया है। इसके अनुसार चलने पर मनुष्य, इस लोक और परलोक— उभय लोकों के दुःखों से छूट जाता है।

एक सौ ग्यारह का अध्याय

स्यार और व्याघ्र की कहानी

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! जो मनुष्य निर्दयी होते हैं, वे तो ऊपर से शान्त और शान्त पुरुष ऊपर से निर्दयी दिखलायी पड़ते हैं। अतः ऐसे लोगों की अचूक पहचान क्या है?

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज! बाघ और स्यार की संवादात्मक एक पुरानी कहानी है। वह तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में उदाहरण रूप में तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो। प्राचीन काल में पुरिका नाम्नी एक भरी पूरी नगरी में पौरिक नामक एक राजा राज्य करता था। उस राजा को प्राणियों की हिंसा करना बहुत पसंद था, क्योंकि वह बड़ा निष्ठुर और पामर था।

ने मेरा बड़ा अपकार किया है। चतुर राजा इसी प्रकार के वचन हतशेष शत्रुओं के सामने कहे? किन्तु शत्रुओं के पीठ पीछे अपने वीर एवं शत्रुहन्ता सैनिकों का सत्कार करे। शत्रु के हाथ से घायल हुए सैनिकों के आगे नेत्रों में आँसू भर कर, राजा ऐसे वचन कहे जिससे उनको धीरज बँधे। बड़े प्रेम से शत्रुराजा का हाथ पकड़, उसके साथ मधुरालाप करे और उसको शान्त करे। जो राजा इस प्रकार आगा पीछा विचार कर, शत्रु के साथ व्यवहार करता है, उससे सब लोग प्रेम करने लगते हैं और वह निर्भय हो राज्य करता है। लोग उस पर विश्वास करते हैं और उससे अपना काम काढ़ लेते हैं। अतः जो राजा इस धराधाम पर राज्य करना चाहे, उसे सब का अपने ऊपर विश्वास उत्पन्न कर लेना चाहिये और उसे निष्कपटभाव से सब लोगों की रक्षा करनी चाहिये।

एक सौ तीन का अध्याय

शत्रु राजा के साथ व्यवहार रखने का विधान

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे भीष्म पितामह! आप अब यह बतलावें कि, कोमल स्वभाव राजा के साथ, उग्रस्वभाव राजा के साथ, बहुसहायक सम्पन्न राजा के साथ तथा विशाल वाहिनी सम्पन्न महाबली राजा के साथ कैसा बर्त्ताव करना चाहिये?

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! इस प्रसङ्ग में मैं तुम्हें देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र का संवादात्मक एक पुरातन उपाख्यान सुनाता हूँ।

एक बार शत्रु-संहार-कारी देवराज इन्द्र देवगुरु बृहस्पति के निकट गये और हाथ जोड़ कर उनसे पूँछा—हे गुरुदेव! मुझे वैरियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये? आप मुझे ऐसा भी कोई उपाय बतलावें

ब्रह्महत्या का पाप और द्वितीय पुरुष को गोदान करने का फल प्राप्त न होगा? तुम लोग तो स्वार्थवश केवल उदर भरने ही में सारा जीवन बिता दिया करते हो, जिसके कारण तुम्हें तीन दोष लगते हैं। तुम माया मोह में लिप्त हो। अतः तुम इस बात को जान नहीं सकते। असन्तोष से भरी जीविका, निन्द्य होने के कारण दूषित है और उभय लोकों को नसाने वाली है। अतः मैं ऐसी आजीविका को पसंद नहीं करता।

सियार की इन बातों को सुन, एक प्रसिद्ध पराक्रमी व्याघ्र ने उसको भीतर बाहिर पवित्र देख और उसे विद्वान् समझ, उसका आत्मवत् सत्कार किया और उससे कहा—तू तो मेरा मंत्री बनना स्वीकार कर ले। फिर उस व्याघ्र ने कहा—हे शान्त-स्वभाव-सम्पन्न सियार! मैं तेरे स्वरूप को पहचान गया हूँ. मैं समझ गया हूँ कि, तू कैसा है। तू मेरे पास रह और राजकाज सम्हाल, तुझे जो भोग अच्छे लगें—उन्हें भोग और जो अच्छे न लगें उन्हें न भोग। जगत् जानता है कि, हम लोग क्रूर स्वभाव हैं। अतः यदि तेरा बर्त्ताव निष्ठुर न हो कर दयायुक्त होगा तो इससे तेरी निश्चय ही भलाई होगी।

उस महाबली व्याघ्र के इन वचनों को सुन कर और उसकी बात रखने के लिये ज़रा सा अपना सिर नवा दिया और मधुर कण्ठ से बोला—हे मृगराज! आपने मेरे प्रति जिन शब्दों का प्रयोग किया, वे ठीक हैं। आप, धर्म एवं अर्थ शास्त्रों में पटु मंत्रियों की खोज में हैं। यह सन्तोष की बात है। क्योंकि बिना मंत्री के कोई राजा अकेले बड़ा भारी राज्य का राजकाज यथार्थ रीत्या नहीं चला सकता। अतः आपको उचित है कि, आप राजभक्त, नीतिज्ञ, सन्धि विग्रह करने में पटु, आपस में मिल-जुल कर रहने वाले, विजयकामी, लोभविवर्जित, बुद्धिमान्, हितैषी और महामना मंत्रियों का वैसा ही सत्कार करें, जैसा कि, आचार्य और पितरों का किया जाता है।

हे मृगेन्द्र ! किन्तु मुझे तो आप क्षमा करें, मैं तो जिस दशा में इस समय हूँ, मुझे तो वही पसंद है। मैं नहीं चाहता कि, मैं किसी कारणवश इसमें परिवर्तन करूँ। मुझे सुख, भोग के आश्रय रूप ऐश्वर्य की बिल्कुल ही चाहना नहीं है। फिर आपके पुराने कर्मचारियों के साथ मेरी पटरी भी नहीं बैठेगी—क्योंकि वे सब दुष्टस्वभाव वाले हैं। अतः वे आपमें और मुझमें वैमनस्य करवा देंगे। चाहे कैसा प्रतापी ही क्यों न हो—मैं दूसरे के आश्रय में रहना, उचित नहीं समझता। मैं तो वैसे ही सब प्रकार से कृतकृत्य और भाग्यवान् हूँ। मैं तो दीर्घदर्शी, परमोत्साही, स्थूललक्ष्य वाला, महाबलवान्, प्रत्येक कार्य को सफलता पूर्वक करने वाला, योग्य भोगों को भोगने वाला और पापियों के प्रति भी दया प्रदर्शित करने वाला हूँ। मैं थोड़े पदार्थ से सन्तुष्ट नहीं होता। मैंने आज तक कभी किसी की सेवा भी नहीं की। इसीलिये मुझे परसेवा करनी भी नहीं आती। मैं तो अपनी इच्छा के अनुसार वन में घूमा फिरा करता हूँ। जो व्यक्ति राजा के निकट रहते हैं उन्हें निन्द्य बातें सुनने से बड़ा क्षोभ होता है; किन्तु जो स्वतंत्र वनवासियों जैसा जीवन व्यतीत करते हैं, वे कामना रहित और निःशङ्क रहते हैं। राजा जब अपने सेवक को बुलाता है, तब उसके मन में जैसे भय का सञ्चार होता है, उस भय को वन्य फल-मूल-भक्षी सन्तोषी जन जानते भी नहीं। जब मैं अनायास प्राप्त जल के साथ उस परिणाम में भयप्रद स्वादिष्ट अन्न की तुलना करता हूँ, तब मुझे तो निवृत्ति में ही आनन्द मालुम पड़ता है। क्योंकि निवृत्ति ही में सच्चा सुख रहता है। राजाओं के पास रहने वाले सेवकों में से जितने सेवक मिथ्या दोषारोपण कर के मारे जाते हैं, उतने वास्तविक अपराधी सेवक नहीं मारे जाते। हे मृगराज! इस पर भी यदि आप मुझसे राजकाज करवाना ही चाहते हैं, तो विवश हो मुझे आपकी आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा; किन्तु ऐसा करने के पूर्व मैं यह जान लेना चाहता हूँ कि, आप मेरे साथ किस रीति से वर्ताव करेंगे। मैं आपकी भलाई के लिये जो बातें अब कहता हूँ, उन्हें

आप सुनें और मान लें। आप मेरे लिये जो आजीविका निर्दिष्ट करना चाहते हैं, उसे आप ही अपने पास रखें। मैं आपके अन्य मंत्रियों के साथ किसी राजकीय मामले पर विचार न करूँगा। क्योंकि यदि मैं ऐसा करूँगा तो आपके महत्वाकांक्षी और राजनीति-विशारद मंत्री लोग मेरे विचार में झूँठ मूँठ के दोष ढूढ़ेंगे। मैं आपके हित की बातें आपसे एकान्त में किया करूँगा। आप अपने नाते रिश्तेदारों के विषय में मुझसे परामर्श न कीजियेगा। यदि किसी राजकीय विषय में मेरा विचार आपके मंत्रियों से न मिले और आपको मेरा विचार ठीक जचे, तो मेरे विचार से विरुद्ध विचार रखने वाले मंत्रियों को आप दण्ड न देना और न कभी क्रोध में भर मेरे आश्रित जनों को दण्ड देना।

उस श्रृगाल के इन ठहरावों को सुन उस व्याघ्र ने उन सब को स्वीकृत कर लिया और उस सियार के प्रति सम्मान प्रदर्शित कर, उसे अपना मंत्री बना लिया। अब तो सियार की बड़ी मान प्रतिष्ठा होने लगी। अतः व्याघ्र के जो पुराने अधिकारी थे वे एकमत हो उस श्रृगाल के साथ द्वेष करने लगे, मन ही मन स्यार से जलने वाले वे लोग ऊपर से उसके मित्र बने और उसे प्रसन्न कर उसे अपने जैसा (दोषपूर्ण) बनाने का प्रयत्न करने लगे। पहले अधिकारियों ने दूसरों का जो धन छीन लिया था, वह उन लोगों ने बहुत दिनों तक खाया; पर अब सियार के सुप्रबन्ध से उन लोगों की दाल गलने नहीं पाती थी। इसीसे अब धोके की रकमें उनके हाथ नहीं लगने पाती थीं। वे श्रृगाल की बुद्धि विचलित कर, उसे लोभ में फँसाने के लिये उसे विपुल धनराशि देने लगे; किन्तु वह श्रृगाल तो गज़ब का बुद्धिमान् था, उसकी नियत न डिगी। तब उन सब ने श्रृगाल को समाप्त कर देने के लिये षड्यन्त्र रचा। व्याघ्र के खाने के लिये जो माँस राँधा जाता था और जो माँस उसे परम प्रिय था, उसे रसोई से उठा कर, वे लोग एक दिन उस सियार के घर में रख आये; किन्तु चतुर श्रृगाल उनके इस षडयंत्र का भेद जान तो गया था; परन्तु वह इस जंजाल से छुटकारा

पाना चाहता था—अतः वह सब कुछ जान कर भी चुप रहा—कुछ भी न बोला। जिस समय शृगाल ने व्याघ्र का मंत्रित्व पद अङ्गीकार किया था—उस समय उसने यह भी एक ठहराव कर लिया था कि, हे राजन्! यदि आप मुझसे मैत्री करना चाहते हैं तो अकारण मेरा अविश्वास मत कर बैठना।

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! जब मृगराज को भूख लगी, तब वह भोजन करने को उठा। उसने जा कर देखा कि, वह नित्य जो माँस खाया करता था, वह उस दिन उसके सामने नहीं परोसा गया था। यह देख उसने आज्ञा दी कि, उस माँस का चोर ढूँढ़ा जाय और उसके सामने हाज़िर किया जाय। इस पर उन षड्यंत्रकारियों ने कहा—उस माँस को तो आपका बुद्धिमान् एवं विद्वान् मंत्री चुरा ले गया है। शृगाल के इस अनुचित कर्म की बात सुन, बाघ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने क्रोध के आवेश में चाहा कि, वह उस शृगाल को मार डाले। उस शृगाल पर विपत्ति आते देख, व्याघ्र के पुराने मंत्रियों ने कहा—वह तो हम सब लोगों की जीविका नष्ट करने को तुला बैठा है। यह कह वे सब कुछ देर तक चुप रहे। तदनन्तर वे पुनः शृगाल की बनावटी करतूतों का वर्णन करते हुए कहने लगे—जब उस शृगाल की ऐसी ओछी करतूत है, तब वह क्या न करता होगा। महाराज ने उसे जैसा समझा था, वह वैसा न निकला, वह बड़ा ढोंगी है। उसका स्वभाव बड़ा क्रूर है। वह बड़ा पापी और कपटी है। वह धर्माचरण का ढकोसला बनाये हुए है। उसकी प्रत्येक बात में दम्भ भरा हुआ है। मतलब गाँठने के लिये वह व्रतोपवास का स्वांग रचा करता है। यदि आपको हमारी बात पर विश्वास न हो तो देखिये, हम आपको प्रत्यक्ष दिखलाये देते हैं। यह कह वे लोग दौड़े दौड़े गये और वह माँस सियार के घर से ला कर, व्याघ्र के सामने ला रखा। उस माँस को सियार के घर से बरामद हुआ देख और उन लोगों की क्रोध भड़काने वाली बातों को सुन, व्याघ्र ने उसी दम उस शृगाल को मार डालने की आज्ञा दे दी।

व्याघ्र की उस आज्ञा को सुन, उसकी माता ने उसके निकट जा इस प्रकार उसे समझाया। हे वत्स! इन लोगों का यह कहना कपट से पूर्ण है। तुझे इनकी बात सच न माननी चाहिये। जो दुष्ट जन होते हैं, वे आपस के ईर्ष्याद्वेष के कारण निर्दोष पुरुषों पर भी दोषारोपण किया ही करते हैं। कोई भी पुरुष क्यों न हो—उसे अपने उच्च पद पर आसीन पुरुष का उत्कर्ष सह्य नहीं होता और वे उसके साथ शत्रुता कर बैठते हैं। चाहे कैसा कोई आदमी ईमानदार क्यों न हो दुष्ट जन उस पर बिना दोष लगाये नहीं मानते। जो मुनि वन में रहता है, उसके भी मित्र, तटस्थ और शत्रु पैदा हो ही जाते हैं। जो लोग लालची होते हैं, उनका ईमानदारों से द्वेष हो ही जाता है। इसी प्रकार जो आलसी होते हैं, वे परिश्रम करने वाले लोगों से वैर करने लगते हैं। मूर्खों का पण्डितों से, दरिद्रों का धनियों से, अधर्मियों का धर्मात्माओं से, कुरूपों का सुन्दर जनों से द्वेष हुआ ही करता है। विद्वानों में भी कितने ही ऐसे मूर्ख, लोभी, कपटी और पण्डितंमन्य होते हैं, जो बृहस्पति के समान बुद्धिमान् निर्दोष मनुष्यों पर भी लाञ्छन लगा देते हैं। जिस समय तेरे घर में कोई न था, उस समय इन दुष्टों ने तेरे रसोईघर से माँस उठा कर सियार के घर में रख दिया। क्या तुझे नहीं मालूम कि, शृगाल तो तेरा दिया हुआ माँस तक नहीं खाता। वध की आज्ञा देने के पूर्व तुझे इन बातों पर तो भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये था। कितने ही जन ऐसे होते हैं जो होते तो असभ्य हैं, पर बाहिर से वे सभ्य बने रहते हैं। इसी प्रकार अनेक सभ्यजन असभ्य से देख पड़ते हैं। अतः बिना परीक्षा किये सभ्य असभ्य, शिष्ट दुष्ट की पहिचान नहीं हो सकती। यह आकाश औंधी कढ़ाई की तली जैसा देख पड़ता है; किन्तु वह वैसा है तो नहीं। इस प्रकार जुगनू या पटबीजना आग जैसा देख तो पड़ता है; किन्तु यथार्थ में वह आग तो नहीं है। अतः प्रत्यक्ष देखी घटना की भी परीक्षा करने की आवश्यकता है। जो मनुष्य सब प्रकार से परीक्षा कर, किसी नतीजे पर पहुँचता है, उसे पश्चात्ताप नहीं

करना पड़ता। राजा के लिये किसी को मरवा डालना कोई कठिन काम नहीं है: किन्तु राजाओं का क्षमागुण ही प्रशंस्य और यशप्रद माना गया है।

हे वत्स! तूने इस शृगाल को अपना मंत्री बनाया है और अपने अच्छे कार्यों से ये तेरे समस्त सामन्तों में आज ख्याति प्राप्त किये हुए है। ऐसे सुयोग्य मंत्री सहज में नहीं मिलते। यह तेरा सर्वथा शुभचिन्तक है, अतः तुझे स्वयं इसकी रक्षा करनी चाहिये। जिस व्यक्ति को अन्य जनों ने दोषी ठहरा अपराधी बनाया हो, उस व्यक्ति को जो राजा बिना जाँच किये अपराधी मान लेता है, वह दूषित मंत्रियों वाला राजा शीघ्र नाश को प्राप्त होता है।

जिस समय व्याघ्र की माता अपने बेटे को उपदेश दे रही थी, उस समय षड़यंत्रकारियों में से कई धर्मभीरुजन व्याघ्र के सामने जा, षड़यंत्र का रहस्योद्घाटन करने लगे। उनकी बातें सुन व्याघ्र को सियार के निर्दोष होने का विश्वास हो गया। तब उसने सियार को सन्मानपूर्वक अपनी छाती से लगाया; किन्तु सियार तो बड़ा नीतिज्ञ था, अतः उसे सिंह का किया हुआ अविचारित तिरस्कार अब तक खटक रहा था। अतः उसने व्याघ्र की आज्ञा से अनशन व्रत करना चाहा। यह देख कर, स्नेहप्रफुल्लित नेत्र वाले व्याघ्र ने सियार को ऐसा न करने दिया और उसका बड़ा आदर सत्कार किया।

जब शृगाल ने देखा कि, मेरे स्नेहवश व्याघ्र क्षुब्ध हो रहा है, तब वह व्याघ्र को प्रणाम कर, सजल नेत्र हो गद्गद् स्वर से कहने लगा। हे मृगेन्द्र! आपने प्रथम मेरा बड़ा सत्कार किया और पीछे मुझे अपना शत्रु मान मेरा घोर तिरस्कार किया। अतः अब मेरी इच्छा आपके निकट रहने की नहीं है। क्योंकि नीति कहती है कि, असन्तुष्ट, स्थानच्युत, तिरस्कृत, अपराधी, शत्रुओं द्वारा दूषित, निर्बल, लोभी, क्रोधी, भयत्रस्त, वञ्चित, अभिमानी, धनोपार्जन के साधनों से वर्जित, विशाल कामना रखने वाले,

दुःख से सन्तप्त तथा वे नौकर जिनका धन छीन लिया गया हो, जो राजा के ऊपर सङ्कट पड़ने की प्रतीक्षा करते हों, राजा द्वारा क्षतिग्रस्त होने के कारण राजा पर जो नाराज़ हों, उन नौकरों को राजा अपने यहाँ न रखे। क्योंकि वे उस राजा के शत्रु से मिल कर उस राजा को नष्ट कर डालते हैं। आपने मेरा अपमान कर मुझे पदभ्रष्ट किया, अतः अब आप मेरा विश्वास कर ही कैसे सकते हैं और मैं स्वयं अब आपके पास रह ही कैसे सकता हूँ। प्रथम तो आपने मुझे योग्य जान अपना मंत्री बनाया, पीछे मुझे उस पद से च्युत किया। आपने मुझसे जो प्रतिज्ञा की थी उसे भी आपने भङ्ग कर डाला और मेरा अपमान किया। जो पुरुष अपनी प्रतिज्ञा के पक्के होते हैं, वे भरी सभा में एक बार जिसकी प्रशंसा करते हैं, उसकी फिर निन्दा नहीं करते; किन्तु आपने इसके विपरीत कार्य कर मेरा पहले सम्मान कर पीछे मेरा अपमान किया है। अतः अब आपका विश्वास मेरे ऊपर और मेरा विश्वास आपके ऊपर नहीं रह सकता। अतः अब मैं आपके पास रहते घबड़ाता हूँ। क्योंकि आप मुझसे और मैं आपसे अब सदा सशङ्कित रहूँगा। मेरे शत्रु पुनः मेरा सर्वनाश करने के लिये अवसर ढूँढ़ा करेंगे। क्योंकि आपके सेवक परछिद्रान्वेषी, दयाहीन और असन्तोषी हैं। फिर राजकाज भी छल छिद्रों से भरा हुआ है। अतः ऐसी दशा में मैं या आप सुखी नहीं रह सकते। एक बार जो मन फट जाते हैं, वे बड़ी कठिनाई से पुनः जुड़ते हैं। इसी प्रकार जो मन एक बार जुड़ जाते हैं, वे बड़ी कठिनाई से जुदे किये जा सकते हैं। जब एक बार प्रेम में अन्तर पड़ जाता है, तब वह फिर नहीं रहता। ऐसा पुरुष बिरला है जो केवल अपने स्वामी ही का हित किया करे। परसेवा का उद्देश्य है स्वामी का और अपना हितसाधन, क्योंकि बिना स्वार्थ हुए कोई किसी की सेवा नहीं करता, निस्वार्थी तो इस संसार में बिरला ही कोई होता है। फिर राजा का मन बड़ा चञ्चल होता है। अतः उसके लिये यह एक असम्भव जैसी बात है कि, वह सुपात्र को पहचान सके। सैकड़ों मनुष्यों में एक दो पुरुष ही निर्भीक और शक्तिशाली

मिलते हैं। लोगों की जैसी सहसा उन्नति होती है, वैसे ही सहसा उनका अधःपात भी होता है। किसी की भलाई कर फिर उसकी बुराई करना अथवा किसी को ऊपर उठा, फिर उसे नीचे पटकना, ओछी बुद्धि का परिणाम है।

उस शृगाल ने इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम भरे वचन कह कर, मृगराज को प्रसन्न किया। तदनन्तर वह वन में चला गया। वह शृगाल बुद्धिमान था। उसने मृगराज के समझाने बुझाने पर ध्यान न दिया और वह अनशन व्रत धारण कर, कुछ दिनों बाद ही शरीरत्याग स्वर्ग को चला गया।

एक सौ बारह का अध्याय

एक आलसी ऊँट का उपाख्यान

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! अब आप मुझे यह बतलावें कि, राजा कौन सा काम करे जिससे वह सुखी हो?

भीष्म जी ने कहा—सुनो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि, राजा कौन सा काम करने से सुखी हो सकता है। हे धर्मराज! मैंने एक ऊँट की कहानी सुनी है जो इस प्रकार है। पूर्वकाल में प्रजापति के युग में एक बड़ा ऊँट था। वह जातस्मर था। अतः उसने वन में व्रत धारण कर, बड़ा भारी तप करना आरम्भ किया। इससे प्रसन्न हो ब्रह्मा जी ने उससे कहा वर माँग। इस पर उसने कहा—हे भगवन्! मुझे आप यह वर दें कि, मेरी गरदन सौ योजन लंबी हो जाय; जिससे मैं एक जगह बैठा बैठा ही वन में सौ योजन तक चर लिया करूँ। यह सुन ब्रह्मा जी ने कहा तथास्तु ऐसा ही सही।

इस प्रकार उत्तम वर पाने के बाद ऊँट वहाँ से चल दिया; किन्तु उस ऊँट की बुद्धि अच्छी न थी। अतः उस वरदान के प्रभाव से उसकी गरदन

जब लंबी हो गयी और वह बड़ा आलसी हो गया। अब वह वन मे चरने को नहीं जाने लगा। एक दिन वह ऊँट अपनी सौ योजन लंबी गरदन बड़ी बड़ी शान्ति के साथ वन में चर रहा था, इतने में प्रचण्ड तूफान आया। बड़े ज़ोर से पवन चला और साथ ही पानी की वर्षा भी होने लगी। थोड़ी ही देर में जिधर देखो उधर जल ही जल देख पड़ता था। वर्षा के उत्पातों से बचने के लिये ऊँट एक पहाड़ी कन्दरा में गरदन घुसेड़ कर बैठ गया। इतने में माँदा थका, भूख और वर्षा का सताया हुआ अपनी स्यारिन को साथ लिये हुए एक स्यार उसी गुफा में जा पहुँचा। श्रगाल माँसाहारी था। साथ ही उस समय वह अत्यन्त भूखा भी था। अतः उसने ऊँट की गरदन देख, उसे खाना आरम्भ किया। तब तो ऊँट के बड़ी वेदना हुई और उसने जाना कि, कोई जानवर उसका माँस खा रहा है। अतः उसने उस गुफा से अपनी गरदन खींच कर बाहिर निकालनी चाही। उसने अपनी गरदन सकोड़ कर बहुत चेष्टा की कि, उसे बाहिर निकाल ले; किन्तु इतने में श्रगाल श्रगालिन ने उस ऊँट को मार कर खा डाला। इतने में तूफान भी शान्त हुआ और श्रगाल श्रगालिन गुफा से निकल भाग गये।

इस प्रकार वह दुष्टबुद्धि आलसी ऊँट जान से मारा गया। हे धर्मराज! इस उदाहरण से तुम समझ सकते हो कि, आलस्य से कैसी बड़ी हानि होती है। अतः तुम्हें आलस्य त्याग देना चाहिये और इन्द्रियों को अपने वश में रखना चाहिये। मनु जी का कथन है कि, विजय की जड़ बुद्धि है। जो काम बुद्धि पुरस्सर किये जाते हैं, वे उत्तम, हाथ की मिहनत से किये गये काम मध्यम और पैर की सहायता से अर्थात् घूम फिर कर किये गये काम अधम माने गये हैं। चतुर एवं इन्द्रियजीत राजा के पास ही राज्य टिकता है। मनु जी कहते हैं—महत्वाकांक्षी पुरुष को बुद्धिबल ही से विजय प्राप्त होता है।

हे धर्मराज! जो राजा, राजकीय विचार एकान्त में सुनता है, जिसके सहायक अर्थात् मंत्री अच्छे हैं, जो परीक्षा ले कर कार्य करता है, उसी

राजा के यहाँ लक्ष्मी टिकती है। अपने मंत्रियों की सहायता से राजा सारे भूमण्डल पर शासन कर सकता है। यह बात शास्त्रवेत्ता पहले कह चुके हैं और मैंने जो कुछ तुमसे कहा है वह भी शास्त्रसम्मत ही है, अतः मेरे कथन को ठीक मान, तुम तदनुसार ही काम करो।

एक सौ तेरह का अध्याय

नदी-समुद्र-संवाद

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! यदि किसी राजा के हाथ कोई दुर्लभ राज्य लग जाय और वह स्वयं साधनहीन हो, तो उसे अपने महाबली शत्रु के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?

भीष्म जी ने कहा—इस प्रसङ्ग में, मैं तुम्हें नदी-समुद्र-संवादात्मक एक प्राचीन कहानी सुनाता हूँ। वह इस प्रकार है।

असुरों के आश्रय-स्थल और नदियों के स्वामी समुद्र ने समस्त नदियों से अपने मन का सन्देह कहा और उनसे पूँछा—हे नदियो! तुम स्वयं तो जल से पूर्ण हो; किन्तु मैं देखता हूँ कि, तुमने बड़े बड़े वृक्षों को डालियों और पत्तों सहित जड़ से उखाड़ फैका है; किन्तु इसका क्या कारण है कि, तुमने बेतों को नहीं उखाड़ा। क्या इसका यह कारण है कि, बेतों के झाड़ नाटे, और निर्बल हैं तथा तुम्हारे तट पर उत्पन्न होने से तुम सब उनकी उपेक्षा करती हो। इसीसे तुम उन्हें न तो जड़ से उखाड़ती और न उन्हें घसीट कर मेरे समीप लाती हो अथवा बेत के झाड़ ने तुम्हारा कोई बड़ा भारी उपकार किया है। जिससे तुम बेत को उन्मूलन करने में आनाकानी करती हो? मैं इस सम्बन्ध में तुम्हारा सब का मत जान लेना चाहता हूँ। क्या कारण है कि, बेत तुम्हारे तट का निवास त्याग यहाँ नहीं आता?

इस पर गङ्गा जी ने उत्तर देते हुए कहा—शाखा प्रशाखाओं से युक्त विशाल वृक्ष एक स्थान पर खड़े रहते हैं और नवते नहीं। अतः हमारे वेग के विरुद्ध होने से उन्हें स्थानच्युत होना पड़ता है; किन्तु बेत का झाड़ नव जाता है, इसीसे वह अपने स्थान पर बना रहता है। हमारे वेग के सामने बेत अपना माथा नवा देता है, किन्तु अन्य वृक्ष नहीं नवते। इसीसे नदी का वेग शान्त होने पर बेत, अपने स्थान पर बना रहता है। बेत को काल का ज्ञान है, वह काल की महिमा को जानता है। वह सदा आत्मसंयम से रहता है। वह कभी उद्धत नहीं होता है। हम लोगों के अनुकूल रहता है। वह नितान्त अभिमानशून्य है। इसीसे वह अपना स्थान छोड़ने को विवश नहीं किया जाता और इसीसे उसका नाश भी नहीं होता। जो वृक्ष, पौधे और झाड़ हवा और जल के वेग के सामने नव जाते हैं, उनका पराजय न हो कर उनकी उन्नति होती है।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! जो पकड़ कर क़ैद कर लेने और जान से मार डालने की शक्ति रखने वाले तथा बड़े बुद्धिमान् शत्रु के सामने नव कर प्रथम उसके वेग को नहीं सह लेता, वह अति शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है। जो पुरुष अपने और शत्रु के बलाबल, सारासार और वीरता का ज्ञान सम्पादन कर, तदनुसार उसके साथ व्यवहार करता है उसका कभी कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। अतः जब कोई समझदार देखे कि, उसका शत्रु उससे अधिक बलवान है, तब उसे उचित है कि, वह बेत के झाड़ की तरह नव जाय। क्योंकि चतुराई इसीमें है।

एक सौ चौदह का अध्याय

परनिन्दक सर्वथा त्याज्य है

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! यदि कोई अज्ञानी और अभिमान में चूर व्यक्ति भरी सभा में किसी विद्वान् से कटाक्षपूर्ण कठोर वचन कह बैठे तो वह उस समय क्या करे? आप मुझे यह बतलावें।

भीष्म जी बोले—इसके सम्बन्ध में मैं तुझे शास्त्र का मत बतलाता हूँ। सुन। जो व्यक्ति, अपनी निन्दा करने वाले पर क्रुद्ध न हो कर, उसके कठोर वचन सह लेता है, वह पुरुष उस निन्दक का सारा पुण्य ले लेता है। ऐसा सहनशील पुरुष अपने समस्त पाप उस पुरुष पर लाद देता है, जो उस पर क्रोध करता है। टटीरी की तरह सदा कर्णकटु वचन बोलने वाले क्रोधी पुरुष के कटु वचनों की ओर विद्वानों को ध्यान भी न देना चाहिये। क्योंकि ऐसे वचनों का प्रभाव जिन लोगों के मन पर पड़ता है, उनका जीवन निष्फल हो जाता है। सत्पुरुषों की निन्दा कर, मूर्ख मनुष्य अकड़ कर कहता है कि, मैंने सब के सामने अमुक प्रतिष्ठित पुरुष से ऐसी बातें कहीं कि, उसे मारे शर्म के अपना सिर नीचा करते ही बना। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, वह निस्तेज पड़ गया। उस समय ऐसा जान पड़ने लगा, मानों उसके शरीर में जान ही नहीं है। जो अधम और निर्लज्ज पुरुष ऐसा निन्द्य कर्म कर के भी अपनी प्रशंसा करता है, विद्वान् को उचित है कि, वह ऐसे पुरुष का संग यत्नपूर्वक त्याग दे। ऐसा मूर्ख पुरुष चाहे जो कहे, विद्वान् को उस पर ध्यान ही न देना चाहिये। क्योंकि ऐसे व्यक्तियों की निन्दा स्तुति का कुछ भी मूल्य नहीं होता। जैसे बुद्धिशून्य काक वन में काँव काँव किया करता है, वैसे ही निन्दक भी व्यर्थ ही बक बक किया करता है। दूसरों की हानि करने वाला व्यक्ति निश्चय ही निन्दा कर दूसरे लोगों को हानि पहुँचाना चाहता है; किन्तु उसके इस कर्म का परिणाम उसकी वाणी ही में रहता है, उसके किये धरे कुछ होता जाता नहीं। ऐसा मनुष्य-अपने इस प्रकार के निन्द्य कर्मों से अपना दोगलापन दिखलाता है। जैसे मोर अपनी गुदा को उघार कर नृत्य करता है और अपने मन में समझता है कि, वह बहुत अच्छा नृत्य कर रहा है; किन्तु यह जान कर भी कि, लोग उसकी गुदा को प्रत्यक्ष देखते हैं, वह लज्जित नहीं होता। जो पुरुष, जो चाहता सो कर बैठता है और जो चाहता सो कह बैठता है; वह नीच

है और ऐसे नीच व्यक्ति के साथ श्रेष्ठ पुरुष को सम्भाषण भी न करना चाहिये। जो पुरुष सामने प्रशंसा और पीठ पीछे निन्दा करता है, उस पुरुष को कुत्ते के समान जानना चाहिये। ऐसे मनुष्य का केवल परलोक ही नहीं बिगड़ता; किन्तु उसका ज्ञान और पुण्य भी नष्ट हो जाता है। पीठ पीछे निन्दा करने वाले के दिये हुए सैकड़ों दान, होम आदि कर्मों का पुण्यफल, उसके उस परनिन्दा-पाप से नष्ट हो जाता है। जैसे उत्तम जन कुत्ते का माँस नहीं छूते, वैसे ही उन्हें परनिन्दक पापी मनुष्य को तुरन्त त्याग देना चाहिये। जैसे साँप फन उठा अपनी विद्यमानता को प्रकट करता है, वैसे ही दुष्टात्मा परनिन्दक जन समुदाय में परनिन्दा कर अपनी नीचता को सब के सामने प्रकट करता है। जो सारा बुरा कर्म करने वाले दुरात्मा से बदला लेना चाहता है, वह वैसे ही दुःखों में सन जाता है जैसे राख पर लोटने वाला गधा राख में सन जाता है। सदा परनिन्दारत पापी मनुष्य का त्याग सत्पुरुषों को वैसे ही कर देना चाहिये, जैसे शान्ति कामी जन, मदमस्त हाथी की तरह चिंघाड़ने वाले भयानक भेड़िये या कुत्ते को त्याग देते हैं। उन पाप बुद्धि वाले लोगों को धिक्कार है, जो अधीर व्यक्तियों के सेवित मार्ग पर चलते हैं। जो न तो जितेन्द्रिय हैं और न विनयशील हैं, जो सब के साथ शत्रु जैसा बर्ताव करने वाले हैं, और जो सदा दूसरों का बुरा ही चीता करते हैं। जब कोई दुष्ट व्यक्ति किसी सत्पुरुष पर आक्षेप करे और वह सत्पुरुष उस दुष्ट को जवाब देने को तैयार हो, तब वहाँ उपस्थित अन्य सत्पुरुषों को चाहिये कि, वे उस सत्पुरुष को समझा बुझा कर शान्त कर दें और उस दुष्टात्मा के मुँह उसे न लगने दें। उत्तम पुरुष का नीच मनुष्य के साथ सम्बन्ध कभी अच्छा नहीं होता और दृढ़ विचार वाले पुरुष ऐसे सम्बन्ध को बुरा समझते हैं। जब क्रूर स्वभाव का कोई मूर्ख जन क्रुद्ध होता है, तब या तो थप्पड़ मारता है, या धूल उड़ाता है अथवा दाँत निकाल डराता है। क्रूर स्वभाव वाले पुरुष के लिये ऐसे काम करना स्वाभाविक बात है। जो मनुष्य इस नीति का अवलम्बन

करता है, वह भरी सभा में नीच पुरुष द्वारा किये हुए अपमान को सह लेता है और उसे दुर्जनों के कुवाच्य बुरे नहीं मालूम पड़ते।

एक सौ पन्द्रह का अध्याय

राजकर्मचारियों के गुण और दोष

युधिष्ठिर ने कहा—हे धीमान् पितामह! मेरे एक बड़े सन्देह को आप दूर कर दें। क्योंकि आप हमारे कुलप्रवर्तक हैं। आप मुझे अब वह उपाय बतलावें जिससे राजकार्य ठीक चले, जिससे मेरे कुल वाले और मेरे पुत्र पौत्र सुखी रहें, जिससे राष्ट्र की उन्नति हो और जिससे अन्न, पान तथा शारीरिक स्वास्थ सुखप्रद हो। राजगद्दी पर बैठने के बाद, मित्र और स्नेहियों के साथ रहता हुआ राजा, प्रजा का रञ्जन किस प्रकार करे? जो राजा दुर्व्यसनी होता है जिसका अनुराग स्नेह और आसक्ति पर होता है, जो जितेन्द्रिय न होने के कारण दुष्टात्माओं के साथ रहने की इच्छा करता है, उस राजा से उसके पुश्तैनी नौकर अप्रसन्न हो जाते हैं और सेवकों द्वारा उसे जो श्रेष्ठ कर्म करवाने चाहिये, वे काम वह राजा नहीं करवा सकता। इसका कारण क्या है? आप बृहस्पति के सामन बुद्धिमान् है। अतः बहुकष्ट साध्य जानने योग्य राजधर्म आप मुझे सुनावें। हे पुरुष-व्याघ्र! आप हमारे कुल के हित में सदा निरत रहे हैं, अतः केवल आप ही मुझे राजधर्म का यथार्थ उपदेश दे सकते हैं। वैसे तो महाबुद्धिमान् विदुर जी मुझे सदा राजधर्मोपदेश दिया ही करते हैं। मैं आपके मुख से अपने कुल के लिये हितकर उपदेश सुन, अविनश्वर अमृत पान करने पर, तृप्त हो कर, सुख की नींद सोऊँगा। राजा अपने निकट जो सेवक रखे, उनमें किन गुणों की विशेषता होनी चाहिये और उनमें किन अवगुणों का अभाव होना चाहिये? यदि राजा सेवकों की सहायता बिना शासन करना चाहे, तो ऐसा करना उसके लिये असम्भव

है। कुलीन सेवकों के मन में भी राज्यप्राप्ति की कामना रहती है। अतः राजा को दूसरों का सहारा पकड़ना पड़ता है।

भीष्म जी बोले—हे धर्मराज! कोई राजा बिना सहायक के राज्य का शासन नहीं कर सकता और न सहायकों के अभाव में वह अर्थों को भी प्राप्त नहीं कर सकता। यदि वह अर्थ प्राप्त भी कर ले तो प्राप्त अर्थों की रक्षा नहीं कर सकता। अतः राजा का काम बिना सहायकों अथवा सेवकों के चल ही नहीं सकता। अब यह विचारना है कि, राजा के सहायक या सेवक कैसे होने चाहिये, मैं अब यही बतलाता हूँ। तुम ध्यान से सुनो। जिस राजा के पास लौकिक व्यवहारकुशल और परलोक का विचार रखने वाले सेवक होते हैं, वही राजा राज्यसुख भोगता है। जिस राजा के सेवक राजभक्त, कुलीन और अपने मालिक के हितैषी होते हैं, वही राजा राज्यसुख भोगता है। जिस राजा के मंत्री कुलीन, घूँस न खाने वाले, राजा के साथ रहने वाले, राजा को सत्परामर्श देने वाले और सौजन्य का महत्व समझने वाले, आपत्ति आने के पूर्व ही उसका प्रतिकार करने वाले, कालज्ञ और बीती को बिसारने वाले होते हैं, उस राजा को राज्यसुख प्राप्त होता है। जिस राजा के पास ऐसे सहायक मंत्री होते हैं, जो राजा के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी रहते हैं, जो राजा के हित में सदा निरत रहते हैं, जो राजा की धनवृद्धि के उपाय सदा विचारा करते हैं, जो कभी मिथ्याभाषण नहीं करते, उस राजा को राज्यसुख भोगने को मिलते हैं। जिस राजा की प्रजा सुख चैन से रहती है, जिसका राज्य उसकी राजधानी के निकट होता है, जिसके प्रजाजनों के मन में उदारता होती है, जिसकी प्रजा के लोग सन्मार्गगामी होते हैं, वही राजा राज्यसुख भोगता है। जिस राजा का कोषाध्यक्ष, विश्वस्त, सन्तोषी, और धनागार की वृद्धि करने वाला होता है, वही राजा श्रेष्ठ कहलाता है। वह राजा ही बड़ा गुणवान् समझा जाता है, जिसके धनागार की रक्षा का भार उन लोगों के ऊपर होता है, जो घूँसखोर नहीं हैं, जो सत्यवादी

हैं, जो धनसंग्रह में सदा तत्पर रहते हैं, जो सुपात्र और निर्लोभी हैं और जो मातवर हैं। जिस राजा के राज्य में शङ्ख और लिखित का धर्मशास्त्र प्रचलित होता है, जिस राजा के राज्य में अपराध के अनुरूप अपराधी को दण्ड दिया जाता है और लोग राजा के न्याय पर आस्था रखते हैं, उस राजा को पुण्यफल प्राप्त होता है। राजधर्म को जानने वाला, जो राजा अपने राज्य के भीतर अच्छे लोगों का संग्रह करता है और जो राजा षड्वर्ग से काम लेता है, वह धर्म का फल पाता है।

एक सौ सोलह का अध्याय

कर्मचारियों की नियुक्ति के नियम

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज! सेवक तीन प्रकार के होते हैं। उत्तम, मध्यम और अधम। अतः उत्तम सेवक को उत्तम पद पर, मध्यम को मध्यम पद पर और अधम को अधम पद पर नियुक्त करना चाहिये। उत्तम पद पर अधम सेवक को कभी नियुक्त न करे, इस सम्बन्ध में एक पुरातन दृष्टान्त है, जो उच्चकोटि के पुरुषों में प्रचलित होने के कारण जगत्प्रसिद्ध है। जिन दिनों मैं जमदग्निपुत्र परशुराम जी के साथ उनके तपोवन में रहता था, उन दिनों मैंने वहाँ ऋषियों के मुख से सुना था।

किसी निर्जन वन में एक ऋषि रहते थे। वे नियम से रहने वाले फलमूलाहारी ऋषि जितेन्द्रिय थे और यज्ञदीक्षा से दीक्षित थे। वे ऋषि स्वाध्याय-निरत, बाह्य और आभ्यन्तरिक शौच से युक्त थे और उपवास द्वारा शुद्धमना हो गये थे। वे बड़े सतोगुणी थे। अतः उनका स्वभाव शान्त था। उन महाबुद्धिमान् ऋषि के सद्भाव को देख, उस वन के यावत् प्राणी उनके निकट जा कर बैठा करते थे। माँसभक्षी एवं नृशंस स्वभाव के सिंह, वाघ, मतवाले हाथी, चीते, गैंड़े, भालू तथा अन्य भयङ्कर-दर्शन पशु उन ऋषिवर के आश्रम में जमा हो, परस्पर प्रीति जनाते थे। वे

सब अपनी अपनी चातुरी दिखा और उनके शिष्य तथा दास की तरह बने, उनके मनोनुकूल व्यवहार करते थे। उस आश्रम में एकत्र होने वाले समस्त हिंस्र तथा अन्य पशु आपस में प्रश्नोत्तर कर, जैसे आते वैसे ही लौट कर चले जाते थे ; किन्तु एक श्वान था, जो ऋषि के आश्रम को छोड़, अन्यत्र कहीं नहीं जाता था। वह ऋषि के निकट ही बैठा रहता था । वह कुत्ता उनका बड़ा भक्त था, क्योंकि उसका उन पर बड़ा अनुराग था । वह या तो उपवास करता अथवा फलाहार किया करता था। अतः वह बहुत लटा दुबला और निर्बल हो गया था। उसका स्वभाव शान्त था और सूरत-शक्ल से सज्जनों जैसा जान पड़ता था।

हे युधिष्ठिर! वह कुत्ता उन ऋषि के चरणों के निकट बैठा रहता था और मानवी स्नेह में बँध वह उन ऋषि में बड़ी भक्ति रखता था।

इस प्रकार रहते रहते जब बहुत दिन बीत गये, तब एक दिन एक रुधिरपायी हिंस्र चीता उन ऋषि के आश्रम में आया और अपने भक्ष्य उस श्वान को देख, बड़ा प्रसन्न हुआ। वह चीता भूखा प्यासा तो था ही अतः वह गलसुओं को चाटता, पूँछ को हिलाता और मुख को फाड़े हुए, उस कुत्ते को खाना चाहता था। उस क्रूर स्वभाव चीते को इस प्रकार अपनी ओर आते देख, उस श्वान ने मुनि से कहा—हे भगवन्! श्वानों का शत्रु वह चीता मुझे मार डालना चाहता है। अतः हे महामुने! आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे मुझे आपकी कृपा से इस चीते का भय न रहे। आप निश्चय ही सर्वज्ञ हैं। अतः आप समस्त प्राणियों के मनोभावों को जानते और उनके शब्दों का अभिप्राय जानते हैं। वे दिव्य ऐश्वर्यशाली मुनि उस श्वान के भय का कारण समझ गये। अतः उन्होंने उस कुत्ते से कहा—हे वत्स! तू चीते से अपनी जान के लिये तिल भर भी मत डर, तुझे मैं कुत्ते से अभी चीता बनाये देता हूँ। यह कह उन शक्तिशाली मुनि ने उस कुत्ते को सुनहली धारियों से युक्त विचित्रवपु-धारी चीता बना दिया। अब क्या था। अब तो चीता-वपु-धारी वह श्वान

निर्भय हो उस तपोवन में विचरने लगा। उस समागत चीते ने अपने समान एक दूसरे चीते को देख, उसके प्रति वैरभाव त्याग दिया, और वह उसके अनुकूल हो गया। जब इस प्रकार रहते रहते कुछ समय बीत गया; तब एक दिन उस आश्रम में मुँह फाड़े, ओठों को चाटता, एक भूखा व्याघ्र उस चीते का रुधिर पीने की इच्छा से उसकी ओर झपटा।

बुभुक्षित और बड़ी बड़ी दंष्ट्राओं वाले व्याघ्र को देख और उससे अपनी जान बचाने के अभिप्राय से उस चीते ने मुनि का आश्रय लिया। वह चीता उन ऋषि के निकट रहता था, अतः उन ऋषि का उस पर बड़ा स्नेह था। अतः उन्होंने चीते का भय दूर करने को उसे एक महाबली व्याघ्र बना दिया। यह देख वह भूखा व्याघ्र वहाँ से चल दिया। अब वह कुत्ता जो क्रमशः व्याघ्र हो गया था, फलाहार छोड़, एक मृगेन्द्र की तरह नित्य मांस खाने लगा। माँस खाते खाते वह बड़ा बलवान् हो गया।

एक सौ सत्रह का अध्याय

ऋषि के कुत्ते का उपाख्यान

भीष्म जी कहने लगे—हे धर्मराज! अब तो वह व्याघ्र नित्य मृगों को मारता और मारे हुए मृगों का माँस खाया करता था तथा रात दिन उन मुनि की कुटी के द्वार पर पड़ा रहता था। एक दिन उस व्याघ्र को देख, एक मतवाला गजराज काली मेघघटा की तरह बढ़ा चला आता था। उस गजराज के उभय गण्डस्थलों से मद टपक रहा था। वह बड़े भारी डीलडौल का था। वह पद्मी जाति का गज था। उसका कुम्भस्थल प्रशस्त, दाँत सुन्दर और शरीर बहुत मोटा था। वह मेघ की गम्भीर गर्जन की तरह चिंघार रहा था। उस मतवाले और बलगर्वित हाथी को अपनी ओर आते देख, वह बाघ-वपु-धारी श्वान डरा और भयभीत हो उसने पुनः ऋषि का सहारा लिया। तब ऋषि ने उसे गजराज बना दिया। तब तो

वह आक्रमणकारी अपने समान एक दूसरे बलवान् गजराज को अपने सामने खड़ा देख, मन ही मन डरा और वहाँ से भाग खड़ा हुआ। तदनन्तर उन ऋषि का वह विश्वस्त कुत्ता, गजराज बन, शल्लकी घास में सुख कमल वन में भ्रमण करने लगा और पद्मपराग से हर्षित होने लगा। वह रात दिन उन महर्षि की कुटिया के चारों ओर घूमा फिरा करता था।

जब इस प्रकार उस गज-वपु-धारी श्वान को रहते रहते बहुत काल बीत गया, तब एक दिन पर्वतकन्दरावासी गजयूथों का नाशक, लाल केशों से युक्त एक भयङ्कर केसरी उस हाथी की ओर लपका। तब तो वह बहुत घबड़ाया और भय से काँपता हुआ—ऋषि के पास गया। तब तुरन्त मुनि ने उसे हाथी से सिंह बना दिया। तब तो वह आक्रमणकारी सिंह अपने जैसे एक दूसरे सिंह को देख, वहाँ से चल दिया। तब से वह सिंह-वपु-धारी श्वान, ऋषि के आश्रम में रह समय बिताने लगा। कुछ दिनों बाद एक शरभ ने उस सिंहरूपधारी श्वान पर आक्रमण किया। वह शरभ समस्त प्राणियों को मार डालने वाला, बड़ा बलवान् रक्त पीने वाला और प्रत्येक प्राणी को भयभीत करने वाला था।

हे राजन्! उस शरभ को देख, उन ऋषि ने अपने सिंह को उत्कट बलवाला शरभ बना दिया। मुनि के अतिउग्र और महाबलवान शरभ को देख, वह जंगली शरभ वहाँ से भाग गया। इस प्रकार उन ऋषि ने अपने कुत्ते को शरभ बना डाला। अतः वह शरभ बना हुआ कुत्ता, ऋषि के निकट बड़ा प्रसन्न रहता था और प्राणियों की हिंसा किया करता था। अतः उस वन के रहने वाले समस्त पशु डर कर और उस वन को छोड़ इधर उधर भाग गये। वह शरभ-रूप-धारी श्वान माँस खाते खाते अब माँसाहारी हो गया था। अतः अब उसे फल मूल अच्छे नहीं लगते थे। अब रक्त पीने की अभिलाषा उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। अन्ततः वह जाति का था तो कुत्ता ही, तिस पर था वह कृतघ्नी। अतः अब उसने उन ऋषि ही को मार कर खा जाना चाहा।

ऋषि ने तपोबल से प्राप्त दिव्यदृष्टि से उसके मन की बात जान ली और उस श्वान से कहा—अरे श्रो श्वान ! तू कुत्ते से चीता, चीते से व्याघ्र, व्याघ्र से मदमत्त गजराज, गजराज से केसरी और केसरी से बलवान् शरभ बन गया। मैंने प्रेमवश तुझे उत्तरोत्तर उत्तम जाति का पशु बनाया; किन्तु तू स्वयं कुलीन तो न था; अतः तू अपना जातीय स्वभाव न छोड़ सका। हे पापी ! इसीसे तू मुझ निरपराध का वध करना चाहता है। रे कृतघ्न ! आज तू पुनः कुत्ता हो जा। ज्यों ही ऋषि ने यह कहा, त्यों ही वह, शरभ से कुत्ता हो गया। वह बड़ा दुष्टात्मा, नीच और मूर्ख था।

एक सौ अठारह का अध्याय

मन्त्री एवं राजा के गुणवर्णन

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर ! जब वह पापी कुत्ता पुनः अपने असली रूप में आ गया, तब तो वह बड़ा दीन बन गया ; किन्तु उन ऋषि ने उसे फिर अपने पास न रख कर, उसे तपोवन से निकाल बाहिर किया। अतः जो बुद्धिमान राजा अपने सेवककी प्रामाणिकता, सरलता, शील, स्वभाव, सत्यवादिता शास्त्राभ्यास, सदाचार, कुल, दयालुता, पराक्रम, प्रभाव विश्वस्तता और क्षमाशीलता आदि गुणों के जान लेने के बाद उसे जिस पद के योग्य समझे उस पर उसे नियुक्त करे। राजा परीक्षा लिये बिना कभी किसी व्यक्ति को अपना मंत्री न बनावे। जिस राजा के पास कोई नीच कुल का पुरुष रहता है, वह कभी सुखी नहीं रह सकता। कभी कभी राजा निरपराध कुलीन सेवक का भी तिरस्कार कर दिया करता है ; किन्तु तिरस्कृत होने पर भी कुलीन राजसेवक राजा के साथ विश्वासघात करने की कल्पना तक नहीं करता ; किन्तु नीच-कुलोत्पन्न पुरुष, जब किसी बड़े आदमी की सहायता से दुर्लभ ऐश्वर्य पा जाता है और तब यदि कोई बड़ा आदमी उसका तिरस्कार कर देता है, तब तो वह उसका वैरी बन जाता है। अतः राजा

का मंत्री वही पुरुष होना चाहिये जो सत्कुलोद्भव, बुद्धिमान्, शास्त्रनिष्णात, ब्रह्मज्ञानी, लोक-व्यवहार-पटु, सर्व-शास्त्रज्ञ, तत्त्वज्ञ, सहनशील, स्वदेशोत्पन्न, कृतज्ञ, महाबली, क्षमावान्, जितेन्द्रिय, निर्लोभी, प्राप्त वस्तु में सन्तुष्ट रहने वाला तथा राजा एवं मित्रों को ऐश्वर्यवान् देखने की कामना रखने वाला हो। मंत्री के लिये देश-कालज्ञ होना, प्राणिमात्र को प्रसन्न रखने में उद्यत, मन को सदा अपने काबू में रखने वाला, हितचिन्तक, तन्द्राविवर्जित, देशाचार का ज्ञाता, सन्धि-विग्रह-कुशल, राजा की आवश्यकताओं को जानने वाला और प्रजाजनों का प्रीतिपात्र होने की आवश्यकता है। राजा का मंत्री वही हो सकता है, जो शत्रुसेना का संहार कर सके, व्यूहरचना आदि युद्ध-सम्बन्धी कार्यों को कर सके, सेना को उत्साहित करने और उनको प्रसन्न रखने में निपुण हो, लोगों की चेष्टा और उनकी मुखाकृति से उनके मनोभावों को समझ लेने वाला हो। आक्रमण कार्य में पटु, गजों को शिक्षा देने में प्रवीण, गर्वशून्य, विचारवान, कार्यकुशल, धर्मानुकूल उचित काम करने वाला, शुद्धहृदय, धर्मात्मा जनों की संगति में रहने वाला, देखने में सुन्दर, मधुरभाषी, राजनीति विशारद, गुणज्ञ, सदाचारी, मूढ़तारहित, सूक्ष्म विषयों को समझने की योग्यता रखने वाला, कोमल, धीर, वीर, बड़ी समृद्धि वाला, देश और कुल के अनुरूप कार्य करने वाला होता है। जो राजा ऐसे गुणवान मनुष्य को मंत्री के पद पर नियुक्त करता है, उस राजा का राज्य चटक चाँदनी की तरह चारों ओर फैल जाता है। उसी राजा का प्रजा बड़ा सम्मान करती है, जो शास्त्रनिष्णात, धर्म में आस्थावान् और प्रजापालन में तत्पर रहता है। राजा वही सर्वप्रिय हो सकता है, जो धैर्यवान्, क्षमावान्, पवित्र, समय समय पर उग्रताधारी, लोगों के उद्योगों का ज्ञाता, वृद्धसेवी, वाक्पटु, परामर्श देने योग्य लोगों की सलाह लेने वाला, ऊँच नीच समझने वाला, बुद्धिमान्, मेधावी, न्यायवान्, जितेन्द्रिय, प्रियभाषी, शत्रु को क्षमा करने वाला, स्वयं नित्य दान देने वाला, श्रद्धावान्, दर्शनीय, दुःखियों की सुध लेने वाला, और हितैषी मंत्रियों से सम्पन्न होता है। जो राजा कभी बिना रानी के अकेला

नहीं रहता, कार्य सिद्ध होने पर मंत्रियों को पुरस्कृत करने वाला और जैसे बने वैसे कार्य पूरा हो—ऐसा विचार न करने वाला होता है तथा आलस्य को त्याग उत्तरोत्तर अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने की चाहना रखने वाला होता है, वही राजा सर्वप्रिय हो सकता है। जो राजा भले आदमियों को अपने निकट रखता है, गर्वशून्य और सदा हँसमुख बना रहता है, वह राजा सर्वप्रिय हो सकता है। जो राजा अपने सेवकों का गुणग्राहक, उदार-मना, हँसमुख, अकारण क्रोध न करने वाला, दण्डनीति का यथोचित प्रयोग करने वाला, धर्मोपदेष्टा, गुप्तचररूपी नेत्रों से सम्पन्न, प्रजा के सुखों दुःखों को देखने वाला, धर्मार्थकुशल होता है, वही राजा सर्वप्रिय होता है। राजा को उचित है कि, वह राज्यरक्षार्थ, गुणवान् योद्धाओं और सहायकों को अपने निकट रखे। जो राजा अपने राज्य की वृद्धि करना चाहता हो, उसे इन लोगों का कभी अपमान न करना चाहिये। जिस राजा के योद्धा रणकुशल, कृतज्ञ, शास्त्रनिपुण, धर्मशास्त्रज्ञ, पैदल सिपाहियों से घिरे हुए, निर्भीक, गजारूढ़ हो लड़ने वाले, रथ में बैठ कर युद्ध करने वाले, बाण छोड़ने तथा अन्य अस्त्र शस्त्र चलाने में कुशल होते हैं, वही राजा इस भूमण्डल को जीत सकता है। जो राजा अपने प्रजाजनों को सन्तुष्ट रखता है, शत्रु पर आक्रमणादि करने के उद्योग में संलग्न रहता है और जिसके श्रेष्ठ मित्र होते हैं, वही राजा राजाओं में श्रेष्ठ माना जाता है। जो राजा अपने निकट अच्छे लोगों को रखता है वह एक सहस्र अश्वारोही योद्धाओं को साथ ले, समस्त भूमण्डल को फतह कर सकता है।

एक सौ उन्नीस का अध्याय

सेवक की नियुक्ति के लिये उसकी योग्यता देखना नितान्त आवश्यक है

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज ! जो राजा पिछले अध्याय में वर्णित ऋषि के कुत्ते के उदाहरण के निचोड़ को समझ कर, योग्यतानुसार सेवकों को नियुक्त करता है, वही राजा राज्यसुख भोगता है। उस कुत्ते जैसे स्वभाव वाले पुरुष को उसकी योग्यतानुसार पद पर ही नियुक्त करे; किन्तु उसे मुँह लगा कर बहुत ऊँचा न उठा दे। यदि ऐसा न किया गया तो वे लोग अभिमान में भर अनर्थ करने लगते हैं। राजा, जिस मनुष्य को मंत्री बना कर जो काम सौंपे, कार्य सौंपने के पूर्व यह अवश्य देख ले कि, उसमें उस पद के अनुकूल गुण हैं कि नहीं। वही गुणज्ञ राजा राज्यसुख भोग सकता है, जो अपने नौकरों की योग्यता को जानता है। शरभ को शरभ के पद पर, सिंह को सिंह के पद पर, व्याघ्र को व्याघ्र के पद पर और चीते को चीते के पद पर ही नियत करे *।

जिस राजा को सफलता प्राप्त करने की अभिलाषा हो वह सेवकों को उनकी योग्यतानुसार काम सौंपे। किसी भी पद पर अयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त न करे। जो मूर्ख राजा ऐसा करता है, वह प्रजाजनों को कभी प्रसन्न नहीं कर सकता। जो राजा यह चाहे कि, उसके यहाँ गुणवान् कर्मचारी काम करें, उसे मूर्ख, ओछे, बुद्धिहीन, इन्द्रियलोलुप और नीच-कुलोत्पन्न मनुष्यों को नौकर न रखना चाहिये। गुणवान्, कुलीन, वीर, ज्ञानवान्, ईर्ष्याद्वेषरहित, उदारमना, बाहिर भीतर स्वच्छ एवं व्यवहार-कुशल पुरुष ही मंत्रीपद के योग्य हैं। वे सेवक राजा के बाहिर फिरने

* शरभ में पराक्रम, सिंह में धैर्य और वीरता, व्याघ्र में क्रूरता और चीते में फुर्ती का गुण माना गया है।

वाले प्राणों की तरह मित्र होते हैं, जो विनम्र, मनोयोगपूर्वक कार्य करने वाले, शान्त स्वभाव और ईमानदार होते हैं, जो सेवक सिंह की तरह धीर वीर हों, उन्हें सदा धीर वीर ही बना रहना चाहिये। जो पुरुष सिंह जैसे गुणों को न रखता हुआ भी सिंह जैसे गुणों से सम्पन्न मनुष्य के साथ रह कर काम किया करता है, वह भी वैसा ही हो जाता है; किन्तु यदि कभी कोई सिंह, श्वानों में जा फँसता है और सिंह की तरह काम करना चाहता है, तो वह उन कुत्तों के कारण वैसा नहीं कर पाता। वह राजा समस्त भूमण्डल को जीत लेता है, जो वीर बुद्धिमान् और अनुभवी कुलीन पुरुषों की सहायता प्राप्त कर लेता है। राजाओं को उचित है कि, वे विद्याहीन, बुद्धिहीन मूर्ख, उदण्ड और अल्प धन वाले सेवकों को अपने निकट न रखे; जो नौकर आदेश पाते ही पीछे न लौटने वाले बाण की तरह, शीघ्र उस आज्ञा का पालन कर लाता है और राजा के हित में सदा तत्पर रहता है। उस सेवक के साथ राजा को सदा शिष्टतापूर्ण व्यवहार करना उचित है, राजाओं को सदा बड़े प्रयत्न के साथ अपने ख़ज़ाने की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि राज्य का मूल धनागार ही है, और इसीसे राजाओं की वृद्धि होती है।

हे युधिष्ठिर! तुम अपने धान्यागार को श्रेष्ठ पुरुषों के तत्वावधान में रखना और धन एवं धान्यसंग्रह का सदा उद्योग किया करना। तुम्हारे रणचतुर योद्धा भी युद्धविद्या का अभ्यास सदा करते रहें। अश्व-सञ्चालन कला में भी उन्हें योग्यता सम्पादन करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। हे राजन्! तुम अपने नाते रिश्तेदारों तथा भाई बंदों की भी सदा देख रेख करते रहना। तुम अपने जाति वालों की तथा बान्धवों तथा मित्रों की सहायता से नगरनिवासियों का हितसाधन किया करना। कुत्ते का दृष्टान्त सुना, मैं यह तो तुम्हें बतला ही चुका कि, तुम्हें प्रजाजनों के साथ कैसा बर्त्ताव करना चाहिये। बतलाओ अब और क्या सुनने की तुम्हारी इच्छा है।

एक सौ बीस का अध्याय

राजधर्म का निष्कर्ष

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह ! आपने अनेक राजाओं के वे चलन अथवा व्यवहारों का मुझे वर्णन सुनाया, जो प्राचीन कालीन आचार्यों के कहे हुए थे। अब आप मुझे पूर्वकालीन राजाओं के विविध चरित्रों द्वारा राजधर्म समझा दें। हे राजन् ! सत्पुरुष-सम्मत पूर्वकालीन राजाओं का राजधर्म आपने मुझे विस्तार से सुनाया, अब आप मुझे उसका निष्कर्ष अर्थात् निचोड़ सुना दें।

भीष्म ने कहा—राजधर्म इसीलिये श्रेष्ठ माना गया है कि, इससे समस्त प्राणियों की रक्षा की जाती है। हे युधिष्ठिर ! अब मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ कि, राजधर्म से प्राणिमात्र की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये। सुनो। धर्मज्ञ राजा को उचित है कि, वह अपने विविध कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये तरह तरह के रूप वैसे ही धारण करे जैसे सर्पभक्षी मयूर धारण करता है जो राजा क्रूरता, कुटिलता, अभयदान, सत्य, सरलता, का व्यवहार करता हुआ, सतोगुण का आश्रय ग्रहण करता है, वही राजा सुखी रहता है। कार्यसिद्धि के लिये जिस रूप को उपयोगी समझे, उसी रूप को राजा धारण करे। जो राजा अनेक रूप धारण कर सकता है, वह कठिन से कठिन काम भी कर सकता है। जैसे शरद्ऋतु में मयूर चुपचाप रहता है, वैसे ही राजा भी राजकीय विषयों पर विचार करते समय मौन धारण करे। राजा को सामान्यतः कम और मधुर वचन बोलने चाहिये। राजा अपनी पदमर्यादा के अनुरूप बढ़ियां वस्त्र धारण करे, शास्त्रों में पटुता सम्पादन करे। राजा को उचित है कि, वह जिस द्वार से किसी प्रकार के सङ्कट आने की सम्भावना देखे, उस द्वार को पहले ही से वैसे ही रोके जैसे बाँध के जल से अपने घरों और खेतों की रक्षा के लिये सदा सावधान रह बाँध की रक्षा की जाती है। लोग जिस प्रकार पहाड़ी

नदियों का आश्रय ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार राजा भी सिद्ध ब्राह्मणों का आश्रय ग्रहण करे। जिस प्रकार धर्मध्वजी पाखण्डी सिर पर जटाएँ बढ़ाते हैं, उसी प्रकार धनप्राप्ति की कामना रखने वाला राजा, भी मुण्डा आदि के चिन्ह धारण करे। सदा अपराधियों को दण्ड दे। जैसे प्रत्येक ताड़ वृक्ष में दिन भर ताड़ी निकाली जाती है, वैसे ही राजा भी सावधानतापूर्वक प्रजाजनों के आयव्यय की जाँच पड़ताल कर, उन पर उचित कर लगावे। राजा को प्रजाजनों पर सम दृष्टि रखनी चाहिये। जब वह शत्रुदेश पर चढ़ाई करे, तब घुड़सवार सेना से शत्रुदेश के खेतों के खड़ेतों नष्ट कर दे। किसी बड़े राजा की सहायता प्राप्त कर अपने शत्रु का नाश करे और अपनी कमज़ोरियों का ध्यान रखे। राजा अपने शत्रु के दोषों को प्रकट करे और शत्रुपक्षीय लोगों का नाश करे। जैसे वन में फूल एकत्र किये जाते हैं, वैसे ही राजा आखेट के बहाने से बाहिर निकल धन जमा करे। जो अभिमानी राजे पर्वत की तरह अचल और ऊँचा सिर कर के बैठे हों, उनका नाश करे। राजा को उचित है कि, शत्रु राजा के सरदारों और सैनिकों में फूट डाल दे; किन्तु यह बात किसी को प्रकट न होने दे। फिर सहसा उस राजा की राजधानी में घुस, उसको मर्दे। जैसे वर्षाऋतु में मोर निर्जन स्थान में बैठा रहता है, वैसे ही राजा भी रात के समय अन्तःपुर में रहे और मयूर की तरह गुप्तस्थान में स्त्री-सहवास करे। शरीर से कवच न उतारे, अपनी रक्षा अपने आप करे और शत्रुपक्षीय दूतों के फैलाये जाल को काट डाले। यदि देखे कि, शत्रु प्रबल है, तो उससे मैत्री कर ले, फिर जब मौक़ा हाथ लगे, तब उसका नाश कर डाले। जो कुटिलता करे उसके साथ कुटिलता करनी चाहिये। जैसे मयूर अपने शत्रु ज़हरीले सर्पों का नाश किया करता है, वैसे ही राजा, क्रुद्ध एवं अनिष्टकर शत्रुओं को नाश कर डाले। प्रथम तो शत्रु की सेना का नाश करे और पीछे जो सैनिक बच जाँय, उन्हें देश से निकाल दे। मोर की तरह राजा को सदा हितकर काम करने चाहिये। उन सब

लोगों से उचित सम्मति लेनी चाहिये। जैसे टीड़ी दल वनप्रदेश पर टूटता है, वैसे ही राजा भी शत्रु के राज्य पर टूट पड़े। जैसे मयूर अपने स्थान की रखवाली किया करता है, वैसे ही राजा भी अपने राज्य की रक्षा करे। राजा ऐसी नीति ग्रहण करे जिससे उसका हित हो। राजा को किसी भी काम में हाथ डालने के पूर्व, दूसरों की सम्मति ले और उस पर विचार कर के, उस कार्य को करने या न करने का निश्चय कर लेना चाहिये। राजा को नीतिशास्त्र द्वारा यह भी निश्चय कर लेना चाहिये कि, वह किस मार्ग से चले। राजा शान्त वचन कह कर शत्रु के मन में अपनी ओर से विश्वास उत्पन्न करे; किन्तु अपनी सामर्थ्य का सदा ध्यान रखे। भूत, भविष्यत् का विचार करे। ऊँच नीच का विचार करने में पटु राजा बुद्धि पुरस्सर कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करे। राजा में यह गुण होना आवश्यक है कि, वह भाई, मित्र कह कर, समझ और कार्याकार्य को जान कर, चतुराई से काम को पूरा कर ले। जो चतुर और बुद्धिमान होते हैं, उन्हें तो उपदेश देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जो बृहस्पति की तरह बुद्धिमान होता है, उससे यदि कभी कोई निन्द्य काम बन पड़े, तो भी वह अन्त में वैसे ही शान्त हो जाता है, जैसे तपा हुआ लोहा पानी में डालने से शान्त हो जाता है। राजा अपने तथा दूसरों के शास्त्रविरुद्ध कामों को कभी न करे। अर्थ-शास्त्रज्ञ राजा शीलवान्, बुद्धिमान्, वीर तथा अन्य बलवान पुरुषों से अपने काम करवा ले। लोगों को अपनी योग्यता के अनुरूप कार्यों पर नियुक्त कर, उनका वैसे ही अनुगामी हो जाय, जैसे भिन्न भिन्न स्वरों की वीणा अनुगामिनी होती है। राजा सर्वप्रिय कार्य अवश्य करे; किन्तु वे कार्य धर्मविरुद्ध न होने चाहिये। जिस राजा को प्रजाजन अपना समझते हैं, वह राजा पर्वत की तरह अचल रहता है। जैसे सूर्य की विशाल किरणें सब पर एक सी पड़ती हैं, वैसे ही पक्षपातरहित राजा राजकाज करता रहे। राजकाज करते समय राजा को उचित है कि, वह इष्ट और अनिष्ट दोनों पक्षों को

समान मान, न्याय की रक्षा करे। राजा राजकाज ऐसे लोगों में बाँटे, जो धर्मज्ञ, मधुरभाषी, मुसीबत में निर्दोष रह चुकने वाले, हितैषी, निर्भीक, लोभशून्य, सुशिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्म में पूर्ण श्रद्धा रखने वाले और जो धर्म तथा अर्थ की रक्षा करने वाले हों। राजा इस नीति का अवलम्बन कर, बड़ी सावधानी से कार्य को आरम्भ करे और जब तक वह काम पूरा न हो जाय, तब तक उसकी देखभाल रखे। दूतों के द्वारा राज्य में होने वाली सब घटनाओं की जानकारी प्राप्त करता रहे। जो राजा अकारण क्रोध नहीं करता और निष्प्रयोजन हर्षित नहीं होता, जो स्वयं राजकाज की देखभाल करता रहता है, उसे पृथिवी स्वयं धन दिया करती है। जिसकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता का परिणाम छूँछा नहीं होता, जो अपनी और अपने राज्य की रक्षा करता है, वही राजा राज-धर्म-वेत्ता माना जाता है। जैसे सूर्य नित्य उदय हो, किरण-जाल से समस्त जगत् को अवलोकन करते हैं, वैसे राजा को भी नित्य राजकाज देखना भालना चाहिये। राजा को उचित है कि, वह अपने गुप्तचरों पर दृष्टि रखे वह यह देखता रहे कि, उसके गुप्तचर यथावत् अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं किम्वा नहीं। फिर निज बुद्धिबल से विचार कर कार्य करे। जब ज़रूरत हो तभी राजा को प्रजा से कर उगाहना चाहिये। राजा यह बात किसी को न बतलावे कि, वह किस काम के लिये प्रजा पर कर लगा रहा है। जिस तरह बुद्धिमान् जन नित्य गौ दुहता है, उसी तरह राजा भी नित्य धन एकत्र करे। जैसे मधुमक्षिका नित्य पुष्प-पराग से मधु जमा करती है वैसे ही राजा भी प्रजाजन से धन ले उसे जमा किया करे। सैनिकों तथा अन्य राज-कर्म-चारियों का वेतन चुकाने बाद तथा अन्य आवश्यक व्यय करने के बाद जो धन बचे, उस धन को ईमानदारी के साथ अपने सुखभोग के कामों में व्यय करे; किन्तु समझदार राजा को अपने सुरक्षित धनभाण्डार (Reserve Fund) से, विशेष आवश्यकता हुए बिना, कभी धन ले कर व्यय न करना चाहिये।

यदि स्वल्पातिस्वल्प धन भी मिलता हो तो उसका तिरस्कार न करे। शत्रु यदि शक्तिहीन हो तो भी चतुर राजा उसको तुच्छ न समझे और मूर्ख पुरुष की बातों पर कभी विश्वास न करे। अपनी परिस्थिति को भली भाँति समझता रहे। बुद्धि को स्थिर कर, चातुर्य, संयम, धैर्य और दिलेरी के साथ, देश और काल का विचार कर, अपनी और अपने प्रजाजनों की आवश्यकताओं पर ध्यान रखे। ऐसा करने से राजा के धन की वृद्धि होती है। आग की चिनगारी की आग भी तृन पड़ने से बढ़ जाती है। एक बीज के हज़ारों बीज हो जाते हैं। अतः राजा अपनी विपुल आय और विशाल व्यय को देख, थोड़े से धन की उपेक्षा न करे। शत्रु भले ही बालक, बूढ़ा, अथवा जवान ही क्यों न हो, वह प्रमादी पुरुष का नाश कर डालता है। तुच्छातितुच्छ शत्रु भी काल पा कर प्रबल पड़ते देखे गये हैं। अतः जो राजा समय देख कर काम करता है, वही राजा श्रेष्ठ माना जाता है। शत्रु दुर्बल हो, चाहे बलवान; किन्तु यदि वह मन में द्वेष रखता है तो वह शत्रु की कीर्ति नष्ट कर डालता है, धर्मकार्यों में बाधाएँ डालता है और धनोपार्जन के साधनों को नष्ट कर डालता है। अतः संयतेन्द्रिय राजा को सिर पर खड़े शत्रु की ओर से कभी असावधान या निःशङ्क नहीं रहना चाहिये। राज्य की आमदनी, खर्च और सञ्चित द्रव्य एवं राजकाज की व्यवस्था पर ध्यान देने के बाद बुद्धिमान् राजा को लड़ाई छेड़नी चाहिये अथवा सन्धि कर लेनी चाहिये। इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने के पूर्व राजा अपने मंत्रियों के साथ परामर्श अवश्य कर ले। प्रतिभासम्पन्न बुद्धि, बलवान शत्रु को भी निर्बल बना देती है। बुद्धि द्वारा वर्द्धमान बल से भी रक्षा हो सकती है। वर्द्धमान् शत्रु भी बुद्धिबल से तंग किया जा सकता है। अतः जो कार्य बुद्धि पुरस्सर किया जाता है, उसी काम की लोग प्रशंसा करते हैं। यदि धीर और निर्दोष राजा, अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ण करना चाहे तो वह थोड़ी ही सेना की सहायता से विजय प्राप्त कर सकता है; किन्तु

जिस राजा के पास खुशामदी लोग रहा करते हैं, उस राजा की भलाई नहीं होती।

राजा बिना सताये, प्रीतिपूर्वक प्रजा से कर वसूल करे। जो राजा, बराबर दीर्घकाल तक प्रजा को सताता है, वह राजा घनस्था चपला की तरह चमक दिखला, नष्ट हो जाता है। विद्या, तप और बहुत सा धन, ये सब पुरुषार्थ से प्राप्त होते हैं। प्रत्येक प्राणी अपनी बुद्धि के अनुसार, पुरुषार्थ करता है, अतः पुरुषार्थ सब से श्रेष्ठ माना जाता है। इस मानव देह में इन्द्र, विष्णु अथवा सरस्वती जैसा एक बड़ा तेजस्वी और मतिमान प्राणी रहता है। अतः समझदार व्यक्ति को अपने शरीर को तथा अन्य किसी के शरीर को कभी सताना न चाहिये। जो मनुष्य लोभी हो, उसे नित्य कुछ दे कर, अपने वश में रखे। लुब्ध मनुष्य धन पाने पर भी कभी सन्तुष्ट नहीं होता। सभी लोग ऐश्वर्य भोगना चाहते हैं; किन्तु जो निर्धन होता है, वह धर्म को तथा काम को त्याग देता है। लोभी मनुष्य दूसरे का धन, ऐश्वर्य, पुत्र, कलत्र, वैभव आदि सब वस्तुएँ चाहता है। लोभी पुरुष समस्त दोषों का आगार माना गया है, अतः राजा लोभी पुरुष को मंत्री या सरदार के पद पर कभी नियुक्त न करे। बुद्धिमान् राजा सामान्य-बुद्धि-सम्पन्न मनुष्य को नियुक्त कर वैरी का भेद लेता रहे, फिर विचार पूर्वक उचित व्यवहार करे। ऐसा वह राजा अपने शत्रुओं से आरम्भ किये हुए समस्त कार्यों को चौपट कर सकता है। हे राजन्! जो राजा, धर्मज्ञ एवं विद्वान् ब्राह्मणों से ज्ञान प्राप्त करता है, जिसके मंत्री राज्य की रक्षा करते हैं, जो विश्वस्त और कुलीन होता है, वह राजा अपने सामन्त और करद राजाओं को अपने अधीन रख सकता है।

हे धर्मराज! मैंने शास्त्रोक्त राजधर्म तुम्हें संक्षेप में सुनाये। इन्हें तुम हृदयस्थ कर लो। जो राजा इस राजधर्म को मुझसे सुन, तदनुसार बर्त्ताव करता है, वह राजा सचमुच अखिल भूमण्डल पर शासन कर सकता है। जो राजा—राजनीति द्वारा नहीं, प्रत्युत हठतावश दैव से प्राप्त

होने वाले सुख को प्राप्त करने का अभिलाषी होता है, उस राजा का अन्तिम परिणाम शोच्य होता है। उसे न तो इस लोक में राज्य सुख मिलता है, और न परलोक ही में स्वर्गसुख प्राप्त होता है। राजोचित सन्धि विग्रहादि गुणों से सम्पन्न राजा, बड़े धनी, बुद्धिमान्, शीलवान्, गुणी और अनुभवी योद्धा शत्रुओं को मिला, अन्य शत्रुओं को कुछ ही समय में मार सकता है। राजा अपना काम सिद्ध करने के लिये तरह तरह के उपायों और युक्तियों को खोजे ; किन्तु कुमार्गगामी न बने और न भाग्य पर निर्भर ही रहे। जो पुरुष असावधान मनुष्य के छिद्रान्वेषण किया करता है, उसे न तो राज्यलक्ष्मी मिलती है और न उसको यश मिलता है। यदि दो मित्र एकमत हो, किसी कार्य में लग गये हों, उनमें से जो अपने ऊपर विशेष कार्यभार लेता है, उसकी लोग प्रशंसा करते हैं। हे राजन् ! मैंने तुम्हें राजधर्मों का सार संक्षेप में सुना दिया। अब तुम इन धर्मों का आचरण कर, अपना मन प्रजारक्षण की ओर लगाओ। ऐसा करने पर तुम्हें सुख और पुण्यफल प्राप्त होगा। क्योंकि राजधर्म का पालन करने से समस्त पुण्यप्रद पुण्यलोकों की प्राप्ति होती है।

एक सौ इक्कीस का अध्याय

दण्ड निरूपण

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! आपने मुझे सनातन राजधर्म पूर्ण रीत्या सुनाया। हे प्रभो ! देवता, ऋषि, महात्मा, पितर तथा राक्षस, पिशाच, साध्य, देवता, पशु, पक्षी आदि योनियों में रहने वाले इस जगत के समस्त प्राणियों का प्रभु दण्ड है। यह दण्ड सर्वत्र व्यापक है। यह कल्याणप्रद है और इसीके आधार पर यह सारा जगत टिका हुआ है। आपने मुझे बतलाया है कि सुर, असुर और मनुष्यों सहित यह चराचरात्मक जगत् दण्ड का दास है। अतः हे राजन् ! आप मुझे यह बतावें कि, वास्तव में

यह दण्ड है क्या ? उसका आकार कैसा है ? स्वरूप कैसा है ? वह बना किससे है ? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है ? उसकी मूर्ति कैसी है ? उसका तेज कैसा है ? प्राणियों में सावधान रह कर वह किस प्रकार जागता रहता है ? जागृत रह कर अखिल पूर्वापर जगत् का पालन करने वाला वह है कौन ? जगत् की सृष्टि के समय वह कौन था ? वह किसके आधार पर टिका हुआ है ? और उसकी गति क्या है ?

भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर ! जिसके आधार पर यह सारा जगत् अवलम्बित है, उसीका नाम दण्ड है। दण्ड के भय ही से सारा जगत् धर्ममार्ग पर चलता है। इसका अपरनाम न्याय (व्यवहार) है। राजा को दण्ड धारण करने की आवश्यकता इस लिये है कि, लोग सावधानतापूर्वक धर्मानुष्ठान करें; जिससे धर्म का नाश न होने पावे। वादी प्रतिवादी के झगड़ों को मिटाने वाला और पर-धन-अपहरण आदि अत्याचारों को रोकने वाला विधान, व्यवहार अर्थात् आईन कहलाता है। इस व्यवहार का सब से प्रथम निरूपण भगवान् मनु ने स्वनिर्मित धर्मशास्त्र में किया है। यदि मनुष्य को अपने प्रिय का अथवा अप्रिय राजा का अथवा ईश्वर के दण्ड का भय न हो तो कोई भी आदमी धर्ममार्ग पर न चले। यदि राजा पक्षपात किये विना ठीक ठीक दण्ड विधान करे, तो प्रजाजनों की रक्षा होती है और वह राजा धर्मरूप गिना जाता है। हे राजन् ! मैंने तुम्हें जो मनुवाक्य सुनाया, वह ब्रह्मा जी का वाक्य है। उन्होंने यह सब से प्रथम कहा था। इसीसे इसको लोग प्राग्वचन कहते हैं; इसका दूसरा नाम व्यवहार या दण्डनीति भी है। यदि दण्ड से सदा यथार्थ रूप से काम लिया जाय, तो धर्म, अर्थ और काम—तीनों की प्राप्ति होती है। क्योंकि दण्ड परम देव है, उसका रूप धधकते हुए अग्नि के समान है और रंग नील कमल के पत्ते जैसा है। इसके मुख में * चार दंष्ट्राएँ हैं,

* १ मानभङ्ग, २ धनापहरण, ३ अङ्गछेदन और ४ प्राणहरण ये दण्ड की चार दाढ़ें हैं।

* चार भुजाएं हैं, † आठ चरण हैं और अनेक नेत्र हैं। उसके कान शङ्कु जैसे और सिर के बाल सतर खड़े हैं। वह जटाधारी अर्थात सन्देह युक्त होने से जटिल है। उसके मुख में दो जिह्वाये अर्थात वादी प्रतिवादी के वाक्य हैं। उसके मुख का वर्ण लाल है और सिर पर उसके बाघम्बर है। वह बाघंबर बड़ी कठिनता से धारण किया जाता है। यह दण्ड बड़ा उग्र रूप धारी है, खड्ग, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मूसल, फरसा, चक्र, पाश, ऋष्टि, तोमर, आदि यावत शस्त्रों के रूप को दण्ड धारण कर लेता है। यह सर्वात्मा रूपी दण्ड जगत् में मूर्तिमान हो कर, विचरता है। वह अपराधियों को भेदता, छेदता, पीड़ित करता, कँपाता, विदीर्ण करता, घायल करता, चोटिल करता और आगे को भागता हुआ धरामण्डल पर घूमा करता है। दण्ड के कई एक नामान्तर भी हैं—वे ये हैं—खड्ग, दुधारा, धर्म, तीक्ष्णवर्मा, दुराधर्ष, श्रीगर्भ, विजय, शिक्षाप्रद, व्यवहार, सनातन, वेद का भाग रूप ब्राह्मण भाग, मंत्रभाग, प्रतिकार आदि, शासन कर्त्ता, धर्म व्याख्याताओं में श्रेष्ठ, धर्मपाल, अक्षर देव, सत्यगामी, नित्यगति, अग्रज, रुद्रपुत्र, ज्येष्ठ मनु, और शिवशङ्कर, दण्ड ही भगवान् विष्णु हैं, नारायण हैं, प्रभु हैं और सदा भयङ्कर रूपधारी होने के कारण महापुरुष कहलाता है। दण्ड की स्त्री के नाम ये हैं, ब्रह्मकन्या, लक्ष्मी, सरस्वती तथा जगदम्बा। इस दण्डनीति के अनेक रूप हैं, यथा—अर्थ अनर्थ, सुख दुःख, धर्म अधर्म, बल अबल, दुर्भाग्य सौभाग्य, पुण्य पाप, गुण दोष, काम अकाम, ऋतु मास, रात दिन, क्षण, अप्रमाद प्रमाद, हर्ष क्रोध, शम दम, दैव पुरुषार्थ, मोक्ष बन्धन, भय अभय, हिंसा अहिंसा, तप यज्ञ, संयम,

* १ प्रजा और भूस्वामी से राजस्व लेना, २ मिथ्या अभियोग लगाने वाले से जुरमाना वसूल करना, ३ मिथ्या जवाबदेही करने वाले से जुरमाना लेना और ४ धनाढ्य हो कृपण से सब धन छीन लेना-ये उसकी चार भुजाएं हैं।

† १ आवेदन, २ भाषा, ३ सम्प्रतिपत्ति, ४ मिथ्योत्तर, ५ कारणोत्तर, ६ प्राड् न्याय, ७ प्रतिभूक्रिया ८ और फलसिद्धि ये दण्ड के आठ चरण हैं।

विषमय अन्न और आरोग्यकर अन्न, आदि, मध्य, अन्त; कार्यविस्तार, मद, प्रमाद, दर्प, दम्भ, धैर्य, न्याय अन्याय, शक्ति अपशक्ति, मान अपमान, व्यय अव्यय, विनय, विसर्ग, काल अकाल, असत्य सत्य, ज्ञान, श्रद्धा अश्रद्धा, नपुंसकत्व, व्यवसाय, लाभ हानि, जय पराजय, उग्रता मृदुता, मृत्यु, आगम अनागम, विरोध अविरोध, कार्य अकार्य, बल अबल, * असूय अनसूया, धर्म अधर्म, लज्जा निर्लज्जता, ह्री, सम्पत्ति, तेज, कर्म, पाण्डित्य, वाक्शक्ति, तत्वज्ञान आदि दण्ड के बहुत से रूप हैं।

हे युधिष्ठिर! यदि इस संसार में दण्ड न होता तो लोग आपस में एक दूसरे को खा जाते; किन्तु दण्डभय से लोग एक दूसरे को विनष्ट नहीं करते। हे राजन्! जो प्रजा दण्ड द्वारा रक्षित होती है, वह राजा की वृद्धि करती है। अतः दण्ड ही एक मात्र आश्रयस्थल है। दण्ड द्वारा ही यह सारा जगत् धर्मव्यवस्था में लगता है। क्योंकि दण्ड सत्य रूप है और सत्य में दण्ड विद्यमान है और धर्म धर्मात्मा ब्राह्मणों में वास करता है। धर्मात्मा ब्राह्मण वेद का अध्ययन करते हैं। वेद से यज्ञ किया जाता है, यज्ञ देवताओं को प्रसन्नताकारक है। देवता प्रसन्न हो कर सदा इन्द्र की प्रार्थना करते हैं। तब इन्द्र प्रसन्न हो और प्रजा पर कृपा कर, वर्षा द्वारा उन्हें अन्न प्रदान करते हैं। अन्न के आधार पर ही समस्त प्राणियों का जीवन टिका हुआ है। इस प्रकार राजदण्ड का आतङ्क प्रजाजनों पर छाया रहता है। राजदण्ड प्रजा का रक्षक है। अतः मानवी सृष्टि में दण्ड क्षत्रिय-रूप धारी है। सदा जागृत रह कर दण्ड प्रजा की रक्षा किया करता है। सदा सावधान रहता है। उसकी मृत्यु कभी नहीं होती। दण्ड के आठ नाम प्रसिद्ध हैं। यथा—ईश्वर, प्रभु, प्राण, सत्व, वित्त, प्रजापति, सर्वभूतात्मा और जीव। परमात्मा उसी पुरुष को दण्ड देने की शक्ति, धैर्य और ऐश्वर्य देता है, जिसके पास सेनारूपी शक्ति है और जिसके पास धर्म, व्यवहार, दण्ड तथा ईश्वरत्व है और जिसके अधीन जीव हैं। उत्तम कुल, धनवान्

* बल और अबल यह २५ वें और ३१ वें श्लोक में दो बार आये हैं।

मंत्री, बुद्धि, शरीर, इन्द्रियाँ तथा मननशक्ति—ये सब बल में गिने जाते हैं। यह सब बल तथा आगे कहे हुए आठ प्रकार के बल और कोषादि की वृद्धि करने वाला बल राजा को संग्रह करने चाहिये। राजा के आठ प्रकार के बल ये हैं—१ हाथी, २ घोड़े, ३ रथ, ४ पैदल सैनिक, ५ नौका, ६ वेगार, ७ प्रजा की वृद्धि और ८ विविध प्रकार के उपयोगी पशुओं का संग्रह। युद्धोपयोगी समस्त उपस्कर, कवचधारी सेना, रथी, अश्वारोही और गजारोही योद्धा, सामन्त, शरीर के अङ्गों के गुण दोष जानने वाले विद्वान्, भिक्षुक, न्यायाधीश. ज्योतिषी, शान्ति कर्म कराने वाले, अथर्ववेद मंत्रज्ञ, भाण्डार, मित्र, धान्य, अन्य प्रकार की समस्त उपयोगी सामग्री आदि की गणना भी राजबल में है। राजा को इन बलों को भी एकत्र करना चाहिये। राज्य की सात प्रकृतियाँ और आठ अङ्गों को मिलाने से राज्य का शरीर कहलाता है। इनमें दण्ड की गणना राज्य के अङ्ग में है और राज्य की उत्पत्ति करने वाला, (सैनिकों के रूप में) दण्ड ही है। ईश्वर ने कारण विशेषवश, इस संसार में सब के साथ समानभाव से वर्त्ताव करने वाला दण्ड क्षत्रिय को सौंपा है। दण्ड के अधीन ही सनातन धर्म है। जिस दण्ड के भय से लोग अन्याय नहीं करते वह सर्वमान्य दण्ड राजा को सौंपा गया है। ब्रह्मा जी ने प्रजा की रक्षा और धर्म-संस्थापनार्थ दण्डरूप धर्म का सामान्यतः प्रयोग करने का आदेश दिया है। जब वादी और प्रतिवादी में विवाद उत्पन्न होता है, तब उसे मिटाने के लिये व्यवहार अर्थात् आईन की आवश्यकता पड़ती है। उस विधान के अनुसार वादी अथवा प्रतिवादी के पक्ष में दिया हुआ फैसला या निर्णय, हितकारी होता है। इस फैसले से एक पक्ष की जीत और अपर पक्ष की हार होती है। यह व्यवहार अर्थात् आईन वेद के सिद्धन्तों के अनुकूल है। क्योंकि वेद के सिद्धान्तों के अनुसार ही उसकी रचना की गयी है। इसीसे वह वैदिक व्यवहार या आईन कहलाता है।

एक व्यवहार अर्थात् कानून कुलाचार से सम्बन्ध रखता है। यह भी

शास्त्रानुमोदित ही है। तीन प्रकार के व्यवहारों अर्थात् आईनों में वह व्यवहार अर्थात् जिससे वादी प्रतिवादी का झगड़ा निपटाया जाता है, राजा के अधीन है। यह आईन दण्डविधान या साक्षीविधान के नाम से भी प्रसिद्ध है। दण्ड दिलाना या न दिलाना साक्षी के अधीन है। अत: उसे व्यवहारात्मक कहते हैं। यह व्यहार या आईन धर्मशास्त्र के अधीन है और धर्मशास्त्र वेद के अधीन है। जो व्यवहार (आईन) वेद में वर्णित है, वह सदाचार या धर्म (कर्त्तव्य) कहलाता है। इस व्यवहार या आईन से सदाचारी या धर्माचारी जनों का हितसाधन होता है। पुण्यात्मा जनों के बनाये सामान्य नियमों के अनुसार ही इस व्यवहार—आईन की रचना की गयी है।

हे युधिष्ठिर ! तीसरे प्रकार का व्यवहार—आईन मानवी समाज की रक्षा करने वाला है। यह भी वेदोक्त है, यह सत्य स्वरूप, ऐश्वर्य-वृद्धिकारक और त्रिलोकी को धारण करने वाला है। दण्ड ही सनातन व्यवहार रूप है। विद्वानों के मतानुसार यावत् व्यवहार वेद ही से निकले हैं। वेद धर्म का, सदाचार का और कर्त्तव्य का स्वरूप बतलाता है, सदाचार और कर्त्तव्यपरायणता ही धर्म स्वरूप हैं। सब से पहले प्रजा के पति और बाबा (पितामह) ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। उन्होंने देव, दैत्य, राक्षस, मनुष्य और सर्पादि समस्त प्राणियों की रचना की थी। उन्होंने फिर वादी प्रतिवादी के झगड़ों को मिटाने वाला व्यवहार आईन बनाया। उस व्यवहार या आईन में उन्होंने यह वचन कहा है जो राजा, न्यायपूर्वक प्रजापालन करता है, उसके निकट न तो उसके माता पिता, न भाई, न स्त्री और न पुरोहित ही अदण्डनीय हैं।

एक सौ बाईस का अध्याय

दण्ड की जन्मकथा

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर ! दण्ड सम्बन्धी एक पुरातन इतिहास उदाहरणरूप से इस प्रकार कहा जाता है। अङ्ग देश में वसुमान नामक प्रसिद्ध एक तेजस्वी राजा था। यह राजा सदा धर्मात्मा था और अपनी रानी सहित तपश्चर्या में निरत रहता था। एक दिन वह राजा मुञ्जपृष्ठ नामक पर्वत पर गया। यह पर्वत देवताओं, पितरों और ऋषियों से पूजित था। यह मुञ्जपृष्ठ हिमालय के एक शिखर पर और सुवर्णमय मेरु के निकट था। यहीं पर मुञ्ज नामक एक वट वृक्ष के नीचे श्रीराम ने अपने केशों की जटाएं बाँधी थीं। तभी से सुव्रत ऋषियों ने इस स्थान का नाम मुञ्जपृष्ठ रख छोड़ा था। वहाँ पर रुद्र देवता का निवास है। वहाँ रहते रहते वसुहोम वेदोक्त अनन्त गुणों से युक्त और ब्राह्मणों में देवर्षियों की तरह मान्य हो गया। एक दिन शत्रुञ्जय और देवराज इन्द्र का मान्य मित्र तथा उदारमना राजा मान्धाता मुञ्जपृष्ठवासी राजा वसुहोम के निकट गया। उत्तम तपस्या में निरत राजा वसुहोम को देख, मान्धाता विनय के साथ उसके आगे खड़ा रहा। इतने में वसुहोम ने मान्धाता का अर्घ्य पाद्य से सत्कार कर, राज्य के सप्ताङ्गों का कुशल क्षेम पूछा। अन्त में सन्मार्गगामी राजा मान्धाता से वसुहोम ने पूछा, बतलाइये मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य करूँ ?

हे युधिष्ठिर ! इस पर मान्धाता ने अति प्रसन्न हो कर, महाबुद्धिमान राजा वसुहोम से कहा—राजन् ! आप बृहस्पति-रचित समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं। आपने शुक्राचार्य-रचित नीति शास्त्र भी पढ़ा है। अतः आप दण्ड की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनावें। मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि, दण्ड के पूर्व कौन जागता रहता है। दण्ड सर्वश्रेष्ठ क्यों माना गया है और वह क्षत्रिय ही को क्यों सौंपा गया है ? मेरी शिष्य रूप से आपके

प्रति यह जिज्ञासा है। आप मुझे मेरे प्रश्नों का उत्तर दें मैं आपको गुरु-दक्षिणा दूँगा।

वसुहोम ने कहा—मान्धाता! सनातन धर्म का आत्मरूप दण्ड समस्त प्राणियों का नियंत्रण करने वाला है और प्रजा के विनय की रक्षा करने के लिये इस संसार में इसकी उत्पत्ति कैसे हुई, यह मैं बतलाता हूँ। सुनो।

सुनते हैं कि, किसी समय सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा जी ने यज्ञ करना चाहा; किन्तु उन्हें अपने अनुरूप एक भी ऋत्विज न देख पड़ा। तब उन्होंने दीर्घकाल तक अपने मस्तक पर गर्भधारण करने का भार ग्रहण किया। जब एक सहस्र वर्ष बीत गये, तब ब्रह्मा ने छींका और वह गर्भ मस्तक से नीचे गिर पड़ा। उससे क्षुप नामक प्रजापति की उत्पत्ति हुई। यह क्षुप ब्रह्मा जी के यज्ञ में ऋत्विज बना। तदनन्तर जब प्रजापति ने विनम्रता और शान्ति धारण की, तब दण्ड अन्तर्धान हो गया। दण्ड के अदृश्य होते ही, प्रजाजनों में वर्ण-सङ्करता फैल गयी। प्रजाजनों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य, भक्ष्याभक्ष्य का विवेक ही न रह गया। उनमें पेयापेय का विचार न रह गया। वे परस्पर मार काट मचाने लगे। वे लोग अब यह भी विचार न करते कि, उन्हें कहाँ जाना चाहिये और कहाँ नहीं जाना चाहिये। ऐसी लूटपाट मची कि, लोगों की वस्तुओं पर मालकियत नाम मात्र की रह गयी। जैसे कुत्ते माँसपिण्ड को इधर उधर खींचते हैं, वैसे ही लोग आपस में धन की छीना झपटी करने लगे। जो बलवान् थे वे निर्बलों का नाश करने लगे। पड़ोसियों में परस्पर हेलमेल ही न रह गया। इस प्रकार जिधर देखो उधर लोग मर्यादा का उल्लङ्घन करने लगे। यह शोच्य व्यवस्था देख, लोक-पितामह ब्रह्मा जी वरद भगवान् विष्णु के निकट जा और उनका पूजन कर उनसे बोले—हे केशव! इस समय आपको ऐसी कृपा करनी चाहिये जिससे प्रजा वर्णसङ्कर न होने पावे।

यह सुन शार्ङ्ग-धनुष-धारी देववर्य भगवान् विष्णु ने बहुत सोच विचार

कर, स्वयं ही दण्डरूप धारण कर लिया। उनके दण्डरूप धारण करते ही चारों ओर धर्माचारी लोग देख पड़ने लगे। तब नीतिरूपिणी सरस्वती देवी ने दण्डनीति की उत्पत्ति की। उस दण्डनीति का तीनों लोकों में प्रचार हो गया। तदनन्तर उत्तम आयुधधारी भगवान् ने बहुत काल तक सोच विचार कर, भिन्न भिन्न देवसमुदायों के एक एक प्रभु बनाया। सहस्रनेत्र इन्द्र को देवताओं का, विवस्वाननन्दन यम को पितरों का, कुबेर को धन और राक्षसों का, मेरु को पर्वतों का, महासागर को नदियों का, वरुण को जल का और असुरों का, मृत्यु को प्राणों का और अन्य समस्त चेतन पदार्थों का राजा बनाया। ईशान को रुद्रों की रक्षा करने वाला राजा बनाया। यह ईशान महादेव बड़े बलवान्, विशाल, तीन नेत्रों वाले और सनातन देव हैं। वसिष्ठ को ब्राह्मणों का, अग्नि को वसुओं का, सूर्य को तेज का और चन्द्रमा को तारागण ओषधियों तथा लताओं का, द्वादश-भुजधारी स्वामिकार्तिकेय को महादेव के भूतों का तथा सर्व-भूत-क्षयकारी काल को, सब का राजा बनाया। उसीको शस्त्र, रोग, शत्रु और भोजन रूपी मृत्यु के चार विभाग सौंपे। सुख तथा दुःख का अधिपति भी काल ही बनाया गया। राजाओं के राजा शूलपाणि को समस्त रुद्रों का राजा बनाया। वेद में ऐसा कहा गया है। धर्माग्रणी ए ब्रह्मानन्दन क्षुप को दण्डाधिपति बनाया। जब ब्रह्मा जी का यज्ञ शास्त्रोक्त विधान से पूर्ण हो गया महादेव जी ने धर्मरक्षक दण्ड विष्णु के सम्मानार्थ उनको भेंट कर दिया, तब विष्णु ने वह दण्ड अङ्गिरा को, अङ्गिरा ने इन्द्र और मरीचि को, मरीचि ने भृगु को, भृगु ने धर्मरक्षक ऋषियों को, ऋषियों ने लोकपालों को और लोकपालों ने क्षुप को दिया। फिर क्षुप ने सूर्य-नन्दन मनु को और मनु ने सूक्ष्म धर्म की रक्षा के लिये वह दण्ड अपने पुत्रों को सौंप दिया। दण्ड का व्यवहार मनमाना न करना चाहिये। दण्ड का प्रयोग न्यायानुसार और धर्मानुसार ही करना चाहिये। दण्ड द्वारा निर्बल की रक्षा करनी चाहिये, अपराधी को सुवर्ण आदि का अर्थदण्ड

दिया जाय. दण्ड का प्रयोग अधाधुन्ध न करना चाहिये। जो अर्थदण्ड किया जाता है या जो सम्पत्ति अपहरण (ज़ब्त) की जाती है वह लोगों में भय उत्पन्न करने के लिये होने से वाग्दण्डिया है। (न कि राजकोष की पूर्ति के लिये।) अवश्य अपराध करने वाले को अङ्गच्छेदन, प्राणदण्ड, पर्वतादि उच्च स्थान से ढकेलने या देश निकालने का दण्ड न देना चाहिये। सूर्यनन्दन मनु ने प्रजारक्षणार्थ अपने पुत्रों को समान रूप से दण्ड देने का अधिकारी बनाया था। यह दण्ड उत्तरोत्तर अधिकारियों के हाथ में जा जाग्रत बना रहता है। सब के ऊपर इन्द्ररक्षा किया करते हैं। इन्द्र के बाद अग्नि, अग्नि से वरुण, वरुण से प्रजापति, प्रजापति से धर्म, धर्म से ब्रह्मा के सनातन व्यवसाय नामक पुत्र, व्यवसाय से चारों ओर रक्षा करने वाला तेज, तेज से देवता और मनुष्योपयोगी ओषधियाँ, ओषधियों से पर्वत, पर्वतों से रस, रस और उनके गुणों से निऋति देवी और निऋति देवी से ज्योतिर्मण्डल जाग्रत रहता है। ज्योतिर्मण्डल से वेद, वेदों से प्रभु हयग्रीव, उनसे अविनाशी प्रभु ब्रह्मा, ब्रह्मा से महादेव, महादेव शिव से विश्वेदेव, विश्वेदेव से ऋषि, ऋषियों से भगवान् सोम, सोम से सनातन देव और देवताओं से जगत् में ब्राह्मण जाग्रत रहते हैं। ब्राह्मणों से क्षत्रिय जाग्रत रहते हैं। प्रजापति ब्रह्मा के समान कान्तिमान् दण्ड इस सारे जगत को अपने वश में रखता है।

हे राजन्! कालरूप दण्ड सृष्टि के आदि, मध्य और अवसान में भी जागता रहता है। दण्ड समस्त लोकों का प्रभु और प्रजापति है। महादेव, देवादिदेव, शिव, सर्वरूप, निरन्तर जागने वाले शिव, जटाधारी शङ्कर, रुद्र, शिव, स्थाणु, प्रजापति, उमापति सदा जागा करते हैं। इस प्रकार आदि, मध्य और अन्त में दण्ड प्रसिद्ध है। धर्मज्ञ भूपाल राजदण्ड को धारण कर, न्यायानुसार इसका व्यवहार करे।

भीष्म जी बोले—जो नृपति, राजा वसुहोम के इस मत को सुनता है और सुनने के अनन्तर, अच्छे प्रकार से आचरण करता है, उसकी समस्त

कामनाएँ पूरी होती हैं। हे राजन्! यही दण्ड-सम्बन्धी पूरा वृत्तान्त है। यही दण्ड, धर्मबन्धन में बद्ध समस्त मनुष्यों का नियंत्रण करने वाला है।

एक सौ तेईस का अध्याय

पापी का प्रायश्चित्त

युधिष्ठिर ने पूँछा—मैं धर्म, अर्थ और काम की यथार्थ मीमांसा सुनना चाहता हूँ। इन तीनों में से साँसारिक व्यवहार पूर्णरीत्या किसके सहारे चल सका है? धर्म अर्थ और काम की जड़ क्या है? इन तीनों की उत्पत्ति कहाँ से हुई है? प्रसङ्गवशात् ये तीनों परस्पर मिल कर क्यों रहते हैं और प्रसङ्गवश फिर एक दूसरे से अलग क्यों हो जाते हैं?

भीष्म जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! इस जगत् में जब लोग, धर्मतः अर्थ की प्राप्ति के लिये तैयार होते हैं, तब धर्म अर्थ और काम क्रमशः उत्पन्न होते हैं और परस्पर मिल कर रहते हैं। धर्म ही से सदा अर्थ की प्राप्ति होती है, इसीसे अर्थ का मूल धर्म कहलाता है और काम को अर्थ का फल बतलाया गया है। धर्म अर्थ तथा काम इन तीनों का मूल सङ्कल्प है। यह सङ्कल्प रूप आदि विषय का रूप है, रूप आदि समस्त विषयों की अभिलाषा भोग के लिये की जाती है। यथार्थ में विषय त्रिवर्ग का मूल है। इसके विपरीत सङ्कल्पशून्य पुरुषार्थ मोक्ष कहा जाता है। धर्म शरीर की रक्षा करने वाला है और धर्माचरण के लिये धन की प्राप्ति करनी चाहिये तथा रति के लिये काम का सेवन करना उचित है। इन तीनों पदार्थों की गणना रजोगुण में है। स्वर्गादि वाह्य फल माना जाता है। इसकी प्राप्ति के लिये धर्म, अर्थ और काम का सेवन करना उचित है। यह दूर का फल माना जाता है और आत्मज्ञान समीप का फल माना गया है, अर्थात् स्वर्गादि प्राप्ति के लिये धर्म आदि का सेवन सन्निकृष्ट फल कहलाता है। धर्म, अर्थ

और काम के सेवन की सफलता मोक्ष का साधन है। समझ बूझ कर कर्मानुष्ठान करने से सम्भव है मोक्ष मिल जाय और सम्भवतः न भी मिले। कितने ही लोगों का यह भी कहना है कि, धर्माचरण से धन भी मिलता है; किन्तु इसके अतिरिक्त सेवा, खेती, व्यापारादि करने से भी धन प्राप्त होता है। फिर भाग्य से या हठ से भी धन की प्राप्ति होती है; किन्तु इस प्रकार से प्राप्त धन से सुख नहीं मिलता, प्रत्युत ऐसा धन अन्त में अनर्थ करने वाला होता है। क्योंकि ऐसे अर्थ से धर्माचरण हो नहीं सकता, उपवासादि व्रत करने से धर्म साधन होता है। धर्म से अर्थ की प्राप्ति और अर्थ से धर्माचरण होता है। किन्तु अज्ञानवश विषयों में लवलीन मूढ़ पुरुष अधम बुद्धि के कारण धर्मार्थ का फल प्राप्त नहीं कर सकता। साथ ही धर्माचरण कर के उसकी फलप्राप्ति की इच्छा करना धर्म का फल कहलाता है। धन होने पर न तो धन का दान करना और न स्वयं उसका उपभोग करना, प्रत्युत धन को जोड़ बटोर कर इकट्ठा करना, धन का फल कहलाता है। इसी प्रकार कुपात्र में प्रीति स्थापन करना काम का मल कहलाता है। किन्तु धर्मादि जब दोष से रहित होते हैं, तब वे मन को शुद्ध बना देते हैं। तभी मोक्षरूपी फल की प्राप्ति होती है। इस विषय में कामन्दक एवं आङ्गरिष्ट का संवादात्मक एक पुरातन आख्यान है, वह इस प्रकार है। एक बार आङ्गरिष्ट नाम का एक राजा, अवसर देख, आश्रमस्थित कामन्दक ऋषि के निकट गया और उन्हें प्रणाम कर, उनसे यह प्रश्न किया। हे ऋषे! जो राजा, काम और मोह के वशवर्ती हो, पापकर्म करता है और पीछे पश्चात्ताप करता है, तो वह कौन सा कर्म है जिससे उसका पाप दूर हो जाय। जो अनजाने अधर्म को धर्म समझ कर बैठता है, तो ऐसे जगत्प्रसिद्ध पुरुष को राजा कैसे रोके?

ऋषि कामन्दक ने कहा—जो लोग धर्म और अर्थ को त्याग केवल काम ही का सेवन करते हैं, उन पुरुषों की बुद्धि धर्म और अर्थ का त्याग करने से नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। बुद्धि के नष्ट भ्रष्ट होने से मोह उत्पन्न होता

है। जो लोग धर्म और अर्थ को नष्ट कर डालते है, उनमें नास्तिकता आ जाती है और वे दुराचारी भी हो जाते हैं। राजा जब दुष्टों और दुराचारियों का यथेष्ट शासन नहीं करता, तब उस राजा से उसकी प्रजा वैसे ही घबड़ाती है जैसे ससर्प-गृह-वास से। प्रजा ऐसे राजा के कहने में नहीं रहती, ब्राह्मण तथा अन्य सत्पुरुष ऐसे राजा की आज्ञा नहीं मानते। अन्त में ऐसे राजा को प्रजा की ओर से भय उत्पन्न होता है और अवसर हाथ आते ही प्रजाजन ऐसे राजा का वध कर डालते हैं। यदि ऐसा राजा न मारा जा सका और जीवित रहा, तो लोग उसका अपमान करते हैं और उसे अपने जीवन के दिन बड़े कष्ट से बिताने पड़ते हैं। अप्रतिष्ठापूर्वक जीना मरना तुल्य माना जाता है। ऐसे पापों से बचने के लिये आचार्यों ने बतलाया है कि, निन्दा का पात्र राजा स्वयं अपनी निन्दा करे, वेदत्रयी में बतलाये हुए धर्म करे और ब्राह्मणों का सत्कार करे। उसे धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये। उत्तम कुलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करे और क्षमाशील एवं मनस्वी ब्राह्मणों का आश्रय ग्रहण करे। जलाशय में बैठ कर, मंत्र का जप करे और सदा प्रसन्न रहे, धर्मात्मा पुरुषों को अपने निकट रखे और पापियों को अपने राज्य से निकाल बाहिर करे। मीठे वचनों और श्रेष्ठ कर्मों को कर, सब को प्रसन्न करे गुणवानों के गुण को सदा सराहे और उनसे कहे कि—मैं आपका सेवक हूँ। जो राजा इस प्रकार का बर्त्ताव करता है उसे बहुत से लोग मानने लगते हैं और ऐसा करने से उसके यह पातक निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। वृद्ध और आचार्य पुरुष जिस परम धर्माचरण का उपदेश दें, वही धर्माचरण तुम करो।

एक सौ चौबीस का अध्याय

सुशीलता

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस संसार में लोग धर्म की अपेक्षा सुशीलता को श्रेष्ठ बतला उसकी प्रशंसा किया करते हैं, अतः मुझे इस बात का बड़ा संशय हो रहा है कि, धर्म और सुशीलता में श्रेष्ठ कौन है ? यदि आप मुझे यह विषय जानने का उचित पात्र समझें तो आप मुझे बतलावें, क्योंकि मुझे यह बात जानने की उत्सुकता है। आप मुझे यह भी बतलावें कि सुशीलता मनुष्य में कैसे आ सकती है । हे वाग्विदाम्वर ! आप मुझे यह बतलावें कि सुशीलता प्राप्त कैसे की जा सकती है और सुशीलता की पहचान क्या है ?

भीष्म जी कहने लगे—हे युधिष्ठिर ! पूर्वकाल में इन्द्रप्रस्थ में तुम्हारी और तुम्हारे भाइयों की राज्यलक्ष्मी और अनुपम समृद्धि को देख दुर्योधन के मन में दुःख उपजा था और उसकी मूर्खता से राजसूय यज्ञ की सभा में उसकी हँसाई हुई थी। उस समय दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र से भरी सभा में यही प्रश्न किया था। तेरे राजसूय यज्ञ के सभामण्डप को और तेरा वैभव देख, दुःख से कातर दुर्योधन ने अपने पिता के निकट जा, यही प्रश्न किया था। दुर्योधन के प्रश्न के उत्तर में धृतराष्ट्र ने उससे तथा कर्ण से जो बात कहीं थीं वे ये हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे वत्स ! तू सन्तप्त क्यों होता है ? प्रथम मैं इसका कारण तेरे मुख से सुन लेना चाहता हूँ। यदि तूने अपने सन्तप्त होने का ठीक कारण बतलाया, तो मैं समझा बुझा कर तुझे शान्त कर दूँगा। हे परपुरञ्जय ! तू तो बड़े भारी ऐश्वर्य का स्वयं ही अधीश्वर है। तेरे समस्त भाई, मित्र और नातेदार सेवक की तरह तेरे साथ बर्त्ताव करते हैं। तुझे ओढ़ने को शाल दुशाले मिलते हैं, तू बढ़िया से बढ़िया भोजन करता

है और बढ़िया घोड़ों पर सवार होता है। तिस पर भी तू इतना उदास और दुबला क्यों हो रहा है?

दुर्योधन ने उत्तर दिया—हे पिता जी! युधिष्ठिर के घर पर नित्य दस सहस्र स्नातक ब्राह्मण सोने की थालियों में भोजन करते हैं। उसका सभामण्डप दिव्य पुष्पों और मालाओं से सुशोभित रहता है। उसके अस्तबल में तीतर के रंग के चितकबरे घोड़े हैं तथा उसके पास रंग बिरंगे शाल दुशाले हैं।

मेरे शत्रु पाण्डवों के घर में कुबेर की तरह उत्तम विपुल सम्पत्ति है। ये सब देख कर मेरा मन सन्तप्त हो रहा है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे वत्स! हे पुरुषव्याघ्र! यदि तुझे युधिष्ठिर जैसा धन वैभव प्राप्त करने की कामना है तो तू सुशील बन। सुशीलता के प्रभाव से तीनों लोक जीते जा सकते हैं। इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं है। इस संसार में ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं, जो सुशील पुरुष को न मिल सके। राजा मान्धाता ने एक ही रात्रि में, जनमेजय ने तीन दिवस में और राजा नाभाग ने सप्त रात्रि में समस्त पृथिवी अपने अधीन कर ली थी। ये तीनों राजा बड़े सुशील और दयालु स्वभाव के थे। अतः इनके इन गुणों पर मुग्ध हो पृथिवी स्वयं इनके पास आ कर खड़ी हो गयी थी।

दुर्योधन ने पूँछा—हे पिता जी! जिस सुशीलता के कारण वे पृथिवी-पति हो गये थे, वह सुशीलता किस रीति से पायी जा सकती है। मुझे आप यह बतलावें। मैं सुनना चाहता हूँ।

धृतराष्ट्र बोले—हे वत्स! पूर्वकाल में नारद जी ने सुशीलता के सम्बन्ध में एक प्राचीन उपाख्यान इस प्रकार कहा था। पूर्वकाल में प्रह्लाद नामक दैत्य ने सुशीलता प्राप्त कर जब देवराज इन्द्र का राज्य निज हस्तगत कर लिया, तब इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति के निकट जा और हाथ जोड़ कर यह कहा—मैं आपके मुख से मोक्ष साधन रूपी ज्ञान को

सुनना चाहता हूँ। इस पर बृहस्पति ने इन्द्र को मोक्ष का साधन रूप ज्ञान का उपदेश दिया। साथ ही अन्त में यह भी कहा कि, इसीको तुम एकमात्र श्रेय का साधन मत समझ लेना। इस पर इन्द्र ने पूँछा कि, क्या मोक्ष से बढ़ कर भी अन्य कोई श्रेय है? तब बृहस्पति जी ने कहा—हे तात! इससे भी बढ़ कर श्रेय है। उसे महात्मा शुक्राचार्य जानते हैं। अतः तुम उनके पास जाओ और उनसे प्रश्न करो, तुम्हारा कल्याण होगा।

यह सुन महातपस्वी एवं परम कान्तिवान् देवराज इन्द्र, अपने श्रेय के लिये, प्रसन्न होते हुए शुक्राचार्य के निकट गये और उन्हें दैत्यगुरु शुक्राचार्य से श्रेय प्राप्त हुआ। तदनन्तर शुक्राचार्य से अनुमति ले, इन्द्र ने उनसे प्रश्न किया—*क्या इससे भी बढ़ कर कोई श्रेय-प्रद वस्तु है?*

सर्वज्ञ शुक्राचार्य इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—इस विषय को प्रह्लाद बहुत अच्छा जानते हैं।

यह सुन इन्द्र हर्षित हुए और ब्राह्मण का वेष रख, वे प्रह्लाद के निकट गये और बोले—मैं आपके निकट श्रेय सुनने को आया हूँ। आप मुझे श्रेय बतलावें।

प्रह्लाद ने उत्तर दिया—हे ब्रह्मन्! मुझे तो तीनों लोकों का शासन करते करते इतना अवकाश नहीं कि, मैं आपको श्रेय बतलाऊँ और न मैं आपको उपदेश देने योग्य अपने को पाता हूँ।

इस पर इन्द्र ने कहा—जब आपको अवकाश मिले, तभी आप मुझे श्रेय सम्बन्धी ज्ञान का उपदेश दें। यह कह इन्द्र ने प्रह्लाद को गुरु समझ बड़े भक्तिभाव से उनकी सेवा शुश्रूषा की। बीच बीच में वे प्रह्लाद से अनेक बार यह भी पूँछा करते थे कि, भगवन्! आपने त्रिलोकी का सर्वोत्तम राज्य क्यों कर पाया? इसके उत्तर में एक दिन प्रह्लाद ने इन्द्र से कहा—हे ब्रह्मन्! मैं राजा हूँ; किन्तु राजा होने का मैं अपने मन में कभी

अभिमान नहीं करता। मैं कभी किसी ब्राह्मण से द्वेष नहीं करता, जब वे मुझे शुक्राचार्य-कथित नीति शास्त्र का उपदेश देते हैं, तब मैं मनोयोग से उसे सुनता हूँ और इसे हृदयस्थ कर लिया करता हूँ। गुरुजनों की सेवा करता हूँ। मैं असूयाशून्य, धर्मात्मा, क्रोध-शमन-कर्त्ता, नियम के अनुसार चलने वाला और जितेन्द्रिय हूँ। मेरा ऐसा स्वभाव जान कर धर्म-शिक्षक विद्वान् ब्राह्मण मेरे ऊपर उपदेश की वैसे ही वृष्टि करते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ छत्ते पर शहद की वृष्टि करती हैं। मैं विद्वान् और श्रेष्ठ ब्राह्मणों के मुख से टपकते हुए अमृत का पान करता हूँ। जैसे चन्द्र का राज्य नक्षत्रों पर है, वैसे ही मैं अपनी बिरादरी वालों पर राज्य करता हूँ। शुक्र के जो वचन ब्राह्मणों के मुख से निकलते हैं वे इस धराधाम पर अमृतोपम हैं। वे सर्वोत्तम नेत्ररूप हैं, उनको सुन सब को तदनुसार चलना चाहिये।

प्रह्लाद ने ब्राह्मण का रूप धरे हुए इन्द्र से यह कहा—तब भी इन्द्र उनकी सेवा करते रहे। इस पर दैत्यराज प्रह्लाद ने उनसे कहा—हे द्विजोत्तम! तुमने गुरु की तरह मेरी सेवा की है। अतः मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे वर माँगो। मैं तुम्हें अवश्य वर दूँगा। तुम्हारा मङ्गल हो।

ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र ने कहा—मैं तो आपके आज्ञाधीन हूँ।

प्रह्लाद ने कहा—तुम जो चाहो सो वर माँग लो।

इन्द्र ने कहा—हे राजन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे आपकी सुशीलता लेना चाहता हूँ। बस मैं यही वर आपसे माँगता हूँ।

यह सुन दैत्यराज प्रह्लाद हर्षित हुए और मन ही मन कहने लगे—ऐसा वर कोई सामान्य पुरुष नहीं माँग सकता। अतः प्रह्लाद इससे भयभीत हो गये। उन्होंने आश्चर्य चकित हो कहा—तथास्तु—ऐसा ही सही। इसके बाद ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र वहाँ से चल दिये; किन्तु प्रह्लाद के मन की चिन्ता दूर न हुई। प्रह्लाद के मन में बड़ी बड़ी कल्पनाएँ उठने लगीं।

किन्तु दैत्यराज यह न निश्चय कर सके कि, वे अब करें तो क्या करें? हे राजन्! जब प्रह्लाद इस प्रकार चिन्ता में निमग्न बैठे हुए थे, तब छाया रूपी, महाकान्ति-सम्पन्न मूर्तिमान एक तेज उनके शरीर से निकल बाहर आया। उस विशालकाय तेज से प्रह्लाद ने पूँछा—तू कौन है?

उसने उत्तर दिया—मैं सुशीलता हूँ। तूने मुझे त्यागा है, अतः मैं अब तुझसे विदा होता हूँ। अब मैं उस निर्दोष द्विजवर्य के निकट जा कर रहूँगा, जो तेरा शिष्य बन कर और एकाग्र मन कर तेरी सेवा करता था।

हे राजन! यह कह कर वह पुरुष अन्तर्धान हो गया। शीलरूपी तेज के निकलते ही उसीके साथ तदनुरूप एक और तेज प्रह्लाद के शरीर से निकला। जब प्रह्लाद ने उससे पूँछा कि, तू कौन है? तब उसने कहा—मैं धर्म हूँ। हे दैत्यराज! जहाँ शील है, वहीं मैं रहता हूँ। अतः मैं अब उस उत्तमोत्तम ब्राह्मण के शरीर में जा कर प्रवेश करूँगा। तदनन्तर एक परम तेजस्वी तीसरा पुरुष दैत्यराज के शरीर से निकला। उससे जब प्रह्लाद ने पूँछा कि, तू कौन है, तब उसने कहा—हे असुरराज! मैं सत्य हूँ। मैं धर्म का अनुयायी हूँ अतः मैं उसके पीछे जाता हूँ। सत्य के चले जाने पर, एक चौथा पुरुष निकला। उसने पूँछे जाने पर अपने को वृत्त बतलाया। मैं सत्य का सहचारी हूँ। जहाँ सत्य रहता है, वहीं मैं भी रहता हूँ। वृत्त के चले जाने बाद प्रह्लाद के शरीर से एक और मूर्ति गरजती हुई निकली और प्रश्न किये जाने पर उसने अपने को बल (अथवा शक्ति) बतलाया और कहा—मैं वहीं जाऊँगा जहाँ वृत्त है। यह कह वह भी चल दिया। तदनन्तर प्रह्लाद के शरीर से एक प्रभामयी देवी बाहिर आयी। उसने परिचय माँगे जाने पर कहा—हे सत्यपराक्रमी! हे वीर! मैं लक्ष्मी हूँ। मैं अपने आप तेरे पास आ कर रहती थी। पर तूने मुझे त्यागा है, अतः मैं अब बल की अनुयायिनी होती हूँ।

यह सुन प्रह्लाद बड़ा भयभीत हुआ। उसने पुनः उनसे पूँछा—हे कमलवासिनी! आप कहाँ जाती हैं? आप तो सत्य व्रतधारिणी लोगों की

परमेश्वरी हैं। मुझे आप यह तो बतला दें कि, मेरा शिष्य ब्राह्मण वास्तव में कौन था?

लक्ष्मी ने कहा—हे दैत्यराज! तूने जिस ब्राह्मण को वर दिया था, वह ब्रह्मचर्यव्रतधारी इन्द्र था। तीनों लोकों का तेरा ऐश्वर्य वह तुझसे छीन कर ले गया। तूने सुशीलता से तीनों लोक जीते थे। यह जान कर देवराज तेरे शील को माँग कर ले गया। धर्म, सत्य, वृत्त, बल और मैं सदा शील के आश्रित रहते हैं।

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! यह कह लक्ष्मी तथा सत्य, बल आदि प्रह्लाद को छोड़ चले गये। यह वृत्तान्त सुन दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से प्रश्न किया—मैं शील का तत्व जानना चाहता हूँ। जिस उपाय से मुझे सुशीलता मिल सके वह आप मुझे बतलावें।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे दुर्योधन! दैत्यराज प्रह्लाद ने इन्द्र को शील-प्राप्ति का जो उपाय बतलाया था, वह मैं तुझे बतलाता हूँ। सुन। मनसा, वाचा कर्मणा किसी भी प्राणी से द्वेष न करे। सब के ऊपर अनुग्रह करे। दान सदा सुपात्र को दे। इसीको शील कहते हैं। जो पर-हित-कर कार्य न हो अथवा जिस कार्य के करने से लज्जा उत्पन्न हो, वह कार्य कभी न करना चाहिये। कार्य वही करे जिसके करने से लोग प्रशंसा करें। शील का यही संक्षिप्त रूप है। यदि सुशीलता-रहित पुरुषों के पास कभी धन आ भी जाय तो वे उसे चिरकाल तक नहीं भोग सकते। वे तो कुछ दिनों बाद जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे बेटा! यदि तेरी इच्छा हो कि, तुझे युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक धन वैभव प्राप्त हो तो उपरोक्त कथनानुसार तुम सुशील बनो।

भीष्म जी बोले—हे कुन्तीनन्दन! धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र को जो उपदेश दिया था, उसके अनुसार यदि तुम चलोगे तो तुमको भी उत्तम फल मिलेगा।

एक सौ पचीस का अध्याय

सुमित्र का आखेट

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह! आपने मुझे बतलाया कि, सुशीलता ही मुख्य वस्तु है। अब आप मुझे आशा की उत्पत्ति बतलावें और यह भी बतलावें कि, आशा है कौन? क्योंकि मुझे इस विषय में बड़ा सन्देह हो रहा है और आपको छोड़ मेरा सन्देह और कोई दूर भी नहीं कर सकता। हे पितामह! मुझे तो पूरी आशा थी कि, समय आने पर दुर्योधन मुझसे युद्ध न करेगा और मुझे आधा राज्य दे देगा; पर ऐसा नहीं हुआ। मुझी को नहीं मनुष्य मात्र बड़ी बड़ी आशाएं लगाये बैठे रहते हैं और जब उनकी आशा पूरी नहीं होती तब उन्हें मरण तुल्य कष्ट होता है। हे राजेन्द्र! दुष्ट दुर्योधन ने मुझ दुर्बुद्धि को नितान्त हताश किया है। आप मेरी मन्द-मति को तो निहारिये। हे राजन्! मैं आशा को वृक्षों से भरे पहाड़ से भी बड़ी समझता हूँ अथवा वह आकाश से भी बढ़ कर असीम है। आशा का रहस्य समझ में नहीं आता, आशा बड़ी दुर्लभ वस्तु है। मेरी समझ में तो आशा से बढ़ कर और कोई वस्तु दुर्लभ है ही नहीं।

भीष्म जी ने कहा—हे राजन्! इस प्रसङ्ग में मैं तुम्हें सुमित्र और ऋषभ का उपाख्यान सुनाता हूँ। सुनो। सुमित्र नामक हैहयवंशी एक राजर्षि हो गये हैं। वे एक दिन वन में आखेट के लिये गये हुए थे। उन्होंने एक नतपर्व बाण से एक मृग को विद्ध किया। वह मृग बड़ा बलवान् था। अतः वह बाण सहित भाग गया। यह देख बलवान् राजा सुमित्र ने उस यूथपति मृग का पीछा किया। वह फुर्तीला यूथपति मृग ऊँची नीची सम विषम भूमि पर दौड़ता हुआ चला जाता था। खड्ग-धनुष-कवच-धारी एवं तरुण राजा सुमित्र उसका पीछा कर रहा था। वह अकेला मृग नदों, नदियों और जलाशयों को पार करता बड़े सपाटे से भागा चला जाता था। कभी तो वह मृग राजा के बिल्कुल समीप और कभी वह फुर्तीला मृग

राजा से बहुत आगे निकल जाता था। राजा ने कितने ही बाण मार उस वनैले मृग को घायल कर डाला था। इस पर भी वह मृग क्रीड़ा सी करता हुआ कभी राजा के निकट और कभी राजा से दूर चला जाता था। शत्रु-संहारक राजा ने मर्मस्थलों को विद्ध करने वाला एक बड़ा भयङ्कर बाण धनुष पर चढ़ा उस मृग-यूथपति के ऊपर छोड़ा; किन्तु वह मृग-यूथपति राजा के निशाने को बचाने के लिये और राजा का उपहास करने के लिये एक सपाटे में दो कोस आगे निकल गया। उधर राजा का छोड़ा हुआ वह प्रज्वलित बाण लक्ष्यभ्रष्ट हो भूमि पर गिर पड़ा। इतने में वह मृग-यूथपति एक सघन वन में जा घुसा, किन्तु राजा सुमित्र ने वहाँ भी उसका पीछा किया।

एक सौ छब्बीस का अध्याय

नैराश्य का स्वरूप

भीष्म जी कहने लगे—हे युधिष्ठिर! सघन वन में घुस, राजा सुमित्र तपस्वियों के एक आश्रम के निकट जा पहुँचा। राजा बहुत दौड़ने के कारण थक गया था—अतः वह बैठ कर सुस्ताने लगा। उस धनुर्धर राजा को भूखा प्यासा और थका माँदा जान, एक ऋषि उसके निकट गये और यथाविधि उसका आदर सत्कार किया। राजा ने उनके आतिथ्य को ग्रहण कर, वहाँ रहने वाले तपस्वियों का कुशल समाचार पूछा। राजा के प्रश्न का यथोचित उत्तर दे तपस्वियों ने राजा से उसके वन में आने का इस प्रकार कारण पूछा। हे भद्र! हे राजन्! तुम खड्ग एवं धनुष बाण धारण कर, पैदल और अकेले इस तपोवन में किस कार्यवश आये हो? हे मानद! इस समय तुम्हारा आगमन कहाँ से हुआ है? तुम्हारा जन्म किस कुल में हुआ है? तुम्हारा नाम क्या है?

हे युधिष्ठिर ! उन ऋषियों के इन प्रश्नों के उत्तर में राजा ने उन सब को अपना परिचय दिया। वह बोला—मेरा जन्म हैहयवंश में हुआ है। सुमित्र मेरा नाम है और मैं मित्र नामक राजा का पुत्र हूँ। मैं आखेट के लिये हज़ारों मृगों को बाणों से मारता वन में भ्रमण करता हूँ। मेरी रक्षा के लिये एक विशाल सेना मेरे साथ है। मैं इस वन में अपने मंत्रियों और अपनी रानियों को भी लाया हूँ। मैंने एक बाण से एक बड़े मृग को घायल किया है। वह मय बाण के इस वन में चला आया है। दैवात् मैं उसका पीछा करता हुआ इस वन में आ निकला हूँ। शिकार खेलने और आशा भङ्ग होने से मेरी राज्यलक्ष्मी और आशा—दोनों ही नष्ट हो गयी हैं। मैं मार्गश्रम से बहुत थक गया हूँ। मैं अपने साथियों से छूट कर और बड़ा थका माँदा हो आपके आश्रम में आ पहुँचा हूँ। इससे अधिक दुःख मेरे लिये और क्या हो सकता है। हे तपस्वियों ! मृग को न पकड़ पाने के कारण मेरी आशा भङ्ग हो गयी। इसका मुझे जैसा दुःख है, वैसा अपने साथियों का साथ छूट जाने का दुःख नहीं है। हिमालय पर्वत बहुत बड़ा है और समुद्र तो जल का अनन्त भाण्डार ही है, दोनों ही बहुत बड़े हैं। लोग जैसे आकाश का ओर छोर नहीं पा सकते, वैसे ही मैंने आशा का ओर छोर नहीं पाया, आप लोग सर्वज्ञ होने के कारण यह बात तो आपको विदित होगी ही। आप लोग महाभाग्यशाली हैं—अतः मैं आपसे अपना एक सन्देह दूर करवाना चाहता हूँ। इस असीम आकाश में और असीम आशा रखने वाले पुरुष में—बड़ा कौन है ? मैं आपके द्वारा अपना यह सन्देह दूर कर लेना चाहता हूँ। क्योंकि आपके लिये इस जगत में कोई बात दुर्ज्ञेय नहीं है, यह बात मैं भली भाँति जानता हूँ। यदि आपकी समझ में यह बात गोपनीय न हो तो मुझे शीघ्र यह बात बतलाइये। मैं आप से कोई रहस्यमयी बात नहीं पूँछता, बल्कि अपने मन का सन्देह दूर करना चाहता हूँ। यदि मेरे साथ वार्तालाप करने में आपकी तपस्या में बाधा पड़ती हो, तो मैं वार्तालाप न करूँगा और यदि आपको मुझसे बातचीत करने

का अवकाश हो तो आप आशा का कारण और उसकी शक्ति मुझे विस्तार से सुनाइये। आप लोग बड़े तपस्वी हैं—अतः आप सब मिल कर मुझे उत्तर दें।

एक सौ सत्ताईस का अध्याय

राजा वीरद्युम्न का खोया हुआ राजकुमार

भीष्म ने कहा—हे राजन्! उन एकत्रित ऋषियों में ऋषभ नामक ऋषि ने सब को आश्चर्यचकित करने वाला राजा को यह उत्तर दिया। हे राजसिंह! बहुत दिनों की बात है जब एक बार मैं तीर्थाटन करता हुआ नर नारायण के आश्रम में पहुँचा। उस आश्रम में बेर का एक बड़ा सुन्दर वृक्ष था, आकाशगङ्गा का बड़ा मनोहर एक जलाशय था और वहाँ अश्वशिरा नामक ऋषि अनादि वेदों का स्वाध्याय किया करते थे। उस सरोवर में मैंने शास्त्रोक्त विधि से स्नान किये और देव, पितृ और ऋषितर्पण किया। तदनन्तर मैं महर्षि अश्वशिरा के आश्रम में गया। उस आश्रम में नर और नारायण नामक दो ऋषि विहार किया करते हैं। उस आश्रम के निकटवर्ती एक आश्रम में मैं रहने को गया। उस आश्रम में जब मैं जा बैठा, तब मैंने तनु नामक एक तपस्वी को आते हुए देखा। वह शरीर को चीर वस्त्र और मृगछाला से ढके हुए थे। उनका लंबा शरीर बड़ा लटा दुबला था। वे लंबाई में साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अठगुने लंबे थे; किन्तु उन जैसा लटा दुबला मनुष्य और कोई मैंने नहीं देखा था। उनका शरीर कनिष्ठा उंगली की तरह दुबला पतला था। उनका कण्ठ देश, दोनों हाथ और दोनों पैर और सिर के बाल विचित्र और दर्शनीय थे। मस्तक शरीर के अनुरूप था। उनके दोनों कर्ण और दोनों नेत्र भी वैसे ही थे। उनकी बोली और क्रियाएँ बतलाती थीं कि, वे क्षीणशक्ति

हो गये हैं। मैं तो उन दुर्बल विप्र को देख भयभीत हो गया। मैं बहुत घबड़ाया, मैंने उनके चरणों में सीस रख उन्हें प्रणाम किया और मैं हाथ जोड़ उनके आगे खड़ा हो गया। उनको मैंने गोत्रसहित अपना और अपने पिता के नाम बतलाये। उन्होंने जब बैठ जाने को कहा; तब मैं उनके बतलाये हुए एक आसन पर बैठ गया। हे राजन्! धर्मात्माओं में श्रेष्ठ उन महापुरुष का नाम तनु था और ऋषियों के बीच बैठ उन्होंने धर्मार्थयुक्त कथा कहना आरम्भ किया। इतने में वहाँ कमलनेत्र भूरिद्युम्न का पिता महायशस्वी राजा वीरद्युम्न बड़े तेज़ घोड़ों के रथ पर सवार हो, अपनी सेना तथा रनवास को साथ लिये हुए अपने पुत्र को खोजता खोजता वहाँ आ पहुँचा। उस समय राजा वीरद्युम्न का मन बड़ा खिन्न था। उसे आशा थी कि, उस वन में उसकी उसके पुत्र से भेंट हो जायगी। इसीसे वह इस आशा के फेर में पड़, उस वन में मारा मारा फिर रहा था। उसने वहाँ समवेत ऋषियों को सम्बोधन कर उनसे बारंबार कहा—मेरा एकमात्र पुत्र भूरिद्युम्न वन में कहीं खो गया है। वह बड़ा धार्मिक था, सचमुच अब मुझे उसका मिलना कठिन है, तिस पर भी उसे देखने की मुझे बड़ी आशा है। उसी आशा से मेरा शरीर व्याप्त है।

राजा वीरद्युम्न के इन वचनों को सुन कर, महामुनि भगवान् तनु सिर झुका दो घड़ी तक ध्यानमग्न रहे। उनको ध्यानमग्न देख, राजा उदास हो गया। वह दीन राजा मन्दस्वर से बारंबार कहने लगा—हे देवर्षे! आशा को छोड़ दुर्लभ वस्तु और क्या है? यदि आप उचित समझें तो मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें।

तनु ने कहा—पूर्वकाल में अपनी मन्दमति और मन्दभाग्य से प्रेरित हो पुत्र ने बाल बुद्धिवश एक महर्षि का अपमान किया था, क्योंकि उन महर्षि ने तेरे पुत्र से एक सुवर्ण कलश और वल्कल वस्त्र माँगे थे। सो ये वस्तुएँ देना तो जहाँ तहाँ, तेरे पुत्र ने उनका अपमान किया।

तनु के ये वचन सुन, धर्मात्मा राजा वीरद्युम्न बड़ा खिन्न हुआ और

निराश हो उन लोकपूजित ऋषि को प्रणाम कर, वह वहीं बैठ गया। वह भी मेरी तरह परिश्रान्त और मृतवत् हो रहा था। तदनन्तर महर्षि ने अर्घ्य पाद्य मँगवा कर, राजा का आतिथ्य किया। तदनन्तर वहाँ समुपस्थित समस्त ऋषिगण, राजा वीरद्युम्न को घेर वैसे ही बैठ गये, जैसे सप्तर्षि ध्रुव को घेरे रहते हैं। उन लोगों ने राजा वीरद्युम्न से उसके वहाँ आगमन का कारण पूँछा।

एक सौ अट्ठाईस का अध्याय

आशा का स्वरूप

राजा वीरद्युम्न ने कहा—मैं जगत्प्रसिद्ध राजा वीरद्युम्न हूँ। मेरा भूरिद्युम्न नामक पुत्र खो गया है। उसे खोजने को मैं इस वन में आया हूँ। हे द्विजवर्य! वह मेरा एकमात्र पुत्र है और अभी उसकी उम्र भी बहुत नहीं है। इस वन में अभी तक तो उसका पता चला नहीं। उसी की खोज में मैं इस वन में घूम रहा हूँ।

ऋषभ ने कहा—हे राजन्! राजा की इस बात को सुन उन ऋषि ने कुछ भी उत्तर न दिया और सिर नीचा कर वह चुपचाप बैठा रहा। हे राजेन्द्र! राजा वीरद्युम्न ने उन ऋषि के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित न कर, उनकी आशा पर पानी फेरा था। अतः वह ब्राह्मण जगत् में सम्मान प्राप्ति की आशा ही से चिरकाल तक तप करता रहा। उसी समय उसने अपने मन में यह सङ्कल्प कर लिया कि, मैं आज से कभी किसी राजा या अन्य वर्ण के किसी भी पुरुष से प्रतिग्रह (दान) न लूँगा। निर्मूल न होने वाली आशा कभी कभी बालबुद्धि वाले लोगों को भी उद्यमी बना देती है। अतः मैं उस आशा का त्याग करूँगा। इस प्रकार निश्चय कर, वह ब्राह्मण तपस्या कर रहा था। जब उस ब्राह्मण ने कुछ भी उत्तर न दिया; तब राजा वीरद्युम्न ने उनसे पुनः प्रश्न किया।

राजा ने पूँछा—हे महात्मन् ! आशा कितनी दुर्बल है ? क्या उसका कोई पैमाना (नाप) भी है ? इस संसार में दुर्लभ वस्तु कौन सी है ? आप मुझे इस प्रश्न का उत्तर दें। क्योंकि आप धर्म और अर्थ के ज्ञाता हैं।

उस राजा के इन प्रश्नों के सुन तथा उसके समस्त कर्मों को स्मरण तथा पहले की बातों को स्मरण कर उस दुर्बल ब्राह्मण ने राजा को सम्बोधन कर के कहा।

ऋषि बोला—हे राजन् ! आशा से अधिक दुबली पतली वस्तु जगत् में अन्य कोई नहीं है। मैं अनेक राजाओं के सामने अपनी आशा प्रकट कर चुका हूँ। इससे मुझे अनुभव है कि आशा मन के सामने जिस वस्तु का चित्र खड़ा करती है, उसकी प्राप्ति के लिये आकाश पाताल एक कर देना पड़ता है। मन में उत्पन्न आशा को सफल करना बड़ा कठिन काम है।

राजा बोला—हे विप्र ! आपके कथनानुसार मैं आशा के दुर्बलपन और स्थूलपन को मानता हूँ। मैं यह भी भली भाँति जानता हूँ कि, आशा जिन चित्रों को खींच कर नेत्रों के सामने खड़ा कर देती है, उनकी प्राप्ति कैसी कष्टसाध्य है। मुझे आपके वचनों पर वेदवाक्यवत् आस्था है। जहाँ आशा के पूर्ण होने की बिल्कुल सम्भावना नहीं होती वहाँ भी यह आशा पीछा नहीं छोड़ती ; किन्तु हे मुने ! मेरे मन में जो एक सन्देह उठ खड़ा हुआ है, उसे आप दूर कर दें। वह यह कि, आपके शरीर से दुबली क्या अन्य भी कोई वस्तु है ? यदि इसमें कोई गोपनीय रहस्य न हो, तो आप कृपया मुझे बतला दें।

इस पर कृश मुनि ने उत्तर दिया—याचक बन कर धैर्य धारण करने वाले मनुष्य का मिलना बड़ा कठिन काम है। जो पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार यथोचितरीत्या अन्य पुरुष का सत्कार नहीं करता, उस हताश पुरुष की आशा मेरे शरीर की अपेक्षा कहीं दुर्बल है। कृतघ्नों, निष्ठुरों,

आततायियों और अपकारियों के मनों में जो आशा विद्यमान रहती है वह मेरे शरीर की अपेक्षा कहीं अधिक कृश है। जिस मनुष्य के एक ही पुत्र है, उसका वह पुत्र यदि खो जाय या विदेश को चला जाय, और उसकी कुछ भी खोज ख़बर न मिले, तिस पर भी उसे देखने की जो आशा रखता है, उसकी आशा मेरे शरीर से भी अधिक कृश होती है।

हे नरेन्द्र! सन्तान पैदा होने के समय, आगे चल कर उनके द्वारा प्राप्त होने वाले सुख की जो आशा उस बालक के माता पिता के मन में उत्पन्न होती है वह आशा तथा धनवान होने की कामना रखने वाले पुरुषों के मन में उत्पन्न हुई आशा मेरे शरीर से कहीं अधिक कृश होती है। विवाह करने योग्य अवस्था को प्राप्त कन्याओं के सामने उनके विवाह की बातचीत जब की जाती है, तब उनके मन में उत्पन्न हुई आशा के सामने मेरे शरीर की कृशता कुछ भी नहीं है।

हे राजन्! इस प्रकार अपने प्रश्न का उत्तर पा कर, राजा वीरद्युम्न रानियों सहित उन विप्रसत्तम के चरणों में सीस नवा और प्रणाम कर, बारंबार कहने लगा—भगवन्! मैं आपसे याचना करता हूँ कि, आप मुझे मेरे पुत्र से मिला दें। आपका कथन बिल्कुल ठीक है।

राजा के इस वचन को सुन धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ऋषि तनु बड़े ज़ोर से हँसे तथा तपोबल और योगबल से इस राजा के पुत्र को बुला कर, राजा को सौंपा। तदनन्तर उन्होंने राजा को उसके पूर्वापचार के लिये उपालम्भ दिया। फिर उन्होंने उस राजा को अपना धर्ममय, दिव्य एवं अद्भुत रूप दिखलाया। वे स्वयं पाप तथा क्रोध रहित हो निकटस्थ वन में चले गये।

हे राजन्! यह घटना मैंने अपनी आँखों से देखी है तथा उनकी बातचीत अपने कानों से सुनी है। अतः तुम अपनी अतिकृश आशा को तुरन्त त्याग दो।

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर ! जब महात्मा ऋषभ ने यह कहा, तब राजा सुमित्र ने तुरन्त अपनी कृश आशा को त्याग दिया। हे कुन्ती-नन्दन ! इसी प्रकार तुम भी मेरे वचनों को सुन और अपनी आशा को त्याग हिमाचल की तरह स्थिर और शान्त हो जाओगे। तुमने निरन्तर दुःखी और व्याकुल रहने के कारण मुझसे यह प्रश्न किया था; सो मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया। मेरा उत्तर सुन तुम्हें बीती बातों के लिये सन्तप्त न होना चाहिये।

एक सौ उन्तीस का अध्याय

मातृ-पितृ-सेवा माहात्म्य

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह ! अपने प्रश्नों के उत्तर में आपके अमृत रूपी वचनों को सुनते सुनते मुझे वैसे ही तृप्ति नहीं होती जैसे अमृत पान करते करते मन तृप्त नहीं होता अथवा जैसे समाधिस्थ को समाधि से तृप्ति नहीं होती; वैसे ही मैं भी आपके वचनों को सुनते सुनते तृप्त नहीं होता। अतः हे पितामह ! आप मुझे धर्म-सम्बन्धिनी चर्चा पुनः सुनावें। क्योंकि मैं आपका धर्मोपदेश रूपी अमृतपान करते करते नहीं अघाता।

भीष्म जी बोले—महात्मा यम और गौतम का संवाद रूप एक प्रसिद्ध पुरातन इतिहास मैं तुम्हें सुनाता हूँ। पारियात्र नामक पहाड़ पर गौतम जी का एक विशाल आश्रम था। उसीमें रह कर उन्होंने साठ हज़ार वर्षों तक तप किया था। एक दिन जब उस आश्रम में लोकपाल यमराज आये और उन्होंने देखा कि, गौतम जी महाराज तपस्या कर रहे हैं। तब यमराज को देख, गौतम सावधान हो गये और हाथ जोड़ कर उनकी आज्ञा सुनने की प्रतीक्षा करने लगे। यमराज ने उनसे सुन्दर वचन कह

कर, अपनी प्रसन्नता प्रकट की और पूँछा कि, बतलाओ तुम्हारा मनोरथ क्या है?

गौतम ने उत्तर दिया—मनुष्य कौन सा कार्य करे, जिससे वह माता पिता के ऋण से उऋण हो जाय। मनुष्य को उत्तम पवित्र लोकों की प्राप्ति क्यों कर होती है?

यम ने कहा—जो मनुष्य सदा तप से शरीर को पवित्र कर और सत्यभाषण करता है और प्रतिदिन माता पिता की सेवा करता है वह माता पिता से उऋण हो जाता है। जो पुरुष अनेक अश्वमेध यज्ञ कर ब्राह्मणों को पूर्ण दक्षिणाएँ देता है, उसे विचित्र एवं दर्शनीय लोक प्राप्त होते हैं।

एक सौ तीस का अध्याय

आपत्काल में जैसे बने वैसे धन सञ्चित करे

युधिष्ठिर ने पूँछा—हे पितामह! मित्रों से रहित और अनेक शत्रुओं वाले उस राजा को क्या करना चाहिये, जिसका धनागार खाली हो गया है और जिसके पास सेना नहीं है। जिस राजा के मंत्री और सहायकगण दुष्ट हों, जिसके गुप्त परामर्श प्रकट हो जाते हों, जो राज्य से भ्रष्ट हो गया हो, जिसे अवसर पर उत्तम विचार न फुरते हों, जिसने वैरी के देश पर चढ़ाई की हो, जो शत्रु के देश को नष्ट कर रहा हो, जिसे निर्बल हो कर भी सबल से लड़ना पड़े, जिसका राज्य दुर्व्यवस्था में हो, जिसे देश और काल का ज्ञान न रह गया हो, जो अत्याचारी होने के कारण वैरियों के साथ सन्धि न करना चाहता हो, उस राजा को क्या करना उचित है? ऐसे राजा को धनसंग्रह करने के लिये क्या अधर्ममार्ग का अवलम्बन करना उचित है अथवा धन पास न होने के कारण वह आत्महत्या कर डाले? आप मुझे बतलावें कि, ऐसे राजा को क्या करना चाहिये?

भीष्म जी ने कहा—हे धर्मराज! तुम्हारा यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। क्योंकि इसका सम्बन्ध गुप्त विषय से है। हे धर्मराज! यदि तुम मुझसे यह प्रश्न न करते, तो मैं इस सम्बन्ध में कुछ भी न कहता। धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। शास्त्र-श्रवण से लोगों को उस धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है और सुने हुए धर्म के अनुसार आचरण करने से मनुष्य साधु बन जाता है। राजा यदि समझ से काम ले तो वह शीघ्र धनवान हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। अतः ऐसी अवस्था में इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें स्वयं ही अपनी बुद्धि से समझ लेना चाहिये।

हे राजन्! आपत्तिकाल में धर्मानुकूल आजीविका का उपाय मैं तुम्हें बतलाता हूँ; किन्तु यह नैतिक उपाय होने के कारण मैं उसे धर्म के अन्तर्गत मानने को तैयार नहीं हूँ। आपत्तिकाल में जो राजा अपनी प्रजा को सता कर, उससे कर वसूल करता है, उसके सिर पर मौत खेला करती है। यह अकेला मेरा ही मत नहीं है, बल्कि अनेक विद्वानों ने मिल कर और विचार कर यह मत निश्चित किया है। जो मनुष्य नित्य नियम धर्मशास्त्रों को पढ़ता है, वही धर्म-सम्बन्धी विषयों को जान पाता है और उसे अनुभव भी अच्छा हो जाता है। अज्ञानी पुरुष को कोई उपाय नहीं सूझता; किन्तु शास्त्राभ्यास से बने हुए ज्ञानी पुरुष को उपाय झट सूझ जाता है और उस उपाय से उसे उत्तम समृद्धि भी प्राप्त होती है। अब मैं जो बात कहता हूँ उसे तुम सन्देह त्याग और (अपने मन में) मेरी निन्दा न कर, सुनो। जिस राजा का धनागार नष्ट हो जाता है, उसका मानों सब बल ही नष्ट हो चुका। मनुष्य जैसे किसी निर्जल स्थान पर पहुँच, वहाँ (कूपादि खोद कर,) जल निकाल लेता है, वैसे ही आपत्ति पड़ने पर राजा अपने राज्य में धन जमा करे; किन्तु अच्छे समय में निर्बल राजा का कर्त्तव्य कुछ और ही है। क्योंकि धर्म के बिना भी राजा, तपस्या कर, धर्माचरण कर सकता है। यह सब होने पर भी जीवन धर्म से भी श्रेष्ठ माना गया है। जिस राजा को केवल धर्माचरण ही का विचार है, वह राजा निर्बल है। ऐसा राजा

धर्मानुकूल वृत्ति का अवलम्बन कर, अपना निर्वाह भली भाँति नहीं कर सकता। यह बात भी नहीं है कि, धर्माचरण से वह निश्चय ही सफल हो जायगा। अतः आपत्तिकाल में राजा को जो आचरण करना पड़े उसे धर्म-विरुद्ध न समझना चाहिये।

इस सम्बन्ध में अपरपक्षीय कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि, किसी दशा में क्यों न किया जाय, अधर्म अधर्म ही है, अधर्म धर्म कदापि नहीं हो सकता। क्षत्रिय को आपत्तिकाल में या आपत्तिकाल टल जाने पर ऐसे काम करने चाहिये, जिनसे राजधर्म कलङ्कित न हो और जिनसे उसे शत्रु के वश में न होना पड़े। विद्वानों के मतानुसार उसे ऐसा बर्ताव करना चाहिये, जिससे उसका नाश न हो। आपत्तिकाल में राजा को अपनी और दूसरों की प्रतिष्ठा का ज़रा भी ख्याल न करना चाहिये। ऐसे समय में तो जैसे हो वैसे उसे आत्मरक्षा करनी चाहिये और आपत्ति से अपना उद्धार करना चाहिये। यह नीतिज्ञों का मत है।

हे तात! वेद में कहा गया है कि, धर्मज्ञ ब्राह्मण को धर्मानुष्ठान-सम्बन्धी निपुणता प्राप्त करनी चाहिये। क्षत्रिय को भुजबल से उद्योग करने का अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि क्षत्रिय की भुजाओं में पराक्रम का वास है। जब क्षत्रिय के लिये कोई भी आजीविका का साधन न रह गया हो, तब वह तपस्वियों और ब्राह्मणों के धन को छोड़ और सब कुछ ले सकता है। आजीविका-हीन दुःखी ब्राह्मण यज्ञ न कराने योग्य व्यक्ति को यज्ञ करा कर, अपना काम चला लेता है और कुपात्र का अन्न एवं अभक्ष्य अन्न खा कर पेट भर लेता है। वैसे ही आजीविका के लिये दुःखी क्षत्रिय ब्राह्मणों का धन छोड़ अन्य जिसका चाहे उसका धन ले सकता है। शत्रु से पीड़ित मनुष्य के लिये सभी द्वार खुले रहते हैं। बन्दीगृह में पड़े हुए मनुष्य के लिये भाग कर, छुटकारा पाने के लिये कौन सा मार्ग गर्हित माना जाता है। जब विपत्ति पड़ती है, तब मनुष्य भले बुरे मार्ग का विचार त्याग भाग खड़ा होता है। जिस राजा के पास न तो सेना रह गयी

हो और न धन ही रह गया हो और जिसका सब लोग तिरस्कार करने लगे हों, उस विपन्न क्षत्रिय को अधिकार है कि, वह भीख माँग कर अथवा वैश्य अथवा शूद्रवृत्ति अवलंबन कर, अपना निर्वाह करे। यह शास्त्र का मत है। निज जाति वालों से भिक्षा माँगना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। उसका सर्वोत्कृष्ट धर्म तो समरविजयी हो, धनप्राप्ति कर उस धन से अपना निर्वाह करना है। किन्तु यदि इस प्रकार कोई क्षत्रिय अपना निर्वाह न कर सके तो, वह गौण विधि से अपना निर्वाह कर सकता है। जो क्षत्रिय विपन्न हो और वर्णोचित आजीविका का साधन पास न हो, तो वह अन्याय कर के भी अपना निर्वाह कर ले अर्थात् अन्न लूट कर अपना पेट भर ले। ऐसे होते हुए भी हमने देखा है। अतः क्षत्रिय को इसमें किसी प्रकार का सङ्कोच न करना चाहिये। मन में ज़रा सा भी सङ्कोच न कर, क्षत्रिय बड़े लोगों का धन धान्य छीन कर, अपना निर्वाह कर ले। क्षत्रिय को किसी प्रकार भी दुःखी न होना चाहिये। क्षत्रिय जिस प्रकार प्रजारक्षक माना जाता है, उसी प्रकार वह प्रजानाशक भी माना जाता है। अतः प्रजारक्षक क्षत्रिय विपत्ति पड़ने पर, प्रजा से बरजोरी धन धान्य छीन ले।

हे राजन्! इस संसार में परहिंसा किये बिना किसी की भी आजीविका नहीं चलती। जो मुनि निर्जन वन में अकेले रहते हैं, उनका काम भी बिना हिंसा किये नहीं चलता। फिर औरों का तो कहना ही क्या है। प्रारब्ध में लिखी वृत्ति का सहारा ले, अपना निर्वाह कर ले। आपत्तिकाल में राजा और प्रजा को परस्पर रक्षा करनी चाहिये। यह दोनों ही का सनातन धर्म है। आपत्तिकाल में जैसे राजा अपना सञ्चित द्रव्य ख़र्च कर प्रजा की रक्षा करता है, वैसे ही प्रजा को भी अपने राजा की रक्षा करनी चाहिये। राजा आजीविका के लिये दुःखी होने पर भी अपने धनागार को, राजदण्ड को, सेना को, मित्रों को और संग्रह किये हुए पदार्थों को, जहाँ तक सम्भव हो, ख़र्च न करे। धर्मज्ञ विद्वानों का मत है कि, अपना

पेट काट कर भी दूसरों की रक्षा करे। नीतिज्ञों के कथनानुसार यह मत महामायावी शम्बरासुर का है।

उस नरेश को धिक्कार है जिसकी प्रजा के लोगों को आजीविका के लिये दूसरे राज्य में जा दूसरे राजा की प्रजा बन जाना पड़ा हो। राजा के राज्य की कुंजी धनागार और सेना है और सेना की जड़ है धनागार और धर्म की जड़ है सेना। प्रजा का मूल है धर्म। अतः सब का मूल है धनागार। इस लिये जैसे हो वैसे धनागार की वृद्धि करनी चाहिये। फिर बिना दूसरों को सताये धनागार बढ़ भी नहीं सकता। क्योंकि यदि धनागार में धन न हुआ तो सेना क्यों कर रखी जा सकती है? अतः आपत्तिकाल में धनसंग्रह के लिये यदि राजा अपनी प्रजा को सतावे तो इसके लिये राजा को दोष नहीं लगता। जैसे यज्ञकर्त्ता को यज्ञ करते समय बलिदानादि कर्म कर अनर्थ करने पड़ते हैं और उसे पाप नहीं लगता, वैसे ही परिस्थिति विशेष उपस्थित होने पर, धनागार की वृद्धि के लिये यदि राजा कोई अनर्थ कर बैठे, तो वह दोषी नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि आपत्तिकाल में धनसंग्रह करने के समय अनुचित उपायों से काम लेना ही पड़ता है। यदि ऐसा न किया जाय तो अन्त में राजा को बड़ा दुःख भोगना पड़ता है। राजा को अपना नाश बचाने और दुःखों को दूर करने के लिये जो कार्य करने पड़ते हैं, वे सब मुख्यतया धनसंग्रह करने के लिये ही किये जाते हैं। अतः समझदार राजा को देश काल का विचार कर, कार्य करना चाहिये। जैसे यज्ञ के लिये पशु आदि उपयोगी होते हैं, और यज्ञ द्वारा मन शुद्ध होता है और यज्ञ की सामग्री, यज्ञकार्य और यज्ञ संस्कार से मोक्ष प्राप्त होता है, वैसे ही राजनीति और राजदण्ड से धन प्राप्त हो कर धनागार की वृद्धि होती है। क्योंकि कोश में धन हुए बिना सेना नहीं रखी जा सकती। अतः राजदण्ड, धनागार और सेना ये तीनों राज्य की रक्षा और शत्रु का नाश करने वाले हैं। अब मैं तुम्हें इस विषय को स्पष्ट कर के समझाने के लिये एक दृष्टान्त बतलाता हूँ। सुनो।

यज्ञस्तम्भ (यूप) बनाने के लिये एक पेड़ काटा जाता है। उस समय उस वृक्ष को काटने में जो वृक्ष बाधा देते हुए पाये जाते हैं, वे भी काट डाले जाते हैं। इसी तरह धनागार की वृद्धि करते समय जो लोग बाधक होते हैं, उन्हें मारे बिना कार्यसिद्धि का अन्य कोई उपाय, हे धर्मराज! मुझे तो सूझ नहीं पड़ता।

हे धर्मराज! धन द्वारा लोग इस लोक और परलोक दोनों को जीत लेते हैं। धर्म ही से लोग सत्य तथा धर्म का भी सम्पादन करते हैं; किन्तु जिस मनुष्य के पास धन नहीं है वह जीता हुआ भी मरे के समान है। यदि यज्ञ करने के लिये धन की आवश्यकता हो तो, जैसे बने वैसे धन संग्रह कर ले। ऐसा करने से यज्ञकर्त्ता को दोष नहीं लगता। इसी प्रकार आपत्तिकाल में धनोपार्जन के लिये प्रजा पर अत्याचार करने से राजा को दोष नहीं लगता; किन्तु अच्छे समय में ऐसा करना मना है। देश और काल के अनुसार कार्य तो अकार्य और अकार्य कार्य हो जाता है। अतः इसमें बुराई नहीं है। हे राजन्! एक ही पुरुष में धन का संग्रह और धन का त्याग हो नहीं सकता अर्थात् जो संग्रही है वह त्यागी नहीं होता और जो त्यागी है वह संग्रही नहीं होता। जो धनी हैं वे वन में नहीं रहते और जो त्यागी हैं, वे नगरों में या महलों में नहीं रहते। इस जगत् में जो कुछ धन देखा जाता है, उस धन के पीछे लोग आपस में सदा लड़ा करते हैं। इस जगत् में राजा के लिये राज्यपालन को छोड़ अन्य कोई कर्त्तव्य है ही नहीं। आपत्तिकाल में प्रजा पर करवृद्धि करना राजा का कर्त्तव्य है; किन्तु सुसमय में करवृद्धि करने से राजा को पापभागी होना पड़ता है। अतः सुसमय में राजा को प्रजाजनों के ऊपर दया करनी चाहिये और प्रजारक्षण कर, अपना कल्याण करना चाहिये। किसी को दान पुरस्कार आदि के रूप में धन मिलता है, कितने ही यज्ञ करा कर या कर के धन पाते हैं, कोई धनप्राप्ति के लिये तप करते हैं और कोई बुद्धिबल से और चातुर्य से धन कमाते हैं। जो आदमी निर्धन होता है, वही दुर्बल कहलाता है और

धनी बलवान्। क्योंकि धनवान् के लिये कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। धनी पुरुष की सब बलाएं टल जाती हैं। धन पास होने पर मनुष्य धर्म करता है, वैभव बढ़ाता है और अपना परलोक बनाता है। अतः राजा को उचित है कि, वह न्यायपूर्वक धन प्राप्त करे; किन्तु यदि आपत्ति आवे तो अधर्माचरण को भी धर्माचरण मान कर, अपना काम निकाले; किन्तु सुसमय में अधर्म कर धन न बटोरे।

शान्तिपर्व का राजधर्मपर्व समाप्त हुआ।